An International Multidisciplinary Refereed Research (Quarterly) Journal
उच्च शिक्षा से सम्बन्धित विमर्श तथा शोध का बहु-भाषीय त्रैमासिक अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल
Issue-05/Vol-17/Dec.2017 ISSN No. 2319-5908

SHODH SANDARSH

Education, Literatura, History, Art, Culture, Science, Commerce etc.

Patron
Prof. R.P. Tripathi
Ex. Head.
Deptt. of AIHC & Archaeology
Allahabad Central University, Allahabad

Chief Editor
Dr. Vimlesh Kumar Pandey
Associate Professor
P.G. Deptt. of AIHC & Archaeology
S.B.P.G. College, Badlapur, Jaunpur

• Editor •

Dr. Vijay Pratap Tiwari
Dr. Vijay Kumar Mishra

Prof. Sushaim Bedi
Deptt. of Hindi
Colambia University USA

• Editorial Board •

Dr. Saroj Goswami
Head Deptt. of Hindi
Govt. Girls P.G. College
Rewa (M.P.)

Dr. Girja Prasad Mishra
Principal
Shambhu Nath College of Education
Jhalwa, Allahabad

Dr. Rakesh Dwivedi
Asstt. Prof.
Deptt. of Hindi
DAV P.G. College, Varanasi (U.P.)

Dr. Sanjay Kumar Singh
Economic & Statistical Officer
(U.P.)

Dr. Jamil Ahmed
Deptt. of AIHC & Arch.
Allahabad University Allahabad

Dr. Praveen Kumar Mishra
Reader & Head
Deptt of AIHC & Arch.
Nehru Gram Bharti Vishvavidyalay
Jamunipur, Allahabad (U.P.)

Dr. Sachchidanand Chaturvedi
Deptt. of Hindi
Central University, Hyderabad, (A.P.)

Shivam Srivastava
Head
Deptt. of Education
Kishan P.G. College Baharaich (U.P.)

• Legal Advisor •
Dhirendra Kumar Mishra

An International Multidisciplinary Refereed Research (Quarterly) Journal
उच्च शिक्षा से सम्बन्धित विमर्श तथा शोध का बहु-भाषीय त्रैमासिक अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल
Issue-05/Vol-17/Dec.2017 **ISSN No. 2319- 5908**

SHODH SANDARSH

• *Experts / Advisory Board* •

Prof. Sita Ram Dubey
Ex. Head.
Deptt. of AIHC & Archaeology
Banaras Hindu University
Varanasi (U.P.)

Dr. Vidyottama Mishra
Professor
Deptt. of Hindi
Banaras Hindu University
Varanasi (U.P.)

Dr. Lal Sahab Singh
Principal
R.R. P.G. College Amethi,
Sultanpur (U.P.)

Prof. P.D. Singh
Associate Professor
Deptt. of Sanskrit
Banaras Hindu University
Varanasi (U.P.)

Dr. Shashi Kumar Singh
Associate Professor
Deptt. of Sanskrit
Dr. Hari Singh Gaur University
Sagar (M.P.)

Prof. Anurag Bhadoria
Associate Professor
Deptt. of Management
Banaras Hindu University
Varanasi (U.P.)

Email : shodhsandarshalld@gmail.com
vijaykumarmishra1976@gmail.com
Editorial/Managerable Office
Vijay Pratap Tiwari
539-A, Bukhshi Khurd, Daraganj, Allahabad-211006
Mobile ; 09415627149, 09450586526, 09015465436
Publisher & Printer :Vagisha Prakashan, Old Jhunsi, Kohna, Jhunsi, Allahabad

Contents

Page No.

Sanskrit Literature

- **कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र**–*स्नेहा* **1-5**
- **मानव जीवन की आधारशिला : स्वच्छता**–*डॉ० राहुल मिश्र* **6-7**

Hindi Literature

- **अनामिका में सांस्कृतिक शब्दावली का अर्थतात्त्विक विश्लेषण** *(मात्र व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द)*–*प्रशान्त सिंह* **8-13**
- **भारतीय अस्मिता के सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त का महत्त्व**–*आशीष कुमार दूबे* **14-19**
- **बाल-मनोविज्ञान की सार्थक अभिव्यक्ति : 'हमका दियो परदेश'**–*डॉ. पर्वज्योत कौर* **20-23**
- **गढ़वाली काव्य : खुद और प्रकृति का अन्त:सम्बन्ध**–*डॉ. कुसुम नेगी* **24-26**
- **जनसंचार के माध्यम और हिन्दी**–*डॉ. तजिन्दर भाटिया* **27-29**
- **डॉ० शिवप्रसाद सिंह का रचना संसार (उपन्यास)**–*डॉ. कंचनलता त्रिपाठी* **30-31**
- **मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों का कथ्यगत विवेचन**–*प्रशान्त कुमार राय* **32-37**
- **राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में चित्रित नारी-समस्याएँ**–*डॉ. सरोज गोस्वामी एवं प्रियंवदा शर्मा* **38-41**
- **आचार्य रसलीन की रचनाधर्मिता**–*डॉ० आलमगीर अली अहमद* **42-45**
- **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्येतिहास दृष्टि**–*अनुराधा देवी* **46-49**
- **भक्ति-आन्दोलन एक दृष्टि**–*शालिनी सिंह* **50-52**
- **कबीर का सामाजिक आन्दोलन**–*निगम प्रकाश कश्यप* **53-54**
- **समानांतर सिनेमा : एक दृष्टि**–*शालिनी सिंह* **55-58**
- **सूर-राम चरितावली का काव्य वैशिष्ट्य**–*डॉ० पूनम* **59-65**
- **निराला की प्रगतिवादी कविताओं में छायावाद का अवसान**–*अन्जू प्रभा यादव* **66-72**
- **'ग्राम्या' की प्रगतिशील चेतना**–*रीना मद्धेशिया* **73-75**
- **गीतांजलि श्री की कहानियों में युग संवेदना**–*अनिता गोयल* **76-79**
- **हिन्दी में राम काव्य**–*अरुण कुमार सिंह* **80-82**

History

- **गुप्तोत्तरकालीन समाज में शिक्षा**–*डॉ. राजीव शुक्ला* **83-84**
- **प्राचीन भारत के सामाजिक इतिहास सर्जन की समस्याएँ**–*डॉ० शशांक शेखर* **85-86**
- **जौनपुर में धार्मिक पर्यटन-विकास के अभिनव आयाम**–*डॉ० विमलेश कुमार पाण्डेय* **87-89**

Sociology

- **ग्रामीण नारी-जीवन में धर्म तथा विज्ञान : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण**–*डॉ० रवीन्द्र नाथ मिश्र* **90-96**
- **गोंड़ जनजाति की परम्परागत प्रथाएँ एवं जादू-टोने की अवधारणा**–*डॉ. रचना श्रीवास्तव एवं गंगा बैरागी* **97-104**
- **घरेलू हिंसा के उभरते नये प्रतिमान : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन**–*डॉ. सरिता सिंह* **105-109**
- **ग्रामीण जनजीवन के विकास में जनसम्प्रेषण माध्यमों का योगदान**–*डॉ. नीतू सिंह* **110-112**
- **पिछड़े वर्ग के स्नातकोत्तर छात्र/छात्राओं के शिक्षा की वर्तमान स्थिति का एक विश्लेषण**–*डॉ. भागवत मिश्र* **113-115**

- जातिवाद एवं राजनीति के अन्तर्सम्बन्ध (वर्तमान परिप्रेक्ष्य में)-*डॉ. बृजेश सिंह* **116-118**
- **Violence Against Women : A Sociological Analysis**-*Renu Rani* **119-121**
- नगरीय परिवेश में संयुक्त परिवार के बदलते प्रतिमान
  (रीवा नगर के विशेष सन्दर्भ में)-*डॉ० यू०पी० सिंह, रेखा शुक्ला* **122-124**

Education

- भारत में महिलाओं का शैक्षिक एवं सामाजिक विकास-*डॉ. राकेश प्रताप सिंह* **125-127**
- जनसंख्या शिक्षा के प्रति शासकीय तथा अशासकीय
  अभिकरणों का योगदान-*डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी* **128-131**
- मानवाधिकार का वैधानिक एवं आध्यात्मिक संदर्शन-*साधना त्रिपाठी* **132-133**
- वर्तमान शैक्षिक परिवेश में योग का महत्व-*सन्त कुमार मिश्र एवं डॉ० अजय कुमार दुबे* **134-135**
- भारतीय शिक्षा और बौद्ध चिन्तन-*पवन कुमार* **136-139**

Political Science

- न्याय की कसौटी पर आरक्षण-*डॉ. ब्रजेन्द्र सिंह* **140-142**
- महिला सशक्तिकरण : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ-*डॉ. ममता पाण्डेय* **143-145**

Philosophy

- भारतीय दर्शन का उद्भव और विकास : एक दार्शनिक अवलोकन-*डॉ. दलसिंगार सिंह* **146-150**

Psychology

- भारतीय मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन मूल्य-*डॉ. कल्पना पाण्डेय* **151-155**
- **Impact of Social Media on Indian Women**-*Mithilesh Singh* **156-160**
- **A Study of Burnout of Secondary School Teachers in Relation to Their Job Satisfaction**-*Dr. Kamlesh Kumar Pandey* **161-162**
- **Materinal Parenting and Adolescent's Creativity**-*Nilima Srivastava* **163-167**

Geography

- बदलापुर विकासखण्ड में ग्रामीण विकास के सामाजिक-आर्थिक स्वरूप
  -*डॉ. हरिश्चन्द्र सिंह एवं डॉ० पवन कुमार सिंह* **168-173**

Economics

- उत्तर प्रदेश में कृषि विकास की सम्भावनाएँ-*डॉ. नीता सिंह* **174-175**
- जैविक कृषि तकनीक की समस्यायें और सम्भावनाएँ-*डॉ. गीता सिंह* **176-180**
- ग्रामीण विकास एवं कृष्येत्तर क्षेत्र-*डॉ० ओ० पी० दूबे* **181-182**

Commerce

- **A Study on Children's Demographic Variables In Family Decision Making for Electronic Goods**-*Dr. Sheshpal Namdev* **183-189**
- **A Study on Consumer Attitude Towards Ethics in Advertising Media in Vindhya Region**-*Dr. Deepa Saxena* **190-195**
- **A Study on the Role of Lebeling on Packaging Upon Consumer Preferences Towards Confectionary Products : An Analytical Study**-*Puneet Awasthi* **196-201**

Music

- **मैहर वृन्द वादन-***अयना बोस* **202-203**

English Literature

- **Refugees' Quandary in Amitav Ghosh's 'The Hungary Tide'**

  -*Dr. Shalini Dube, Dr. Alaknanda Tripathi and Abhinav Tripathi* **204-208**

Chemistry

- **Evaluation of the Physico-Chemical Characteristics of Ganges Water Near Ghats at Varanasi, India-***Dr. Sachin Bhatt, Dr. N. P. Singh and Ravi Kumar Mishra* **209-222**

Library Science

- **Electronic Resource Collection Development-***Umesh Kumar Singh* **210-222**

*****

सम्पादकीय

इतिहास और साहित्य में तिथियों का ही बड़ा अन्तर होता है। प्रायः विद्वानों का कथन है कि इतिहास में तिथियों को छोड़कर बाकी सब कुछ असत्य होता है और साहित्य में तिथियों के अतिरिक्त सब कुछ सत्य होता है। नये-नये शोधों के आलोक में इतिहास के पन्ने भी बदल जाते हैं। एक प्रसिद्ध इतिहासकार का कथन है कि वर्तमान भी इतिहास को प्रभावित करता है। इसी प्रकार साहित्य भी पाठक और पठनीयता तथा दृष्टिकोण के कारण अलग-अलग अर्थ प्रदान करते हैं। साहित्य और इतिहास का गहरा संबंध है। इतिहास साहित्य की एक दिशा का ही नाम है। दूसरी ओर इतिहास के द्वारा साहित्य का विवेचन और विश्लेषण होता है। जिसे साहित्य का इतिहास कहा जाता है। इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों के आलोक में साहित्य में कौन-सी प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं उसका लेखन किया जाता है। इतिहास में भी साहित्यिक स्थिति का लेखन करने के बाद ही तत्कालीन समाज की शिक्षा और संस्कृति का चित्रण संभव हो पाता है। समय-समय पर इतिहास की विभिन्न घटनाओं को साहित्य में कथा, कविता और महाकाव्यात्मक रूप में पिरोया गया है। साहित्य इतिहास की तरह काम नहीं करता है उसकी रेखाएँ वक्र और रसात्मक होती हैं। इसलिए साहित्य प्रायः जोड़ने का काम करती है जबकि इतिहास तथ्यपरक और वैज्ञानिक सम्मत होते हुए भी मानव के बीच विद्वेष फैला सकता है लेकिन यह सत्य है कि इतिहास के माध्यम से हम बीती हुई घटनाओं से सबक लेते हुये वर्तमान को दिशा प्रदान करते हैं। हमें यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि किसी खास वर्ग, विचार और संस्कृति को पोषित करने के लिये या उसको महिमामंडित करने के लिए इतिहास के साथ लीपापोती न की जाए। अन्यथा इतिहास लेखन की स्वीकार्यता और प्रमाणिकता नष्ट हो जाती है। बहुत कुछ भारतीय इतिहास लेखन पद्धति में ऐसा हुआ भी है। अधिकांश इतिहास लेखन वामपंथी विचारधाराओं के आधार पर हुआ है। यह बड़ी ही आश्चर्य और असंगत पूर्ण बात है कि भारत के बारे में लिखा जा रहा है फिर भी इसमें भारतीय संस्कृति और दृष्टिकोण की लगभग उपेक्षा की गयी है। इसके पहले जो भारत का पहला आधुनिक ढंग से इतिहास लिखा गया था, वह ब्रिटिश शासनकाल में जे. एस. मिल द्वारा लिखा गया था वह भी इंग्लैण्ड में बैठे-बैठे। इस इतिहास में पर्याप्त कमियाँ थीं एक तो यह निष्पक्ष ढंग से प्रामाणिक सामग्री को जुटाकर नहीं लिखा गया दूसरे यह पूर्वाग्रस्त होकर औपनिवेशिक दृष्टिकोण से लिखा गया था। इसी के आधार पर बहुत से इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को लिखा और उस नजरिये से कई विद्वानों और इतिहासकारों ने भारत को समझने का प्रयास किया था जिससे उसमें दृष्टिदोष होना स्वाभाविक था। वही दृष्टिकोण वामपंथी इतिहासकारों में भी दिखायी पड़ती है। जो एकमात्र मार्क्स के ही विचारों को सत्य मानते हैं। वामपंथी इतिहासकारों ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को मार्क्स के नजरिये से देखा है। उस मार्क्स के नजरिये से देखा है जिसे भारतीय सभ्यता, संस्कृति, परिवेश और अर्थतंत्र की बृहद् जानकारी नहीं थी। मार्क्स द्वारा भारत के प्रति लिखे गये कुछ लेखों से यह बात सिद्ध हो जाती है। उसने अपने लेखों के माध्यम से अंग्रेजी और भारतीयों और यहाँ के कामगारों, मजदूरों तथा पूँजीवादियों के सन्दर्भ में जो बातें कही थीं वह असत्य निकली। वास्तव में देखा जाये तो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर मार्क्स ने जिस अपने सिद्धान्त को खड़ा किया और भविष्य का ताना-बाना बुनकर उसका आधार और परिणाम दोनों ही सत्य नहीं निकले। मार्क्स पैदा होता है जर्मनी में, वहाँ से भी वह अपने सिद्धान्त को निर्मित नहीं करता। अधिकांश जीवनयापन लंदन में करता है। वहाँ की परिस्थितियों को देखकर अपने सिद्धान्त का निर्माण करता है लेकिन वहाँ भी उसके विचारधारा और सिद्धान्तों के अनुसार क्रांति नहीं होती। क्रांति होती भी है तो रूस में जहाँ कि कोई पूँजीवाद नहीं था। क्रांति करते हैं तो मजदूर नहीं बल्कि कम्यून का दस्ता और आगे चलकर सत्ता की चाबी मजदूरों के हाथ में नहीं होती बल्कि कुछ गिने-चुने शासक वर्ग

के हाथ में सीमित हो जाती है। उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे 1991 तक आते-आते रूस ने जितने देशों को अपने आप में समेटा था उससे ज्यादा भागों में वह विखंडित हो गया। इसका आशय यह नहीं है कि मार्क्सवाद बिल्कुल असफल रहा। मार्क्स ने समाज को समझने में विशेषकर मजदूरों और निम्न वर्ग को समझने में बहुत बड़ी सहायता पहुँचाई। दुनिया में क्रांति पैदा की लेकिन हिंसक क्रांति। सहिष्णु हिन्दू, बुद्ध गाँधी और जैनियों की भारतभूमि इसके अनुकूल नहीं थी। लेकिन उनके अनुयायियों ने जिस प्रकार कहा कि दुनिया में सिर्फ और सिर्फ मार्क्सवाद द्वारा ही निम्न वर्ग का उत्थान किया जा सकता है यह बात बिल्कुल निर्मूल सिद्ध होती है क्योंकि प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं और इसलिए वहाँ के लिए भिन्न-भिन्न सिद्धान्त, विचार और व्यवस्था काम करते हैं। एक ही रोग की एक ही दवा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न प्रभाव डालती है। एक जैसा कार्य नहीं करती है तो भला भिन्न परिस्थितियों से निष्कासित सिद्धान्त अन्य भूमि पर कैसे सही कार्य करेंगे। कई लोगों ने भारत में भी मार्क्सवादी सिद्धान्त के आधार पर कम्युनिस्टी राजनीति करने का प्रयास किया किन्तु इतिहास गवाह है जहाँ-जहाँ कम्युनिस्ट लंबे शासन काल तक रहे वहाँ भी गरीबी नहीं मिट पाई मजदूरों की स्थिति में बहुत अधिक सुधार नहीं हो पाया और हिंसा तथा तुष्टिकरण ने राजनीति में पैर पसार लिए। आखिर वर्तमान में इस गड़े मुर्दे को उखाड़ने का क्या अर्थ है। वर्तमान परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी हैं कि जिस मार्क्सवाद और वामपंथी विचारधारा के आधार पर समाज, राजनीति और किसी वर्ग को ढंग से व्याख्यायित किया जाता है तो कई लोगों का इतिहास में जाकर झांकना आवश्यक हो जाता है।

इतिहास का लेखन ही नहीं बल्कि पुनर्लेखन भी होते रहना चाहिए। कई बार वर्तमान के आलोक में इतिहास का परीक्षण किया जाता है। फिल्म पद्मावती और करणी सेना तथा राजनीतिक हिंसा के संदर्भ में आज इतिहास की तरफ निगाहें उठना स्वाभाविक हैं। जब कई लोगों ने पद्मावती की ऐतिहासिकता पर प्रश्न उठाया तो कई लोगों ने इतिहास में जाकर उसे संभालने की कोशिश की। पद्मावती, रत्नसेन, चित्तौड़गढ़ जौहर प्रथा के संदर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य जुटाने और समझने का अर्थ यह नहीं है कि जौहर प्रथा या सती प्रथा को बढ़ावा देना है। वरन यह समझने का प्रयास है कि किन कारणों से हजारों राजपूतानी स्त्रियाँ अग्निदाह करने के लिए मजबूर हुईं। वह चाहतीं तो रणभूमि में शहीद हो जातीं किन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया। जबकि ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं कि राजा रत्नसेन को पद्मावती ने एक बार रक्तपिपासु एवं कामुक शासक खिलजी के चंगुल से छुड़ाया था। पद्मावत जैसी कई पुस्तकों में इसका वर्णन है। संजय लीला भंसाली की फिल्म पद्मावती के प्रकरण के कारण यह चर्चा में आया और करणी सेना द्वारा उग्र आंदोलन किये जाने से और अधिक। इन सारे विवादों में करणी सेना के अलग राजनीतिक मंतव्य हैं और संजय लीला भंसाली के अलग लाभ हैं। उसमें अधिक जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि दोनों ने अपने हितों के लिए सारे हथकंडे अपनाये। किन्तु यह सत्य है कि करणी सेना ने सरकारी संपत्ति को बहुत अधिक नुकसान पहुँचाया विशेषकर उन राज्यों में जो पद्मावती की ऐतिहासिकता का पूरा सम्मान करते थे यह बात भी खटकने वाली है कि आखिर वामपंथी राज्यों में यह तांडव करणी सेना ने क्यों नहीं किया। सरकार को चाहिए कि करणी सेना से सरकारी संपत्ति नष्ट करने का हर्जाना वसूले। विरोध करने का तरीका शांतिपूर्ण भी हो सकता था, क्योंकि भारतीय परम्परा, संविधान और इतिहास के अनुकूल भी था। आखिरकार फिल्म रिलीज हो ही गयी यह तो होना ही था क्योंकि इसकी पटकथा पहले ही लिखी जा चुकी थी। इस प्रसंग में इतिहास, पद्मावती और साहित्य इतिहास लेखन आदि पर विचार करना आवश्यक था जिससे इस दिशा में नए शोध हों और पुष्ट प्रमाणों के आधार पर इतिहास लेखन हो सके।

इसी संदर्भ में हमें जौहर प्रथा को गौरवान्वित नहीं करके पद्मावती के साहस और खिलजी की नृशंसता के समक्ष मजबूरी को समझने का प्रयास करना चाहिए। जब दुश्मन लाश की भी जलालत करता हो तो दुश्मन के सामने मरना भी उचित नहीं था। शायद यह बात भी क्षत्राणियाँ समझ चुकी थीं तभी तो आततायी, लम्पट, रक्तपिपासु खिलजी के हाँथों सिर्फ राख आती है जिसे उड़ाने के सिवा वह कुछ नहीं कर सकता था। इतिहास में देखिये मरे हुए हिन्दुओं के सर को काट उस पर चढ़कर बाबर ने क्या घोषणा की थी। इस बात को जायसी जैसे लोग बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। इस जौहर की ज्वाला को आज भी सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, खिलजी के प्रति असीम घृणा होती है और आपसी एकता का अभाव रखने वाले भारतीयों पर क्रोध आता है...।

ध्यान रखें इतिहास संतुलन कायम करने के लिए नहीं लिखे जाते हैं और न ही किसी की तुष्टि के लिए ही लिखा जाना चाहिए यह यथार्थ वर्णन के लिए होता है निष्पक्षता और निष्कपटता इसका आवश्यक गुण है। इसीलिए हम चाह कर भी 62 की कालिमा को नहीं मेट सकते। यह भविष्य के सबक के लिए होता है और वर्तमान की राह के लिए होता है। हमें निरंतर शोध करने की आवश्यकता है जिससे कि हम अपने भविष्य के इतिहास और तकदीर को बदल सकें।

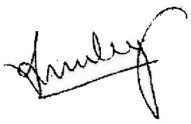

सम्पादक

Sanskrit
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 1-5
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र

*स्नेहा**

धर्मशास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थों के लेखन का इतिहास वैदिक युग से ही प्रारम्भ हो जाता है। संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक -उपनिषद ग्रन्थों में धर्म के नियम आदि का प्रतिपादन है। कल्पसूत्र धर्मशास्त्र के प्रारम्भिक ग्रन्थ हैं जिनके अन्तर्गत 'धर्मसूत्र नामक ग्रन्थ आते हैं। कल्प का अर्थ ही है–विधि, नियम, न्याय, आदेश आदि। इन विधियों और नियम-आदेशों का विवेचन करना कल्पसूत्रों का मुख्य विषय है। कल्पसूत्र के अन्तर्गत आने वाले धर्मसूत्रों में मुख्य रूप से भारतीय गृहस्थ के आचार-शास्त्र का विवेचन है। वसिष्ठ, विष्णु, गौतम, बोधायन, आपस्तम्ब मानव, हिरण्यकेशी आदि कुछ मुख्य धर्मसूत्र हैं। सामान्य रूप से वेद को 'श्रुति' कहा जाता है और धर्मशास्त्र को 'स्मृति'। आचार्य मनु ने स्पष्ट रूप से स्मृति को 'धर्मशास्त्र' कहा है–

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रां तु वै स्मृतिः।

वेद धर्म के मूल हैं। वेद में प्रतिपादित धर्म का ही सरल रूप से धर्मशास्त्रों में वर्णन हुआ है। रामायण, महाभारत और पुराणों के कई अंश धर्मानुशासन में व्यवस्थित हैं। इस अर्थ में इन ग्रन्थों का धर्मकोशीय महत्व एवं स्वरूप विद्वानों द्वारा ग्रहण किया जाता है। आचार-व्यवहार की शिक्षा के लिए वैदिक धर्मसूत्रों के आधार पर स्मृतियाँ लिखी गयीं जिनमें वर्णाश्रम व्यवस्था, राजा के कर्तव्य, विवाद का निर्णय आदि पर प्रकाश डाला गया। सामान्य धारणा है कि स्मृतियाँ वेदों का अनुसरण करती हैं और धर्मशास्त्र कहलाती हैं। धर्मशास्त्रीय साहित्य से प्राचीन भारत की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं का ज्ञान भी होता है। सम्पूर्ण धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में मनुस्मृति का सर्वातिशायी महत्व है। धर्मशास्त्रीय अध्ययन में यही सर्वाधिक लोकप्रिय भी है।

धर्मशास्त्रीय साहित्य के अन्तर्गत धर्मसूत्रों के पश्चात् स्मृतियाँ तथा संग्रह-ग्रन्थ आते हैं। उत्तरकाल में लिखे गये संग्रहग्रन्थों में सम्पूर्ण धार्मिक व्यवस्था दी गयी है। स्मृतियाँ अनेक हैं। मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम आदि की कुछ स्मृतियाँ प्राचीन हैं परन्तु प्रतीत होता है कि स्मृतियों की रचना निरन्तर होती रही है। आज स्मृतियों की संख्या प्रायः सौ तक बतायी जाती है। दूसरी कई स्मृतियाँ अधिकांश में मनुस्मृति से प्रभावित हैं।

अट्ठारह पुराणों की तरह प्रमुख स्मृतियों की संख्या भी अट्ठारह मानी जाती है। इन अट्ठारह स्मृतियों के निर्माता हैं–मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, उशनस, अंगिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद, भृगु और आपस्तम्ब। इन स्मृतिकारों के स्मृतिग्रन्थ आज अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं हैं। मानवधर्मशास्त्र इस विषय के स्मृतिग्रन्थ आज अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं हैं। मानवधर्मशास्त्र इस विषय का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के कुछ अंश प्राचीनतम ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। यह सम्भव है कि वर्तमान में प्राप्त मनुस्मृति इस धर्मशास्त्रों पर आधारित रचना हो–यद्यपि इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया, स्मृतिग्रन्थों में सर्वाधिक प्रामाणिक मनुस्मृति है। धर्ममूलक वेदों के रहते मनुस्मृति की रचना का कारण यह हुआ कि 'कालक्रम के प्रभाव से भविष्य में अधिकतम मानव वेद के गहन विषय को नहीं समझ सकेंगे यह सोचकर त्रिकालदर्शी लोक पितामह ब्रह्मा ने अपने मानसपुत्र मनु को वेदों के सारभूत धर्म का उपदेश एक लाख श्लोकों में दिया। तदनन्तर उन्होंने भी 'धर्म के इतने विस्तृत तत्व को ग्रहण करने में मानव समर्थ नहीं हो सकता यह विचार कर उस ब्रह्मोपदिष्ट धर्मतत्व को पुनः संक्षिप्त किया और मरीचि आदि मुनियों को उसका उपदेश दिया–

इदं शास्त्रां तु कृत्वा-सौ मामेव स्वयमादितः।

* *शोधछात्रा (संस्कृत), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

विधिवद ग्राह्यामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन।।

अतएव मनु द्वारा उपदिष्ट होने से ही इसका नाम मनुस्मृति है।

मनुस्मृति का काल विवाद का विषय है। यह मान्यता है कि इसकी रचना एक समय में नहीं हुई, अपितु समय-समय पर इसमें परिवर्तन और परिवर्धन भी होते रहे। मनुस्मृति में वर्णित सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के आधार पर यह ई. पूर्व तृतीय-चतुर्थ शताब्दियों की रचना प्रतीत होती है। इसकी भाषा सरल है। भाषा शैली और विषय की दृष्टि से इसमें और महाभारत में पर्याप्त समानता है। इस पर सांख्य, वेदान्त और योग का प्रभाव भी दिखाई देता है।

मनुस्मृति की प्रधानता के कई कारण हैं। वेदार्थ के अनुसार रचित होने से इसकी मान्यता अधिक है। यह चारों पुरुषार्थों– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का विशद प्रतिपादन करती है। इसमें वर्णधर्म, आश्रमधर्म, वर्णाश्रमधर्म, गुणधर्म, निमित्तधर्म, सामान्य धर्म तथा सर्वविध धर्म का सांगोपांग वर्णन हुआ है। इसीलिए मनुस्मृति धर्मशास्त्रीय वाठमय का ग्रन्थरत्न कहा जाता है।

मनुस्मृति में बारह अध्याय हैं, जिनके अन्तर्गत अनेकानेक विषयों पर विचार किया गया है। मनुस्मृति में कुल 2694 श्लोक हैं। संक्षेप में कहें तो जगत सृष्टि, संस्कार-विधि, ब्रह्मचर्यव्रत, पंचमहायज्ञ, जीविकाएँ, भक्ष्य-अभक्ष्य विचार, शुद्धि, स्त्रीधर्म, वानप्रस्थ, संन्यास, व्यवहार, राजधर्म, प्रजारक्षा, सचिव, दण्ड, युद्धनीति, कर-ग्रहण, सम्पत्ति का विभाजन, वैश्य के धर्म, शूद्र के धर्म, धूतविधि, चौर-निवारण, जातियों की उत्पत्ति, आपत्तिकाल के कर्तव्य, प्रायश्चित-विधि, सांसारिक गतियाँ, मोक्षप्रद, आत्मज्ञान, गुण-दोष की परीक्षा, देशधर्म, जातिधर्म आदि बहुत प्रकार के विषयों का विस्तृत विवेचन इसमें प्राप्त होता है। इसमें सृष्टि के प्रारम्भ से मानव समाज के विकास तथा लोकजीवन से सम्बद्ध सभी पक्षों पर विचार हुआ है।

प्रथम अध्याय में पौराणिक, वेदान्त से सम्बद्ध और सांख्यपरक विचारों का विवरण प्राप्त होता है। द्वितीय अध्याय में श्रुति और स्मृति के अनुसार धर्म के लक्षण बताये गये हैं। तृतीय, चतुर्थ और पंचम अध्यायों का मुख्य विषय गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का विवेचन करना है। षष्ठ अध्याय में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम का वर्णन किया गया है। सप्तम अध्याय में राजा के कर्तव्य-कर्म प्रतिपादित हैं। अष्टम और नवम अध्यायों में दीवानी, फौजदारी, कानून, ऋण, धरोहर, उपहार, वेतन, मान-हानि आदि लगभग अट्ठारह विषयों की विवेचना की गयी है। दशम अध्याय में वर्ण-संकर के कर्तव्यों का वर्णन है। ग्यारहवें अध्याय में यज्ञ और पश्चाताप के नियम दिये गये।

मनुस्मृति की महत्ता के कारण उस पर कई टीकाएँ लिखी गयीं। इसके प्रसिद्ध टीकाकारों में मेधातिथि, कुल्लूकभट्ट, गोविन्दराज, नारायण सर्वज्ञ, राघवानन्दन, मणिराम, रामचन्द्र, नन्दन और भारुचि का नाम लिया जाता है। इन सबमें कुल्लूकभट्ट की 'मन्वर्थमुक्तावली टीका और मेधातिथि के 'मनुभाष्य का विशेष स्थान है। मेधातिथि मनुसमृति के प्राचीनतम भाष्यकार हैं। मन्वर्थमुक्तावली टीका सरल, संक्षिप्त और स्पष्ट होने के कारण अधिक प्रचलित हैं।

याज्ञवल्क्य द्वारा रचित याज्ञवल्क्य स्मृति मनु के बहुत बाद की है। यह शुक्ल यजुर्वेद के पारस्कर गृह्यसूत्र से सम्बन्धित है और एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह तीन भागों में विभक्त है– आचार, व्यवहार और प्रायश्चित। इसमें मनु की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील विचार हैं और यह पर्याप्त व्यवस्थित तरीके से लिखी गयी है। इस पर लिखी टीकाओं में विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरा व्याख्या सुप्रसिद्ध है।

पाशमुनि की पराशरस्मृति, नारद के नाम से जानी जाने वाली नारदस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, विष्णुस्मृति आदि दूसरी प्रसिद्ध स्मृतियाँ हैं। कुछ दूसरे प्रकार के धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में बंगाल के लक्ष्मीधर का कल्पतरु, जिमूतवाहन का व्यवहारमातृका तथा दायभाग, देवण्ण भट्ट की स्मृतिचन्द्रिका, हेमादिर का चतुर्वर्गचूड़ामणि, मित्रामिश्र का वीरमित्रोदय आदि सुपरिचित ग्रन्थ हैं। धर्मशास्त्र विषयक निबन्ध ग्रन्थों की रचना की परम्परा विशाल है। काशीनाथ उपाध्याय का धर्मसिन्धुसार दक्षिण भारत में बहुत प्रामाणिक माना जाता है।

चार पुरुषार्थों में 'अर्थ का दूसरा स्थान है। प्रारम्भ में अर्थ धर्म का ही एक अंग था। इसी कारण धर्मसूत्रों और स्मृतिग्रन्थों में अर्थशास्त्र के विषयों की चर्चा मिलती है। अर्थशास्त्र-विषयक ग्रन्थों के विषय मुख्यतया राजनीति और दण्डनीति हैं।

महाभारत के अनुसार ब्रह्मा ने इस विषय पर एक लाख विभागों के ग्रन्थ की रचना की थी। महाभारत में ही अर्थशास्त्र का विस्तृत उपदेश है। कामसूत्र के अनुसार अर्थशास्त्र के मूल प्रणेता बृहस्पति हैं। भास ने ब्राह्मणों के अध्ययन के विषयों के अन्तर्गत बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है। महाभारत के शान्तिपर्व और विदुरनीति आदि भागों में अर्थशास्त्र से सम्बद्ध सामग्री मिलती है।

संस्कृत शास्त्रों में राजनीतिविषयक सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ कौटिल्य का अर्थशास्त्र है। संस्कृत शास्त्रों में कौटिल्य के अर्थशास्त्र को एक उच्चकोटि का ग्रन्थ रत्न माना जाता है। यह नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र का सम्मिलित रूप है। राजनीति और अर्थनीति के विषय में यह बहुमूल्य विचारों का भण्डार है। आचार्य शुक्र और बृहस्पति को नमस्कार करके 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना के विषय में आचार्य कौटिल्य ने सर्वप्रथम प्रतिज्ञा की है, ''पृथ्वी को प्राप्त करने और रक्षा करने के लिए जितने अर्थशास्त्र प्राचीन आचार्यों ने लिखे, प्रायः उन सबको ही संगृहीत करके यह एक अर्थशास्त्र बनाया गया है।'' ग्रन्थ के समापन में पुनः उन्होंने लिखा है कि ''प्राचीन अर्थशास्त्रों में बहुधा भाष्यकारों के मतभेदों को देखकर स्वयं ही विष्णुगुप्त ने इस अर्थशास्त्र के सूत्रों और उनके भाष्य का निर्माण किया है।'' अतः स्पष्ट है कि अपने से पूर्ववर्ती अनेक अर्थशास्त्रीय आचार्यों और मनीषियों के द्वारा स्थापित सिद्धान्तों के सम्यक अध्ययन और मनन के अनन्तर ही आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र का प्रणयन किया। इसीलिए राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था से सम्बद्ध व्यापक विषयों पर योजनाबद्ध तरीके से लिखा गया होने के कारण यह शास्त्र भारतीय साहित्य की अनुपम कृति है।

अर्थशास्त्रप्रणेता आचार्य कौटिल्य की प्रसिद्धि दूसरे कई नामों से भी है। जिनमें उनका एक लोकविश्रुत नाम चाणक्य है, जो उन्हें चणक का पुत्र होने से दिया गया। अतः यह उनका वंश नाम है। कुटिल राजनीतिज्ञ होने से उन्हें 'कौटिल्य' कहा जाता है। अतः यह उनका उपाधि नाम है। कौटिल्य का वास्तविक पितृप्रदत्त नाम विष्णुगुप्त था। यह नाम अर्थशास्त्र में प्रयुक्त भी हुआ है। 400 ई. सन् में रचित, आचार्य कामन्दक कृत नीतिशास्त्र से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि अर्थशास्त्र की रचना करने वाले आचार्य कौटिल्य का असली नाम विष्णुगुप्त था। नीतिशास्त्र से यह जानकारी भी मिलती है कि कौटिल्य ने नन्दवंश का उन्मूलन कर उसकी जगह मौर्यवंश को प्रतिष्ठित किया। विष्णुपुराण में नन्दवंश के विनाश की एक कथा प्राप्त है, जिसके अनुसार कौटिल्य नामक ब्राह्मण ने उस राज्य के अन्तिम उत्तराधिकारी नन्द का विनाश करके उसके स्थान पर मौर्य वंश के प्रथम प्रतापी शासक चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक किया। ऐतिहासिक तथ्यों से विदित होता है कि मौर्यवंश के महाप्रतापी सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने विष्णुगुप्त नामक एक अद्भुत, कुटिलमति, राजनीतिज्ञ की सहायता से मगध के नन्द वंश को समूल विनष्ट करके और शक्तिशाली यवनराज सिकन्दर के प्रयत्नों को विफल करके एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, जिसको इतिहासकारों ने मौर्य साम्राज्य का नाम दिया। चन्द्रगुप्त मौर्य 323 ई.पू. के लगभग मगध का स्वामी बना था और उसने 298 ई. पूर्व तक राज्य किया।

प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास में विशाल साम्राज्य के संस्थापक, आचार्य, महामात्य, अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता और कूटनीतिज्ञ के रूप में कौटिल्य की प्रतिष्ठा है। अर्थशास्त्र के उपसंहार के एक श्लोक में चाणक्य ने गर्वपूर्वक कहा है कि–'इस अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थ की रचना उसने की, जिसने बड़े अमर्ष के साथ शास्त्र का, शस्त्र का और नन्दराज के हाथ में गयी पृथ्वी का एक साथ उद्धार किया।'

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोदधृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

अर्थशास्त्र में ही अन्यथा लिखा गया है, ''सब शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके और उनके प्रयोग समझकर कौटिल्य ने नरेन्द्र के लिए यह शासन की विधि बनाई।''

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥

आचार्य चाणक्य के जीवन, कार्यकलाप और स्थितिकाल को लेकर ऐतिहासिकों में बहुत विवाद रहा है कि अर्थशास्त्र की रचना किसी एक विद्वान् द्वारा हुई या वह किसी सम्प्रदाय में धीरे-धीरे चिरकाल तक विकसित होता रहा। क्या उसे मौर्य युग में चाणक्य द्वारा बनाया या बाद में चाणक्य के मन्तव्यों के अनुसार किसी अन्य व्यक्ति में उसकी रचना की? हमें इस विवाद में यहाँ पड़ने की आवश्यकता नहीं। अब अनेक विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र मौर्यकाल की ही रचना है और उसका निर्माण आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य द्वारा नरेन्द्र चन्द्रगुप्त के शासन की विधि के रूप में ही हुआ था। अधिक प्रचलित धारणा के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री चाणक्य ही अर्थशास्त्र के प्रणेता हैं और इनका समय चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व है। यदि इस ग्रन्थ के कुछ अंशों को बाद का लिखा हुआ भी माना जाये, तब भी इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ से मौर्यकाल की शासन व्यवस्था, आर्थिक दशा और सामाजिक व्यवहार के सम्बन्ध में बहुत सी महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मैसूर के सुप्रसिद्ध विद्वान श्रीराम शास्त्री ने आचार्य कौटिल्य द्वारा विरचित अर्थशास्त्र को पहली बार बड़ी शुद्धता के साथ प्रकाशित किया। उन्होंने अनेक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि आचार्य कौटिल्य चन्द्रगुप्त

मौर्य के आमात्य थे और अर्थशास्त्र उन्हीं की कृति है। डॉ0 जायसवाल के मत में कौटिल्य एक कल्पित व्यक्ति न होकर सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के महामात्य थे, अर्थशास्त्र उन्हीं की कृति है, जिसकी रचना 400 ईसा पूर्व में हुई। वाचस्पति गैरोला के शब्दों में 'आचार्य कौटिल्य काल्पनिक व्यक्ति न होकर एक युगविधायक महारथी के रूप में संस्कृत भाषा की महानताओं के साथ अजर एवं अमर हो चुके हैं।'

संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों पर अर्थशास्त्र के प्रभाव के आकलन से उसकी मान्यता और महानता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। महाकवि कालिदास के रघुवंश, कुमारसम्भव और अभिज्ञानशाकुन्ल अर्थशास्त्र से प्रभावित हैं। कामन्दक नीतिशास्त्र में अर्थशास्त्र की चर्चा है। विशाखदत्त का मुद्राराक्षस नाटक कौटिल्य के अतुलनीय व्यक्तित्व का परिचायक है। कवि दण्डी ने दशकुमारचरित में आचार्य विष्णुगुप्त निर्मित दण्डनीति का उल्लेख किया है, जिसमें 6000 श्लोक हैं। बाणभट्ट ने कादम्बरी में कौटिल्य के शास्त्र का उल्लेख किया है। पंचतन्त्र, नीतिवाक्यामृत आदि ग्रन्थों में अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध पण्डित आचार्य चाणक्य या कौटिल्य के नाम का स्मरण किया गया है। टीकाकार मल्लिनाथ ने अपनी टीकाओं में 'इति कौटिल्यः' लिखकर अर्थशास्त्र से उद्धरण दिये हैं।

अर्थशास्त्र के समीक्षण से स्पष्ट होता है कि कौटिल्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने चारों वेद, अथर्ववेद के मंत्र प्रयोग, छः वेदांग, रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में उपलब्ध अर्थशास्त्रीय सामग्री को और अपने काल में उपलब्ध धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के पृथक अथवा समन्वित ग्रन्थों को अपने अर्थशास्त्र का मूलस्रोत बनाया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दर्शन, ज्योतिष, धातुविज्ञान, विषप्रयोग, रसायन-प्रक्रिया, रत्नपरीक्षा, भेषजविधा, खननकर्म, स्थापत्यकला, दुर्गनिर्माण जैसे विषयों के साथ लोक-प्रचलित ज्ञान का भी अर्थशास्त्र में समावेश किया है।

इस ग्रन्थ को अर्थ और काम का विश्वकोष कहा जा सकता है। अर्थशास्त्र के अन्तिम श्लोकों में घोषित भी किया गया है 'यह अर्थशास्त्र धर्म, अर्थ तथा काम में प्रवृत्त करता है, उनकी रक्षा करता है और अर्थ को विरोधी अधर्मों को नष्ट करता है।'

धर्ममर्थं च कामं च प्रवर्तयति पाति च।
अधर्मानर्थविद्वेषानिदं शास्त्रं निहनित च॥

कौटिलीय अर्थशास्त्र निसन्देह एक कठिन और विशाल ग्रन्थ है। इसमें अनेक अप्रसिद्ध और अप्रचलित पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त ऐसे कई विषयों की चर्चा इसमें मिलती है, जो वर्तमान परिस्थितियों के लिए सर्वथा अनजाने हैं। किन्तु प्राचीन भारत के राजनीतिशास्त्रीय विचार, कानून, व्यवहार, नियम, परिस्थितियों आदि के परिज्ञान के लिए यह एक अमूल्य भंडार है। कौटिल्य की राज्यशासन प्रणाली में राजा ही एकमात्र कर्ता धर्ता है, किन्तु मंत्रिपरिषद् अनिवार्य अंग है। राजा अपना समस्त कार्य मंत्रियों के परामर्श से ही करता है। राजा का प्रथम कर्तव्य प्रजा को प्रसन्न रखना है। राष्ट्रहित-सम्पादन राजा का प्रधान दायित्व है।

कौटिल्य का उद्देश्य एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना करना था जिसकी शासनसत्ता निरंकुश हो, पर जिसकी नीति में लोक-कल्याण की व्यापक भावना विद्यमान हो। इसीलिए कौटिल्य की निरंकुश नीति में प्रजातंत्रात्मक विचारों का समन्वय दिखायी देता है। अपने शास्त्र में आचार्य कौटिल्य ने राजदूत, गुप्तचर, पुर, जनपद, वर्णाश्रम व्यवस्था, न्याय, दण्ड, उद्योग, राजकर आदि अनेक विषयों पर विस्तार से विवेचन किया है। कह सकते हैं कि महाभारत की उक्ति 'यदिहासित तदन्यत्र यन्नेहासित न तत्क्वचित'' राज्यव्यवस्था के विषय में कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर पूरी तरह उचित ठहरती है।

कौटिल्य-प्रणीत अर्थशास्त्र के हिन्दी अनुवादकों के अतिरिक्त उस पर कई संस्कृत टीकाएँ भी लिखी गयी हैं, जिनमें गणपति शास्त्री कृत 'श्रीमूला टीका, श्री भट्टस्वामी कृत प्रतिपदपंचिका और श्रीभिक्षुप्रभमति कृत चाणक्यटीका' अधिक प्रचलित हैं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र का विभाजन पन्द्रह अधिकरणों में है, जिनके अन्तर्गत अध्याय हैं। सम्पूर्ण अर्थशास्त्र में 180 प्रकरण हैं। अधिकरणों के अन्तर्गत कुल अध्यायों की संख्या 150 है। अधिकरणों का नामकरण निम्नलिखित प्रकार से है–

1. पहला अधिकरण–विनयाधिकरण
2. दूसरा अधिकरण–अध्यक्षप्रचार
3. तीसरा अधिकरण–धर्मस्थीय
4. चौथा अधिकरण–कण्टन शोधन
5. पाँचवाँ अधिकरण–योगवृत्त

6. छठा अधिकरण–मण्डल-योनि
7. सातवाँ अधिकरण–षाडगुण्य
8. आठवाँ अधिकरण–व्यसनाधिकारिक
9. नौवां अधिकरण–अभियास्यत्कर्म
10. दसवाँ अधिकरण–साग्रामिक
11. ग्यारहवाँ अधिकरण–वृत्तसंघ
12. बारहवां अधिकरण–आबलीयस
13. तेरहवाँ अधिकरण–दुर्गलम्भोपाय
14. चौदहवाँ अधिकरण–औपनिषदिक
15. पन्द्रहवाँ अधिकरण–तन्त्रायुक्ति

इसी तरह प्रतिपादित विषयों के अनुसार अध्यायों के नाम भी हैं। सम्पूर्ण अर्थशास्त्र सूत्रात्मक है। कहीं-कहीं श्लोकों में सूत्रों की बात दोहरायी गयी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. मनुस्मृति, 8/10
2. वही, 8/336
3. मनुस्मृति, हरिगोविन्दशास्त्री चौखम्बा संस्कृत वाराणसी 1970, एवं भूमिका, पृ. 5.6
4. सत्यकेतु विद्यालंकार मसूरी, भारतीय संस्कृति और इतिहास
5. अर्थशास्त्र, पृ. 259
6. कौटिल्य अर्थशास्त्र
7. आर. पी. कांगले

*****

Sanskrit
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 6-7
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

मानव जीवन की आधारशिला : स्वच्छता

*डॉ. राहुल मिश्र**

स्वच्छता भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। भारतीय संस्कृति के प्रतीक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने निबन्ध 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है'' में लिखा है कि ''यहि तिवहार ही तुम्हारी म्यूनिसिपॉलिटी है''[1] इससे भारतेन्दु जी का आशय यही है कि जिस प्रकार शहरों, नगरों में स्वच्छता का कार्य नगरपालिका (म्यूनिसिपॉलिटी) द्वारा किया जाता है, उसी प्रकार हमारे यहाँ दीपावली व होली आदि त्यौहार है। इनके आने के हफ्ते दो हफ्ते पहले से ही हम अपने-अपने घरों एवं पास-पड़ोस की सफाई में लग जाते हैं। स्वच्छ परिवेश में ही प्रकाश का सौन्दर्य अपनी आभा को बिखेरकर चारूता को प्राप्त करता है।[2]

प्राचीन काल में ऋषि-मुनि जीवन के विविध क्षेत्रों में स्वच्छता को महत्व दिये हैं। किसी भी धर्मिक क्रियाकलाप को सम्पन्न करने के पूर्व स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण करने की व्यवस्था की गयी है। यह व्यवस्था इतनी प्रबल है कि पूजा अर्चना के पूर्व ही प्रतीकात्मक ईश्वर को भी स्नान इत्यादि कराने की व्यवस्था है तथा प्रत्येक क्रिया-कलाप में हस्त प्रच्छालन की भी व्यवस्था की गयी है। अस्तु यह कहना उपयुक्त होगा कि प्राचीन काल से जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वच्छता को हमारे देशवासियों ने स्वीकारा है।[3]

स्वच्छता स्वस्थ जीवन की संरक्षिका है व भोजन औषधित्यादि तो सेविका और परिचारिका मात्र हैं। स्वच्छ भोजन, ताजे फल, स्वच्छ वस्त्र, स्वच्छ जल, स्वच्छ आवास, स्वच्छ परिवेश, स्वच्छ वातावरण, मानव जीवन को स्वस्थ एवं निरोगी रखता है। बाल्यकाल में ही शिशुओं बालकों में स्वच्छता के प्रति सजग रहने के लिए स्वस्थ आदतें डालनी चाहिए यथा प्रतिदिन समय-समय पर अपने वस्त्रों, अपने घर तथा अपने परिवार को स्वच्छ रखने के लिए प्रयत्नशील बने रहना चाहिए।[4]

आलस्य व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है। आलस्य ही गन्दगी, तमाम प्रकार की व्याधियों की जड़ है। अतः हमें आलस्य को त्यागकर स्वच्छता के प्रति सजग रहने की आवश्यकता है। वर्तमान परिवेश में अधिक जनसंख्या, अधिकाधिक वाहनों का प्रयोग तथा अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों से प्रतिदिन जहर घुलता जा रहा है। इसके प्रति भी हमें सजग होने की आवश्यकता है। कृषि उत्पादों में अधिकाधिक कीटनाशकों का प्रयोग हमारी भोजन प्रणाली को दूषित कर रहा है।[5]

आज का परिवेश इतना गन्दा हो गया है कि नाना प्रकार के रोग सुगमता से पनप कर मानव को अपना शिकार बना रहे हैं और मानव स्वयं ही अपने परिवेश में जाने अनजाने में इन्हें जीवन या पोषण प्रदान करता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि हम सर्वप्रथम अपने परिवेश को स्वच्छ रखें। अपने परिवेश में कोई भी ऐसी बात बढ़ाने न जो मानवीय जीवन के लिए खतरा उत्पन्न कर सके।[6]

स्वच्छता सुन्दरता की जननी है। सुन्दर से सुन्दर वस्तु भी यदि गन्दगी के आवरण से ढँकी है तो उसका सौन्दर्य ग्रहणग्रस्त दिखाई देगा। साधारण से साधारण वस्तु यदि स्वच्छ है, साफ सुथरी है तो वह अवश्य सुन्दर दिखेगी। अस्वच्छ बहुमूल्य वस्तु से स्वच्छ साधारण वस्तु अधिक अच्छी लगती है। अतः यह आवश्यक है कि गन्दगी के राहु को स्वच्छता के सुदर्शन चक्र में निरन्तर नष्ट करते रहें।[7]

स्वच्छता अत्यन्त व्यापक शब्द है। यह बाह्य रूप से तो तुरन्त दिखाई दे जाती है, किन्तु आन्तरिक अस्वच्छता कुछ समय बाद दिखायी देती है। चरित्र की स्वच्छता व्यक्तित्व की स्वच्छता आज समाज, धर्म, राजनीति को भ्रष्ट किये जा रही है। आवश्यकता है कि इन गन्दगियों को भी दूर किया जाय और स्वच्छता को जीवन के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, व्यावहारिक, नैतिक क्षेत्र में भी स्थापित किया जाय। स्वच्छ विचार, स्वच्छ आचरण, स्वच्छ व्यवहार, स्वच्छ आदर्श समाज को उन्नत व्यवहार तथा मानवीय जीवन को देवतुल्य बना देते हैं।[8]

* *प्रवक्ता (संस्कृत), रा.इ.का. योगसैण रामपुर, अल्मोड़ा*

वर्तमान समय में सरकार भी स्वच्छता को बढ़ावा देने के लिए विविध कार्यक्रमों का आयोजन कर रही है। झाड़ू लेकर प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रिगण सफाई अभियान के तहत सफाई करते हुए टेलीविजन, समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं में जनता के समक्ष दिख जा रहे हैं। पिछले वर्ष गाँधी जयन्ती को स्वच्छता दिवस के रूप में मनाया गया जिसके तहत प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, छोटे-बड़े अधिकारी कर्मचारी सब इस अभियान में भाग लिये तथा सफाई करते हुए अपना चित्र प्रसार माध्यम से प्रसारित करायें जिसे देखकर जन-सामान्य भी इस अभियान में अपनी सक्रियता दिखा रहे हैं।

विद्यालयों में भी स्वच्छता अभियान चलाया गया। बच्चे को स्वच्छता से होने वाले लाभ से अवगत कराया गया। उन्हें दैनिक जीवन में स्वच्छता अपनाने पर बल दिया गया यथा प्रतिदिन स्नान करना, स्वच्छ कपड़े पहनना, नाखून काटना और उन्हें स्वच्छ रखना, बालों में कंघा करना, स्कूल बैग तथा पुस्तकों को साफ-स्वच्छ रखना, भोजन के पूर्व तथा शौच के बाद साबुन से हाथ धोना, दाँत साफ रखना आदि।

इस प्रकार स्वच्छता अपनाकर हम अपने स्वास्थ्य को अच्छा बना सकते हैं। परिवेश की स्वच्छता आगामी पीढ़ी को भी स्वस्थ बनाये रख सकती है। वर्तमान भविष्य में हर समय स्वच्छता अपरिहार्य रहेगी।

सन्दर्भ-सूची

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : भारतवर्षोन्नति कैसे हो, गद्य गरिमा।
2. आचार्य पं. श्रीराम शर्मा (जनवरी, 1992) : अखण्ड ज्योति।
3. वही;
4. शर्मा; पं. श्रीराम (1991) : संस्कार परम्परा का पुनरुज्जीवन।
5. डॉ. सिंह; सीताराम (2007) : ग्रामीण समुदाय में बच्चों का स्वास्थ्य, वाराणसी।
6. वही;
7. वही;
8. टायलर; ई. बी. (1958) : द ओरिजिन्स ऑफ कल्चर, न्यूयार्क।
9. आमण्ड; जी. ए. : कम्पेटिव पॉलिटिकल सिस्टम।

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 8-13
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

अनामिका में सांस्कृतिक शब्दावली का अर्थतात्त्विक विश्लेषण (मात्र व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द)

*प्रशान्त सिंह**

सातवीं-आठवीं शताब्दी से लेकर अब तक के हिन्दी साहित्य का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि हिन्दी कवियों की एक लम्बी सूची है, किन्तु अपनी विशिष्टता और मौलिकता के कारण महाकवि के रूप में जिस महामानव का नाम स्वर्णिम अक्षरों से अंकित है उनका नाम सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' है। शारीरिक गठन की दृष्टि में वे काबुली पठान, स्वभाव में अवढरदानी, मिष्ठान्नप्रिय, दीर्घभोजी, कुशल खिलाड़ी और संगीत प्रेमी थे। निरालाजी के व्यक्तित्व को निकट से जानने वाले डॉ0 मोहन अवस्थी का कथन है कि, ''संघर्ष विष पीने में शंकर किन्तु स्वाभिमान में चोट लगते ही प्रलयंकार बन जाने वाले निराला का निर्गुण कुछ ऐसे परस्पर विरोधी कणों से हुआ था कि उनका व्यक्तित्व लोगों के लिए एक पहेली बनकर रह गया।'' उनके व्यक्तित्व में अभिजात्य और फक्कड़पन का ऐसा संगम था जो बड़ा ही स्पृहणीय प्रतीत होता है। 21 फरवरी, 1896 को बसंत पंचमी के दिन बंगाल के महिषादल जिले के मेंदिनीपुर ग्राम में जन्में निराला छायावाद के प्रमुख चार स्तम्भों में से एक हैं। निराला एक महान् साहित्य शिल्पी हैं। निराला का काव्य हिन्दी साहित्य जगत् का गौरव है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा, वह सब निराला ही है। वस्तुतः वे एक निराले काव्य शिल्पी हैं। यद्यपि निराला जी ओज एवं औदात्य के कवि हैं, किन्तु भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में पूर्ण आस्था रखते हैं। निराला जी ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता के सन्दर्भ में एवं भारतीय संस्कृति के पुरोधाओं पर विस्तार से लिखा है। उनकी अनेक रचनाएँ जैसे–'भारति जय विजय करें', 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा', 'जागो फिर एक बार', 'जिधर देखिए श्याम विराजें', 'वर दे वीणा वादिनि वर दे', 'आवाहन', 'भिक्षुक', 'वनबेला', 'सरोज स्मृति', 'कुकुरमुत्ता' आदि इसका प्रमाण है। उनकी कविताओं में सांस्कृतिक शब्दावली का बाहुल्य है।

सांस्कृतिक शब्दों से आशय उन शब्दों से है जो मानव को परिष्कृत करते हैं, जो मानव में मानवीय गुणों का विकास करते हैं, जो उसके व्यक्तित्व का नर्माण करते हैं, जो उसे नैतिकता प्रदान करते हैं, जो मानव जीवन में मानवीय मूल्यों की स्थापना करते हैं, वे सभी शब्द सांस्कृतिक शब्द हैं। मानव समाज विकास के अनेक स्तरों से गुजरकर सभ्य एवं सुसंस्कृत बना है। प्रारम्भ में जंगली अवस्था, फिर बर्बरावस्था तदुपरान्त मानव सभ्य एवं सुसंस्कृत अवस्था की ओर अग्रसर हुआ, इस प्रकार जंगल से लेकर नगरों तक के विकास की जितनी शब्दावली है, वह सांस्कृतिक शब्दावली कहलायेगी, जैसे–जंगल, वन, उपवन, उद्यान, घर, गाँव, नगर, वस्त्र, धर्म, ईश्वर, परम्पराएँ, प्रथाएँ, मान्यताएँ, लेखनकला, विज्ञान से जुड़े शब्द सांस्कृतिक शब्द हैं।

'अनामिका' निराला जी की महत्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है। उनकी श्रेष्ठतम कविताएँ इसी काव्य संग्रह में संग्रहीत हैं। इनके दो संस्करण प्रकाशित हुए। प्रथम संस्करण का प्रकाशन 1923 ई. में हुआ। इसमें 'नरगिस', 'अपराजिता', 'वनबेला', 'तुम और मैं' आदि कविताएँ संग्रहीत हैं। द्वितीय संस्करण का प्रकाशन 1938 ई. में हुआ। इसमें 'सरोज-स्मृति', 'राम की शक्ति-पूजा', 'तोड़ती पत्थर', 'सच है', 'सम्राट एडवर्ड के प्रति', 'नाचे उस पर श्यामा' आदि कविताएँ संग्रहीत हैं। इन दोनों ही संस्करणों में सांस्कृतिक शब्दों का बाहुल्य है। इनमें 'राम की शक्ति-पूजा' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत शोध-लेख में केवल व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों का विवेचन किया गया है क्योंकि एक शोध-लेख स्थानाभाव के कारण जातिवाचक संज्ञा शब्दों, भाववाचक संज्ञा शब्दों, विशेषण एवं क्रिया शब्दों का विश्लेषण सम्भव नहीं है। 'अनामिका' में प्रयुक्त मुख्य व्यक्तिवाचक सांस्कृतिक शब्दों का अर्थतात्त्विक विश्लेषण इस प्रकार है। शब्दों के नीचे दी हुई संख्या निराला रचनावली भाग-1 की पृष्ठ संख्या है–

* *शोध छात्र (हिन्दी), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)*

क्र. सं.	सांस्कृतिक शब्द	पर्याय	अर्थगत विवक्षाएँ	विशेष व्याख्या
1.	अंगद	1. अगद द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 329 2. तारा-कुमार द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 333	कर्मेन्द्रिय वैशिष्ट्यसूचक अपत्य वाचक	बालि का पुत्र। निराला जी ने अंगद को राम के सहायक या राम की सेना का यूथपति के रूप में वर्णित किया है। बालि की पत्नी का नाम तारा था, जिससे अंगद की उत्पत्ति हुई थी। ये राम की सेना के विशिष्ट योद्धा थे। जो महाबलवान्, शुभ्र, श्वेत धैर्य धारण करने वाले स्थिर बुद्धि के थे।
2.	अंजना	अंजना द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 332	सामान्य व्यक्ति सूचक	कवि ने राम की शक्ति-पूजा में अंजना को हनुमान की एक आदर्श माँ के रूप में प्रस्तुत किया है, जो हनुमान को ज्ञान का बोध कराती हैं।
3.	अर्जुन	अर्जुन द्वितीय अनामिका खण्डहर के प्रति 81	वैशिष्ट्य सूचक	पाण्डु की ज्येष्ठ पत्नी, कृष्ण की बुआ कुन्ती कुन्ती और इन्द्र के संसर्ग से अर्जुन का जन्म हुआ। ये द्रोणाचार्य के शिष्य थे। शिव ने इन्हें पाशुपत अस्त्र, आग्नेयास्त्र, गाँडीव धनुष तथा अक्षय तूणीर दिया था। ये धनुर्विद्या में पारंगत थे।
4.	इन्द्र	देवेश्वर द्वितीय अनामिका सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति 339	देवताओं के राजा होने का बोधक	देवताओं में सर्वश्रेष्ठ एवं देवताओं के राजा होने के कारण इन्हें इस पर्याय से सम्बोधित किया गया है। निराला जी ने सार्थक प्रयोग किया है।
5.	उर्वशी	उर्वशी द्वितीय अनामिका प्रेयसी 324	प्रेयसी रूप की द्योतक	उर्वशी अपने रूप सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध इन्द्रलोक की एक अप्सरा, जिसे शाप वश कुछ दिन मर्त्यलोक अर्थात् भूलोक में पुरुरवा की पत्नी बनकर रहना पड़ा था। निराला जी ने प्रेयसी की कल्पना उर्वशी के रूप में की है।
6.	कामदेव	1. काम द्वितीय अनामिका रेखा 114 2. मदन प्रथम अनामिका पंचवटी प्रसंग, 357 प्रथम अनामिका तुम और मैं 50	प्रभाव सूचक एवं सृष्टि उत्पादक का बोधक प्रभाव एवं मदोन्मत्त करने का सूचक	प्रेम का देवता। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार काम को श्रद्धा का, हरिवंश पुराण के अनुसार लक्ष्मी का पुत्र माना गया है। उसकी पत्नी का नाम रति था। निराला जी ने काम-बीज को सृष्टि के विकास का कारक माना है। मदन जीवों को मदोन्मत्त करता है। अपने पंचबाणों का प्रयोग कर काम को प्रेरित करता है। इसके पंच बाण हैं–मोहन, उन्मादन, संतापन, शोषण और निश्चेष्टीकरण। निराला जी ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है– 'तुम मदन पंचशर हस्त'।

7.	कार्तिकेय	कार्तिक द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 338	अपत्य वाचक	शिव के पुत्र, जिनका पालन-पोषण कृतिकाओं ने किया था। इसीलिए इनका नाम कार्तिकेय पड़ा। ये बड़े पराक्रमी थे। निराला जी ने राम की शवित पूजा के प्रसंग में शक्ति के प्राकट्य पर कार्तिकेय को उनके बाएँ विराजमान दिखलाया है।
8.	काली	1. काली द्वितीय अनामिका नाचे उस पर श्यामा 394 2. कालिके द्वितीय अनामिका नाचे उस पर श्यामा 390 3. करालिके द्वितीय अनामिका नाचे उस पर श्यामा 394 4. श्यामा द्वितीय अनामिका नाचे उस पर श्यामा 394 5. दिगम्बरा द्वितीय अनामिका नाचे उस पर श्यामा 394	शक्ति की बोधक ,, ,, ,, वैशिष्ट्य बोधक	कालिका पुराण के अनुसार शुंभ और निशुंभ असुरों से छुटकारा पाने के लिए देवता मातंग ऋषि के आश्रम में देवी की स्तुति कर रहे थे। इससे प्रसन्न होकर मातंग की काया से अत्यन्त श्यामवर्ण की देवी प्रकट हुईं। श्यामवर्ण होने के कारण इन्हें श्यामा, काली, कालिका, कालिके आदि नाम दिये गये। इनके चार हाथ हैं, कानों में मृतकों के कुण्डल हैं, गले में मुण्डमाला, जिह्वा ठुड्डी तक बाहर लटकी हुई, एड़ी तक लम्बे मुक्त केश हैं। कवि ने अति सार्थक प्रयोग किया है–'उपल खण्ड नर मुण्ड मालिनी कहते उसे कालिका।' ये असुरों का रक्त पान भी करती हैं। इसी सौन्दर्य में कवि ने श्यामा का वर्णन किया है–'आज मिटेगी व्याकुल श्यामा के अधरों की प्यास।' निराला ने मूल रूप में दुर्गा और काली को एक रूप ही माना है। क्योंकि दिगम्बरा का प्रयोग प्रायः दुर्गा जी के लिए होता है।
9.	गणेश	गणेश द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 338	गणाधिपति सूचक	शिव पार्वती के पुत्र, जो शिव के गणों के नायक थे। इसलिए इन्हें गणेश या गणाधिपति कहा जाता है। राम की शक्ति पूजा में राम की पूजा से प्रसन्न होकर शक्ति के प्राकट्य पर गणेश जी उनके दाहिनी ओर विराजमान दिखते हैं।
10.	गिरजा	1. गिरिजा द्वितीय अनामिका सरोज स्मृति 360 2. पार्वती द्वितीय अनामिका मुक्ति	अपत्य वाचक अपत्य वाचक	गिरिराज हिमालय और मैना की पुत्री तथा आशुतोष शिव की अर्द्धांगिनी, जिनको उमा, गौरी, दुर्गा आदि नाम भी दिये गये हैं। पार्वती ने भस्मराग का लेपन किये हुए तथा सर्प-बिच्छुओं को धारण किये हुए शिव से तो विवाह कर लिया था; पर निराला जी किसी ऐसे औघड़ से अपनी पुत्री का विवाह नहीं करते। पर्वत कन्या और पर्वतों की अधिष्ठात्री होने के कारण इनको पार्वती की संज्ञा से अभिहित

11.	दुर्गा	1. दुर्गा द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 336, 337 2. भगवती द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 338 3. श्यामा द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 331, 332 4. देवी द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 334 5. विश्वज्योति द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 334 6. महाशक्ति द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 334 7. शक्ति द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 329, 331	दुर्गति, दुर्भाग्य हन्ता, शक्ति की द्योतक ,, ,, ,, ,, ,,	दुर्गति और दुर्भाग्य से बचाने वाली देवी, जिसका प्रथम उल्लेख 'महाभारत' में मिलता है। 'राम की शक्ति-पूजा' एक परम्परागत रचना नहीं है; बल्कि उसमें आधुनिक, राजनीतिक, सामाजिक अर्थ भी प्रतिष्ठित किये गये हैं। 'कृतिवास रामायण' में बँगला कवि ने राम से दुर्गा माँ की पूजा करवायी है। पर यहाँ निराला जी ने शक्ति की देवी दुर्गा की लौकिक कल्पना की है, लेकिन जिस दुर्गा रूप की कल्पना की है वह तो परम्परागत ही प्रतीत होती है। महिषासुर मर्दिनी का। कुछ आलोचकों ने इस कविता में राष्ट्रीय मुक्ति की झलक देखी है और बतलाया है कि निराला का गाँधीवादी अहिंसा सिद्धान्त पर विश्वास नहीं था। वे शक्ति का उत्तर शक्ति से ही देना चाहते हैं। इस कविता में निराला जी ने दुर्गा को देवी, मातः, दशभुजा, विश्वज्योति, भगवती आदि रूप में देखा है। यहाँ दुर्गा की कल्पना त्रिपुर सुन्दरी और महाशक्ति के रूप में की गयी है।
12.	ब्रह्मा	1. विधाता प्रथम अनामिका पंचवटी प्रसंग-3 56 2. विधि प्रथम अनामिका पंचवटी प्रसंग-3 56 3. शिल्पी प्रथम अनामिका पंचवटी प्रसंग-3 56 4. अज	सृष्टिकर्ता या आदि देव के सूचक ,, ,,	पुराणकालिक त्रिमूर्ति के प्रथम देव। कहा जाता है कि योग निद्रा में लेटे भगवान विष्णु के नाभि से एक कमल निकला, जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। कुछ पुराणों के अनुसार ब्रह्मा का जन्म नहींहुआ। इनका अस्तित्व सृष्टि के प्रारम्भ काल से ही था। इसलिए इन्हें अज भी कहा जाता है। ये चतुर्मुख हैं। ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता माने जाते हैं। ये सभी पर्याय इसी का संकेत करते हैं। निराला जी ने इसी विवक्षा में इनका प्रयोग किया है।

13.	राम	1. श्रीराम द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 333	सर्वव्यापाक सूचक	राम शब्द का प्रयोग निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म दोनों के लिए होता है। राम नित्य एवं सर्वव्यापक हैं। निराला ने दशरथ नंदन श्रीराम का ध्यान किया है।
		2. राघव द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 329, 328	रघुवंश के सर्वश्रेष्ठ पुरुष होने का सूचक	राम राजा रघु के परवर्ती राजाओं में सबसे श्रेष्ठ हैं। इनका वंश वृक्ष इस प्रकार है– दिलीप-रघु-अज-दशरथ-राम। राम के पूर्व इस वंश के सबसे प्रतापी राजा रघु थे। अतः रघु के नाम पर प्रतापी राम के लिए रघुवीर, रघुवर आदि अनेक पर्यायों का प्रयोग निरालाजी ने किया है। इस प्रकार के पर्यायों से राम का अत्यन्त प्रभावी और प्रतापी होना सिद्ध होता है।
		3. राघवेन्द्र द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 330	,,	
		4. रघुनंदन द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 335	,,	
		5. रघुमणि द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 334	,,	
		6. राजीव नयन द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 329, 337	सौन्दर्य सूचक	वालमीकि रामायण, रामचरितमानस आदि ग्रन्थों में राम को अति सौन्दर्यवान वर्णित किया गया है। राम के नेत्र कमल की तरह अति सुन्दर और आकर्षक थे। इसीलिए निराला ने यथास्थान इन पर्यायों का प्रयोग किया है।
		7. कमल लोचन द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 332	,,	
		8. पुरुषोत्तम प्रथम अनामिका पंचवटी प्रसंग 62	श्रेष्ठता सूचक	राम ने अपने जीवन में मर्यादाओं का पालन सभी प्रकार के मोहों और संकटों को तोड़कर किया। इसीलिए उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम या पुरुषोत्तम भी कहा जाता है। निराला जी ने सूर्पणखा द्वारा राम को पुरुषोत्तम कहलाया है। प्रसंगानुसार अति सटीक प्रयोग है।
		9. जानकी प्राण द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 334	सीता पति सूचक	राम ने जनकपुर जाकर जनक पुत्री जानकी से विवाह किया था। जानकी राम की पतिव्रता पत्नी थीं। इसीलिए राम को जानकी प्राण की संज्ञा दी गई है।
		10. भानुकुल भूषण द्वितीय अनामिका राम की शक्ति-पूजा 335	सूर्यवंशी कुल बोधक	अयोध्या नरेश रघु, दशरथ आदि सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। सूर्यवंशीय राजाओं में सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यशाली राजा राम ही थे। अतः निराला जी ने उन्हें भानुकुल भूषण की संज्ञा से

व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों का अर्थतात्त्विक विश्लेषण

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाप्राण निराला ने अनामिका में संग्रहीत कविताओं में सांस्कृतिक शब्दों का प्रयोग प्रायः शब्द के मूल अर्थ को ध्यान में रखकर ही किया है। अधिकांश सांस्कृतिक शब्द अपने मौलिक अर्थ में प्रयोग में लाये गये हैं। प्रसंगानुरूप सांस्कृतिक शब्दों का सटीक प्रयोग निराला जी की शब्द शक्ति एवं काव्य शक्ति का परिचायक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. अवस्थी; मोहन (1990) : हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद,
2. डॉ. तिवारी; रामचन्द्र (2012) : हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
3. शुक्ल; नवल किशोर सं. (2014) : निराला रचनावली भाग-1, राजकमल प्रकाशन लि., नई दिल्ली।
4. डॉ. सिंह; बच्चन सं. (2008) : निराला काव्य शब्दकोश, दिल्ली वाणी प्रकाशन।
5. वर्मा; रामचन्द्र सं. (1980) : मानक हिन्दी शब्दकोश, पहला खण्ड, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
6. हरदेव बाहरी सं. (2010) : राजपाल हिन्दी शब्दकोश, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
7. डॉ. पाण्डेय; राजबली (2016) : हिन्दू धर्मकोश, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान अकादमी, लखनऊ।
8. वामन शिवराम आप्टे सं. (2001) : संस्कृति-हिन्दी कोश, दिल्ली, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन।
9. शर्मा; लीलाधर पर्वतीय सं. (2013) : भारतीय संस्कृति कोश, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली।
10. धर्मशास्त्र का इतिहास, अनुवाद–अर्जुन चौबे, मूल लेखक–डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान अकादमी, लखनऊ, प्रथम भाग-1992, द्वितीय भाग-1992, तृतीय भाग-2003, चतुर्थ भाग-2010, पंचम भाग-2010

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 14-19
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

भारतीय अस्मिता के सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त का महत्त्व

*आशीष कुमार दूबे**

मैथिलीशरण गुप्त जी हिन्दी साहित्य में अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को विविध रूप में वाणी देने के कारण ही प्रतिष्ठित हुए। राष्ट्रकवि के रूप में उन्हें जो सम्मान मिला, जो प्रतिष्ठा मिली, वह शायद ही हिन्दी के किसी कवि को उसके जीवन काल में मिली हो। राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने, जन-भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने एवं देश-भक्ति तथा देश-प्रेम की भावना को बढ़ाने के लिए श्री मैथिलीशरण गुप्तजी ने भारत की जनता को पुकार-पुकार कर स्वदेश के उन्नत, समृद्ध एवं गौरवशाली अतीत के विषय में बताती हुई भविष्य के लिए देश सेवा एवं उसकी हित रक्षा हेतु दिशा-निर्देश उन्होंने अपनी रचनाओं को राष्ट्रीयता का रंग भरकर उसे समस्त हिन्दी भाषी क्षेत्र तक व्यापक बना दिया। किसी भी देश की जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए, नागरिकों में राष्ट्रीय अस्मिता का भाव भरने के लिए यह आवश्यक है कि उसके अतीत के गौरवमयी इतिहास को जनता के सामने प्रस्तुत किया जाये, जिससे जनता में राष्ट्र के प्रति समर्पण का भाव पैदा किया जा सके। गुप्तजी ने अपनी रचनाओं में यही कार्य किया। वे रचनाकार के दायित्व बोध को भली-भांति समझते थे, इसीलिए उनका विचार था कि-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।[1]

हिन्दी साहित्य के पुनरुत्थान और नवोत्थान की दो विरोधी जीवन-दृष्टियों के बीच से राह बनाती हुई उनकी दृढ़ संकल्प शक्ति महान है। गुप्त जी के काव्य में राष्ट्रीय और जातीय जीवन के द्वन्द्वों में संघर्ष करने की प्रेरणा और दृष्टि मिलती है। वे महाभारत की यह उक्ति 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं ही किंचित' उनके काव्य का बोध वाक्य है। इस विचारमाला में ही वे साम्प्रदायिक एकता की भावना, सर्वधर्म समभाव और सांस्कृतिक समन्वय, एवं प्रखर राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति सरणियों को अपनाते हैं। जातीयता और राष्ट्रीयता में, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता में तथा धर्मों और संस्कृतियों में वे सहज रीति से एकत्व की स्थापना कर लेते है। वस्तुतः वे विकासशील भारतीय संस्कृति के दिगंतव्यापी आयामों के कृती कवि है। उनकी सांस्कृतिक चेतना समन्वयशील रही है। सामाजिक उन्नयन के लिए उन्हें उच्चाशयी पारिवारिक संगठन अनिवार्य जान पड़ा। गुप्त जी सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक कुटुम्ब के रूप में देखते हुए संगठित होकर चलने की बात करते हैं-

''सब लोग हिल-मिलकर चलो-पारस्परिक ईर्ष्या तजो।
भारत न दुर्दिन देखता, मचता महाभारत न जो।।''[2]

साकेत, यशोधरा, द्वापर, अनघ आदि प्रबंध काव्यों पर साहित्यिक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा जाता है कि इनके माध्यम से गुप्त जी ने राग-प्रेरित मानवीय उच्चादर्शों, समयोचित रूढ़िविरोधी विचारों, राजनीतिक अड़ंगेबाजियों के बीच गाँधी का हृदय परिवर्तनवादी स्वभाव प्रेरित आचरण की महनीय व्यंजना हुई है। गुप्त जी सामंजस्यवादी भारतीय अस्मिता के राष्ट्र कवि हैं।

उनमें न कोई अतिवाद है और न ही प्रतिक्रियात्मक उद्‌गम। शुक्ल जी की दृष्टि में वह उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर लिखने वाले सीधे सच्चे रचनाकार हैं। मैथिलीशरण गुप्त की काव्य चेतना के प्रेरणा स्रोत विविध हैं। प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम, वर्तमान के प्रति आस्था, कर्ममय प्रवृत्ति मार्ग, मानवतावाद, व्यष्टि से समष्टि से पर्यवसान, नर-नारायण का समन्वय उनके काव्य के प्रतिष्ठापक चरण हैं। उन्होंने प्राचीनता का युगानुरूप मूल्यांकन किया। संस्कृति को वैज्ञानिकता के उजाले में प्रकाशित किया।

* प्रवक्ता हिन्दी, नेहरू स्मारक इण्टर कालेज रजबपुर अमरोहा

पौराणिक कथानक, उपनिषदों के दृष्टान्त महाभारत और रामायण के प्रसंग, प्राचीन कहानियों के संदर्भ सब कुछ नवीनता के रंग में रंगकर गुप्त जी के काव्य में समाविष्ट हुए हैं।

भारतीय अस्मिता की पहचान कराना, उसकी नयी व्याख्या प्रस्तुत करना गुप्त जी की महनीय विशेषता है। गुप्त जी अपने सम्पूर्ण काव्य में भारतीय अस्मिता (संस्कृति) के पक्ष को उजागर किया है। यद्यपि गुप्त जी का समस्त काव्य पौराणिक आख्यानों पर आधारित है फिर भी उन्होंने अपने काव्य के सभी पुराने चरित्रों का समयानुकूल नये रूप में प्रस्तुत किया है और उन्हें भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप में ढालने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार-''गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिन्दी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।''[3] उन्होंने अपनी रचनाओं के भीतर मनुष्य, परिवार तथा समाज के बीच समन्वय स्थापित किया है। वे मानवता के लिए संघर्ष करते हुए भी संघर्षशील समाज की कल्पना करते हैं। पृथ्वी पर, भारत-भूमि को देवलोक स्वर्ग से भी अधिक मान्यता देना कवि के हृदय में भारतीय राष्ट्र प्रेम की धारा को प्रवाहित होना दर्शाता है।

भारतीय संस्कृति का मूल स्वर-'तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सद्गमय' है, जो हमें अंधकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर ले जाता है। गुप्त जी की रचनायें इसी सिद्धान्त का पालन करती है। स्वयं गुप्त जी राम भक्त थे। राम की लंका विजय सत् का असत् पर तथा प्रकाश का अंधकार पर विजय की प्रतीक है। यही सत्, प्रकाश, न्याय समरसता, एकता की गूंज को सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैलने की बात करते हैं-

''मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती
भगवान्! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।''[4]

भारत-भारती के माध्यम से न केवल जन-जन का आह्वान किया, बल्कि राष्ट्र हित के साथ ही साथ आदर्श प्रतिष्ठा, मर्यादा, त्याग, दिखलाकर भारतीय संस्कृति का संवर्द्धन भी किया है। उसे संस्कारित व परिष्कृत करने में उद्यत दिखे हैं। इनकी सम्पूर्ण कविता में भारतीय अस्मिता की जड़ें बहुत गहराई से धँसी हुई है। अपने पूरे धार्मिक विश्वासों के साथ उन्होंने संस्कृति को सदा धर्म से ऊपर रखा है, क्योंकि संस्कृति-धर्म की अपेक्षा अधिक व्यापक होती है।

भारतीय अस्मिता की जैसी पहचान गुप्तजी को थी, उस समय इतनी गहरी विवेक सम्मत पहचान हिन्दी के किसी भी कवि को नहीं थी। 'साकेत' में गुप्त जी ने ईश्वर के मानवीय स्वरूप के आदर्श को प्रस्तुत किया है। अपने उदात्त कर्मों से इंसान इस सांसारिक दुनिया को भी स्वर्ग बना सकता है। व्यक्ति अपने कर्मों से ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है। पुरुषोत्तम राम कर्म के माध्यम से समस्त मानव जाति को आदर्श समाज को स्थापित करने का संदेश देते है।

''भव में नव वैभव भरने आया।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।''[5]

वे भारतीय मनीषा के ऐसे साधक थे जो जीवन भर मानवता और संस्कृति की रक्षा के लिए साधक थे जो जीवन भर मानवता और संस्कृति की रक्षा के लिए जूझते रहे हैं। उन्होंने अधिकांश कविताएँ ऐतिहासिक संदर्भों में रची। पर इस इतिहास को उन्होंने अपने युग के सामाजिक संदर्भों से जोड़ा, उसकी बेचैनी को एक धार दी और अतीत की गहराइयों से समय का सही चेहरा उकेरने की कोशिश की। इंसान अपने अतीत से सीख एवं प्रेरणा लेकर अच्छे भविष्य का निर्माण कर सकता है। वे सत्य, असत्य, प्रकाश, अंधकार, पुण्य-पाप, देव-दानव का चिरन्तन संघर्ष दिखलाकर सत्य की विजय की घोषणा कराते हैं। कवि ने मनुष्य को ही ईश्वर स्थान प्राप्त कराने का निर्देश दिया है। राष्ट्र मनुष्य से महान हो जाता है। ईश्वर राष्ट्र का निर्माता नहीं है, मनुष्य ही राष्ट्र का निर्माण तथा रक्षण करता है।

मानवतावाद भारतीय संस्कृति की अस्मिता रही है। गुप्त जी मानवतावाद के एक प्रतीक है। जो अपनी रचनाओं के माध्यम से जनसामान्य को मानवतावादी भावना के लिए प्रेरित किया। 'साकेत' में मानवतावादी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए गुप्त जी लिखते हैं-

''भरत खण्ड का द्वार विश्व के लिए खुला है,
भुक्ति-मुक्ति का योग जहाँ पर मिला जुला है,

पर जो इस पर अनाचार करने जावेंगे,
नरकों में भी ठौर न पाकर पछतायेंगे।''[6]

मनुष्य के समक्ष पहले अपने अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न आता है, इसमें पहला मुद्दा पेट भरने का है। उसी पर वह सर्वाधिक बल देता है। धर्म और संस्कृति सब पीछे हो जाते हैं। भारत में यही हुआ। मुसलमानी शासन में भारतीयों को सब कुछ करना पड़ा। फारसी के साथ अंग्रेजी तक की पढ़ाई करनी पड़ी। ऐसी दशा में कवि ही उसे बचाने का यत्न करता है।

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' एवं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे भारतीय जीवनादर्श रची संस्कृति की गुप्तजी रक्षा करते हैं। 'पंचवटी' में वे लिखते हैं-

''वृक्ष लगाने की ही इच्छा
कितने ही जन रखते हैं,
पर उनमें जो फल लगते हैं
क्या वे उन्हें न चखते है?''[7]

मैथिलीशरण गुप्त ने पौराणिक पीठिका पर आधुनिक स्वतंत्रता आन्दोलन तथा जनजागृति का संदेश देने के लिए कई काव्य-ग्रंथों की रचना की। 'साकेत' की रचना कर उन्होंने रूढ़िग्रस्त उपादानों एवं पिटे-पिटाये वातावरण हटाकर भारतीय जनता में नयी चेतना का संचार किया। इस चेतना का मूल स्रोत गाँधी की विचारधारा है। 'साकेत' में वर्णित साकेतवासी प्रजा का विनत विद्रोह गाँधी द्वारा परिचालित सविनय अवज्ञा का ही प्रतिरूप है। 'साकेत' में गुप्त जी लिखते हैं-

''निज रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को,
सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को।
× × × ×
× × × × ×
मैं आया उनके हेतु कि जो तापित है,
जो विवश विकल, बलहीन दीन शापित हैं।''[8]

गुप्त जी गाँधीवादी विचार के समर्थक थे। पराधीन भारत में हो रहे उत्पीड़न, शोषण इत्यादि को साकेत के माध्यम से आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। इस संदर्भ में शुक्ल जी ने लिखा है कि-''रामायण के भिन्न-भिन्न पात्रों से प्रतिष्ठित स्वरूपों को विकृत करके उनके भीतर आधुनिक आंदोलनों की भावनाएँ कौशल के साथ झलकाई गई है।''[9]

गुप्त जी की आस्था गाँधी के साथ ही स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, राजा राममोहन राय आदि समाज सुधारकों के प्रति भी है। 'जय भारत' में गुप्तजी ने तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना को वाणी देने का सफल प्रयास किया। इसमें गाँधी जी द्वारा चलाए गए विभिन्न आन्दोलनों की ध्वनि चाप स्पष्ट सुनायी देती है। जिस राज्य में अन्याय-अत्याचार आदि दुर्गुणों को प्रश्रय मिलता हो उस राज्य को बदल कर रख देना चाहिए। द्रोपदी के माध्यम से कवि ने ऐसे शासन व्यवस्था को 'अंधराज्य' की संज्ञा दी जो एक तरह से भारत पर अंग्रेजों द्वारा किये गए दुर्व्यवहार की ओर संकेत करता है। रचना में कीचक के अन्याय से त्रस्त सौरन्ध्री न्यायासन पर मौन बैठे राजा से स्पष्ट कहती है कि-

''तुझमें यदि सामर्थ्य नहीं है अब शासन का,
तो करते क्यों नहीं त्याग तुम राजासन का?
करने में यदि दमन दुर्जनों का डरते हो,
तो छूकर क्यों राजदंड दूषित करते हो?''[10]

उपर्युक्त पंक्ति न केवल तत्कालीन राजतंत्र की कटु आलोचना है, बल्कि वर्तमान तंत्र को भी एक संदेश है कि किसी भी शासक का पहला धर्म राष्ट्र एवं उसके नागरिकों की अस्मिता की सुरक्षा है। अगर शासक इसमें विफल रहता है तो उसे सत्ताा का परित्याग कर देना चाहिए।

गुप्तजी तत्कालीन जातीय तथा राष्ट्रीय जन-जागरण आन्दोलनों से प्रभावित हुए हैं। हिन्दू-संस्कृति की पुनरुत्थान भावना को 'भारत भारती', 'हिन्दू', 'गुरुकुल' आदि काव्यों में प्रकट किया है। किसी भी राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार है। 'गुरुकुल' में कवि ने हिन्दू-मुसलमानों को एकता से रहने की प्रेरणा दी है-

''हिन्दू-मुसलमान दोनों अब छोड़े वह विग्रह की नीति।
प्रकट की गई है यह केवल अपने वीरों के प्रति प्रीति।।''[11]

किसी भी राष्ट्र के नागरिक जितने अधिक शिक्षित होगें वह राष्ट्र उतना ही मजबूत और समृद्धि होगा। गुप्त जी भी शिक्षा को ज्ञान प्राप्ति और प्रगति का माध्यम मानते है। लेकिन वे शिक्षा के व्यावसायीकरण के पक्षधर नही हैं। ज्ञान प्राप्त करना सबका मौलिक अधिकार मानते हैं। गाँधीवादी चिंतक होने के नाते शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने की बात करते थे। परन्तु शिक्षा के निरंतर होती दुर्दशा पर दुख प्रकट करते हुए उन्होंने कहा-

बिकने लगी विद्या यहां, शक्ति हो तो क्रय करो।
यदि शुल्क आदि न दे सको, तो मूर्ख रहकर ही मरो।।[12]

''शिक्षे तुम्हारा नाश हो तुम नौकरी के हित बनी।''[13]

गुप्त जी जन-जन को अपने अधिकार और कर्तव्य के प्रति जागरूक रहने की बात करते हैं। साथ ही लोगों को अन्याय का विरोध करने का संदेश भी देते हैं। वे कहते हैं कि यदि न्याय में अपना कोई सगा-सम्बन्धी बाधक बनता है तो उसे भी दण्ड देने से नहीं चूकना चाहिए। अपनी कृति जयद्रथ वध के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ही उन्होंने संदेश देते हुए अन्याय का विरोध करने और राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं-

अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।
सब लोग हिल मिल कर चलो, पारस्परिक ईर्ष्या तजो
भारत न दुर्दिन देखता, मचता महाभारत न जो।[14]

गुप्त जी को राष्ट्र के प्रति समर्पण के बारे में समकालीन कवि भगवत रावत अक्सर त्रैमासिक पत्र में दिये एक साक्षात्कार में बताते हैं कि एक बार हमारे गुरु भगवान दास माहौर के कारण नागार्जुन झांसी आये। उन्होंने मेरी ड्यूटी नगार्जुन को मैथिलीशरण गुप्त एवं वृन्दावनलाल वर्मा के यहाँ ले जाने में लगाई। नागार्जुन के सम्मान में गुप्त जी के निवास पर एक गोष्ठी रखी गयी थी। उस गोष्ठी में नागार्जुन ने अपनी एक कविता पढ़ी-

फेलपूत का पिता दुःखी है।
सिर धुनती है माता,
जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता।

रावत जी बताते हैं, इस कविता के बाद गुप्त जी की हालत खराब हो गयी। क्रोध में चेहरा तमतमा गया और चुपचाप उठकर वे अन्दर चले गये। लोगों ने स्थिति संभाली और कहा शायद उनकी तबियत ठीक नहीं है। इसके बाद सभा वहीं विसर्जित हो गयी। कुछ दिनों बाद मैं दद्दा से मिला तो उन्होंने इतना भर कहा कि यदि रूस में राष्ट्रीयगीत का ऐसा कोई अपमान करता है तो उसे गोली मार दी जाती है।''[15]

भारतीय समाज कर्म प्रधान रहा है। गीता के कर्मेणेवाधिकारस्ते' मा फलेषु कदाचन', तुलसी के 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करै सो फल चाखा' और प्रसाद की 'कामायनी' की उक्ति- 'कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ चेतना का आनंद' गुप्त की कविता में भी है। अपनी 'द्वापर' कृति में उसी कर्म की प्रधानता पर बल देते हैं-

''काम, क्रोध, मद मोह समय पर,
लोभ सदैव सभी को?
कर्मों के अनुसार किन्तु है
देता दैव सभी को।''[16]

पुनः कवि लिखता है कि -

''छप्पन भोग भोग कर भी क्या
भूख भगेगी मेरी?
देता है मिट्टी का घट ही
मुझको ठण्डा पानी।''[17]

मानव धर्म के संवर्धन और आर्य संस्कृति की स्थापना के लिए राम सोद्देश्य पृथ्वी पर अवतरित हैं। धर्म के तत्वों की रक्षा तथा दुष्टों के संहार हेतु ही राम अवतीर्ण हुए हैं। भगवत गीता में कहा गया है-यदा-यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवत् भारत। अभ्युस्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। ''जिसका गुणगान कवि ने 'सिद्धराज' नामक पुस्तक के मंगलाचरण में निम्न प्रकार किया है-

''राक्षसों को मार भार मेटा धरा-धाम का,
बढ़े धर्म, दया-दान युद्धवीर राम का।''[18]

गुप्त जी भारत के जातीय कवि हैं। राष्ट्र की हर चीज से उन्हें बेहद प्यार-लगाव है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति उनका प्रेम किसी से छिपा नहीं है। गुप्त जी की धार्मिक आस्था को डॉ. कमलाकान्त पाठक निम्न शब्दों में व्यक्त किया है-'वे उस सांस्कृतिक धारा के कवि है जिसके आरम्भिक छोर पर हिन्दू पुनरुत्थानवाद की जातीय भावना है और अन्तिम छोर पर समस्त धर्मों और विविध संस्कृतियों के समन्वय की धारणा।''[19]

प्रेम, त्याग और सेवा के क्षेत्र में नारी का योगदान अतुलनीय है। भारतीय संस्कृति इसी रूप में नारी को सदैव देखती आयी है। गुप्तजी नारी को सामंती युग की भोग्या नायिका के रूप से मुक्ति दिलाकर उसे आदर्श गृहिणी, माता, बहन तथा अर्द्धांगिनी के रूप में प्रस्तुत किया है। गुप्तजी ने अपने काव्य में स्त्री को पुरुष के समान ही बराबर ही अधिकारिणी माना है। उन्हें स्त्री का दासी रूप स्वीकार नहीं है और इसी मत का प्रतिपादन करते हुए 'राजा-प्रजा' में उनका कहना है कि-

''आधे का अधिकार उचित ही उन्हें मिला है
× × × × × ×
छोटों की माँ, और बड़ों की वे बेटी हैं,
समवयस्कों की बहन, कहाँ किसी चेटी हैं''[20]

नैतिकता भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। मनुष्य में काम और लोभ, इन दो प्रवृत्तियों की अधिकता रहती आयी है। गुप्तजी के काव्य में इन दोनों ही प्रवृत्तियों पर नियंत्रण मिलता है। उनके सभी पात्र अपना सर्वस्य त्यागने को सदैव उद्यत रहते हैं। यशोधरा को तो अपने पति धर्म के बल पर जीवन में कुछ भी भार स्वरूप नहीं जान पड़ता। यशोधरा स्वयं ही कहती है-''यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार-भय भारी।''[21]

परिवार तथा समाज में किये जा रहे मानव के आदर्श व्यवहार को शिष्टाचार कहा जाता है। शिष्टाचार नीति-रीतियों का ही बदला रूप है। गुप्त जी रचनाओं के सभी पाठ इसका अनुकरण करते दिखायी देते हैं। पर स्त्री से बात-चीत के समय भी शिष्टाचार पालन का अधिक ध्यान रखा गया है। पंचवटी' खण्डकाव्य में शूर्पणखा को राम 'शुभे' सम्बोधन से बुलाते हैं। यथा-

''शुभे, बताओ कि तुम कौन हो
और चाहती हो तुम क्या?''[22]

गुप्त जी भारतीय नवोत्थान के कवि होने के कारण किसी भी संस्कृति से द्वेष प्रकट नहीं करते। उनको सभी संस्कृतियाँ एक सी लगती हैं। भारत-भारती में गुप्त ही ने भारतीय संस्कृति को समझाने के लिए गुप्त जी पाश्चात्य, यूनानी, अरब देशों की संस्कृति का भी जिक्र किया है। भारतीय संस्कृति की महानता को गुप्त जी ने जरूर बताने की मुखर चेष्ठा की है, लेकिन किसी संस्कृति को विद्वेष की नजर से नहीं देखा है। वे प्रखर राष्ट्रवादी थे, उनके राष्ट्रवाद में भारतीय अस्मिता के विविध अयामों को देखा जा सकता है। भारतवर्ष की स्वर्णकांति को वापस प्राप्त करने के लिए वे भारत-भारती के अंत में 'विनय' शीर्षक के अंतर्गत ईश्वर से निवेदन करते हैं-

इस देश को हे दीन वंधो! आप फिर अपनाइये।
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्य भूमि बनाइये।।[23]

अपने राष्ट्र के प्रति लगाव, प्रेम एवं समर्पण की वजह से ही गुप्त जी को राष्ट्रकवि का दर्जा प्राप्त है। जिसके वे असली हकदार भी हैं। यही वजह है कि आजतक समस्त हिन्दी साहित्य के किसी भी कवि को यह मुकाम हासिल नहीं हो सका है। वे जन कवि हैं जो जनता की भारतीय अस्मिता की पहचान कराने वाले कवि हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. गुप्त; मैथलीशरण (1998) : भारत-भारती, साहित्य सदन, झाँसी, पृ. 181
2. गुप्त; मैथलीशरण (2001) : जयद्रथ वध, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 3
3. शुक्ल; आचार्य रामचन्द्र (2001) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 420
4. गुप्त; मैथलीशरण (2004) : भारत-भारती, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 11
5. गुप्त; मैथलीशरण (2010) : सकेत अष्टम सर्ग,, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 234-35
6. वही; द्वादश सर्ग, पृ. 270
7. गुप्त; मैथलीशरण (2015) : पंचवटी, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 25
8. गुप्त; मैथलीशरण (2010) : साकेत, साहित्य सदन झांसी, पृ. 217
9. शुक्ल; आचार्य रामचन्द्र (2012) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 420
10. डॉ. आर्य; जगन्नाथ (1989) : आधुनिक हिन्दी काव्य पर गांधीवाद का प्रभाव, शिल्पी प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 91
11. गुप्त; मैथलीशरण (2001) : गुरुकुल, साहित्य सदन, झाँसी, पृ. 31
12. गुप्त; मैथलीशरण (1998) : भारत-भारती, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 181, 13. वही; पृ. 8
14. गुप्त; मैथलीशरण (1998) : जयद्रथ वध, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 3
15. अक्सर (अंक-जुलाई-सितम्बर, 2009) : त्रैमासिक पत्र-पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 29-30
16. गुप्त; मैथलीशरण (2014) : द्वापर, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 140
17. वही; पृ. 140
18. गुप्त; मैथलीशरण (2001) : सिद्धराज, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 7
19. डॉ. पाठक; कमलाकान्त मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, पृ0 76
20. गुप्त; मैथलीशरण (2003) : राजा प्रजा, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 32
21. गुप्त; मैथलीशरण (संवत-2039) : यशोधरा, साहित्यसदन, झांसी, संस्करण, पृ. 43
22. गुप्त; मैथलीशरण (2015) : पंचवटी, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 84
23. गुप्त;मैथलीशरण(1998) : भारत भारती, साहित्य सदन, झांसी, पृ. 191

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 20-23
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

बाल-मनोविज्ञान की सार्थक अभिव्यक्ति-'हमका दियो परदेश'

डॉ. पर्वज्योत कौर

मनोविज्ञान 'मन' और 'विज्ञान' दो शब्दों का सम्मिश्रण है। अंग्रेजी में मनोविज्ञान को सायकोलॉजी कहा गया है। यह दो यूनानी शब्दों के मेल से बना है–'साइको' तथा 'लोगस'। साइको अर्थात् आत्मा व मन तथा 'लोगस' का अर्थ है विज्ञान अथवा विचरण अर्थात् आत्मा का विज्ञान। वास्तव में, मनोविज्ञान वह विधायक विज्ञान है जो व्यवहार का अध्ययन करता है। व्यवहार, विचार, इच्छाएँ, संकल्प और विकल्प के सन्निधान से ही मनोविज्ञान निर्मित है। 'बाल-मनोविज्ञान' भी मनोविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है, यह इसी से विकसित हुआ है। 'बाल-मनोविज्ञान' का सम्बन्ध बालक के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से है। **क्रो** तथा **क्रो** के मतानुसार,-''बाल-मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो व्यक्ति के विकास का अध्ययन गर्भकाल के प्रारम्भ से किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था तक रहता है।''[1] जेम्स ड्रेवर ने भी अपनी पुस्तक 'ए डिक्शनरी ऑफ सायकोलॉजी' में यह स्वीकार किया है कि बाल-मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें जन्म से परिपक्वास्था तक विकसित हो रहे मानव का अध्ययन किया जाता है। अतः सामान्य मनोविज्ञान में जहाँ प्रौढ़ व्यक्तियों की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन सम्मिलित है वहीं बाल मनोविज्ञान बालकों की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है तथा उन्हें समझने का प्रयत्न करता है। बाल-मनोविज्ञान में भ्रूणावस्था से पूर्व किशोरावस्था तक बालक के व्यवहार का अध्ययन सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त बालक के आयु प्रवृत्ति अध्ययन विशेष रूप से चिन्तन, समस्या समाधान, सृजनात्मकता, नैतिक तर्क तथा व्यवहार, अभिवृत्तियाँ और मत आदि क्षेत्र प्रमुख हैं। बाल्यावस्था के महत्व को समझते हुए ही बाल-मनोविज्ञान का जन्म तथा विकास हुआ है।

विकास एक सार्वभौमिका प्रक्रिया है जो संसार के प्रत्येक जीव में विद्यमान है। यह प्रक्रिया गर्भधारण से आरम्भ होकर मृत्यु तक चलती है। जेम्स ड्रेवर ने लिखा है, ''विकास वह दशा है जो प्रगतिशील परिवर्तन के रूप में प्राणी में सतत् रूप से व्यक्त होती है। यह प्रगतिशील परिवर्तन किसी भी प्राणी में भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक होता है। यह विकास तन्त्र को सामान्य रूप से नियंत्रित करता है। यह प्रगति का मानदण्ड है और इसका आरम्भ शून्य से होता है।''[2] मानव-विकास के अध्ययन में आरम्भिक अवस्था बाल-विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। 'बाल-मनोविज्ञान' के महत्व तथा उपयोगिता को साहित्य में भी स्वीकृत किया गया है। लेखक भी सामाजिक परिवेश से सम्बद्ध होता है। वह अपने चारों ओर के परिवेश से भली-भाँति परिचित होता है। यही कारण है कि वह उन्हीं प्रसंगों एवं घटनाओं का उल्लेख अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है, जो उसे विचलित तथा प्रभावित करती हैं। वह अपनी रचनाओं द्वारा समाज के समक्ष एक दर्पण प्रस्तुत करता है ताकि लोगों में चिन्तन के स्वर उत्पन्न हो सकें।

मृणाल पाण्डे द्वारा रचित उपन्यास 'हमका दियो परदेस' का सीधा सम्बन्ध परिवार तथा समाज से है जो बाल-मनोविज्ञान का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। पारिवारिक स्तर पर बड़ों द्वारा बच्चों के साथ किया जाने वाला व्यवहार, प्रसंग, घटनाएँ बाल-मानसिकता को गहरे-से प्रभावित करती हैं तथा बाल-मन में उमड़ते छोटे-छोटे परन्तु गंभीर प्रश्न परिवार तथा समाज को सोचने पर बाध्य कर देते हैं, जिससे मानवीय सम्बन्ध भी प्रभावित होते हैं तथा समाज भी। प्रस्तुत उपन्यास में यद्यपि कोई केन्द्रीय कथानक नहीं है परन्तु एक केन्द्रीय स्वर अवश्य है–'टीनू' नामक दो वर्षीय बालिका का तथा साढ़े चार वर्षीय बालिका 'दीनू' का। दोनों बहनें सौतेली होकर भी सौतेली नहीं हैं। दोनों में भावनात्मक जुड़ाव और टूटन का परिवेश उपन्यास का कथासूत्र है।

मानव-जीवन में बाल्यावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। बालक के प्रारम्भिक पाँच वर्ष उसके व्यक्तित्व की नींव रखते हैं। इसी अवस्था में बालक का शारीरिक तथा मानसिक विकास तीव्रता से होता है। बालक अपने आस-पास के वातावरण को समझता तथा प्रभावित होता है। सामाजिक, पारिवारिक परिवेश को देखने तथा परखने का ज्ञान उसमें पैदा होने लगता है। यहीं से संवेग तथा संवेदनाएँ प्रभावी हो जाती हैं। बाल-मनोविज्ञानिकों का मानना है कि बाल-मन कोमल, करुण तथा सरल होता है। उसके व्यक्तित्व के निर्माण में अनुवांशिकता तथा परिवेश दोनों की अहम भूमिका रहती है। टीनू तथा दीनू को बाल्यकाल में ही अपने ननिहाल जाने पर यह आभास हो जाता है कि बेटी की बेटी होने के कारण उपेक्षित होकर, सहनशील बनना ही उनकी नियति

है। पारिवारिक स्तर पर ही यह बात अनजाने, अप्रत्यक्ष रूप से बच्चियों के अन्तर्मन में गहराई से बैठा दी जाती है कि वे 'लड़कियाँ' हैं। इसीलिए उन्हें वह अधिकार नहीं मिल सकते जो उस घर के बेटों अर्थात् उनके ममेरे भाइयों को मिल सकते हैं। ममेरे भाई अनु का उनसे यह कहना ''तुम वहाँ बैठो। तुम बेटी के बच्चे हो! हम यहाँ दादी के पास सोएँगें।''[3] परिवेशगत व्यवहार से ही टीनू समझ गई कि, ''लोगों से अटे घर में जहाँ बेटों के बेटों की ही पूछ होती हो, बेटियों की बेटियों का काम चिड़चिड़ी या रोनी होने से नहीं चलेगा।''[4] इसी बात को एक घटना के द्वारा प्रमाणित करने का प्रयास लेखिका द्वारा किया गया है। खेल-खेल में दीनू को कहीं से एक छोटा-सा जरी के कपड़े का आकर्षक मोर मिल जाता है। जिसे देखकर वह स्वाभाविक बाल-मानसिकता से प्रसन्ना हो उठती है और अपनी छोटी बहन टीनू तथा ममेरे भाई अनु को सगर्व दिखाती है। अनु उस 'मोर' पर अपना अधिकार जताता है क्योंकि यह मोर उसके घर से मिला है, ''वह जानता है कि वह बेटे का बेटा है और वह सोच भी नहीं सकता कि इस घर में कोई उसे कुछ भी चीज देने से बहुत देर तक इंकार करेगा।''[5] इसलिए वह स्पष्टतः कहता है कि यह हमारा है तुम लोग तो मेहमान हो। किन्तु बाल-हठा तथा अधिकार भाव के कारण दीनू वह मोर अनु को न देकर छुपा देती है। बात बच्चों से बड़ों तक पहुँच जाती है तो नानी द्वारा भी दीनू तथा टीनू को यही सलाह दी जाती है कि, ''अरे वो इन्हें दे डालो न आखिर ये तुम्हारे ममेरे भाई बहन हैं यह उनका घर है..।''[6] माँ और मौसियाँ भी यही दबाव बनाती हैं। मनोवैज्ञानिक दबाव के कारण दीनू को वह मोर अनु को देना पड़ता है। इस प्रकार बेटों के बेटों के आगे बेटी के बेटियों को हारना पड़ता है। अपना अधिकार त्यागकर सहनशीलता का पाठ पढ़ना पड़ता है।

पारम्परिक भारतीय परिवारों की भाँति टीनू के परिवार में भी लड़के का जन्म हर्षोल्लास का वातावरणा निर्मित करता है। टीनू-दीनू के घर जब भाई का जन्म होता है तो उनके मन में कोई विशेष उत्साह नहीं होता। लड़के के जन्मनें पर हीरादी का कहना था, ''गुल्लक तो यानी लड़का ही हुआ न? लड़कियाँ तो कुर्की की डिग्रियाँ होती हैं। बेटे पैसा लाते हैं, सोना, जमीन, सब कुछ। बेटियाँ सिर्फ मालमत्ता ले जाने वाली हुईं।''[7] यह बात टीनू को मानों चुभ-सी जाती है। उसका कोमल मन आहत हो उठता है, इसीलिए अपने भाई के जन्म लेने पर वह मन ही मन कह उठती है, ''जो भी हमारा इंतजार कर रहा है, उसके लिए मैंने मन में कोई खास हवस नहीं है। उससे मिलने को लालायित होने का कोई तुक नहीं।''[8] बेटे का जन्म होते ही सभी के लिए टीनू की सबसे छोटी बहन विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि परिवारजन का मानना है कि वही भाई को लेकर आई है,''छोटी बहन को बलि की बकरी की तरह चारों पैरों के बल खड़ा करके उसकी 'शुभ' पीठ पर गुड़ की भेली तोड़कर सबका मुँह मीठा करवाया था।''[9] लड़कियों को यह भी समझाया जाता है, ''अब तो तुम्हारा भी भैया हो गया.. अब यह तुम्हारी हिफाजत करेगा, तुम्हारे बाबू का नाम चलाएगा।''[10] यह सब देख-सुनकर टीनू-दीनू के स्वाभिमान तथा कोमल भावनाओं को ठेस पहुँचती है। उनके मन में एक प्रकार से यह विचार घर कर जाते हैं कि वह और उसकी बहनें कदापि महत्वपूर्ण नहीं हैं। बेटियाँ तो पराई हैं, पराई ही रहेंगी।

हमारे सामाजिक परिवेश में अनेक अंधविश्वास, टोने-टोटके तथा धार्मिक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। जिनका प्रभाव बाल-मन को भी प्रभावित करता है। ''शिशु जल्दी ही अपने पर्यावरण के भिन्न-भिन्न अंगों के लिए प्रक्रिया करना सीख लेता है। उसकी अनन्य अभिव्यक्तियों से उसके दुःख और सुख का ज्ञान होने लगता है। किन्तु यह प्रारम्भिक प्रक्रियाएँ नैतिक बोध पर निर्भर नहीं होती। उसके आचरण की प्रशंसा और आलोचना उसके लिए सुखद और दुःखद होती है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है वह शुभ-अशुभ, आज्ञापालन व अवज्ञा, धर्म-अधर्म के शब्दों का प्रयोग सीख लेता है।''[11] उपन्यास की छोटी बालिका टीनू धर्म-कर्म, टोने-टोटके में अपने पारिवारिक वातावरण के अनुरूप विश्वास करने लग जाती है तथा इन्हीं साधनों द्वारा वह स्वयं को विशिष्ट सदस्य के रूप में देखती है। टीनू को खसरे की बीमारी जकड़ लेती है। अल्मोड़ा पहाड़ी क्षेत्र में टोने-टोटकों का प्रचलन अधिक है। टीनू का उपचार इन्हीं टोने-टोटकों से उसकी नानी करती है, ''सात मिर्चे, मुट्ठी-भर नमक और सरसों के दाने सात बार मुझ पर से वारकर एक हंड़िया में रखकर चौराहो पर रखवा दिये गए। नानी ने मेरे मन को कर्मकाण्ड तथा पुरानी रूढ़ परम्पराओं ने गहरे से प्रभावित किया। बालक की प्रारम्भिक अवस्था में तर्क का अभाव होता है। इसीलिए बड़े-बूढ़ों द्वारा किये गये कृत्य तथा बातें उनके लिए प्रमाणिक तथा अंतिम सत्य बन जाती हैं।

''फ्रायड़ के अनुसार मूल प्रवृत्ति, व्यक्तित्व गतिशीलता का एक प्रमुख स्रोत है। व्यक्ति का व्यवहार इन्हीं मूल प्रवृत्तियों के कारण घटित होता है। मूल प्रवृत्तियाँ व्यक्ति के व्यवहार का संचालन और दिशा-निर्धारणा करती हैं। शारीरिक आवश्यकताएँ व्यक्ति में उत्तेजना और असंतुलन उत्पन्न करती हैं, यही आवश्यकताएँ मूल प्रवृत्तियों का उद्देश्य, उत्तेजना और असंतुलन को दूर करना

है। पदार्थ से तात्पर्य उन विशिष्ट अनुभवों और व्यवहारों से है जिनमें उद्देश्यों और व्यवहारों की प्राप्ति होती है। मूल प्रवृत्ति की प्रबलता या शक्ति ही गति-शक्ति है।''[13] टीनू स्वभाव से जिज्ञासु है। प्रत्येक स्थिति, व्यक्ति, वस्तु के सम्बन्ध में वह सब कुछ एक साथ समझ लेना चाहती है। वह अपने बाल सखा अब्दुल्ला से सौतेली माँ सम्बन्धी सुनी-सुनाई बातों को अपनी माँ के स्वभाव पर आरोपित करने का प्रयास करती है क्योंकि उसकी माँ भी तो दीनू की सौतेली माँ थी। वह अपनी माँ के व्यवहार का भली-भाँति परीक्षण तर्क के कसौटी पर करती है,'' पर माँ अब्दुल्ला की सौतेली माँ जैसी सौतेली माँ कैसे हो सकती है? हमारे लिए तो सौतेली माँ परियों की कहानियों के बाहर हो ही नहीं सकती थी और हमारे अपने घर में बिल्कुल ही नहीं, मैं इसके जवाब के लिए माँ की तरफ देखती हूँ पर उसके पास वक्त नहीं है।''[14] टीनू का मन विचलित हो उठता है। वह भली-भाँति जानती है कि उसकी माँ जैसा व्यवहार दीनू के साथ नहीं करती, परन्तु विचारोत्तेजना उसके अन्तर्मन को झिकझोरती रहती है।

सामान्यतः परिवारों में यह धारणा प्रचलित है कि प्रत्येक बात बच्चों के सामने न की जाए। उनकी सभी जिज्ञासाओं अथवा प्रश्नों के उत्तर न देकर टाल-मटोल जवाब देकर देना चाहिए। परन्तु घर-परिवार में होने वाले क्रिया-कलापों से बच्चा भी परिचित हो जाता है। उसके मन में जिज्ञासाएँ स्वभावतः उत्पन्न हो जाती है। टीनू भी अपने ननिहाल के घर में अपनी मौसियों को फिल्मी-पत्रिकाएँ अथवा फिल्मी अभिनेताओं के बारे में चर्चा करते हुए आमतौर पर सुनती हैं लेकिन जब वह इन बातों को सबके सामने करती है तो परिवारजन उसे फटकारते हैं, रोक-टोक करते हैं। परिणामतः वह घर में छिपकर ऐसी किताबें पढ़ती है, टीनू के शब्दानुसार,''इन दिनों अक्सर मैं पखाने में बैठकर, वह किताबें पढ़ती हूँ जिन्हें पढनो से मुझे मना किया जाता है।''[15] टीनू ने जिज्ञासा भाव के साथ-साथ भय भाव भी परिलक्षित होता है। जब टीनू को अब्दुल्ला बताता है कि उसकी माँ की मृत्यु टी.बी. से हुई थी तो वह भयभीत हो जाती है क्योंकि उसकी मामी को भी टी.बी. हो गई है। इसलिए अब उसे यह भय सता रहा है कि मामी की मृत्यु के बाद उसके बच्चों का क्या होगा, यदि उसका मामा दूसरी शादी कर लेंगे।

मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि मनोभावों का सीधा सम्बन्ध संवेगों से होता है। संवेग वह जटिल भावोत्पादक अवस्था है जिसका आविर्भाव किसी परिस्थिति के प्रत्यक्ष, स्मृति अथवा कल्पना से होता है। ''कोई पदार्थ परिस्थिति से अलग किसी प्रकार का संवेग उत्पन्न करने में असमर्थ नहीं होता है, बल्कि परिस्थिति विशेष ही किसी प्रकार का संवेग उत्पन्न करती है।''[16] टीनू की मामी भी इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देती है। जिससे दीनू के मन में संवेगों का सैलाब उमड़ पड़ता है। मामी टीनू के मन में सौतेलेपन का अहसास भर देती है। वह दीनू को उसकी माँ तथा टीनू के विरुद्ध भड़काती है। मामी की बातों से दीनू का मन भीतर तक आहत हो उठता है। उसके मन में सदैव विचारों की उदोड़बुन क्रियाशील रहती है। उसकी मामी का यह कहना है कि, ''तुमने सुना नहीं, तुम्हें पुकारते हुए तुम्हारी माँ हमेशा कहती है–टीनू-दीनू? तुम बड़ी हो पर वह कभी तुम्हारा नाम पहले नहीं लेतीं हमेशा अपनी ही बेटी का नाम लेती हैं। पहले टीनू-दीनू।''[17] दीनू के मन में अपनी सौतेली बहन तथा माँ के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होने लगता है। वह चुप्पी साधकर रह जाती है। दोनों बहनों में मतभेद तथा मनभेद पैदा होने लगते हैं। नैनिताल के बस अड्डे से घर जाते समय घोड़ों पर बकोट कर बैठी टीनू का हाथ दीनू एक झटके के साथ दूर करते हुए स्पष्टतः कहती है, ''यह बहुत ही भयानक है कि किसी के ऐसे बिगड़ैल भाई-बहन हों और उसे बिस्तर से लेकर घोड़े तक उनके साथ बाँटने पड़ें।''[18] दीनू के दृष्टिकोण में आया यह परिवर्तन टीनू को दुःखी कर देता है। टीनू को अपनी मामी पर भी बहुत क्रोध आता है क्योंकि उसी ने उनके सम्बन्धों में दूरियाँ तथा खटास पैदा की है। टीनू भली-भाँति जानती है कि जब तक दीनू के मन से सौतेलेपन की टीस निकल नहीं जाती तब तक सम्बन्धों में मिठास नहीं आएगी। टीनू भावुक हो उठती है। वह दीनू के प्यार के लिए पड़पती तथा तरसती रहती है, वह सोचती है, ''अब से सौतेली होने का दुःख और शर्म हमारे बीच आते-जाते रहेंगे और कोई चीज इसे पूरी तरह से नहीं रोक पाएगी।''[19] इस प्रकार, दीनू और टीनू के बीच परायेपन की दीवार खड़ी हो जाती हैं। दीनू का यह भोलापन है कि वह दूसरों के बहकावें में आकर अपनी माँ तथा बहन के स्नेहपूर्ण सम्बन्धों पर प्रश्नचिन्ह्न लगा देती है। बाल-मनोविज्ञान के अनुसार संवेगों का यह भावात्मक पहलू है जिसमें दुःखात्मक भाव छिपा हुआ है।

मृणाल पाण्डे द्वारा रचित 'हमका दियो परदेस' उपन्यास पूर्णतः बाल-मनोविज्ञान पर आधारित है। उपन्यास का कथानक दो प्रकार के स्वर उठाता है–एक परिवार में बेटियों के प्रति उपेक्षापूर्ण परायेपन का व्यवहार, दूसरा-एक मासूम बच्ची द्वारा अपनी कोमल भावनाओं की दृष्टि से इस दोगले संसार के कार्य-व्यापार को देखना तथा उसे समझने का प्रयास करना। लेखिका ने उपन्यास में यह स्वीकार किया है कि पारिवारिक स्तर पर इस प्रकार का परिवेश बाल-मन को बेहद प्रभावित करता है। अतः इस प्रकार के दूषित परिवेश को रोकने का सार्थक प्रयास उन्होंने उपन्यास के माध्यम से किया गया है।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. नारंग, दर्शन कौर, डॉ. मोहन मणिका डॉ. मूरजानी, जानकी (2009), अपोलो प्रकाशन, जयपुर,पृ. 3
2. डॉ. सिन्हा; रमन (2012), : बाल विकास मनोविज्ञान, सुमित इन्टरप्राइजेज, नई दिल्ली, सन् पृ. 1
3. पाण्डे; मृणाल (2001), हमका दियो परदेस, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, पृ. 1
4. उपरिवत, पृ. 20-21
5. उपरिवत, पृ. 31
6. उपरिवत् , पृ. 28
7. उपरिवत् , पृ.8 2
8. उपरिवत्, पृ. 83
9. उपरिवत्, पृ. 84
10. उपरिवत्, पृ. 84
11. शाह; एम.ए. (1968), बाल-मनोविज्ञान, आगरा विश्वविद्यालय प्रकाशन आगरा, पृ. 137-138
12. पाण्डे; मृणाल (2001), हमका दियो परदेस, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, पृ. 15
13. डॉ. सूद; नीरजा (2006), समकालीन महिला उपन्यास लेखन : एक अन्तर्दृष्टि, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ. 115
14. पाण्डे; मृणाल (2001), हमका दियो परदेस, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, पृ. 57
15. उपरिवत् पृ. 72
16. पाण्डेय; जगदानन्द (1948), मनोविज्ञान, पुस्तक भंडार पटना, पृ. 514
17. पाण्डेय; मृणाल (2001), हमका दियो परदेस, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, पृ. 114
18. उपरिवत्, पृ. 116
19. उपरिवत्, पृ. 116

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 24-26
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

गढ़वाली काव्य : खुद और प्रकृति का अन्तःसम्बन्ध

*डॉ. कुसुम नेगी**

खुद गढ़वाली बोली का भावात्मक शब्द है, जिसे हिन्दी भाषा में याद कहते हैं। अपने प्रियजनों के वियोग से मिलने वाली क्षुधा या क्षुब्ध कर देने वाली उत्कंठा खुद कहलाती है। इस खुद को और अधिक उद्दीप्त करने में प्रकृति के अंग अपनी उपयुक्त भूमिका निभाते हैं।

गढ़वाल मण्डल में चैत (आधा मार्च और आधा अप्रैल) का महीना कुछ विशेष महत्व रखता है। जब बसन्त के आगमन से वसुन्धरा खिल उठती है, पर्वत शिखरों पर बुरांश और खेतों की मेढ़ों पर फ्यूंली के फूल खिलने लगते हैं, वनों में कफ्फू, घुघूती और मेल्वरी पक्षी के स्वर गूँजने लगते हैं तो दूर कहीं ब्याही गयी लड़की का मन ससुराल की कटुता और मायके की याद में आकुल हो उठता है। यही चैत का महीना खुद (हृदय द्रवित यादें) अर्थात् मायके की स्मृति, उत्कंठा और उद्दीपन का महीना होता है। इस महीने की एक खास परम्परा भी है। मायके से लड़की के लिए कलेवा (कपड़े, मिठाईयाँ, फल-फूल, हाथ के बने विभिन्न व्यंजन) भेजा जाता है। इस चैत के महीने में उन समस्त ब्याही गयी लड़कियों की करुण गाथाओं को सर्वोपरि रूप देकर बड़े ही करुण लय में गाया जाता है। बसन्त का यह मौसम उनकी करुणा को अधिक बढ़ा देता है।

लड़की के विवाह के पश्चात् अपना घर-परिवार, सहेलियाँ, माता-पिता, भाई-बहन का हाथ और साथ छूटने पर मायके की खुद उस पर अपना प्रभाव जमाने लगती है। इस खुद में लड़की द्वारा अनेक भावपूर्ण गमगीन गीत गाये जाते हैं। बसन्त ऋतु में जब वृक्ष हरे-भरे होने लगते हैं, पर्वतों पर तरह-तरह के फूल खिलने लगते हैं और विभिन्न प्रकार के पक्षी चहचहाने लगते हैं तो प्रकृति का स्पंदन उसे अनजाने ही उदास और उन्मत्त कर देता है। मायके में लड़कियाँ स्वतंत्र पक्षी और तितलियों की तरह इधर-उधर इठलाती रहती है जिसे देखकर सभी परिजन प्रसन्न हुआ करते हैं। मीठी झिड़की मिलती है जिसका आनन्द ही न्यारा होता है, अनेक सहेलियों संग विभिन्न खेल क्रीड़ाएँ होती हैं लेकिन विवाह पश्चात् न लाड़ है, न मीठी झिड़की, न सहेलियाँ और न ही स्वतंत्रता। अब वह सब खुद बनके रह गया है। इस स्थिति में प्रकृति ही एक मात्र सहारा होती है। वह कफ्फू और घुघुती पक्षी को अपनी पीड़ा सुनाकर मायके को संदेश भेजती है-

''बासलो कफू मेरा भैतियो को मैती, कफू बासली मेरा मैत्यो का तिर,
कफू बासलो मेरी माँ सुणली, मै कु कलेऊ भेजली''[1]

(मेरे मायके की तरफ देखकर यदि कफ्फू पक्षी बोलेगा तो मेरी माँ समझ जायेगी कि मैं उन्हें याद कर रही हूँ। इसलिए वह मुझे अब कलेवा भेजेगी।)

पक्षियों को इस प्रकार आत्मिय बनाकर उन्हें सन्देश वाहक बनाना हृदय की विरल अनुभूतियों की भावात्मकता से जोड़ा जा सकता है। एक अन्य कविता में नायिका घुघुती पक्षी को माध्यम बनाकर अपने मायके के लिए सन्देश पहुँचाने को कहती है-

''मेरी प्यारी घुगूती जाते म्यारा मैत देश,
मेरी बोई से लीजा तू मेरा सन्देश,
जावा गैल्याण्यों तुम मैत जावा, मेरी रैबार मांजी मूँ लीजावा,
मालू मैंसी को खटो दई, बोई माँ बोल्यान रोणी कि छई,
बाबाक बोल्याण देखी क जाई''[2]

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) एस.एम.जे.एन.पी.जी. कॉलेज, हरिद्वार*

(खुद में व्याकुल लड़की घुगूती पक्षी को अपना शुभचिन्तक मानती है। इसलिए वह उससे बड़ी भावुकता से अपने माता-पिता तक सन्देश पहुँचाने का अनुनय करती है कि मेरी माँ से कहना-मैं उनकी याद में रोती रहती हूँ और पिता से कहना कि वह एक बार मुझे देखकर जायें।)

तारादत्ता गैरोला द्वारा रचित 'सदेई' कविता खुद के महत्वांकन से सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसमें सदेई नाम की लड़की अपनी कारुणिक खुद की अतिशयता से पाठकों को भी कारूणिक बना देती है। वह बचपन की मधुर स्मृतियों को सजाकर रखने वाली नायिका है। इसलिए वह मायके के दर्शन के लिए लालायित हो उठती है। अपने और मायके के बीच में अवरोधक पर्वत शिखरों से वह अपनी उन्नतता को निम्न करने तथा चीड़ की वन वलियों से सघनता को कम करने हेतु अनुरोध करती है, ताकि वह मायके के दर्शन कर सके।

''हे ऊँची डांडयो तुम नीसी जावा, घणी बणायों तुम छांटी होवा,
मैं कू लगी छ खुद मैतुड़ा की, मैत को देश देखण देवा।''[3]

(हे ऊँचे पर्वत शिखरों! तुम झुक जाओ, हे चीड़ के घने वनों तुम छंट जाओ, मुझे मायके की खुद लगी है, मुझे अपने मायके का देश देखने दो।)

मायके की स्मृति विषयक इन गीतों में माता-पिता और भाई-बहन के प्रति अपार ममता व्यक्त होती है। इस ममत्व के कारण वह कई बार अपने मायके जाने का प्रयत्न करती है, लेकिन ससुराल पक्ष उन्हें इसकी अनुमति प्रदान नहीं करता। 'फ्यूली रौतेली' नामक कविता में फ्यूली नामक नायिका अपने मायके को खुद में अति क्षीण हो गयी है। खुद की उत्कंठा के कारण वह अपनी सास से मायके जाने की बात कहती है।

''मैन त मेरी सासू मैत जाणो, दिन जुराती ब्वारी कना तेरो मैत होलो,
ब्वारी तू भात की पातली उवाण नी देन्दी, मैत को कलेऊ तू बांण नी देन्दी
त्वै ब्वारी कनो मैत जाण देऊँ।''[4]

(फ्यूली-हे सासू माँ! मुझे मायके जाना है। सास- बहू दिन रात का तेरा कैसा मायका हो गया, तू भात का पत्तल सूखने भी नहीं देती, मायके से जो भेंट लायी है, उसे बाँटने भी नहीं देती। तुझे कैसे मायके जाने दूँ)

इस तरह खुद में व्याकुल लड़कियाँ मायके जाने की जिद्द करती हैं और ससुराल से अनुमति न मिलने पर उनकी खुद अन्तरीप मन में बैठ जाती है, जिससे वह निराश व हताश होकर सभी पाठकों को अपने अनुकूल कर लेती हैं।

गढ़वाल मण्डल में नन्दा राज जात एक पौराणिक देव मेला है। यह मेला उसके मायके जाने के उपलक्ष में मनाया जाता है। नन्दा को माँ पार्वती का रूप कहा जाता है। नन्दा पर एक प्रमुख गीत दर्शाया गया है, जिसमें वह सामान्य लड़कियों की भाँति अपने मायके जाने की प्रबल इच्छा भगवान शिव के सम्मुख रखती हैं। सुबह शाम वह अपने स्वामी से मायके जाने का अनुरोध करती है।

''चार दिन स्वामि मि मेतुड़ा जायून,
मि खुदा लगीच वै अपणी बई की,
म्यारा मैत होई बै झील की काखड़ी-बाड़ा की मुंगरी,
मी खैकेंनी औला बै तुम सोंणी ल्यूँ ला।''[5]

(नन्दा अपने पति शिव से कहती है कि हे स्वामी! मैं सिर्फ चार दिनों के लिए अपने मायके होकर आती हूँ। मुझे अपनी माँ की खुद लगी है। मेरे मायके में झील के किनारे ककड़ियाँ और क्यारियों में मक्के लगे होंगे, मैं उन्हें ग्रहण कर तुम्हारे लिए भी लेती आऊँगी।)

लड़की के जीवन में खुद उसके अंश की तरह जुड़ा होता है। इसलिए खुद का सम्बन्ध उसके लिए मायके के अतिरिक्त अपने पति के बिछड़ने से भी होता है। ससुराल में वह जिसके सबसे अधिक करीब होती है वह उसका पति है जिसके साथ रहकर वह मायके की याद में अधिक व्याकुल नहीं होती, लेकिन दिल में बिठाये इस पति से ही बिछड़ना पड़े तो वह अधिक कारुणिक हो जाती है। सावन-भादो का मौसम उन स्त्रियों के लिए बड़ा ही हृदय विदारक होता है, जिनके पति उन्हें कुछ समय के लिए छोड़कर परदेश कमाने चले जाते हैं।

''मैनो आयो सौण को डाँडू बिजुली चौंकी।
मेरी जिकुड़ी मा स्वामी कुमेड़ी सी लौंखी॥''[6]

(सावन का महीना आ गया और पहाड़ों पर बिजली चमकने लगी है। स्वामी मेरे हृदय पर बादल लोटने लगे हैं।)

इसी प्रकार 'जसी' नामक कविता में जसी भी अपने प्रिय पति की खुद में अपनी सुध-बुध भूल जाती है। वह खाना-पीना, सोना, उठना, बैठना, सजना, संवरना सब भूल गयी है, जिससे उसका बाहरी आवरण सौन्दर्यहीन हो गया है-

''रातू कू सेन्दी नी जसी दिनू कू खांदी नी,
लैरेन्दी नी च पैरेन्दी नी च, वीं कू बस एकड बानो टिप्यू च,
मैलो ह्वैगे धुमैलो रूप वीं को, फूल सी अलसै वा धूल सी ह्वैगे।''[7]

(पति के जाने के बाद जसी रात को सो नहीं पाती। दिन को खा नहीं पाती। वह वस्त्र आभूषण भी नहीं बदलती। पति की यादों को संजोये हुए वह सुध-बुध खो गयी है। उसका रूप अब मैला हो गया है जो मुरझाये फूल की तरह मिट्टी में मिलकर धूल की तरह हो गया है।)

इस प्रकार खुद व्यक्ति को समस्त कार्य प्रणाली से दूर कर देती है। खुदेड़ व्यक्ति खुद में इतना लीन हो जाता है कि वह जीवन के पहलुओं को भूल जाता है। यह खुद और भी अधिक बेचैनी का कारण बनती है, जब पति जाने के बाद बताये गये समय पर लौटकर नहीं आता, तब पत्नी इस वियोग में अधिक कातर स्वर में क्रंदन करने लगती है-

''आकाश में बादलों का दल उमड़ने-घुमड़ने लगा है,
ओ निर्मोही! बसन्त रीत गया तुम नहीं आये,
हृदय में नासूर हो गया जो अब, सुड़कने लगा है।''[8]

(जिस प्रकार कोई नासूर बना घाव दर्द देता है, उसी प्रकार पत्नी के हृदय में पति का वियोग नासूर का काम कर रहा है जो उसे असहनीय पीड़ा दे रहा है। इस पीड़ा को सिर्फ पति का प्रेम ही ठीक कर सकता है।)

औसतन वर्तमान में लड़कियों की अब इतनी कठिन परिस्थिति नहीं रही। वह अधिक से अधिक समय अपने पति के साथ गुजारती हैं। यदि मायके की याद खुद आये तो बड़ी आसानी से वह मायके भी चली जाती हैं। परन्तु परिवर्तन प्रत्येक की स्थिति को परिवर्तित नहीं कर सकता। अतः आज भी ऐसी लड़कियाँ हैं जिनके लिए खुद समस्या का आधार बना है। दूर-दराज के गाँवों में इन परिस्थितियों से आज भी रू-ब-रू हुआ जा सकता है। आज भी कई लड़कियाँ हैं जो ससुराल से अपने मायके वालों की खुद में गमगीन रहती हैं, आज भी उसे त्यौहारों का इन्तजार रहता है ताकि उसके मायके से कोई उससे मिलने आये, उसके लिए विभिन्न उपहार भी साथ में लाये। उसे मायके की हर वस्तु प्रिय है, इसलिए उन्हें पाने के लिए वह सदा ही लालायित रहती है। मायके के पश्चात् लड़की का पति उसका सबसे अधिक करीबी होता है। जीवन को सही राह पर चलाने के लिए उसे भी घर से बाहर जाना पड़ता है। इस प्रकार मायके और पति से दूर होना ही एक लड़की के जीवन में खुद का पदार्पण करता है। वह उसे अपने जीवन का अहम् हिस्सा बना लेती है जो सदैव अन्तर्मन में व्याप्त रहती है।

निष्कर्ष-निष्कर्षतः मायके और पति से दूर होने पर लड़की की 'खुद' का पराकाष्ठा उसे चेतना शून्य बना देती है जिसका निवारण सिर्फ उसके मायके और पति द्वारा ही हो सकता है। अतः 'खुद' भावों के उद्‌गार का एक विलक्षण पहलू है जो पीड़ा के साथ-साथ अनोखा अपनत्व प्रदान करता है। 'खुद' के कारण लड़की की क्रिया-प्रतिक्रिया का साक्षी प्रकृति है, जो हर क्षण उसके साथ रहकर अपनी सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण देता है। प्रकृति ही है जो उसकी संवेदनाओं के शैलाब को अपने में समेटे हुए है। वे प्रकृति के अंशों को सहारा बनाकर विभिन्न प्रकार के खुदेड़ गीत गाती है जिनसे उनकी भावनाओं का उद्‌गार फूट पड़ता है और वह उसमें पूर्ण रूप से डूब जाती है। उनकी इसी अन्तरिम व्याकुलता की पीड़ा 'खुद' को विशेष बना देती है। अतः कह सकते हैं कि 'खुद' एक आत्मिक अनुभव है, परन्तु इसका प्रभाव इतना उत्कृष्ट है कि यह आत्मिक होते हुए भी प्रत्यक्ष हो जाता है।

सन्दर्भ-सूची

1. चातक; गोविन्द (2008) : गढ़वाल भाषा साहित्य और संस्कृति, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 95
2. प्रो. शर्मा; डी.डी. (2014) : उत्तराखण्ड के साहित्य का आयामी परिदृश्य, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, नैनीताल, पृ. 141,
3. चातक; गोविन्द (1996) : गढ़वाली लोक गाथाएँ, तक्षशिला, प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 208
4. चातक; गोविन्द : गढ़वाली लोक गाथाएँ, पृ. 245
5. बिष्ट; बसन्ती (2013) : नन्दा के जागर सुफल ह्वे जाया तुमारी जातरा, विन्सर पब्लिशिंग कं., देहरादून, उत्तराखण्ड, पृ. 117
6. चातक; गोविन्द : गढ़वाल भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ. 96
7. चातक; गोविन्द : गढ़वाली लोक गाथाएँ, पृ. 221
8. पोखरिया; देव सिंह (2009) : उत्तराखण्ड लोक संस्कृति और साहित्य, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 231

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 27-29
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

जनसंचार के माध्यम और हिन्दी

*डॉ. तजिन्दर भाटिया**

संचार शब्द अंग्रेजी के 'कम्यूनिकेशन' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। ''जनसंचार' - इस शब्द समूह में प्रयुक्त शब्द 'संचार' अर्थात् किसी बात को आगे 'बढ़ाना' या 'चलाना' या 'फैलाना' - की मूल धातु संस्कृत की 'चर्' है। जिसका मतलब है 'चलना'। दूसरे शब्दों में जब हम किसी भाव या विचार या जानकारी को दूसरों तक पहुँचाते हैं, और यह प्रक्रिया सामूहिक पैमाने पर होती है तो इसे 'जनसंचार' (Mass Communication) कहते हैं।''[1]

जनसंचार का उद्देश्य समाज की सूचनाओं और जानकारियों को सब तक पहुँचाना है। जनसंचार की प्रक्रिया विभिन्न माध्यमों द्वारा सम्पन्न होती है। परन्तु प्रमुखतः निम्नलिखित तीन माध्यमों को जनसंचार के प्रमुख माध्यम माना जाता है।

1. **मुद्रण माध्यम अथवा प्रिंट मीडिया-**समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, जर्नल, पुस्तकें, पोस्टर, पम्फलेट आदि।
2. इलेक्ट्रानिक माध्यमः **(क) श्रव्य माध्यम**-रेडियो, टेपरिकार्डर आदि।
   (ख) श्रव्य और दृश्य माध्यम-टेलीविजन, फिल्म, वीडियों कैसेट, सी.डी. आदि।
3. **नव इलेक्ट्रानिक माध्यम-**कम्प्यूटर, इंटरनेट, मल्टी मीडिया और सी.डी. रॉम आदि उपरोक्त जनसंचार के माध्यम आज के मानव को सहज ही उपलब्ध हो रहे हैं और अधिक से अधिक लोग इन जनसंचार के माध्यमों से लाभान्वित हो रहे हैं। जनसंचार के इन माध्यमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. मुद्रण माध्यम अथवा प्रिंट मीडिया–समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, जर्नल के अतिरिक्त पुस्तकें, पोस्टर, पम्फलेट प्रिंट मीडिया के प्रमुख साधन हैं।

जनसंचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रिंट मीडिया के जन्म का सम्बन्ध लेखन क्रिया से ही सम्बन्धित है। अधिक से अधिक लोगों को सूचना पहुँचाने के लिए ही पत्रकारिता का आविष्कार हुआ। आज की पत्रकारिता के अन्तर्गत समीक्षा, विज्ञापन, समाचारों और घटनाओं पर टिप्पणियाँ, व्याख्याएँ, मनोरंजन जगत् और खेल जगत् सम्बन्धी जानकारियाँ, ज्ञान-विज्ञान, स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी सूचनाएँ आ जाती हैं। हिन्दी भाषा की पत्रकारिता की बात की जाए तो 'उदण्त मार्तण्ड' से लेकर आज की 'जनसत्ताा' और 'भास्कर' तक की लम्बी सूची विद्यमान है। 'वीर अर्जुन' (दैनिक), 'प्रताप', 'सैनिक', 'चाँद', 'माधुरी' (मासिक, साप्ताहिक), 'नया समाज', 'विशाल भारत' आदि हिन्दी पत्रिकाओं का अभावग्रस्त संपादकों के कारण असमय ही लोप हो गया। इसके अतिरिक्त हिन्दी का जो शुद्ध रूप 'सरस्वती' (सं. महावीर प्रसाद द्विवेदी) जैसी पत्रिकाओं में द्रष्टव्य था, आज देखने को नहीं मिलता। आज हिन्दी के प्रिंट मीडिया में अंग्रेजी के वर्चस्व से मुक्ति दिखाई नहीं देती।

भारत में समाचार समितियों की भी स्थापना हुई, जिनमें 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया', 'युनाइटेड न्यूज़ ऑफ इंडिया;, 'हिन्दुस्तान समाचार', 'भारतीय समाचार', 'हिन्दी न्यूज़ सर्विस', आदि प्रमुख हैं। 'पंजाब केसरी', 'अमर उजाला', 'दैनिक भास्कर', 'दैनिक जागरण' और 'जनसत्ता' आदि आज के लोकप्रिय हिन्दी समाचार पत्र हैं।

इसके अतिरिक्त पुस्तकों, जर्नल और पैम्फलेट में मुद्रण माध्यम से हिन्दी का उपयोग सरल भाषा में हो रहा है। आज हिन्दी में विज्ञान, चिकित्सा, वाणिज्य सम्बन्धी अनेक पुस्त्कों का प्रकाशन और अध्ययन हिन्दी भाषा के विकास में श्लाघनीय कदम है। विभिन्न पुस्तकें, समाचारों का अनुवाद भी हिन्दी भाषा में निरन्तर होता हिन्दी के विकास का सूचक है। इसके अतिरिक्त जनसंचार में सहायक सरल भाषा के रूप में हिन्दी प्रिंट मीडिया में अपना अग्रणीय स्थान बना चुकी है, इसमें संदेह नहीं है।

2. इलेक्ट्रानिक माध्यम-इलेक्ट्रानिक माध्यम में श्रव्य माध्यमों में रेडियो, टेपरिकार्डर आदि आते हैं और दृश्य-श्रव्य माध्यमों में टेलीविज़न, फिल्म, वीडियो कैसेट आदि आते हैं।

* *एसिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), आर्य कॉलेज, लुधियाना*

जनसंचार के इलेक्ट्रानिक माध्यम के श्रव्य साधनों में रेडियो प्रमुख रूप से माना जाता है। रेडियो प्रसारण का आविष्कार इटली के मारकोनी नामक वैज्ञानिक ने 1901 ई. में किया। प्रथम वाक् संकेत अटलांटिक के पार आलिंग्टन, वर्जिनिया और पैरिस के बीच सन् 1915 में भेजे गए थे। 1933 में जर्मनी द्वारा रेडियो का शब्दों द्वारा प्रसारण किया गया। भारत में प्रारम्भ में रेडियो का धीमा विकास हुआ। मद्रास प्रेसीडेंसी रेडियो क्लब ने 16 मई 1924 से प्रसारण प्रारम्भ किया। 'लिमका बुक ऑफ रिकार्डस्' के अनुसार प्रथम प्रसारण आगस्त 1921 को 'टाइम्स ऑफ इण्डिया कार्यालय से मुम्बई के गवर्नर सर जार्ज लायड के आग्रह पर किया गया। डाक तार विभाग के सहयोग से संगीत का विशेष कार्यक्रम किया गया। 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के शुरू होने पर रेडियो का विधिवत् विस्तार प्रारम्भ हुआ।

स्वतन्त्रता के बाद से आकाशवाणी/ऑल इण्डिया रेडियो का व्यापक प्रसार हुआ है। आज भारत के पास 100 से अधिक रेडियो स्टेशन हैं और क्रान्तिकारी प्रगति निरन्तर रेडियो प्रसारण में हो रही है। खेल, समाचार, मनोरंजन, ज्योतिष, रिर्पोट, साक्षात्कार आदि अनेक प्रोग्राम रेडियो से प्रसारित किए जाते हैं। एफ.एम. जैसे चैनल भी रेडियो पर लोकप्रिय हो रहे हैं।

रेडियो के बाद जनसंचार का सशक्त माध्यम है-टेलीविजन। टेलीविजन का पहला नियमित प्रसारण 1936 ई. में हुआ। भारत में प्रथम प्रायोगिक टेलीविजन केन्द्र का उद्घाटन 15 सितम्बर, 1959 को देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने किया।

1 अप्रैल, 1976 से भारत में 'दूरदर्शन' नाम से टैलीविजन 'आकाशवाणी' से अलग होकर स्वतंत्र अस्तित्व में आ गया। दूरदर्शन चैनल के अतिरिक्त आज सैटेलाइट के जरिए-स्टार मूवी, स्टार टी.वी., स्टार प्लस, स्टार स्पोर्टस, जी.टी.वी., जी. सिनेमा, जी.न्यूज, बी.बी.सी., सी.एन.एन., ई.एस.पी.एन., आर.टी.पी., सन् टी.वी. आदि के एक सशक्त माध्यम के रूप में टेलीविजन अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। इन चैनलों पर अनेक हिन्दी कार्यक्रम, समाचार, फिल्में, नाटक आदि प्रसारित होते हैं। हिन्दी भाषा की लोकप्रियता के कारण आज टेलीविजन जनसंचार का प्रमुख माध्यम बन चुका है। टेलीविजन पर 'आज तक', 'ए.बी.पी. न्यूज चैनल अत्याधिक लोकप्रिय है और हिन्दी भाषा में दिए गए विज्ञापनों की लोकप्रियता तो सर्वविदित है, परन्तु इसमें हिन्दी भाषा के साथ अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग बहुलता में हो रहा हैं उदाहरण स्वरूप एक टूथपेस्ट के विज्ञापन का उदाहरण देखें-

'दाँतों में दर्द? नया टूथपेस्ट ट्राई किया? दाँतों के साथ एक्सपेरीमेंट? कभी नहीं। दाँतों को चाहिए सुरक्षा। सुपर शक्ति युक्त ..... टू वे एक्शन एक, इसका असरदार झाग दाँतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का खात्मा करे, दो, कीटाणुओं के खिलाफ बनाए सुरक्षा कवच।'

इसी तरह किसी सेल का विज्ञापन देखें- 'खुशियों का ऑफर, ... दिन से ..... सारे के सारे प्रोड्क्ट्स पर, वारंटी पर वारंटी है, रेफ्रिजरेटर और टेलीविजन पर, बढ़िया से बढ़िया एक्सचेन्ज ऑफर, जीरो परसेन्ट फाइनेन्स स्कीम है, आखिरी दिन है, साथ में सूटकेस और ट्राली फ्री है ..... जल्दी से जल्दी ..... दिल से।'

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि विज्ञापन का लक्ष्य प्रायः उपभोक्ताओं को अपना उत्पादन बेचना होता है, इसलिए वे भाषा की ओर ध्यान नहीं देते, परन्तु जनसंचार के माध्यम की सशक्त भाषा हिन्दी होने के कारण वे हिन्दी पर ज्यादा निर्भर होते है।5 इसलिए हिन्दी के शुद्ध रूप पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

जनसंचार के दृश्य-श्रव्य माध्यम में आज सबसे लोकप्रिय फिल्म उद्योग है। पहली रूपक हिंदी फिल्म 3 मई 1913 को 'कोरोनेशन' सिनेमा में रिलीज़ हुई थी। यह दादा साहब फालके द्वारा बनाई फिल्म 'राजा हरिचन्द्र' पहली भारतीय हिंदी फिल्म थी। दृश्य-श्रव्य माध्यम से पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' थी। भारतीय सिनेमा पर दृष्टि डाली जाए तो हिन्दी फिल्मों को सिनेमा जगत् की आत्मा कहने में कोई अतिश्योक्ति न होगी। श्री हरीश वाशिष्ठ हिन्दी फिल्मों की जनसंचार में भूमिका पर लिखते हैं- ''अभिव्यक्ति का एक प्रभावी माध्यम होने के कारण एक खास उम्र तक जनमानस पर फिल्मों का जबरदस्त प्रभाव छाया रहता है। फिल्मों ने राष्ट्रीय एकता, हरिजनोद्वार, नारी जागरण, छुआछूत, साम्प्रदायिकता, अन्याय, शोषण, अत्याचार, सामन्तवाद से लेकर राजनीति, भाषा, भाई-चारा जैसे राष्ट्रीय हित के मुद्दों पर जन-मन को आंदोलित किया है। उसे जागृत भी किया है।''[2]

'श्री 420', 'आवारा', 'आनंद', 'बार्डर', 'गुजारिश', मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.', 'जॉली एल.एल.बी.' 'तारे जमीन पर' आदि लोकप्रिय फिल्में रहीं। परमानंद श्री वास्तव के अनुसार - 'चीनी कम', 'पेज थ्री', 'तारे जमीन पर', 'चक दे इण्डिया' अलग-अलग तरह की फिल्में हैं। आज प्रिन्ट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया दोनों के लिए यथार्थ थ्रिल है, रोमांस है, सनसनी है। खबरें अखबारों में, टी.वी. चैनलों पर दुहराई जाती हैं। सैक्स रैकेट काण्ड हर दिन उन्हीं-उन्हीं पन्नों पर छपता है और माल मसाला की तरह पढ़ा या देखा जा रहा है।''[3]

हिन्दी सिनेमा के हिन्दी गानों की लोकप्रियता आज पूरे विश्व में फैल चुकी है और विदेश से आने वाले फिल्मी सितारों, जिनमें लंदन की कैटरीना कैफ, श्रीलंका की जैकलिन का नाम लिया जा सकता है, ने भी अपने पैर हिन्दी सिनेमा में जमाने के लिए हिन्दी सीखी। अतः जनसंचार के सशक्त दृश्य-श्रव्य माध्यम सिनेमा में निश्चय ही हिन्दी भाषा का उज्ज्वल भविष्य है।

3. नव-इलेक्ट्रानिक माध्यम-जनसंचार के नव इलेक्ट्रानिक माध्यमों में कम्प्यूटर, इंटरनेट, मल्टी मीडिया, सी.डी. रॉम आदि को लिया जाता हैं कम्प्यूटर और इंटरनेट मीडिया के रूप में आज अत्याधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। 'कम्प्यूटर ही वह वैज्ञानिक उपकरण है, जिसने मीडिया को मल्टी-मीडिया बना दिया है। वर्तमान युग में कम्प्यूटर ने जीवन के हर क्षेत्र की ओर हाथ पसार दिए हैं। उसके माध्यम से काम्बो डाँस, सी.डी., डी.बी.सी., सी.डी. राइटर उपकरण संचालित होते हैं। ये इन्टरनेंट से सम्बद्ध होकर सी.डी. प्लेयर, विण्डोमीडिया, प्लेयर माध्यमों से उपलब्ध सामग्री को विश्वव्यापी संचार क्रिया का पात्र बना देते हैं।''[4]

सूचना, आँकड़े, दस्तावेज, पत्रावलियाँ आदि का आदान प्रदान इन्टरनेंट द्वारा हो रहा है। इसे 'विश्वव्यापी जाल' (वर्ल्ड.वाइडवेब) कहा जाता है। इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं के आगमन का प्रथम अवसर हिन्दी पोर्टल 'वेब दुनिया' से मिला। विश्व की पहली वेबसाइट 'नई दुनिया कॉम' पहली बहुभाषी ई-मेल सेवा 'ई-पत्र', पहला हिन्दी पोर्टल 'वेब दुनिया.कॉम' इंटरनेट पर लाया गया, जो अत्याधिक लोकप्रिय हुआ। वर्तमान में भारत में लगभग 46 लाख लोग इंटरनेट का प्रयोग कर रहे हैं। यह संख्या लगातार बढ़ रही है। आने वाले वर्षों में यह आँकड़ा 75 लाख और उससे भी अधिक हो सकती है। वास्तव में इंटरनेट का परिदृष्य हिन्दी भाषाभाषी समाज के लिए बहुत उज्ज्वल कहा जा सकता हैं बहुत जल्द वॉयस सर्फिंग सेवा के शुरू होने से माउस की क्लिक-क्लिक से भी आज़ादी मिल जाएगी। प्रसार भारती ने भी आज आधुनिक तकनीकी साधनों का विस्तार का लिया हैं हर आकाशवाणी केन्द्र पर आज डिजिटल रिकॉर्डिंग, एफ.एम. प्रसारण, सैटेलाइट लिंक, एम.पी.-3 म्यूजिक, डिजिटल एडिटिंग, आधुनिक स्तर के माइक्रोफोन की सुविधाएँ हैं। इसी तरह ''इन्टरनेट की बदौलत अमेरिका में रहते हुए भी आप असम ट्रिव्यून, स्टेट्समैन, हिन्दू तथा ट्रिव्यून (चण्डीगढ़) जैसे समाचार पत्र बिना नागा देख सकते हैं जो भारत में रहते हुए भी हर जगह अपने मुद्रित रूप में सर्वसुलभ नहीं है।''[5] इंटरनेट पर उपलब्ध 'विकीपीडिया' तथा 'गूगल' जैसे सर्च इंजनों की सहायता से किसी भी विषय तथा वस्तु के बारे में मिनटों में जानकारी उपलब्ध हो जाती है।

'वेब पत्रकारिता के विकास ने पत्रकारिता की पारंपरिक परिभाषा ही बदल दी है। बेब या इंटरनेट पत्रकारिता, भारत ही नहीं समूचे विश्व के लिए एक नई चीज़ है। वेब पत्रकारिता आज मीडिया का सबसे तेजी से विकसित होने वाला पन्ना बन गया है। अंग्रेजी और हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं के अधिकतर बड़े अखबार आज 'ऑनलाइन' हो चुके हैं।''[6]

नव इलेक्ट्रानिक माध्यमों से सहायता लेकर आज के नए फिल्मकार अच्छा कार्य कर रहे हैं, इसके बारे में सईद मिर्जा (निर्माता, निर्देशक) के एक साक्षात्कार में व्यक्त किए गए विचारों को देखा जा सकता है-''नए फिल्मकारों के पास डिजीटल तकनीक है, हल्के कैमरा हैं, और जिंदगी को लेकर एक नजरिया है- इन तीनों के मेल से वे बेहतर काम कर रहे हैं। यह भी हो सकता है शायद कि यू ट्यूब, डी.वी.डी. और ऐसे दूसरे माध्यम, जो उनके पास उपलब्ध हैं, उनसे वे दुनिया भर से अनुभव ले रहे हों। ये चीजें उन्हें बतौर फिल्मकार आज़ाद कर रही हैं।''[7] निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज जनसंचार के माध्यमों में हिन्दी एक सशक्त और सर्वप्रिय भाषा के रूप में उभर कर सामने आई हैं अतः डॉ. अंगदकुमार सिंह के शब्दों में कहा जा सकता है- 'विमर्श, टिप्पणी और चिन्तन का कोई कोना नहीं, जहाँ आज की हिन्दी पत्रकारिता ने प्रवेश न प्राप्त कर लिया हो। विज्ञापन की दुनियां से लेकर रोजमर्रा की जिन्दगी तक और प्रिण्ट मीडिया से लेकर इन्टरनेट और वेब-मीडिया तक। सभी क्षेत्रों में हिन्दी-मीडिया की आहट सुनी जा सकती है। अद्यतन तकनीक से लैस हिन्दी मीडिया अब मनुष्य की वाक्शक्ति और कलाशक्ति के प्रकाशन में समर्थ बन चुकी है।''[8]

अतः जनसंचार के माध्यमों द्वारा हिन्दी का प्रचार प्रसार अपनी चरम सीमा पर है और निरन्तर इसका विकास होने की सम्भावना है।

संदर्भ-सूची

1. राधेश्याम शर्मा सं. (2004), 'जनसंचार' में 'राजेन्द्र' के लेख 'जनसंचार, बहुआयामी संचार और संचालनतंत्र' में से, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, पृ. 3
2. वही, हरीश वशिष्ठ का लेख 'जनसंचार में फिल्मों तथा दूरदर्शन का योगदान', पृ. 194
3. मीडिया-विमर्श (जुलाई-दिसम्बर 2008) : 'आक्रामक है मीडिया का इन्द्रजाल', परमानंद श्रीवास्तव, पृ. 29
4. डॉ. शर्मा; जगदीश (2012) : हरीश पत्रकारिता प्रशिक्षण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा, पृ. 241
5. अशोक मलिक (2002) : सूचना प्रोद्यौगिकी एवं पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, पृ. 52
6. निशांत सिंह (2002) : पत्रकारिता की विभिन्न विधाएँ, भूमिका, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
7. 'दृश्यांतर (मीडिया, साहित्य, संस्कृति और विचार का मासिक), अंक-10, जुलाई 2014, नयी दिल्ली, सं. अजित राय, सईद मिर्जा से त्रिपुरारि शरण की बातचीत, पृ. 20
8. 'कथा क्रम (कथा साहित्य, कला एवं संस्कृति की त्रैमासिकी), अंक 61, जुलाई-सितम्बर, 2014, सं. शैलेन्द्र सागर, लखनऊ, में डॉ. अंगदकुमार का लेख, 'हिन्दी मीडिया की नई आहट ओर परमानंद श्रीवास्तव', पृ. 73

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 30-31
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का रचना संसार (उपन्यास)

*डॉ. कंचनलता त्रिपाठी**

कथाकार शिवप्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास लेखन का आरम्भ ग्रामीण जीवन के चित्रण से किया था। उनका प्रथम उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक गाँव को आधार बनाकर लिखा गया था। इस उपन्यास की केन्द्रीय कथा है– आजादी के बाद उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के गाँवों की जिन्दगी के दिनोंदिन नरक बनते जाने का सच। जिसे निर्मित किया है भूतपूर्व जमींदार ने, धर्म तथा समाज के पुराने ठेकेदारों ने, भ्रष्ट सरकारी ओहदेदारों ने, और इस वैतरणी से जूझ तथा छटपटा रही है गाँव की प्रगतिशील नई पीढ़ी। यह प्रगतिशील नई पीढ़ी भी नारकीय ग्रामीण यथार्थ से पीड़ित एवं पराजित होकर नगर की ओर पलायन करती है। पढ़े-लिखे युवकों का गाँव से पलायन इस कथा का द्वितीय पक्ष है। कथा के दृष्टिकोण से 'अलग-अलग वैतरणी', 'गोदान', 'गणदेवता' एवं मैला आँचल' की परम्परा का उपन्यास है।

सन् 1974 में डॉ0 शिवप्रदासद सिंह का दूसरा उपन्यास 'गली आगे मुड़ती है' प्रकाशित हुआ। इस समय तक शिवप्रसाद सिंह काशी वासी हो चुके थे। अब वे गाँव के किसान के पुत्र करैता के निवासी नहीं, बनारस की गलियों और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयी वासी हो गये थे। उन्होंने उपन्यास की भूमिका में तनिक गर्व के साथ ही सूचित किया है कि ''अलग-अलग वैतरणी में एक बार भी लेखक ने करैता नहीं छोड़ा, गली में एक बार भी काशी नहीं छूटी है।'' परन्तु यह कहना भी उचित होगा कि 'गली आगे मुड़ती है' में करैता एकदम नहीं छूट गया है, वह प्राणसंचार के लिए मौजूद है। 'गली आगे मुड़ती है' का केन्द्रीय विषय युवा आक्रोश है। युवा आक्रोश से जुड़े बोध को शिव प्रसाद सिंह ने काशी विश्वविद्यालय परिसर के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का तीसरा उपन्यास 'नीला चाँद' सन् 1988 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास से उनके लेखक जीवन का दूसरा पहलू सामने आता है। इसी कड़ी में 'कुहरे में युद्ध', 'दिल्ली दूर है', 'वैश्वानर' आदि वृहदकाय ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए। इसी बीच उनके दो और उपन्यास 'शैलूष' तथा 'औरत' प्रकाशित हुए, जिनमें 'शैलूष' दलित जीवन पर आधारित तथा 'औरत' नारी नियति पर केन्द्रित एक मार्मिक कृति है।

सन् 1989 में प्रकाशित 'शैलूष' भौगोलिक दृष्टि से विन्ध्य क्षेत्र में निवास करने वाले नटों की कबीलाई जीवन शैली को दर्शाता है। नटों के जीवन पर इससे पूर्व रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' (सन् 1957) प्रकाशित हो चुका था। 'शैलूष' की भी सृजनात्मक स्थिति 'कब तक पुकारूँ' के आस-पास ही है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने नटों की उत्पत्ति को शक-कुषाण कबीलों से जोड़कर इस जाति को ऐतिहासिक सन्दर्भ प्रदान करने की कोशिश की है, जो नटों के प्रति उनकी सहानुभूति का परिचायक है। इस उपन्यास में एक पढ़ी लिखी, लगभग करिश्माई व्यक्ति की ब्राह्मण युवती एक नट के प्रेम में पड़कर उससे विवाह कर लेती है और नट की पत्नी बनकर उच्च वर्ग के दमन एवं शोषण से नटों की मुक्ति का संघर्ष छेड़ देती है तथा इसमें वह आश्चर्यजनक रूप से सफल भी होती है।

सन् 1993 में डॉ. शिवप्रदास सिंह के दो उपन्यास 'कुहरे में युद्ध' और 'दिल्ली दूर है' का प्रकाशन हुआ। उपन्यासकार ने मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज चौहान तथा जयचन्द की पराजय के बाद उत्तर भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के क्रम में जुझौटी में तुर्क सेनाओं की असफलता तथा नाशिरुद्दीन शाह को लेकर अलाउद्दीन खिलजी तक की राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक टकराहटों और यत्किंचित हिन्दू और इस्लामी संस्कृति के समन्वय का चित्र अंकित किया है। 'कुहरे में युद्ध' में जहाँ लेखक ने जुझौटी (बुंदेलखण्ड) में मुस्लिम आक्रांताओं की असफलता की कहानी प्रस्तुत की है, वहीं 'दिल्ली दूर है' में धार्मिक-सांस्कृतिक टकराहटों एवं समन्वय का अंकन सुन्दरता के साथ किया है।

* *प्रवक्ता (हिन्दी विभाग), कबूतरी देवी राजेश्वर प्रसाद त्रिपाठी स्मारक पी.जी. कालेज, बालेन्द्रपुरी, डुमरीखास, गोरखपुर (उ.प्र.)*

'वैश्वानर' डॉ. शिवप्रसाद सिंह का अन्तिम उपन्यास है जो सन् 1996 में प्रकाशित हुआ। इसमें काशी के वैदिक रूप को प्रस्तुत किया गया है। इसमें उपन्यासकार ने दिखाया है कि ऋग्वेद के दशम मण्डल में काशीराज प्रतर्दन को राजा बनने से पूर्व ही ऋषित्व प्राप्त हो गया था। प्रदर्तन के पिता दिवोदास तथा यशस्वी पुत्र अलर्क थे। इसी परिवार को केन्द्र बिन्दु बनाकर गौतम, वामदेव, गोशल, राम, भार्गव, दत्तात्रेय, सुदर्शन, जनक, कीर्तवीर्य, माधवी, धन्वन्तरी, सिन्धुजा, अंगीरस आदि अन्य वैदिक पात्रों की सहायता से एक आकर्षक कथा संसार की सृष्टि की है, जिसके माध्यम से वैदिक कालीन संस्कृति तथा उसमें काशी की भूमिका का सुन्दर अंकन हुआ है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने अपने उपन्यासों में पात्रों की उपस्थिति इस प्रकार की है कि पूरा वातावरण जीवन्त एवं रसमय हो उठता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में आंचलिकता के जो प्रयोग किये हैं वह प्रेमचन्द तथा रेणु से पृथक थे। एक प्रकार से दो वर्गों के मध्य का मार्ग था और यही कारण है कि उनकी कहानियाँ पाठकों को आकर्षित कर सकीं। इनकी रचनाओं को साहित्य की नई धारा के प्रवर्तन का श्रेय मिला, परन्तु इन्होंने खुद को किसी आन्दोलन से नहीं जोड़ा, वे सदैव स्वतन्त्र लेखन में जुटे रहे और शायद इसी कारण से कालजयी कहानियों तथा उपन्यासों की रचना कर सके।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह उस श्रेणी के रचनाकार थे जो किसी भी विषय पर लेखनी उठाने से पूर्व ही उस विषयवस्तु की हर प्रकार की तैयारी कर लेते थे। इनकी लेखनी से निकले पात्र सजीव, स्वाभाविक एवं सहज हैं वे न तो अलौकिक हैं और न ही असामान्य।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. नीरन; अरुणेश (1994), शिवप्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
2. डॉ. प्रेमचन्द, बीहड़ पथ के यात्री, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
3. त्रिपाठी; सत्यदेव (1993), शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य, अमन प्रकाशन, कानपुर
4. डॉ. बंशीधर (1983), हिन्दी के आंचलिक उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली
5. पाण्डेय; आनन्द कुमार (2006), 'वैतरणी से वैश्वानर तक की यात्रा', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 32-37
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों का कथ्यगत विवेचन

*प्रशान्त कुमार राय**

मनोहर श्याम जोशी का जन्म 9 अगस्त, 1933 को अजमेर में हुआ था, ये लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान स्नातक 'कल के वैज्ञानिक' की उपाधि पाने के बावजूद रोजी-रोटी की खातिर छात्र जीवन से ही लेखक और पत्रकार बन गये। अमृतलाल नागर और अज्ञेय–इन दो आचार्यों का आर्शीवाद उन्हें प्राप्त हुआ। स्कूल मास्टरी, क्लर्की और बेरोजगारी के अनुभव बटोरने के बाद 21 वर्ष की उम्र से वे पूरी तरह मसिजीवी बन गये।

प्रेस, रेडियों, टी.वी., वृत्तचित्र, फिल्म, विज्ञापन-सम्प्रेषण का ऐसा माध्यम नहीं जिसके लिए उन्होंने सफलतापूर्वक लेखन-कार्य न किया हो। खेलकूद से लेकर दर्शनशास्त्र तक ऐसा कोई विषय नहीं जिस पर उन्होंने कलम न उठायी हो। आलसीपन और आत्मसंशय उन्हें रचनाएँ पूरी कर डालने और छपवाने से हमेशा रोकता रहा है। पहली कहानी तब छपी जब वह अठारह वर्ष के थे लेकिन पहली बड़ी साहित्यिक कृति तब प्रकाशित करवाई जब सैंतालिस वर्ष के होने को आए।

केन्द्रीय सूचना सेवा और टाइम्स ऑफ इण्डिया समूह के होते हुए सन् 1967 में हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन में साप्ताहिक हिन्दुस्तान के सम्पादक बने और वहीं एक अंग्रेजी साप्ताहिक का भी सम्पादन किया। टेलीविजन धारावाहिक 'हम लोग' लिखने के लिए सन् 1984 में संपादक की कुर्सी छोड़ दी और तब से आजीवन स्वतंत्र लेखन करते रहे।

मनोहर श्याम जोशी की रचनाएँ

कुरु कुरु स्वाहा (1980), कसप (1982), हरिया हरक्यूलीज की हैरानी (1994), हमजाद (1996), ट-टा प्रोफेसर (2001), क्याप (2001), कौन हूँ मैं (2006), उत्तराधिकारिणी कपीस जी (अपूर्ण) (उपन्यास), कैसे-किस्सागो (1983), दस प्रतिनिधि कहानियाँ (2007), एक दुर्लभ व्यक्तित्व, मन्दिर घाट की पौड़ियाँ (कहानी संग्रह), हम लोग, बुनियाद (1988), कक्का जी कहिन (1996), मुंगेरी लाल के हशीन सपने, हमराही, जमीन-आसमान, गाथा (टेलीविजन धारावाहिक), भ्रष्टाचार, अप्पूराजा, हे राम, पापा कहते हैं, मंजिल, जमीन-आसमान (फिल्म), बातों-बातों में (1983), (साक्षात्कार), लखनऊ मेरा लखनऊ (2002), रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण (2003), संस्मरण, नेता जी कहिन (1982), उस देश का यारों क्या कहना (2008), (व्यंग्य), पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नजर (2006), क्या हाल हैं चीन के (2006), (यात्रा संस्मरण), 21वीं सदी (2003), (कॉलम आलेख), आज का समाज (2006), (वैचारिक), पटकथा लेखन : एक परिचय (2000), (सिनेमा), बात ये है कि (2008), (स्तम्भ लेख)।

सुप्रसिद्ध लेखिका 'माज्दा असद' मनोहर श्याम जोशी के बिताये कुछ अविस्मरणीय क्षणों की चर्चा करते हुए कहती हैं– ''उन्होंने लेखन में मौलिकता को अपनाया। नये मापदण्ड बनाये। काव्यशास्त्र की मान्यताओं को ललकारा। उनके नायक काव्यशास्त्र सम्मत न होकर कहीं भीरु, कहीं चंचल, कहीं कातर, कहीं विदूषक हैं। उनकी रचनात्मकता का अपना अंदाज है। तीखी दृष्टि और पैनी लेखनी ने जीवन की बिडम्बनाओं को बड़ी व्यंगात्मकता के साथ दर्शाया।''[1]

जोशी जी को अपना साहित्यिक गुरु मानने वाले डॉ0 वीरेन्द्र सक्सेना ने जोशी जी के विषय में कहा है–''ऐसे सहृदय व्यक्ति और सार्थक सर्जक मनोहर श्याम जोशी के बारे में जितना भी लिखा जाय, वह कम ही होगा। मैंने स्वयं भी सन् 1970 से लेकर उनके जीवन के अन्तिम दिनों तक जब भी उनसे मिला, उन्हें हमेशा एक वैज्ञानिक की तरह जीवन और साहित्य में कुछ नया खोजते ही पाया।''[2]

* शोध छात्र (हिन्दी विभाग), जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों का कथ्यगत विवेचन

मनोहर श्याम जोशी हिन्दी के सुपरिचित साहित्यकार हैं। हिन्दी उपन्यास लेखन में मनोहर श्याम जोशी का 'कुरु-कुरु स्वाहा', 'कसप', 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' और 'क्याप' का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके उपन्यास कथ्य की दृष्टि से बहुत प्रभावशाली न होते हुए भी शिल्प प्रयोग की दृष्टि से बहुत चर्चित रहे। उन्होंने बिल्कुल नये अंदाज से उपन्यासों की रचना की है। बातें वही पुरानी हैं, जिन्हें हिन्दी पाठक जानता है, परन्तु उपन्यास की कथा कहने का ढंग ऐसा है, जिससे पाठक उपन्यास का रसास्वादन करते हुए भी उपन्यास से बाहर निकलकर लेखक के करीब रहता है।

कुरु-कुरु स्वाहा-मनोहर श्याम जोशी का यह पहला उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1980 में हुआ था। आधुनिक महानगरीय जीवन के साथ यह उपन्यास मुठभेड़ स्वरूप दिखायी देता है। सभी दृष्टियों से देखने पर यह उपन्यास वास्तव में एक अनूठा प्रयोग लगता है जिसके विषय में उपन्यास के पात्र की मान्यता ''प्रयोग होना चाहिए, प्रयोग दिलचस्प होना चाहिए और वे प्रगतिशील भी हों तो सो मच द बेटर।''[3] प्रासंगिक है। क्योंकि इसी प्रयोग के अन्तर्गत इस रचना में जोशी जी ने वास्तविक और कल्पना के माध्यम से आधुनिक जीवन की भ्रामक स्थितियों की खोज की है। यह एक गल्प बायोस्कोप है। अतः लेखक का अतिरिक्त आग्रह है कि इसे पढ़ते हुए देखा और सुना जाना चाहिए। उपन्यास का कथानक अन्य व्यापक फलक लिये हुए है। टी. एस. इलियट और टॉलस्टाय, ग्राहमग्रीन उपनिषद् और समकालीन साहित्यकारों के निजी रूप-रंग का इसमें परिचय मिलता है।

डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त ने कहा है–''कुरु कुरु स्वाहा मनोहर श्याम जोशी का फिल्मी पटकथा-सिनेरियो और फिल्मांकन शूटिंग-शॉट-सीन पद्धति पर लिखी उपन्यासनुमा कथाकृति है। बम्बई के अधिकांश फिल्म जीवन के माध्यम से आधुनिकता के नाम पर होने वाली हर गंदगी, बेहूदगी, बकवास को इसमें दिखाया गया है। योग तंत्र एवं सेक्स की विकृतियों का पूरा एलबम है यह।''[4]

कुरु कुरु स्वाहा का नाम बेढब, शैली बेडौल और कथानक बेपैदे का है। कुल मिलाकर यह उपन्यास बेजोड़ बकवास लगता है। इस बकवास को पाठक 'एबसर्ड' का पर्याय मान सकता है। यह पहले सॉट को लेकर आखिरी फ्रीज तक एक कॉमेडी है। उपन्यास का नायक मनोहर श्याम जोशी, जो इस उपन्यास के लेखक मनोहर श्याम जोशी के अनुसार सर्वथा कल्पित पात्र है। यह नायक तिमंजिला है। पहली मंजिल में बसा है मनोहर–श्रद्धालु-भावुक किशोर। दूसरी मंजिल में 'जोशी जी' नामक इंटेलेक्चुअल और तीसरी मंजिल में दुनियादर श्रद्धालु 'मैं' जो इस कथा को सुना रहा है। नायिका है पहुँचेली-एक अनाम और अबूझ पहेली, जो इस तिमंजिला नायक को धराशायी करने के लिये ही अवतरित हुई है। नायक-नायिका के चारों ओर है बम्बई का बुद्धिजीवी और अपराधजीवी जगत।

'कुरु कुरु स्वाहा' में कई-कई कथानक होते हुए भी कोई कथानक नहीं है, भाषा और शिल्प के कई-कई तेवर होते हुए भी कोई तेवर नहीं है, आधुनिकता और परम्परा की तमाम अनुगूँजे होते हुए भी कहीं कोई वादी-संवादी स्वर नहीं है। यह एक ऐसा उपन्यास है, जो स्वयं को नकारता ही चला जाता है।

कसप–मनोहर श्याम जोशी की यह दूसरी कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1982 में हुआ था। इसमें किशोर के माध्यम से लेखक ने सम्पूर्ण जीवन दर्शन को ही प्रस्तुत किया है। साथ ही प्रेम की एक नयी परिभाषा दी है। इसमें जीवन के प्रत्येक दर्शन पर व्याख्या और टिप्पणी सटीक प्रतीत होती है। जोशी जी की विशिष्ट शैली में कसप बहता चला जाता है। कथा को एक फिल्म की भाँति चलाया गया है। ऐसी फिल्म जिसकी पटकथा खुद ईश्वर ने लिखी है और जिसमें फेरबदल करने का अधिकार न लेखक को है न कथावाचक को। निज से बाहर दूसरे की खोज और निज के प्रति असीम अनुराग के बाहर झाँककर बाहरी ज्ञान का आस्वादन करना और जड़ों को उत्कट नोंह इन्हीं विपरीतगामी बिन्दुओं के तनाव के बीच यह अद्‌भुत प्रेमकथा फैली है और अन्त में जो संप्रेषित होता है वह कालातीत गुत्थी है। एक स्थायी संदिग्ध सत्य है।

कसप का अर्थ कुमाऊँनी में है 'क्या जाने' मनोहर श्याम जोशी का कुरु कुरु स्वाहा 'एनो मीनिंग सूँ?' का सवाल लेकर आया था, वहाँ कसप जवाब के तौर पर 'क्या जाने' की स्वीकृति लेकर प्रस्तुत हुआ। किशोर प्रेम की नितान्त सुपरिचित और सुमधुर कहानी को कसप में एक वृहद् प्राध्यापक किसी अन्य (कदाचित् नायिका के संस्कृतज्ञ पिता) की संस्कृत कादम्बरी के आधार पर प्रस्तुत कर रहा है। अपने पंडिताऊ परिहास में ढालकर मध्यवर्गीय जीवन की टीस को यह प्राध्यापक मानवीय प्रेम को स्वप्न और स्मृत्याभास को बीचो-बीच 'फ्रीज' कर देता है।

मनोहर श्याम जोशी ने कसप लिखते हुए आंचलिक कथाकारों वाला तेवर अपनाते हुए कुमाऊँनी हिन्दी में कुमाऊँनी जीवन का जीवन्त चित्र आँका है। यह प्रेम कथा दलिद्रदर से लेकर दिव्य तक का हर स्वर छोड़ती है लेकिन वह ठहरती हर बार उस

माध्यम पर है जिसका नाम मध्यवर्ग है। इस उपन्यास का एक प्रकार से मध्यवर्ग ही मुख्य पात्र है। कसप को जिन सुधी समीक्षकों ने हिन्दी के प्रेमाख्यानों में नदी के द्वीप के बाद ही सबसे बड़ी उपलब्धि ठहराया है, उन्होंने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि जहाँ नदी के द्वीप का तेवर बौद्धिक और उच्चवर्गीय है, वहाँ कसप का दार्शनिक ढाँचा मध्यवर्गीय यथार्थ की नींव पर खड़ा है। इसी वजह से कसप में कथानक की पंडिताऊ शैली के बावजूद एक अन्य ख्यात परवर्ती हिन्दी प्रेमाख्यान गुनाहों का देवता जैसी सरसता, भावुकता और गजब की पठनीयता भी है। पाठक को बहा ले जाने वाले उसके कथा-प्रवाह का रहस्य लेखक के अनुसार यह है कि उसने इसे ''चालीस दिन की लगातार शूटिंग में पूरा किया है।'' कसप के सन्दर्भ में सिने शब्दावली का प्रयोग सार्थक है क्योंकि न केवल इसका नायक सिनेमा से जुड़ा है बल्कि कथा-निरूपण में सिनेमावत् शैली प्रयोग की गयी है।

1910 के काशी से लेकर 1980 के हालीवुड तक की अनुगूँजों से भरा, गँवई गाँव के एक अनाथ, भावुक, साहित्य-सिनेमा अनुरागी लड़के और काशी के समृद्धशास्त्रियों की सिरचढ़ी, खिलन्दड़ दबंग लड़की के संक्षिप्त प्रेम की विस्तृत कहानी सुनानेवाला यह उपन्यास एक विचित्र-सा उदास-उदास, मीठा-मीठा-सा प्रभाव मन पर छोड़ता है। ऐसा प्रभाव जो ठीक कैसा है, यह पूछे जाने पर एक ही उत्तर मालूम होता है-कसप।

आचार्य विश्वनाथ तिवारी ने कहा है–''यह उपन्यास प्रेमकथा की कहानी नहीं, प्रेम के दर्शन और मनोविज्ञान का विश्लेषण है। ऐसे प्रेम का, जिसमें एक जिन्दगी कुछ नहीं होती जिसमें नायक-नायिका 'लुकाछिपी' के अगले दौर तक के लिए विदा लेते हैं। एक पूरे जीवन चक्र की कहानी है जिसमें वर्तमान, अतीत और भविष्य तीनों घुल-मिल गये हैं।''[5]

ट-टा प्रोफेसर–मनोहर श्याम जोशी का यह उपन्यास 1995 में प्रकाशित हुआ है। ट-टा प्रोफेसर 'षष्ठी वल्लभ पन्त' शीर्षक से 'हंस' के दिसम्बर, 1990 के अंक में प्रकाशित कहानी का कुछ परिवर्तित और संशोधित रूप है। यह कहानी अपने सीमित कलेवर में अनेक कहानियों को समाविष्ट करते हुए चलती है। कॉमिक-कामुक स्वर की इस कहानी में मानवीय विडम्बना अत्यन्त करुणा के साथ चित्रित की गयी है। वस्तुतः मृत्यु के आकस्मिक स्वर को उद्घाटित करना ही इस रचना का मूल स्वर दिखायी देता है। साथ ही अनिश्चय के प्रति सजगता का भाव भी जागृत होता है।

'ट-टा प्रोफेसर' एक कामु-कॉमिक प्रोफेसर के ट्रैजिक हो जाने की कथा है। इसमें लेखक खुद को सुन्दर, जवान और बुद्धिमान मानता है जिसकी कामुकता कभी परवान नहीं चढ़ पायी और जिस प्रोफेसर को वह सींकिया, अकड़ू एवं गँवार समझता है उसकी मूर्खता कभी उस स्तर तक हास्यास्पद न हो पायी, जिसे 'कॉमेडी' कहते हैं। लेखक की दृष्टि में सुनौली धार के सभी व्यक्ति कार्टून और हास्यास्पद नजर आते हैं–

''मुझे प्रोफेसर सैप और प्रिंसिपल सैप ही नहीं, सुनौलीधार के लगभग सभी निवासी सख्त कार्टून किस्म के प्राणी नजर आने लगे। मैं सोचने लगा कि उन सब पर हास्यास्पद कथाएँ लिखूँ और उन्हें रुटीनबैक के 'पास्चर्ज ऑफ हैवेन' को नमन करते हुए 'मूर्खों का स्वर्ग' नाम से छपवाऊँ।''[6]

परन्तु प्रोफेसर की बैवकूफी 'कॉमेडी' नहीं बन पाती। 'ट-टा प्रोफेसर' के विषय में 'छवि संग्रह' में लिखा है कि–''अपने विलक्षण लेखन के नाते जाने वाले मनोहरश्याम जोशी ने एक सामान्य प्रोफेसर को केन्द्र में रखकर रचित इस कृति में अपने कथा-कौशल का अद्भुत प्रमाण दिया है। उपन्यास के मुखर स्वरानुसार काम मनुष्य को 'कॉमुक' से अधिक 'कामिक' बनाता है और अस्तित्व को एक कॉमिक-कामुक और कॉस्मिक त्रासदी बना देता है।''[7]

स्वीकृत मानदण्डों की दृष्टि से पूरी तरह तर्कसंगत और प्रासंगिक नहीं होने के बावजूद ट-टा प्रोफेसर हिन्दी उपन्यासों में विशिष्ट दर्जा रखता है। दरअसल दास्ताने अलिफ लैला की शैली में यह ऐसी उत्तर-आधुनिक कथा है, जिसके अन्दर कई-कई कथा निर्बाध गतिमान है, सीमित कलेवर के होने के बाद भी कहानी पूरे उपन्यास का रसास्वादन कराती है। ट-टा प्रोफेसर एक पात्र की ही नहीं, एक कहानी की भी कहानी है। यह एक ऐसी कहानी है जिसकी इति एवं श्री उपन्यासकार के आदि और अन्त के साथ जुड़ा हुआ है।

यह वह उपन्यास है जो प्रेम और काम जैसे अति-संवेदनशील प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर रचा गया है। जो 'मजाक' को भी त्रासदी में रूपायित कर देता है। इसने कहीं-कहीं 'मजाक' कामुकता का स्वरूप ग्रहण करता हुआ दिखायी पड़ता है। लेकिन फिर भी इस उपन्यास में हृदय और जीवन की धड़कन लगातार बजती रहती है। इसकी कथा अनुभूति की प्रामाणिकता कल्पना, सत्य और भाषा के स्वाभाविक गतिशीलता के कारण पाठक को शुरू से अन्त तक आकृष्ट किये रहती है। मनोहर श्याम जोशी जी ने अपने इस उपन्यास में अपनी कथा कौशल का प्रभावशाली निर्देशन किया है। इस उपन्यास का स्वर है कि अपनी काम भावना के कारण मनुष्य मजाक का पात्र बन जाता है। जिससे उसका अस्तित्व एक कॉमिक-कामुक और कॉस्मिक त्रासदी बन जाता है।

हरिया हरक्यूलीज की हैरानी–मनोहर श्याम जोशी जी के इस उपन्यास का प्रकाशन 1996 में हुआ था। उन्होंने इस उपन्यास की रचना इतालवी लेखक और चिन्तक उम्बर्टो, इकोके 'द नेम ऑफ द रोज' के सादृश्य पर किया है। इस उपन्यास में उन्होंने उत्तर-आधुनिक स्वैराचार को व्यक्त करने के लिए आधुनिकता के सरोकारों को ध्वस्त किया है। सुधीश पचौरी का कथन है–''हरिया लिंग-योनिवादी बिरादरी की कहानी है। बिरादरी बिना हैरानी के जीवित नहीं रह सकती। सो जब-जब उसे हैरानी जरूर होगी, वह हरिया की कथा कहेगी, कहानी कहेगी जो जीवित रहेगी, नहीं तो मर जायेगी। समूची लोककथाएँ, जातीय कथाएँ इसी तरह बनती हैं और बनती रहेंगीं। मनोहर श्याम जोशी ने हरिया की कथा में बिरादरी को लाके, बिरादरी के 'गू' से 'गुमालिंग' बनाया। फिर बिम्ब बना गूमालिंग विचार बन गया। पाप बोध का, प्रायश्चित का विचार, बिरादरी का केन्द्रीय विचार।''[8]

जोशी जी ने इस रचना में एक ऐसे व्यक्ति को नायक बनाया है जो 'मेण्टली रिटायर्ड' या मूढ़' है। जिसके जीवन में कोई जिज्ञासा, कोई रस नहीं है। बस यह यंत्रवत् अपना कार्य करता जाता है। ऐसे मूढ़, निष्काम, सेवाभावी और निर्विकार व्यक्ति के हृदय में जिज्ञासा का प्रेवश एक ऐसी निरर्थक सी वस्तु के माध्यम से लेखक ने किया है जिसे सुनकर हम सभी को घिन आती है। परन्तु इस निरर्थक शब्द में विशिष्ट अर्थवत्ता समाहित है। यही जोशी जी की सफलता है कि वे निरर्थकता में भी अपना अर्थ खोज लेते हैं। 'गू' से उन्होंने 'गूमालिंग' को बनाया और आज के सार्वभौमिक एकरूपतावाद को प्रकट करने का प्रयास किया। अर्थात् आज विश्व का इतना विस्तार हो चुका है कि मानवीय अस्तित्व हर कहीं संभव होता जा रहा है।

''गूमालिंग'' हरिया ने कहा, ऐसा तो क्या होगा नामक किसी जगह का? मजाक कर रहा है तू भाऊ। कुछ अजीब सा ही लगता है नाम गूमालिंग। क्या वहां भी लोग रहते होंगे? ये जो गूमालिंग में रहते हैं, क्या ये भी हमारे जैसे ही हैं।''[9] इस प्रकार हरिया ने भभ्ड़ (मोहे) दिमाग ने हैरानी के अस्तित्व को पहली बार सार्वभौमिक स्वीकार किया। जोशी जी ने हरिया को हैरान होने को एक खास ढंग से नोट करने की कोशिश किया है। क्योंकि वह अपनी जिन्दगी में पहले कभी किसी बात पर भी हैरान नहीं हुआ था। उपन्यास में यहीं से द्वन्द्व दिखायी देता है। हरिया की स्थिति स्थितप्रज्ञ जैसी है। वह दिल्ली जैसे बड़े शहरों में रहते हुए भी किसी बात से कभी आश्चर्यचकित नहीं हुआ। जब एक दिन वह एक बेकार-सी बात पर हैरान होता है तो उसकी हैरानी बिरादरी या समाज के लोगों को हैरान होना स्वाभाविक दिखायी देता है।

हमजाद–पूँजीवादी उपभोक्ता संस्कृति से उत्पन्न विभत्स मानसिकता में लिखा गया जोशी जी का यह उपन्यास 1998 में प्रकाशित हुआ। 'हमजाद' का अर्थ है 'साथ ही पैदा हुआ' और यह उस पिशाच के लिए प्रयुक्त होता है जो एक विश्वास-परम्परा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के साथ ही उससे सम्बद्ध हो जाता है और जीवन-पर्यन्त पाप और कलंक में धकेलता रहता है। जोशी जी ने हमजाद उपन्यास में इसी की खोजबीन की है। मनोहर श्याम जोशी ने 'हमजाद' उपन्यास में भी हमजाद के अर्थ के सम्बन्ध में तिलक के माध्यम से बताने का प्रयास किया है।

''हमजाद बदी के उस जिन्न का नाम है जो हर इंसान अपने साथ लेकर पैदा होता है और जो बेताल की तरह ताजिन्दगी उस पर सवार रहता है।''[10] लेकिन हमजाद यदि शैतान हो सकता है तो अच्छा इंसान भी हो सकता है। इस सम्बन्ध में रोहिणी अग्रवाल का कथन है कि–''हमजाद सिर्फ शैतान या बुराई ही नहीं होती हमजाद फरिश्ता या अच्छाई भी होती है। यह दीगर बात है कि बेचारी कन्याओं की तरह भ्रूणावस्था या सौरी में उसका भी गला टीप दिया जाता है।''[11]

हमजाद एक ऐसे शब्द का आरेखन है जो एक व्यक्ति का अपनी प्रतिछाया से लगातार चलता रहता है। उस प्रक्रिया को कथा लगातार जाँचती रहती है जिसके आश्रित मानव खुद से अलगाव की दशा में हटता जाता है और अपनी स्वतन्त्रता को अपने नरकुण्ड में झलकती हुई परछाई के हवाले करता जाता है।

यह कहानी तखतराम अहमदपुरी की शुरू से अन्त तक एक झूठी कहानी है जिसमें लेखक स्वयं के साथ धोखा करता है, एक ऐसे झूठ का पहाड़ बनाते हुए जिसको खोदती हुई एक अदद नकली चुहिया अपने आप को उसमें छिपा खजाना साबित करने की प्रयास में लगी हुई है। एक बार वह चुहिया टी0के0 की घिनौनी तस्वीर पूरी होते होते ही फ्रेम के बाहर आ जाती है और कैमरा टी.के. की घिनौनी मौत का वीडियो तैयार करते हुए तखतराम की तरफ घुमा देती है। गुमनाम, गरीब और नाकामयाब शहर तखतराम धरेजा, जिन्दगी से लेकर मौत तक एक तस्वीर है, मशहूर अमीर और कामयाब टी.के. नारकियानी का, जिसकी बेहया कारगुजारियों में वह अपने लिजलिजेपन को उलटता रहता है।

वस्तुतः हमजाद पूँजीवाद में निहित अमानवीयता और मानववाद में निहित शैतान के सहयोग से पैदा हुई उपभोक्तावादी नरक से भयभीत मनःस्थिति में लिखी हुई रचना है जो अपने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी कथा संसार में एक नई सड़क बनाता है।

क्याप–यह उपन्यास सन् 2000 के बहुवचन त्रैमासिक में लम्बी कहानी के रूप में प्रकाशित हुआ था। इसका प्रकाशन 'हंस' पत्रिका में हुआ था। क्याप' का अर्थ है–'कुछ अजीब, अनगढ़, अनेदखा-सा और अप्रत्याशित' क्याप के द्वारा इन्हीं अजीब स्थितियों के यथार्थ को उपन्यासकार ने प्रकट किया है। कृष्णदत्त पालीवाल का कथन है कि–''क्याप आधुनिक उत्तर-आधुनिक भारत की राजनीति का नरक सामने लाना वाला उपन्यास है। सांस्कृतिक पतन और छोटेपन, टुच्चेपन, लुच्चेपन, का अनुभव-सिद्ध, अनुभूतिबद्ध, दिलचस्प इतिहास। हर जगह कबीर से आगे का व्यंग्य।''[12]

विश्व के परिदृश्य पर आज जो संकट के बादल छाये हुए हैं उनके लिए क्याप' शब्द की सार्थकता बिल्कुल सही है। जो अराजकता आज धार्मिक उन्माद के नाम पर व्याप्त हो गयी है उसे ऐसी ही अप्रत्याशित स्थिति के रूप में देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप चाहे आज का ज्वलन्त कश्मीर का मुद्दा हो या अयोध्या मामला या गुजरात का अमानवीय दंगा तथा वैश्विक स्तर पर घटित ग्यारह सितम्बर की घटना इन सबके मूल में उन्मादी शक्तियों का मिलाप दिखायी देता है जो जनभावनाओं का फायदा उठाकर अपना भलाई साध्य करना चाहती है। यह सवाल कोई आज से नहीं है बल्कि इसका अवलोकन तो बहुत सालों पहले आधुनिकता के नाम पर सरमायेदारों द्वारा कर दिया गया था। क्याप के विषय में पुरुषोत्तम अग्रवाल ने लिखा है–''क्याप-मायने कुछ अजीब, अनगढ़, अनदेखा-सा और अप्रत्याशित। जोशी जी के विलक्षण गद्य में कही गयी यह 'फसक' (गप) उस अनदेखे को अप्रत्याशित ढंग से दिखाती है, जिसे देखते रहने के आदी बन गये हम जिसका मतलब पूछना और बूझना भूल चले हैं.....अपने समाज की आधी अधूरी आधुनिकता और बौद्धिकों की अधकचरी उत्तर-आधुनिकता से जानलेवा ढंग से टकराती प्रेम कथा की यह क्याप' बदलाव में सपनों की दारुण परिणत को कुछ ऐसे ढंग से पाठक तर पहुँचाती है कि पढ़ते-पढ़ते मुस्कुराते रहने वाले पाठक एकाएक खुद से पूछ बैठे कि 'अरे! ये पलकें क्यों भीग गईं।'

यथार्थ चित्रण के नाम पर सपाटे से सपाटबयानी और फामूर्लेबाजी करने वाले उपन्यासों, कहानियों से भरे इस वक्त में, कुछ लोगों को शायद लगे कि 'मैं' और उत्तरा के प्रेम की यह कहानी, और कुछ नहीं बस, 'खलल है दिमाग का', लेकिन प्रवचन या रिपोर्ट की बजाय सर्जनात्मक स्वर सुनने को उत्सुक पाठक इस अद्‌भुत 'फसक' में अपने समय की डरावनी सच्चाइयों से ऐन अपने प्रेमानुभव में एकतान होते सुन सकता है। बेहद आत्मीय और प्रामाणिक ढंग से। गहरे आत्ममंथन, सघन समग्रता बोध और अपूर्व बतरस से भरपूर 'क्याप' पर हिन्दी समाज निश्चय ही गर्व कर सकता है।''[13]

कौन हूँ मैं–इस उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी ने भवाल संन्यासी की ऐतिहासिक कथा कही है। जिसमें सत्य भ्रम बन गया है और इतिहास गल्प हो गया है। यह गल्पनुमा इतिहास और इतिहासनुमा गल्प की कहानी जयदेवपुर (ढाका) के भवाल राजपरिवार से सम्बन्धित है। यह उपन्यास 19 उपशीर्षकों में विभाजित है जिसमें ग्यारह में संन्यासी, पाँच में विभावती तथा दो उपशीर्षकों–'श्राप-मुनि एवं 'भवाल संन्यासी' में ज्योतिर्मयी के आत्मकथन के रूप में कहानी का विकास हुआ है। अन्तिम उपशीर्षक जय-पराजय में विभा और संन्यासी दोनों के आत्मकथन हैं। यह उपन्यास प्रश्न को प्रश्नांकित करता है और पाठकी विभिन्न संभावनाओं को उपस्थित करता है। इस उपन्यास में मरे हुए व्यक्ति का बारह साल बाद अचानक उपस्थित होना और राजकुमार रोमेन्द्र के रूप में परिचय देना स्वयं एक मिथकीय सृष्टि प्रतीत होता है।

उत्तराधिकारिणी–सन् 1976 में प्रकाशित मनोहर श्याम जोशी का उत्तराधिकारिणी उपन्यास हेनरी जेम्स के 'वाशिंगटन स्क्वेयर' का हिन्दी रूपान्तर है। यह नाटकीय तत्वों से भरपूर लघु आकार का उपन्यास है। उपन्यास में पात्रों की भीड़ के स्थान पर तीन प्रमुख पात्र हैं। रईस बाप, बैकूफ बेटी और फक्कड़ प्रेमी जो तीनों ही सहानुभूति के पात्र बनते हैं। अपने लेखन में लगातार प्रयोगधर्मी रहे मनोहर श्याम जोशी ने पुनर्रचना के रूप में एक नई विधा का हिन्दी में सूत्रपात किया था। उस अर्थ में उत्तराधिकारिणी का अपना खास महत्व है जो बात इसमें विशेष रूप से ध्यान रखने वाली है वह यह है कि बावजूद इसके कि इसे पुनर्रचना कहा गया है यह पूर्ण रूप से मौलिक उपन्यास है। जोशी जी ने 'वाशिंगटन स्क्वायर' की पुनर्रचना कहकर 19वीं शताब्दी के महान् लेखक हेनरी जेम्स के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। यह उपन्यास जोशी जी का उनके समस्त लेखन में अपना एक अलग स्थायित्व रखता है। इसमें उनकी वह शैली नहीं है जिसकी वजह से उनको हिन्दी में उत्तर-आधुनिक उपन्यास के जनक के रूप में देखा गया–अनेकान्तता या किस्सों के भीतर से निकलते हुए किस्से, भाषा का जबरदस्त खेल। लेकिन एक बात है इस उपन्यास में रोचकता भरपूर है। भाषा का वह बाँकपन भी है जो बाद में उनकी सिग्नेचर शैली मानी गयी।

कपीस जी–कपीस जी एक बड़े कैनवास पर उकेरी जाने वाली कथाकृति के रूप में प्रस्तावित रचना है, जिसकी पूर्ण बुनावट मनोहर श्याम जोशी (1933-2006) की आकस्मिक मृत्यु के कारण अधुरी रह गई, पर हिन्दी साहित्य में कथ्य और कथन-भंगिमा के स्तर पर अपनी पूरी शक्ति के साथ इस रूप में भी यह पुस्तक अपनी अलग पहचान और प्रमाण उपस्थित करती

है। कथानक कपीश जी की जन्मस्थली रंग कंगालों का कस्बा है, जिसमें इतिहास पुराण से उपजता है और भूगोल, साहित्य से। यहाँ धर्म पर खड़े हुए अर्थ, काम पर टिके हुए धर्म की भूलभुलैया में ही मोक्ष की लुकाछिपी मचलती है। यहाँ तपीश जी को तिरस्कार-मिश्रित दया में जाँचते रंगकंगाल किस प्रकार अमरीकी यूरोप के उस भक्त-मंडल में बदल जाते हैं, कपीश जी की जिनके सम्मान और श्रद्धा की ज्योति से प्रज्ज्वलित हो उठती है, यह बड़ी तीक्ष्णता से स्पष्ट हुई है। उनकी सार्वजनिक प्रस्तुति में कथानायक की व्यक्तिगत जीवनगाथा शुरू से अन्त तक भक्ति की ऐसी सरल रेखा है, जो कलियुग की समस्त जटिलताओं के आर-पार उसी ऋजुता से खींची हुई है, जिससे वह हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में खींची गयी थी, और जिसकी नींव उतनी ही गहरी है, जितनी वह रामायण और भागवत में डाली गयी थी।

वस्तुतः मनोहर श्याम जोशी जी उत्तर-आधुनिक के सबसे समर्थ और सफल उपन्यासकार हैं। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व अपने आप में विशिष्ट है। उनके उपन्यासों में एक गहरी स्थानीयता मौजूद है। उनके उपन्यासों का शिल्प-सौन्दर्य अपने आप में विशिष्ट है। उनका हर उपन्यास भले ही एक खिलंदड़ अन्दाज में लिखा गया हो लेकिन अन्त में वे एक गहरी उदासी छोड़ जाते हैं। उत्तर-आधुनिक शिल्पगत विशेषताओं के कारण उनके उपन्यासों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. जोशी; मनोहर श्याम (जून 2006), आजकल, कुछ यादें, कुछ बातें–माज्दा असद, पृ. 15
2. डॉ. सक्सेना; वीरेन्द्र (जुलाई-अगस्त 2006), भाषा, मेरे साहित्यिक गुरु–मनोहर श्याम जोशी, पृ. 14
3. जोशी; मनोहर श्याम, कुरु कुरु स्वाहा, पृ0 80
4. डॉ0 कृष्ण चन्द गुप्त, (अक्टूबर 1984) प्रकट, कुरु कुरु स्वाहा... : मनोहर श्याम जोशी, पृ. 18
5. छवि संग्रह 7 : महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, पृ. 9
6. जोशी; मनोहर श्याम, ट-टा प्रोफेसरि, पृ. 21
7. जोशी; मनोहर श्याम, छवि संग्रह 7, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, पृ. 10
8. सुधीश पचौरी, उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श पृ. 143
9. जोशी; मनोहर श्याम, हरिया हरक्यूलीज की हैरानी, पृ. 25.
10. जोशी; मनोहर श्याम, हमजाद पृ. 48
11. अग्रवाल; रोहिणी, इतिवृत्त की संरचना और स्वरूप, पृ. 197
12. पालीवाल; कृष्णदत्त (फरवरी 2007), संवेद–किशन कालजयी, आधुनिक राजनीति का महाभारत, पृ. 47
13. जोशी; मनोहर श्याम, छवि संग्रह 7, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, पृ. 9

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 38-41
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में चित्रित नारी-समस्यायें

*डॉ. सरोज गोस्वामी**

*प्रियंवदा शर्मा***

सृष्टि में श्वासधारी जीवों में मनुष्य की उपयोगिता निर्विवाद है। मनुष्यों का समूह ही समाज और समाज का संगठन तैयार करता है जिसकी धुरी स्त्री और पुरुष है। स्त्री और पुरुष का परस्पर पूरक सम्बन्ध है। जिस तरह नदी और पानी, पेड़ और फल उसी तरह स्त्री और पुरुष। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना अधूरी है। निश्चित रूप से स्त्री-पुरुष में एक दूसरे के प्रति विश्वास, प्रेम की भावना ही परिवार की संरचना में और परिवार का विस्तार समाज की संरचना में महत्वपूर्ण योगदान देता है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक होने के कारण विविध प्रकार की समस्याओं से संघर्ष और समाधानों की पूर्ति में सहयोगी बनते हैं। दोनों में से किसी एक की सत्ता का हनन होना सामाजिक संरचना को क्षति पहुँचाना है। चाहे महिलाएँ पुरुष की सत्ता के अधीन रही हों अथवा कंधे से कंधा मिलाकर गतिमान। गतिमान स्थिति में स्त्री और पुरुष ने सदैव विकास के प्रतिमान रचे हैं।

सृष्टि के प्रारंभ से पुरुष और स्त्री दोनों ने मिलकर समाज के क्षेत्र में, परिवार के क्षेत्र, शिक्षा के क्षेत्र में, धर्म के क्षेत्र में, संस्कृति के क्षेत्र में उन्नयन की भूमिकाएँ रची हैं। प्रारम्भ से ही प्रकृति स्वभाव के कारण स्त्री, पुरुष का सम्मान करती आयी है। वह चाहे पुरुष द्वारा अर्धांगिनी के रूप में हो, चाहे माता, बेटी आदि किसी रूप में। जब से पुरुष अहम् सत्ता का वह शिकार हुई है तब से निरन्तर उसके साथ शोषण के पर्याय बढ़ते गये हैं। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि पुरुष को जन्म देने वाली स्त्री, उसी पुरुष द्वारा रक्षित, शोषित, प्रताड़ित हुई। संत्रास, तनाव प्राण ग्रहण के रूप में फलित हुआ है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री चिन्तन पर सर्वाधिक विमर्श हुआ है। आदिकाल से लेकर आज तक स्त्री विमर्श के रूप में चिन्तन सामने आया है कि पुरुष अपनी अहम सत्ता के कारण स्त्री को समानता और स्वतंत्रता नहीं देना चाहता। बराबरी की बात वह कितनी भी क्यों न करता रहे। सामन्ती व्यवस्था में वह वस्तु है–उपभोग की, संतान इच्छा पूर्ति की। आधुनिक युग में नारी चिन्तन पर राजेन्द्र यादव जी ने स्त्री के प्रति जो चिन्तन व्यक्त किया है वह न तो मैथिली शरण गुप्त के यशोधरा की तरह है और न ही प्रसाद जी के कामायनी के श्रद्धा की तरह। वरन् वह राजेन्द्र जी की निगाह में पंत जी के विचार मिलते हैं। राजेन्द्र यादव जी ने स्त्रीवादी धारणा को व्यक्त करने के लिए अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य तथा आदमी की निगाह में औरत जैसी कृतियाँ पाठकों दी। उनके रचना संसार में स्त्री को दासी से लेकर मातृ शक्ति तक मध्यवर्गीय परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया गया है। चाहे सारा आकाश हो या उखड़े हुए लोग। यहाँ उनकी स्त्री मध्यवर्गीय चेतना को विविध रूपों में जीती है और संघर्षरत स्त्री का चित्रण किया है जो युग की सच्चाई के साथ है।[1] हिन्दी साहित्य में 1960 के बाद लिखे गये उपन्यास साहित्य को साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास कहा जाता है। इसे कुछ आलोचक आधुनिकता भाव बोध वाले उपन्यास भी कहते हैं। शिवकुमार शर्मा अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं–"औद्योगीकरण, बौद्धिकता का अतिरेक, यांत्रिकीकरण तथा अस्तित्वबोधी पाश्चात्य विचारधाराओं के फलस्वरूप आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई उसका प्रतिबिम्ब साहित्य की अन्य विधाओं के समान हिन्दी उपन्यास पर भी पड़ा। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों की इस आधुनिक धारा में औद्योगीकरण, अतिबौद्धिकता, यांत्रिकता, अस्तित्वबोध की भावना, बदलते-बिखरते परिवेश, भ्रष्ट राजनैतिक व्यवस्था, महानगरीय जीवन बोध के कारण मनुष्य के अन्तरमन पर छाया

* *प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)*

** *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)*

हुआ अकेलापन, अजनबीपन, विशृंखलता, कुण्ठाग्रस्त जीवन, संत्रास एवं असुरक्षा की भावना और पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता एवं विचारधारा के फलस्वरूप उत्तर आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई है, इसी का प्रतिबिम्ब समकालीन आधुनिक भावबोध वाले उपन्यासों पर पड़ा हुआ स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के अनुसार–'समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनमें ठीक उपन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं।' कल हो या आज, कल चाहे कोई-सा भी हो, उपन्यास साहित्य गद्य की ऐसी अनुपम विधा रही है जिसमें मानव जीवन के हर एक पहलू को आंकने का प्रयास किया गया है। इसी कारण से उपन्यासों में इतनी विविधता दिखाई पड़ती है, जितनी कि मानव जीवन में। अतः स्पष्ट है कि उपन्यास साहित्य का सम्बन्ध मानव जीवन और उसके यथार्थ परिवेश से है। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों पर एक समग्र दृष्टिकोण डालने पर हमें यह दिखलाई देता है कि इस काल में उपन्यास विधा कई अनेक रूपों, प्रकारों एवं विशेषताओं में ढली हुई दिखाई पड़ती है।

सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, आँचलिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, पौराणिक उपन्यास या मिथकीय उपन्यास, वैज्ञानिक उपन्यास, विभिन्न वैचारिक धारा प्रवाह पर आधारित उपन्यास। जिनमें स्त्री विमर्श का अनुशीलन कर सकते हैं। भारत में सामाजिक रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, रीति-रिवाज तथा धर्म के नाम पर समाज में अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थीं। विशेषकर स्त्री के सम्बन्ध में अनेक प्राचीन अमानवीय रूढ़ियाँ जैसे सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहुपत्नी विवाह, वेश्या प्रथा, देवदासी प्रथा आदि। आधुनिक काल में खासकर अंग्रेजों का सम्पर्क बढ़ाने पर उन रूढ़ियों का विरोध होने लगा। अंग्रेजों के संपर्क ने भारतीय समाज के शिक्षित वर्ग की चेतना को विकसित एवं प्रभावित किया। अब स्त्री के सम्बन्ध में नये ढंग से विचार करते हुए उन्हें भी पुरुषों के समान ही महत्व एवं बराबरी का दर्जा देने की बात सामने आयी। यही था शोषण के विरुद्ध चेतना का जागरण। उन्हें समाज की गरीबी, शोषण, दासता एवं अज्ञानता के विरुद्ध लड़ाई लड़नी पड़ी। भारतीय नारी जो सदियों से पुरुषों की गुलाम रही, प्रायः प्रत्येक सुधार का आधार बनी। भारतीय नारी का यह मुक्ति संघर्ष 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही आरम्भ हो गया था। उसका सर्वाधिक प्रभाव उपन्यास लेखन पर पड़ा। अनेक उपन्यासकारों ने स्त्री एवं उनकी समस्याओं को केन्द्र में रखकर अनेक उपन्यासों की रचना की।

उपन्यासकार राजेन्द्र यादव नई पीढ़ी के उपन्यासकार हैं। यादव जी ने अपने उपन्यासों में नारी विषयक अनेक समस्याओं को उठाया है जिसकी नारी के मानसिक सामाजिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। 'सारा आकाश' की प्रभा व मुन्नी शोषित-उत्पीड़ित है। प्रभा ने दसवीं तक शिक्षा प्राप्त की है। जब वह पढ़ती थी तो उसके मन में बड़े-बड़े सपने थे, लेकिन जब शादी के बाद ससुराल में कठोर यथार्थ से सामना हआ तो उसके सारे स्वप्न टूटते चले गये। प्रभा का शिक्षित होना उसके लिए समस्या बन जाता है। उसकी पढ़ाई को लेकर ताने दिये जाते हैं। यही नहीं एक अवसर तो ऐसा आता है कि प्रभा द्वारा भूलवश मिट्टी के गणेश से बर्तन साफ कर दिये जाते हैं तो सारे परिवार में उसके प्रति क्रोध उबल पड़ता है। समर प्रभा को जोर से थप्पड़ मारता है तथा उसे गालियाँ देता है। प्रभा सब कुछ विवशता से सहन कर लेती है। जिसके साथ शादी हुई है, वह खुद उससे नहीं बोलता। वह कहता है कि 'मुझे उसे इतना महत्व देने की जरूरत ही क्या है? घर में बहुत से कुत्ते-बिल्ली हैं, समझ लूँ कि एक वह भी है।'[2] नारी जो ससुराल के प्रति-प्रेम से प्रसन्न व उल्लसित रहती है, पति द्वारा दुत्कारने पर भी उसका ध्यान रखती है। यह नारी स्वभाव की अच्छाई ही है कि पति द्वारा निरन्तर उपेक्षित किये जाने पर भी वह संयम व धैर्य से पारिवारिक कार्य में लगी रहती है और पति इसका अनुचित लाभ उठाकर उस पर अत्याचार करता है।

शिक्षित युवती पर्दा प्रथा का विरोध करती है लेकिन मध्यवर्गीय परिवारों में पर्दा न करने पर बहू को उल्टा सीधा कहा जाता है। प्रभा पर कटाक्ष करती हुई उसकी अनपढ़ जेठानी कहती है–"कोई आए, कोई जाए, न घूंघट न पल्ला बस, किताब ले आयी है अपने घर से, सो उसे ही पढ़ती रहती है और तो कुछ लायी नहीं है। जो है सो तो है ही, पढ़ाई का दिखावा बहुत है।'[3] झूठी पारिवारिक मर्यादा का सहारा लेकर पर्दा न करने पर नवविवाहित को अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। इस समस्या का समाधान तभी संभव है जब लड़कियों की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाएगा। उन्हें अधिक से अधिक पढ़ने को प्रोत्साहित किया जाए। तब वह दिन दूर नहीं अब यह समस्या समाप्त हो जाएगी।

प्रभा व मुन्नी सर्दियों में छत पर चली जाती हैं तो मुन्नी के पिता आग बबूला हो उठते हैं। वे अपनी बहू को इतनी भी छूट देने को तैयार नहीं हैं कि वह बाहर छत पर धूप में बैठ सके। घर वाले प्रभा व मुन्नी को छत पर बैठना अपनी मध्यवर्गीय सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध समझते हैं। 'अरे इससे पर्दा नहीं करती तो मत करो छाती पर पत्थर रखकर उसे भी सह लेंगे, लेकिन बेशर्मी की ऐसी हद तो मत करो। ऊपर जाकर सिर धोते समय तुम्हें दिखा नहीं कि चारों तरफ लोग क्या कहेंगे?[4] जहाँ हमारा समाज

शिक्षित होता जा रहा है वहाँ भी नारी के प्रति अपराधों में कोई कमी नहीं हुई है। नारी आज भी बर्बरतापूर्ण सामाजिक व्यवहार को सहन करते हुए पुरुष के साथ चल रही है।

'शह और मात' उपन्यास में राजकुमारी अपर्णा का पति बहुत ही क्रूर स्वभाव का पति है। नपुंसक होते हुए भी वह अनेक शादियाँ करता है ताकि कोई उसकी नपुंसकता के बारे में प्रश्न न कर सके। अपर्णा पति प्रेम न मिलने के कारण तथा लगातार उत्पीड़न से सूखकर कांटा हुई जाती है। उदय कहता है–'मुझे लेनिन का यह कहना याद आ रहा है कि औरत की हालत सभी जगह एक सी है, चाहे वह राजकुमारी हो या नौकरानी वह हमेशा ही पुरुष के तेवर देखकर चलती है।' उसकी इज्जत उसके चाहने न चाहने पर है। उसकी प्रतिष्ठा उसकी शरीर शुद्ध की परम्परागत मान्यता पर है।[5]

रंजना (एक इंच मुस्कान) अमर से प्रेम करती है। उसका प्रेम इतना सच्चा और पवित्र है कि वह घरवालों द्वारा शादी के बारे में पूछने पर स्पष्ट कर कह देती है–'वह चाहती है कि उसके विवाह के मामले में घर वाले हस्तक्षेप करना छोड़ दे। वह विवाह अपनी इच्छा से करेगी और जब करेगी तो घरवालों को सूचना दे देगी।'[6] विवाह हेतु परिजनों की चिंता पर रंजना कोई ध्यान नहीं देती। लेकिन जब अमर द्वारा ठुकरा दी जाती है तब उसकी आँखें खुलती हैं। युवती वहाँ स्वतंत्रता चाहती है, वहीं घर वाले लड़की की शादी अपनी इच्छाओं के अनुसार करना चाहते हैं। ऐसी दशा में दोनों पक्ष अपनी दिशाओं में सुदृढ़ लेकिन विवश रहते हैं। इसी उपन्यास में अमला कहती है–'परित्यक्ता होना आखिर कोई ऐसी अनहोनी बात तो नहीं है। हमारे देश में तो जाने कितने लोग अपनी पत्नियों को छोड़ देते हैं।'[7] इस उपन्यास में परित्यकतता नारी की समस्या को इस तरह से प्रस्तुत किया गया है जिससे लगता है अमला बंधनहीन होकर सब कुछ करना चाहती है। स्वतंत्रता चाहती है, उन्मुक्तता चाहती है। नारी का जीवन पुरुष के अभाव में निराशामय हो जाता है। नारी जीवन की इस समय को मनोविज्ञान के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। परित्यक्ता तथा वह युवती जिसकी शादी न हुई हो, उसके मन में किस तरह के भाव उठते हैं इन भावों को सहजता से दिखाया गया है जो विवाहित है वह पति या परिवार के अत्याचार से पीड़ित है तथा इनसे मुक्ति चाहती है तथा दूसरी अविवाहित युवती विवाहित होकर पति का प्यार चाहती है यह मनोवैज्ञानिक पहलू है जो जीवन के अभावग्रस्त पक्ष की चाहत में मग्न रहता है।

'उखड़े हुए लोग' में नारी विषयक समस्याओं के बारे में चित्रण हुआ है। पद्मा मायादेवी की पुत्री है। मायादेवी उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देती। पद्मा अपने आपको अकेला अनुभव करती है। उसे यहाँ देशबन्धु के पास रहते हुए मानसिक पीड़ा हो रही है। वह कहती है कि 'मेरी मानसिक स्थिति तो आप सोच ही नहीं सकते शरद जी। खैर यह तो अपनी-अपनी किस्मत और तकदीर का खेल है और क्या कहूँ...दिन रात मन में यही आवाज गूंजती है, कहीं भाग चल, कहीं चल।'[8] समाज में पदमा जैसी युवतियों की कमी नहीं है। जिन्हें परिवार में तथा बाहर घोर मानसिक पीड़ा सहन करनी पड़ती है।

सार्वजनिक स्थानों पर लड़कियों के साथ छेड़छाड़ होना सामान्य विषय बन गया है। बसों में यात्रा के दौरान उनके साथ अनुचित हरकतें होती हैं। 'आधी खाली सीट पर जब कभी कोई पुरुष आकर बैठ जाता है, तो ऐसा क्रोध आता है मानो किसी सुंदर लड़की के बदले वह आ बैठा हो। बस में कोई लड़की चढ़ी और आधी सीट घेरे सज्जन निहायत आध्यात्मिक तटस्थता की मुद्रा में रोम-रोम से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'[9] इसी तरह का वर्णन 'अनदेखे अनजान पुल' में प्रस्तुत हुआ है। निन्नी के मन में दिल्ली का भीड़ भरा वातावरण था बसों में सुनते हैं, वहाँ स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। कुन्ती ने अपना अनुभव सुनाया था, कैसे दिल्ली की बस में लोग शैतानी करते हैं।...और उस झनझनाहट का आनन्द उसने कल्पना में अनेक बार लिया था।'[10] इसी तरह की अनेक घटनाएँ हैं जो सार्वजनिक स्थानों पर नित्य घटती हैं।

समाज में फैशन के नाम पर बहुत जोर दिया जाता है। जैसे ही किसी फिल्म में नायक-नायिका को कोई ड्रेस पहने दिखाया गया, वैसे ही कपड़े युवक-युवतियाँ पहनने लग जाते हैं। क्या अधिक से अधिक शरीर को खुला रखना ही आधुनिकता है। महानगरों में लड़कियों में इस विषय में होड़ सी लगी है कि कौन जयादा अंग प्रदर्शन करेगी और इससे युवक के कच्चे मन पर सेक्स का कुप्रभाव पड़ता है जिसकी परिणति बलात्कार के रूप में भी हो सकती है। उखड़े हुए लोग में औरत की चाह प्रस्तुत करते हुए रावत कहता है–'वह अगर औरत की तरफ नहीं देखता तो औरत समझती है–हिष्ट, हिजड़ा है–और अगर देखता है तो गुण्डा है।''[11]

इस प्रकार राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में नारी जीवन में साधारणतः विद्यमान समस्याओं का आंकलन किया गया है। वैसे तो स्त्री चाहे तो बहुत कुछ कर सकती है लेकिन जब वह परिवार के दायित्व में बँध जाती है तो जैसे किसी अज्ञात भय के अधीन हो जाती है और अपना कार्य आज्ञा के रूप में करती है। बहुत कम स्त्रियाँ ही इस दायरे को तोड़ पायी हैं जिन्होंने तोड़ा है उन पर समाज विभिन्न आरोप लगाकर उन्हें हीन घोषित करने में देर नहीं लगाता। उसकी स्वतंत्रता का मूल्य पुरुष की नजरों में नहीं अपितु नारी की अपनी तथा नारी समाज की नजरों में होना चाहिए। यही मूल्य नवचेतना है।

संदर्भ-सूची

1. राजेन्द्र यादव, कथा साहित्य के विविध आयाम, डॉ. माधवी श्रीधर भंडारी, पृ. 219
2. राजेन्द्र यादव, सारा आकाश, पृ. 56
3. वही; पृ. 23
4. वही; पृ. 64
5. राजेन्द्र यादव, शह और मात, पृ. 114
6. राजेन्द्र यादव एवं मन्नु भण्डारी, एक इंच मुस्कान, पृ. 56
7. राजेन्द्र यादव एवं मन्नु भण्डारी, एक इंच मुस्कान, पृ. 20
8. राजेन्द्र यादव, उखड़े हुए लोग, पृ. 331
9. राजेन्द्र यादव एवं मन्नु भण्डारी, एक इंच मुस्कान, पृ. 103
10. राजेन्द्र यादव, अनदेखे अनजान पुल, पृ. 109
11. राजेन्द्र यादव, उखड़े हुए लोग, पृ. 375

संदर्भ-ग्रन्थ

1. यादव, राजेन्द्र (2008), सारा आकाश, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली।
2. यादव, राजेन्द्र (2008), शह और मात, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 7
3. यादव, राजेन्द्र (2007), उखड़े हुये लोग, राधाकृष्णन प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 10
4. यादव, राजेन्द्र (2009), अनदेखे अनजान पुल, राधाकृष्णन प्रकाशन नई दिल्ली।
5. भण्डारी, डॉ. माधवी श्रीधर (2007), राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य में विविध आयाम, अलका प्रकाशन कानपुर।
6. डॉ. सतीश (3013), डॉ. राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में स्त्री विमर्श, चन्द्रलोंक प्रकाशन, कानपुर।
7. तिवारी, डॉ. प्रेमलता (2010), कथाकार राजेन्द्र यादव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अनुशीलन, लोकहित प्रकाशन शाहदरा दिल्ली।

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 42-45
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

आचार्य रसलीन की रचनाधर्मिता

*डॉ. आलमगीर अली अहमद**

रीतिकाल के आचार्य संस्कृत ग्रन्थों से सिद्धान्तों का अनुकरण कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में किसी आचार्य के साथ रचना का विशेषण प्रयोग करना अटपटा-सा लगता है। यहाँ रसलीन के साथ रचना विषयक विशेषण समीचीन है या नहीं। इसके दो आधारों पर विश्लेषित किया जा सकता है–पहल रीतिकाल के रसलीन केवल अकेले आचार्य हैं, जिनके रचना विषयक विशेषण लगाया जा सकता है और किसी के साथ नहीं।

इसका उत्तर यह है कि रसलीन ही नहीं और आचार्य भी हैं, जिनके विवेचन में रचनात्मकता है वे हैं दास और देव, कमोबेश और भी आचार्यों में यह गुण विद्यमान है। रसलीन की तुलना दास से सम्पूर्ण रूप में नहीं की जा सकती। दास का क्षेत्र बड़ा है और रसलीन का छोटा किन्तु रसलीन का विवेचन जितने ज्ञान क्षेत्र का स्पर्श करता है उसमें वे दास की टक्कर लेते हैं। यह बात उनकी दी गई काव्य-शास्त्रीय परिभाषाओं और उदाहरणों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

दूसरा प्रश्न है कि आचार्य कवि जो परिभाषा और उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, उनमें रचनाशीलता कहाँ देखनी चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर है वैसे रचनाशीलता ऐसा शब्द है जो किसी कार्य-व्यापार में निहित रहता है। संभवतः जब रचनाकार की दृष्टि किसी क्रिया या कार्य का अनुवर्तन करती है तो उसकी रचनात्मकता कार्य में झलक जाती है।

अरस्तू इसे 'इमिटेशन' कहता है[1] और इसका प्रयोग ट्रैजेडी की परिभाषा में करता है। इमिटेशन का अर्थ कॉपी करना नहीं है। यह एक रचनात्मक क्रिया है। कार्य व्यापार में निरत मनुष्य अनुकरण के विषय हैं (Objects of Imitation are men in action) यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है जो कुछ भी मानसिक जीवन को व्यक्त करता है, वह कार्य-व्यापार कहलाता है। इस विचार में आचार्यों की कृतियों का विमर्श कार्य व्यापार होगा और रचनात्मक के अवसर बनते हैं। किसी भी आचार्य के सामने जो किसी पूर्व आचार्य का कार्य है, उसको रूपान्तरित करने के कार्य में रचनात्मकता का आना स्वाभाविक है, भले ही उच्च कोटि की न हो। रसलीन रस सिद्धान्त की जो विवेचना करते हैं, उस विवेचना के प्रकाश में उनकी रचनात्मकता लक्ष्य की जा सकती है। इस विवेचना के दो भाग हैं–परम्परा का परिरक्षण और विषय का विशदन।

परम्परा का परिरक्षण–रीति के कवि आचार्य संस्कृति के काव्यशास्त्रीय परम्परा से सिद्धान्त ग्रहण कर हिन्दी में उसका निरूपण करना चाहते थे। उनका यह प्रयास संस्कृति परिरक्षण का प्रयास था। सारे रीतिकालीन आचार्य ऐसा नहीं कर सके। यद्यपि उनके इस प्रयास में भारतीयता के दर्शन होते हैं, फिर भी भिखारीदास, केशवदास, देव ऐसे आचार्य हैं, जिनका विशेष महत्व है, इनके बाद सर्वरस निरूपक कवि रसलीन ही हैं, जो विशेष महत्वपूर्ण हैं। रसलीन रस विवेचन के पहले भाव विवेचन करते हैं और इसका कारण भी प्रस्तुत करते हैं[2]–

भाव हिं ते रस होत है समुझि लेहु मन माहि।
याते पहिले भाव कवि वरनत हैं ठहराहिं।।

इतना ही नहीं वे भाव की विशेषता का भी निरूपण सहज भाषा में करते हैं[3]–

जो रस के अनुकूल ह्वै बदलै सहज सुभाव।
बिन बस ताके भाव कहि भाषत हैं कवि राय।।

भाव प्रकरण के पश्चात् वे रस प्रकरण में रस का विवेचन करते हैं। इस विवेचन में उनके चयन के आधार की विशिष्टता उल्लेखनीय है। भरतमुनि रस सिद्धान्त के प्रथम आचार्य हैं, जो रस विषयक विवेचना कर रस के महत्व को स्थापित करते हैं।

* *एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) शिबली नेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़ (उ.प्र.)*

अभिनवगुप्त रस सिद्धान्त के साधारणीकरण के आधार को पुष्टि प्रमाणों से स्थापित करते हैं। इस प्रकार भारतीय मनीषा ने काव्य के मूल्यांकन के लिए रस सिद्धान्त का प्रतिपादन स्थापित किया। रीतिकालीन ग्रंथों की समीक्षा के लिए प्रतिमान की महती आवश्यकता ने रीतिकालीन आचार्यों को संस्कृत काव्यशास्त्र से रस सिद्धान्त को ग्रहण करने को बाध्य किया।

रीतिकालीन आचार्य कवियों की परम्परा में रसलीन ने भी रस सिद्धान्त अपने प्राचीनों से ग्रहण किया। रीतिकालीन आचार्यों को आधार ग्रहण करने के लिए प्रधान आधार भानुदत्त मिश्र की रस तरंगिणी, विश्वनाथ का साहित्य दर्पण तथा मम्मट का काव्य प्रकाश था। रसलीन ने इन आचार्यों से अपने ग्रंथ रस प्रबोध में सामग्री ग्रहण की तथा उसे रस कलश बनाया।

रसलीन रीतिकालीन आचार्यों से भी अपनी सामग्री ग्रहण करते हैं। रीतिकालीन आचार्यों में भिखारीदास से प्रभावित हैं। वैसे तो रसलीन सभी रसों का वर्णन करते हैं, किन्तु श्रृंगार रस को महत्व देते हैं, अपने काव्य ग्रंथ 'रस प्रबोध' में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि वे 'श्रृंगार रस' को ही प्रधानता देते हैं[4]–

''रस को रूप बखानि कै बरनौ नौ रस नाम।
अब बरनत सिंगार को जाही ते सब काम।''

अपने संकल्प को प्रस्तुत कर वे रस विवेचन प्रारम्भ करते हैं। उनकी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे आँख मूदकर रस निरूपण नहीं करते। भरतमुनि अपने नाट्यशास्त्र में रस निष्पत्ति का जो सूत्र प्रस्तुत करते हैं, रसलीन उसे आधार तो बनाते हैं, किन्तु उसमें 'स्थायी भाव' का नाम डाल देते हैं। भरतमुनि का रस सूत्र है [5]–''विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः।''

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। रसलीन लिखते हैं[6]–

जब विभाव अनुभाव अरू व्यभिचारी ते आनि।
परिपूरन थायी जहाँ प्रगटे सो रस जान।।''

भरत की परिभाषा में स्थायी भाव का समावेश नहीं है, किन्तु उनका अभिप्राय यही है कि विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी यही है कि विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी की सहायता से स्थायी भाव रस में प्रवर्तित होता है।

भरत सूत्र के व्याख्याता भट्टलोल्लट के विचार से स्थायी भाव अनुपचित रहता है, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से स्थायी भाव उपचित (परिपक्व) हो जाता है। रसलीन का मत इस मत के निकट है। रीतिकाल ऐसा युग है, जिसमें गद्य साहित्य का विकास नहीं है, किन्तु भिखारीदास तथा रसलीन ऐसे आचार्य हैं, जिनकी कृतियों में रचनात्मक आलोचना के गुण हैं। वैसे रसलीन सामान्य रूप से परम्परा का अनुसरण करते हैं, किन्तु उनके त्याग और ग्रहण में उनकी रचनात्मकता के दर्शन होते हैं। जब वे किसी विषय के बारे में बताने का प्रयास करते हैं, तब उनकी रचनात्मकता उभर कर पाठक या आलोचक के समक्ष आती है। इस संदर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है। रस किस प्रकार विकसित होता है, वे कहते हैं[7]–

जो धाये रस बीज विधि मानुस चित छिति माहिं।
तरके अंकुर जो कछू सो थाई कहि जाहिं।।
अवसर सम उपजावने सरसावत जल रूप।
आलम्बन उद्दीप सो जान विभाव अरूप।।
अनुभावहु तरू प्रकट करि जान लेहु यह बात।
विविचारी हैं, फूल सौं छिन-छिन फूलत जात।।
तिन संजोग मकरन्द लौं रस उपजात हैं आनि।
रसिक मधुप कवि चित्र करि ताहि करैं पहिचानि।।

भरतमुनि सिद्धान्त का प्रतिपादन सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं किन्तु रसलीन सिद्धान्त को रचनात्मक भाषा में प्रस्तुत करते हैं। ऊपर के रसवृक्ष में उनकी रचनात्मकता को भली प्रकार समझा जा सकता है। रसलीन सिद्धान्त के पुष्टि में उदाहरण नियोजित करते हैं, उसमें रचनात्मकता के दर्शन सहज रूप में होते हैं। श्रृंगार के वर्णन में रसलीन का षड ऋतु वर्णन रीति कवियों की भाँति परम्परायुक्त होते हुए भी मौलिक है। इसमें रसलीन की अन्तःस्पर्शी बुद्धि जुड़ी हुई है। वे प्रकृति के प्रांगण में प्रवेश कर भाव चित्र खड़ा कर देते हैं, इनकी उपमाएँ मौलिक हैं। उनमें भोगे हुए क्षण की व्यंजना है। उनकी कुछ उपमाएँ कालिदास संगृहीत प्रतीत होती हैं। कालिदास की प्रिय उपमा दीपशिखा रही है। रसलीन इसका बार-बार उपयोग करते हैं[8]–

और देत हैं दीप सब जिनके कंत समीप,

हम बारे हरि नेह ते रोम-रोम में दीप।।

यहाँ कवि ने दीपदान की परंपरा को प्रस्तुत करते हुए विरहिणी की तन की दीपशिखा को रोएँ रोएँ में प्रस्तुत कर दिया है।

भारतीय संस्कृति में 'दीप' को लक्ष्मी का आवाहक माना गया है, कालिदास के 'दीपशिखा' उपमा की आधार रघुवंश की वे पंक्तियाँ हैं, जिनमें इन्दुमती स्वयं में इन्दुमती को दीप-शिखा की भाँति दिखाया गया है[9]–

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ

यंयं व्यतीयाय पतिबंरा सा

नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपद

विवर्ण भावं स स भूमिपालः।।

इन्दुमती दीपशिखा की भाँति आगे बढ़ती है। जहाँ से वह आगे बढ़ती है वहाँ अन्धकार हो जाता है। जिन राजाओं को छोड़कर वह आगे जाती है वे पीले पड़ जाते हैं। यह रसलीन का सांस्कृतिक बोध है, जो उनकी रचनाधर्मिता में उदात्तता का प्राण फूंकता है। रसलीन कुछ उदाहरण अपने भोगे हुए जीवन से प्रस्तुत करते हैं। ऐसा एक उदाहरण प्रस्तुत है[10]–

तिय पिय सेज बिछाइयों, रही बाट पिय हेरि।

खेत बुवाइ किसान ज्यों रहे मेघ अवसेरि।।

यहाँ रसलीन अपने अनुभव का प्रयोग करते हैं, जहाँ नायिका का भाव तथा किसान का भाव एक सा दिखाया गया है।

रीतिकालीन कवियों ने सौंदर्य निरूपण में कवित्त का प्रयोग किया है। रसलीन ने अपने कवि जीवन का प्रारंभ कवित्त से किया है, जिसमें रीतिकालीन परम्परा का अनुपालन देखा जा सकता है[11]–

पहिरें गुदरी तन सेत असेत तिन्ह जग को नित है निदरै।

हरि रूप अनूप के बाहन को बरनन करि हाथ सो आगे धरैं।।

बरजो कोउ केती निरादर के रसलीन तऊ नहिं चाह हरैं।

सो देखौ लजीली मेरी अँखियाँ पलकों न लगे टकटेई करैं।।

इन पंक्तियों में श्रीकृष्ण के प्रति जो प्रेम है उसे अनुभूत कर रसखान की पंक्तियाँ स्मरण हो उठती हैं[12]–

दोउ कानन कुण्डल मोर पखा सिर सोहैं, दुकूल नयो चटको,

मनिहार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पियको टटको।।

नायिकाओं के विवेचन में रसलीन अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से प्रेरणा तो ग्रहण करते हैं, परन्तु अपनी सोच का प्रयोग करते हुए विवेचन में भिन्नता दिखाते हैं। मुग्धा के वर्णन में उदाहरण लोक जीवन के सामान्य घटना से प्रस्तुत करते हैं[13]–

विधि किसान जो उरि बए बीज तरूनता ल्याइ।

सो बय अवसर लहि भये अब कछु अंकुर आइ।। (85)

यौं बाला जोबन झलक झलकति उर में आइ।

ज्यों प्रकटत नेह विय पुतरिन दरसाइ।। (86)

इसी प्रकार शैशवयौवना मुग्धा का वर्णन जीवन के अनुभव के प्रेरित भाव में करते हैं[14]–

तिय सैसव जोबन मिले भेद न जान्यो जात।

प्रात समैनिसि द्योस के दोउ भाव दरसात।। (87)

ऊपर के उदाहरणों के भीतर रीतिकालीन परम्परा के झलक के साथ रसलीन की मौलिकता भी परिलक्षित होती है। नायिकाओं के वर्णन में रसलीन देव के नायिका विवेचन से प्रभाव ग्रहण करते प्रतीत होते हैं। कोई भी रचनाकार अपने युग, संस्कृति तथा समकालीनता की उपेक्षा नहीं कर सकता, किन्तु इन सबके होते हुए भी मौलिकता प्रस्तुत कर सकता है। उनकी मौलिकता परम्परा के बीच ऐसे ही है, जैसे सावन के घिरे मेघों के बीच अचानक बिजली चमक जाती है। अंगदर्पण में प्रयुक्त दोहा पाठकों के मन में बिहारी के दोहे का भ्रम पैदा करता है[15]–

अमिय हलाहल मद भरे स्याम स्वेत रतनार।

जियत मरत झुकि-झुकि परत जे चितवत इकबार।।

सुन्दरी के आँखों में श्वेत, श्याम, रतनार रंगों के कारण अमृत, विष तथा मदिरा की अनुभूति सुन्दरी के चितवन से द्रष्टा के मन में होती है। इस प्रकार रसलीन रीतिकाल के ऐसे कवि हैं, जिनकी भाषा में वैदर्भी रीति का गुण है।

विचारों की सादगी युग से उनको अलग करती है। अज्ञेय के शब्दों में कवि की आत्म रस प्रबोध के बारे में बोल सकती है[16]–

किसी का सत्य था मैंने संदर्भ से जोड़ दिया।

कोई मधुकोष काट लाया था, मैंने निचोड़ लिया।।

संदर्भ-सूची

1. आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा : पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ. 44, सं. 1992 ई., मयूर पेपर बैक्स, नोएडा
2. सं., सुधाकर पाण्डेय : रसलीन ग्रंथावली : रस प्रबोध, दोहा 35, सं. 2044 वि. काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. वही, दोहा, 36
4. रसलीन ग्रंथावली : रस प्रबोध, दोहा, 60
5. भरतमुनि : नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय, श्लोक 32, सं. 2067 वि., चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
6. रसलीन ग्रंथावली : रस प्रबोध, दोहा 30
7. वही, दोहा 31-34
8. डॉ. रामसागर सिंह : आचार्य रसलीन और उनका युग, पृ. 33
9. कालिदास : रघुवंश, 6/67, सं. 1987 ई., मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
10. डॉ. रामसागर सिंह : रसाचार्य रसलीन और उनका युग, पृ. 33
11. वही, पृ. 46
12. सं. विद्यानिवास मिश्र : रसखान रचनावली, सवैया 33, सं. 2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
13. सं. सुधाकर पाण्डेय : रसलीन ग्रंथावली : रस प्रबोध, दोहा 85, 86
14. वही, दोहा 87
15. वही, अंगदर्पण, दोहा 35
16. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल : अज्ञेय, पृ. 53, सं. 2012 ई., वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 46-49
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्येतिहास दृष्टि

*अनुराधा देवी**

बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में साहित्य ढेर सी विचारधाराओं के अन्तःसंघर्ष का भोक्ता रहा। ये प्रवृत्तियाँ आगे चलकर इतनी क्षिप्र हुईं कि तमाम पुराने मूल्यों और मानदण्डों को तोड़कर अपनी-अपनी दृष्टियों के अनुकूल सृजन और समीक्षा करने लगीं। ठीक उस तरह जैसे सात न भर हीन हाथी की बनावट को उसके अंगों का स्पर्श कर जैसी धारणा बनाते हैं वैसा ही हाथी को बताते हैं। कमोवेश हिन्दी साहित्य के इतिहास की समझ समीक्षकों की ऐसी ही है। इसलिए वह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर भी कमोवेश अपनी इसी दृष्टि को निरूपित करते हैं। वे भूल जाते हैं कि साहित्य के सृजनात्मक और समीक्षात्मक दोनों पक्षों की जाँच और परख का एक ही निकष हो सकता है। वह है लोक मान्यता या लोकानुमोदन।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 1920-30 का समय नये मूल्यों के प्रवर्तन का था। रामचन्द्र शुल्क ने आलोचना और इतिहास लेखन में युग सापेक्षता को गहराई से समझा और उसे समाज की नवीनता के सापेक्ष बनाने का प्रयास किया। यही कारण है कि आज भी वे हिन्दी आलोचना और साहित्येतिहास लेखन के आधार स्तम्भ बने हुए हैं।

वस्तुतः आचार्य शुक्ल के पहले हिन्दी साहित्य के इतिहास का कोई व्यवस्थित और सुसंगत रूप नहीं आ सका था। ग्रियर्सन द्वारा लिखे गए 'दमाडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' (1988) को असंगत और अपर्याप्त मानकर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खारिज कर दिया था। इसके बाद 'श्यामसुन्दरदास' ने 1913 ई. में मिश्र बन्धु विनोद अथवा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' तथा 'कवि कीर्तन' लिखवाया। यह वस्तुस्थिति के विरुद्ध था। श्रीधर पाठक ने इस ग्रन्थ की विषय प्रतिपादन विधि और लेखन शैली को दोषमय बताया। तीन खण्डों में प्रकाशित इस ग्रन्थ को अस्वीकार कर दिए जाने के बाद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा।

इस इतिहास में आचार्य शुक्ल की ऐसी सम्पूर्ण दृष्टि सामने आती है जो हिन्दी साहित्य के सहित भाव को निरूपित करने में पूर्णतया सक्षम होती है। क्योंकि यह इतिहास लिखना एक असाधारण चुनौती थी। इसमें उनकी इतिहास दृष्टि के साहित्यिक अभिनिवेश और भाषा की चुनौती से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। शुक्ल जी ने इस इतिहास में शिक्षित जनता के लिए अनेक नयी उपपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार शुक्ल जी के इतिहास लेखन का ढाँचा हमारे लिए मूल्यवान विरासत है। वस्तुतः यह इतिहास लेखन वर्षों के भीतर चल रहे द्वन्द्व और संघर्ष का परिणाम है। शुक्ल जी के इस इतिहास का अध्ययन करते हुए लगता है कि वे समावेशवादी साहित्येतिहासकार हैं। उनमें हिन्दी प्रदेश की दबी कुचली जनता की प्रतिष्ठापना और उसकी रक्षा का प्रयास है। जातीय बोध और उसके सम्मान की भावना को उत्प्रेरिता करने की अद्‌भुत क्षमता है। साम्राज्य विरोधी क्रान्तिकारी सन्देश है तो जनता को संघर्ष करने की प्रेरणा, रूढ़िवाद का विरोध और अन्तर्राष्ट्रीयता भी समान रूप से विद्यमान है।

शुक्ला जी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में यूरोपीय रहस्यवाद, अभिव्यंजनावाद, शुद्ध कलावाद भाव विगलित सौन्दर्यवाद, और निराशावाद आदि का विरोध किया है। उन्होंने कल्पना लोक के सौन्दर्य के सृजन और कला के लिए कला का रसास्वादन को सुसंगत न मानते हुए अव्यावहारिक और व्यर्थपरक भावुकता की वस्तु माना। उन्हें आलोचना के सन्दर्भ में 'प्रभावाभिव्यंजक' समीक्षा को सुसंगत और समीचीन नहीं माना। इसे उन्होंने ज्ञान और भाव दोनों के लिए मूल्यहीन बताया। उन्होंने पाण्डित्य प्रदर्शन का भी विरोध किया और लिखा-''जब पण्डितों की काव्यधारा स्वाभाविक भावधारा से विच्छिन्न पड़कर रूढ़ हो जाती है, तब वह कृत्रिम होने लगती है। उसकी शक्ति भी क्षीण होने लगती है।''[1] राजनीतिक आन्दोलनों पर उनकी पैनी दृष्टि रहा करती थी। वे विदेशी साहित्य की प्रवृत्तियों की नकल के विरुद्ध थे किन्तु उसके आवश्यक और सार्थक सत्यांश को ग्रहण करने की बात भी कहते हैं। हिन्दी साहित्य को रिक्त मानने और घोषित करने वालों से उन्हें चिढ़ थी। ऐसे अनाड़ीपन और जंगलीपन के प्रति

**शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

उनमें क्षोभ पैदा होता था।''[2] उनकी दृष्टि में देश प्रमी, राष्ट्रीयतावादी लेखक प्रशंसनी थे किन्तु किसी राजनीतिक दल के प्रति प्रतिबद्ध होकर उस दल की बातों और विचारों को 'प्लाट' बनाकर साहित्य लिखना साहित्य धर्म के विरुद्ध था।

''हिन्दी साहित्य के इतिहास में तत्कालीन समाज और उसकी विसंगतियों का निरूपण करते हुए किसानों और छोटे जमींदारों के शोषण के विरुद्ध स्पष्ट आवाज उठाई है। उन्होंने साम्राज्यवादी सरकार की भूमि सम्बन्धी नीति का विरोध तो किया ही उन नगरीय व्यापारियों और साहूकारों का भी विरोध किया जो किसानों, मजदूरों को भूखा मारने के लिए उनके श्रम का शोषण करते थे और अपने कुत्सित लाभ के लिए जमीन की उपज का भाव घटाते बढ़ाते रहते थे।''[3] इस प्रकार शुक्ल जी की समावेशी साहित्येतिहास दृष्टि राष्ट्रीयतावादी, संस्कृति और जातीय बोध से लबालब है तो जनता की दर्दनाक आर्थिक और सामाजिक स्थिति के प्रति आक्रोश शील।

''आचार्य शुक्ला ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में परिवर्तित होती राष्ट्र की स्थिति और प्रवृत्ति में सामंजस्य बैठाने वाले कवियों की प्रशंसा की है। उनके विचार में यह समीचीन नहीं था कि साहित्य में राजनैतिक और सामाजिक भावोां की अभिव्यक्ति वाली आवाज दबकर रह जाता, उन्होंने 'संकल्प की दृढ़ता' 'न्याय के आग्रह', और 'उलटफेर की प्रबल कामना' के सन्दर्भ में रचे गये साहित्य को ही महत्व दिया। उन्होंने लेखन में रूढ़ और बँधी-बंधाई सांचा प्रणाली को तोड़ कर जगत और जीवन के विविध पक्षों की मार्मिकता को झलकाने वाली प्रवृत्ति को रचना का उन्मेष माना।''[4]

''आधुनिक काल को प्रस्तुत करते हुए उसके तृतीय उत्थान के सन्दर्भ में उनकी राष्ट्रीयतावादी दृष्टि, देश प्रेम की भावना और सांस्कृतिक बोध जहाँ उमड़ता है वहीं आन्दोलनों के सक्रिय रूप धारण करने, गाँव-गाँव राजनीतिक और आर्थिक परतंत्रता, के विरुद्ध आवाज उठाने और स्वतंत्रता देवी की वेदी पर बलिदान होने को प्रोत्साहन मिलता है। उनकी दृष्टि में 'एक सार्वभौमधारा' का मजबूत प्रवाह होना चाहिए।''[5]

शुक्ल जी साहित्य में 'मार्क्सवादी चिन्तन पर आधृत' साहित्य सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते किन्तु मानवीय मूल्यवत्ता, और सार्वभौम मानवता को साहित्य का सत्य मानते हैं। इसीलिए वे समावेशी दृष्टिवाले इतिहास लेखक हैं।

''आचार्य शुक्ल की राष्ट्रवादी और सांस्कृतिक दृष्टि उनके साहित्येतिहास की भित्ति अवश्य है किन्तु वह समय और उसकी परिस्थिति पर पैनी दृष्टि रखती है।''[6] समय और परिस्थितियों का मूल्यांकन उन्होंने किसी विदेशी मतवाद के आगोश में नहीं किया अपितु राष्ट्रीयता और संस्कृति की जमीन पर किया। इसीलिए इतिहास दृष्टि सामाजिका गतिशीलता सम्बन्धित करने वाली बन सकी। उन्होंने मुमुर्ष परम्परा और रुढ़ि को स्वीकार करने के बजाय परम्परा के नैरन्तर्य पर ध्यान दिया। भारतेन्दु युग की परिवर्तनशीलता को अतीत की जमीन पर खड़े समाज का विकास मान प्रक्रिया का स्वरूप माना और लिखा 'प्राचीन और नवीन सन्धि स्थल' पर खड़े होकर भारतेन्दु ने जिस सामाजिक प्रवाह का अंकन किया है। से जो लोग गॉडफादर की पीढ़ियों की दुहाई देते हैं, वे धर्म के आडम्बर में अपना दुराचार छिपाने का प्रयास करते इसी क्रम में उन्होंने साम्राज्यवादी फैशन के गुलामों और पाश्चात्य चाल-चलन के अनुगामियों पर भी चोट किया।

इतिहास दर्शन के अन्तर्गत उन्होंने सामाजिक विकास की सतत प्रक्रिया को शाश्वत मानते हुए केशव पर प्रश्न उठाया। उन्हें रीतिकाल का प्रवर्तक नहीं स्वीकार किया। क्योंकि केशव ने समाज के पूर्व पक्ष के निषेध के स्थान पर उत्तर पक्ष का ही निषेध कर दिया। उन्होंने लिखा–''साहित्य मीमांसा क्रमशः बढ़ते-बढ़ते जिस स्थिति पर पहुँच गई थी उस स्थिति से सामग्री न लेकर केशव ने पूर्व की स्थिति से सामग्री ली।''

शुक्ल जी ने रीतिकालीन कवियों की रचना को बहुत प्रश्रय नहीं दिया है। उनके कवि धर्म के प्रति उनका असन्तोष साहित्य के विकास में बाधा जैसे विचार से प्रकट होता है। उनका कथन है–''प्रकृति का अनेकरूपता जीवन के भिन्न-भिन्न चिन्त्य बातों तथा जगत के रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पायी। वह एक प्रकार बद्ध और परिमित सी हो गई। उनका क्षेत्र संकुचित हो गया। बाँध बँधी हुई नालियों से प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रस सिक्त होकर सामने आने से रह गये।''[7] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शुक्ल जी की साहित्येतिहास दृष्टि समावेशवादी, लोकहित चिन्तनवादी, राष्ट्रवादी, भारतीयता की चेतना, सांस्कृतिक और जातीय बोध वाली थी। इन सबके मूल में लोकमंगल और सामाजिक विकास की चिरन्तन प्रक्रिया है। इसीलिए तो ''मार्क्सवादी कवि और आलोच्य मलयज ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास को हिन्दी साहित्य का एक ऐसा मुकम्मल झरोखा कहा है, जिसमें बैठकर साहित्य के दूतवृत्त को सम्भव बनाने वाले हवा, पानी, मिट्टी का जायजा लियाा जा सकता है।''[8]

शुक्ल जी के प्रति मार्क्सवादी आलोचकों में अत्यन्त विरोधाभास है। किसी भी भारतीय परिवेश और उसकी चेतना से सम्बद्ध लेखक को चाहे वह सृजनात्मक लेखन में हो या आलोचनात्मक मार्क्सवाद रास नहीं आ सकता क्योंकि वह असंगत और अनपेक्षित हो जाता है। क्योंकि वह जड़मतवाद का शिकार होता है। बहुत हद तक रामविलास शर्मा, शिवकुमार मिश्र, बच्चन सिंह जैसे कुछ लोगों को छोड़करा शेष मार्क्सवादी आलोचक अति उत्साही है जो इसे यान्त्रिक और अवैज्ञानिक बना देते हैं। राम विलास शर्मा के नजरिए को शुक्ला जी की इतिहास दृष्टि को यह कहकर खारिज करते हैं कि उन्होंने शुक्ल जी के सनातन हिन्दूवाद, शाश्वतवाद, मर्यादावाद, विशुद्धतावाद और शास्त्रीयवाद, हितवाद के पक्ष में उनके द्वारा प्रस्तुत खण्डों का विरोध नहीं किया समझ में नहीं आता कि राष्ट्रीयता और संस्कृति के सम्बन्धों की खोज हिन्दूवाद या मजहबवाद कैसे हो जाता है। उपन्यास का प्रारम्भ करने वालों ने मसलन 'लज्जाराममेहता' ने अपने लेखन के केन्द्र घर-परिवार की प्रतिष्ठापना की, उस युग में हिन्दुओं की जीवन पद्धति और संयुक्त परिवार की व्यवस्था का निरूपण किया है तो किसी भी आलोचक को इसकी निन्दा क्यों करनी चाहिए। जिस प्रेमचन्द्र की तारीफ करते हुए मार्क्सवादी आलोचक थकते नहीं 'शुक्ल जी' ने भी उन प्रेमचन्द्र को उत्कृष्ट माना है। यह अवश्य है कि उन्होंने यूरोप से आयातित समाज को प्रेमचन्द्र द्वारा साहित्य में स्थापित करने का समर्थन नहीं किया आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मार्क्सवादियों द्वारा 'क्रान्ति' अथवा 'इंकलाब' जैसे शब्दों के प्रयोग को साहित्य में स्वीकृति नहीं दी। क्योंकि ये शब्द थोथे नारे के अलावा कुछ नहीं है। इसीलिए उन्होंने साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में असंगत क्रान्ति के प्रयोग का विरोध करते हुए 'हरिकृष्णप्रेमी' के नाटक 'शिव जी की साधना' में आये इस शब्द के सन्दर्भ में सुझाव दिया कि 'ऐतिहासिक नाटक में आधुनिकता की व्यंजना भी वर्ण्यकाल की भाषा पद्धति और विचार पद्धति के अनुरूप की जानी चाहिए 'क्रान्ति' ऐसे शब्दों द्वारा नहीं।''[9]

आचार्य शुक्ल भारतीय जीवन पद्धति के अनुरूप ढले हुए समाज में रूढ़िवादिता को तो स्वीकार नहीं करते थे किन्तु समाज की सनातन व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन करने के प्रयास को भी स्वीकार नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में ऐसा सम्पूर्णा परिवर्तन समाज विहीन था। उन्होंने 'क्रान्ति' जैसे शब्द के प्रयोग द्वारा परिवर्तन को प्रबल कराने को सन्दर्भित करते हुए लिखा–''हमारे हिन्दी काव्य क्षेत्र में इसे प्रलय की पूरी पदावली के साथ व्यक्त किया गया है।''[10]

उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ था कि परिवर्तन की नारेबाजी वर्तमान परिस्थिति के स्वतंत्र पर्यालोचन का परिणाम न होकर मार्क्सवाद की अनुकृष्ट है। ऐसी रचनाओं में जीवन और जगत के नित्य स्वरूप की ऐसी पहचान नहीं हुई है जिससे ये दीर्घायु बन सकें।

शुक्ल जी मानते थे कि परिवर्तन वे ही काम्य हो सकते हैं ''जिन्हें जनता की वाह्य और अभ्यन्तर स्थिति के साथ सामंजस्य करने का भाव निहित हो।'[11] उन्होंने भारतीयता और उसके संस्कृति को अपरमित माना। पैगम्बर मत को संकीर्ण नींव पर स्थिति बताते हुए इसके अनुयायियों, उदारता का अभाव भी देखा।

ईसाइ मत में लिखा–''सच पूछिए तो ईसाई मत के द्वारा ज्ञान की गति में बाधा ही पड़ती है।''[12]

भाषा के सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'साहित्य सृजन' या 'साहित्यलोचन' के लिए सुसंस्कृति और प्रांजल भाषा को महत्व देते थे। उन्होंने वैष्णव धर्म की भक्ति के सन्दर्भ में सधुक्कड़ी भाषा पर टिप्पणी लिखा–''इसका भाव अनपढ़ लोगों की ऐसी भाषा जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों में से किसी के भी शास्त्रीय पक्ष के सम्बन्ध नहीं था। उनके अनुसार सधुक्कड़ी भाषा और हिन्दुस्तानी हिन्दी को एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।''[13]

आचार्य शुक्ल ने उर्दू के काव्य रचना को फारसी शैली का अन्त माना है। शुक्ल जी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि 'उर्दू हिन्दू मुस्लिम कल्चर के मेल से आयी एक मुश्तरक जबान है और हिन्दू संस्कृति और हिन्दी साहित्य से टूटकर उद्भूत हुई। (हिन्दी और हिन्दुस्तानी नागरी प्राचारिणी पत्रिका-1938) हिन्दी साहित्य का इति में शुक्ल जी ने उन सभी लोगों के भाषा प्रयासों को नकार दिया जिन्होंने कबीर के प्रतिमान को आदर्श बनाने का प्रयास किया। उन्होंने लिखा–''कबीरदास ने यद्यपि पंचरंगी मिली जुली भाषा का व्यवहार किया है। जिसमें ब्रजभाषा क्या उस खड़ी बोली या पंजाबीतक का पूरा-पूरा मेल है जो पन्थवालों की सधुक्कड़ी भाषा हुई पर पूरबी भाषा की झलक उसमें अधिक है। (बुद्धचरित की भूमिका-1928) शुक्ल ने कविता में कहावतों और मुहावरों के प्रयोग को भद्दा और फूहड़ माना है। उन्होंने लिखा– मुहावरों को अधिक प्राधान्य देने से रूढ़ समूहों में भाषा बँधी सी रहती है। उनकी शक्तियों का नवीन विकास नहीं हो पाता।

इस प्रकार लोक स्वीकृति और लोक मंगल की दृष्टि ही शुक्ल जी की इतिहास दृष्टि है। उन्होंने राष्ट्रवाद, जातीय बोध, भारतीयता की चेतना और संस्कृति लेखन के केन्द्र में घर-परिवार की प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक अस्मिता के संकट का विरोध आदि को केन्द्र में रखकर सृजनात्मक और आलोचनात्मक साहित्य को महत्व दिया। परम और अतीत की विकास मान प्रक्रिया से फूटी नवीनता को प्रश्रय दिया। विदेशी और पाश्चात्य लेखन के अन्धानुकरण का विरोध किया और साहित्य में मार्क्सवाद के प्रचलन

को विजातीय मान आज भी उनके साहित्येतिहास से आगे कोई लेखन नहीं आ सका। हजारी प्रसाद द्विवेदी को छोड़कर शेष सभी इतिहास का यथा रामकुमार वर्मा, नगेन्द्र, राजपति चन्द्र गुप्त, शिव कुमार मिश्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह, नामवर सिंह, सहित अनेक नाम हैं। जिन्होंनें शुक्ल जी की इतिहास दृष्टि से स्वयं को प्रभावित पाया और उसकी प्रशंसा करते हुए उनसे आगे कुछ जोड़ न सके।

सन्दर्भ-सूची

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 589
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 511
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 512
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 613
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 615
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 69
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 230
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मिथक में बदलता आदमी, पृ.सं. 5
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 528
10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 617
11. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 613
12. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भागा 3, पृ. सं. 184
13. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भाग 3, पृ. सं. 225

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 50-52
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

भक्ति–आन्दोलन एक दृष्टि

*शालिनी सिंह**

भक्ति आन्दोलन, मध्यकालीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। सच कहा जाए तो जिसे युग परिवर्तक कहा जाता है वह यही समय है जब तुर्क सल्तनत भारत में स्थापित हो गया और इस्लाम के आने और फैलने के साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम जनता के बीच आपसी सौहार्द, सद्भाव, सामाजिक और सांस्कृतिक सम्पर्क भी बढ़ा यही वह समय है जब समाज के हाशिए से उठकर संत कवि मुख्यधारा में अपनी वाणियों के साथ आए, जिनमें ऊँच-नीच और जाति-पाँति के भेद का नकार था। वास्तव में भक्ति आन्दोलन सामाजिक, जड़ता से निकलने के बेचैनी से उपजा आन्दोलन था, जो अपने सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से उपजा लोक का, आमजन का आन्दोलन था। इसलिए मध्यकाल का यह आन्दोलन अपने मूल रूप में एक धार्मिक-सांस्कृतिक आन्दोलन है।

भक्ति के उद्भव के सबसे अधिक प्रमाण ऋग्वेद, यजुर्वेद अथर्ववेद में मिलते हैं। डॉक्टर बेनी प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' में स्पष्ट किया है।

''भारतीय भक्ति सम्प्रदाय का आदिस्रोत ऋग्वेद है, इसके कुछ मंत्रों में मनुष्य और देवताओं के बीच गाढ़े प्रेम और मैत्री भाव की कल्पना की गई है।''[1]

भक्ति आन्दोलन के प्रवाह की ओर संकेत करते हुए श्रीमद्भागवतमहात्म्य में कहा गया है-

''उत्पन्ना द्राविडे सांह वृद्धि कर्नाटके गता
क्वाचित् क्वाचित् महाराष्ट्रे गुर्जर जीर्णतां गता
तत्र धीरे कलेयोगात पाखण्डे खण्डिताक का
दुर्बलांह चिरंयाता पुत्रम्याम् सह मन्दताम्
वृंदावनं पुनः प्राप्य नवी नैव सरूपिणी
जांत युवती, सम्यक् श्रेष्ठ रूपा तु सांप्रतम्''

श्रीमद्भगवतमहात्म्य में वर्णित इस श्लोक में भक्ति एवं भक्ति आंदोलन के प्रवाह को इंगित किया गया है। इस श्लोक से ज्ञात होता है कि भक्ति का उदय द्रविड़ देश में हुआ और भक्ति को दक्षिण से उत्तर तक आने में अनेक पड़ावों का सामना करना पड़ा और भक्ति कर्नाटक, महाराष्ट्र में विकसित होकर गुजरात में आकर जीर्ण हो गई। पुनः वृन्दावन में संजीवनी रस पाकर लहलहा उठी और यहीं श्रेष्ठता को प्राप्त हुई। श्रीमद्भागवतमहात्म्या के इस श्लोक की पुष्टि एक प्रसिद्ध उक्ति भी करती है।

''भक्ति द्रविड़ उपजी लायो रामानंद
परगट करी कबीरा ने सातदीप नौ खंड॥''

भक्ति आंदोलन का आरम्भ दक्षिण भारत में आलवारों एवं नयनारों से हुआ जो कालान्तर (800 ई. से 1700ई. के बीच) में उत्तर भारत सहित सम्पूर्ण एशिया में फैल गया। ज्ञातव्य है कि संस्कृत की उक्ति कृष्णभक्ति की ओर संकेत करती है। परन्तु हिन्दी की अनुश्रुति का संकेत रामभक्ति की ओर है। इसके ऐतिहासिक सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि अपने आरम्भिक दौर में जहाँ आलवरों का सम्बन्ध कृष्ण की भक्ति पर अधिक बल देते हुए भी व्यवहारिक रूप से राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं मिलता है। आलवरों और नयनारों ने भक्ति का उपयोग दक्षिण भारत में जैनियों और बौद्धों को भगानें के लिए किया। दक्षिण भारत में भक्ति के जो रूप दिखाई देते हैं उनमें पहला वैष्णव सम्प्रदाय की भक्ति का है जिसमें राम और कृष्ण से सम्बन्धित सम्प्रदाय

* शोध छात्रा, *(हिन्दी विभाग), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

भी मिला हुआ है। इसका रूप आलवरों से होता हुआ रामानुजाचार्य, रामानन्द, बल्लभाचार्य, माधवाचार्य और विष्णुस्वामी जैसों के द्वारा आगे तक हुआ तो दूसरी भक्ति की शाखा शैवों की थी जो नायनारों के बीच विकसित होती रही, स्पष्ट है कि भक्ति दक्षिण से चलकर कर्नाटक, महराष्ट्र, गुजरात होती हुई उत्तर के ब्रज प्रदेश पहुँची।

भारतीय मध्यकाल का भक्ति आन्दोलन न केवल हिन्दी साहित्य अपितु भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण परिघटना है। के. दामोदरन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय चिंतन परम्परा' में भक्ति आंदोलन के उदय पर बात करते हुए लिखते हैं-

''भक्ति आन्दोलन उस समय आरम्भ हुआ था, जब हिन्दू और मुसलमान पुरोहितों और उनके द्वारा समर्पित और समृद्ध किए गए निहित स्वार्थों के खिलाफ संघर्ष एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गया था, जनता को जो अबतक क्षेत्रीय और स्थानीय निष्ठाओं से आबद्ध थी और युगों पुराने अन्धविश्वास और दमन-शोषण के बावजूद हतोत्साहित नहीं हुई थी, जगाया जाना और अपने हितों तथा आत्मसम्मान की भावना के लिए उसे एक किया जाना आवश्यक था। स्थानीय बोलियों और क्षेत्रीय भाषाओं को एकता स्थापित करने वाली राष्ट्र भाषाओं के स्तर पर उठाना था।''[2]

भक्ति आन्दोलन मध्ययुगीन जड़ता के विरुद्ध प्रगतिशील विचारों का उद्घोष है। यह एक ऐसा आन्दोलन था जिसमें समूचा देश और उसके लोग, क्षेत्र, भाषा, जाति धर्म-सम्प्रदाय आदि का भेद मिटाकर इसमें एक साथ शिरकत करते हैं। प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान डॉ. शिव कुमार मिश्र ने स्पष्ट किया है कि भारत में भक्ति आन्दोलन व भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन यही दो आन्दोलन ऐसे आन्दोलन हैं जो भारत को एक समग्र राष्ट्र शब्द के रूप में पहचान कराते हैं। भक्ति आन्दोलन एक स्वतः स्फूर्त आन्दोलन है, शायद यही कारण है कि विद्वानों में एक राय नहीं है। इतिहासकारों से लेकर हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने अपनी अलग-अलग राय रखी, लेकिन समग्र तौर पर दो स्पष्ट धारा है पहली धारा इस्लाम का प्रभाव व दूसरी धारा भारतीय चिंतनधारा का स्वाभाविक विकास।

''भक्ति काल के उदय की इस व्याख्या में अन्तर का प्रमुख कारण रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के बीच इतिहास-दृष्टि का फरक है। शुक्ल के लिए समाज अपने सभी वर्गों के साथ, जिसे वे समष्टि रूप में 'जनता' कहते हैं, साहित्यिक परिवर्तन और विकास के लिए जिम्मेदार है, द्विवेदी इसके लिए प्रमुख कारक 'लोक' को मानते हैं, जो समाज का अपेक्षतया पिछड़ा वर्ग है। समकालीन जीवन में भी इन दोनों शब्दों की ऐसी ही छायाएं जनता पार्टी और लोकदल के नामकरण में देखी जा सकती है। समाज के सभी वर्गों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर ध्यान रखने के कारण रामचन्द्र शुक्ल के लिए इस्लाम का आगमन उनके विवेचन में गुणात्मक महत्व रखता है, जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक को केन्द्र में रखते हैं। जहाँ इस्लाम का प्रभाव और उसके लिए क्रिया-प्रतिक्रिया उतना महत्व नहीं रखती, वह केन्द्र में नहीं हाशिए पर है, रुपये में बारह आना (आज का पचहत्तर पैसा) नहीं, चार आना हो तो हो।''[3]

समग्रतः मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के उदय में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों व भारतीय संस्कृति की भावधारा का ही योगदान रहा, लेकिन यहाँ पर स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह आंदोलन महज धार्मिक आन्दोलन कदापि नहीं था बल्कि धार्मिक भावधारा में लिपटा एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन था, यह महज भजन-कीर्तन की गूँज नहीं अपितु मानवीय संवेदनाओं के संरक्षण व मनुष्यता के संस्थापनार्थ एक शंखनाद था।

''अपने विकास की एक विशेष अवस्था में धर्म सामाजिक गुण प्राप्त कर लेता है और इतिहास की आर्थिक और सामाजिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले बन जाते हैं, इसी रूप में आर्यों के देवताओं ने जो प्रारम्भ में प्रकृति की शक्तियों का मूर्तिकरण करते थे, सामाजिक महत्व और सामाजिक गुण अर्जित कर लिए। इस रूपान्तरण से लोगों को एक हद तक सांत्वना और काल्पनिक सुख भी मिला और जीवन की कठिनाइयाँ झेलने में उन्हें आसानी मालूम हुई।''[4]

एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'लुडविन फायरलॉख' में कहा है कि मध्यकाल में धर्म के आवरण में ही विचारधारा के अन्य रूपों यथा दर्शन, विधि, राजनीति आदि सभी को सम्मिलित कर दिया गया और उन्हें धर्म का ही प्रतिरूप बनाया गया। स्पष्ट है कि ऐसे समय में उभरने वाला कोई भी आन्दोलन धर्म के पल्लू को ही पकड़कर अपने को स्थापित कर सकता था। इस समय आम जनता की भावनाओं को धर्म से जोड़कर व्यक्त किया गया। इस प्रकार ऐसे वातावरण में भक्ति-आंदोलन पर धर्म का हावी होना अत्यन्त ही स्वाभाविक था।

धर्म यदि वास्तविक पीड़ा की अभिव्यक्ति है तो वह वास्तविक पीड़ा के विरुद्ध प्रतिरोध की अभिव्यक्ति भी है। यह न केवल आश्रय देता है, बल्कि संकल्प का सहारा बनकर भी सामने आता है। भक्तिकाव्य में धर्म की इसी अभिव्यक्ति को पाते हैं।

''भक्ति आन्दोलन का जनसाधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ उतना किसी अन्य न आन्दोलन का नहीं पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए। कबीर, रैदास, नाभा, सीपि, सेना, नाई आदि ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्धा आवाज बुलंद की। समाज के न्यस्त स्वार्थवादी वर्ग के विरुद्ध नया विचारवाद अवश्यंभावी था।''[5]

इस प्रकार ''जाति-पाति पूछें नहि कोई, हरि को भजै सो हरि का होई'' कहने से वंचितों की मुक्ति का स्वर मुखरित करने वाले निर्गुण काव्यधारा के संत कबीरदास हों, अगुनहि सगुनहि नहिं कहु भेदा' के उद्घोषक गोस्वामी तुलसी दास हों या इश्कमिजाजी से इश्कहकीकी के भाव से जनता को जागृत करने वाले प्रेम के कवि जायसी हों और तमाम समाज विभाजक कुरीतियों पर कड़ी चोट करने वाले नानक देव हें या समाज में उपेक्षा की शिकार आधी आबादी के मौन के स्वर प्रदान करने वाले सूरदास और मीरा आदि हों, मानवीय संवेदनाओं के उन्मेषक इन विभूतियों ने जनमन के मौन को स्वर देकर भक्ति आंदोलन में अविस्मरणीय योगदान दिया है।

''इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर आकर जनता के उस बड़े भू-भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तित्व से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव को जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ाने के भाव को बढ़ावा दिया।''[6]

मुक्तिबोध भक्ति आंदोलन को उच्चवर्ग या ऊँची कही जाने वाली जातियों के विरुद्ध निम्न जातियों का विद्रोह मानते हैं और उसी भाव से कबीर, तुलसी के काव्य को परखने की इच्छा जाहिर करते हैं। इस आंदोलन ने सामाजिक एकता व मनुष्यता की स्थापना की पुरजोर कोशिश की लेकिन अपनी ताप भक्ति आंदोलन कालान्तर में खो बैठा।

''भक्ति आन्दोलन के अपने मूलवर्ती ताप को खो देने के कुछ और भी कारण हैं, मसलन, उच्च वर्गों के हाथ में उसका नेतृत्व जाने के परिणामस्वरूप सामंती ताकतों का पुनः अपने को मजबूत करना और संगठित होना। यही नहीं निम्न वर्गों के बीच से पैदा हुए सेनाध्यक्षों और नेताओं का एक नए सामंती घराने गठित करना और इस प्रकार ब्राह्मणवाद को पुनः सिरमौर बनाकर पूजना जिस सामंतवाद को ढहना था उसे ताकत नहीं मिली कि ब्राह्मण और ब्राह्मणोत्तर की भावना फिर से प्रतिष्ठित हो गई और निर्गुण मत की निम्नवर्गीय जनवादी रूझान तथा दिशा को समाप्त हो जाना पड़ा।[7]

श्री के. दामोदरन ने प्रगतिशील चेतना के बिखरने के कारणों को ही भक्ति-आन्दोलन के बिखरने का मूल कारण बतलाया लेकिन जो भी हो भक्ति आन्दोलन का भारतीय जनमत पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस धार्मिक आन्दोलन ने अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद करोड़-करोड़ जनमन को प्रभावित ही नहीं किया अपितु उसे दरेरा, कुरेदा और कबीर जैसा नायक प्रदान कर उद्देलित भी किया। इस आन्दोलन ने पहली बार कोटि-कोटि दलितों, पीड़ितों और शोषितों के जीवन में आत्म सम्मानपूर्वक जी सकने की एक नयी आशा का संचार किया, तभी तो डॉ. राम विलास शर्मा ने इसे 'लोक जागरण' का नाम दिया।

सन्दर्भ-सूची

1. डॉ. बेनी प्रसाद, हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता।
2. के.दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ.सं. 328
3. राम स्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. सं. 34
4. डॉ. क्रान्ति राजौरिया, भक्तिकालीन कविता, यथार्थ सम्प्रेषण एवं विश्लेषण, पृ.सं. 25
6. गजानन माधव मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, राजकमल, प्रकाशन, पृ.सं. 88
6. सं. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, पृ. सं.1
7. काव्य-शिवकुमार मिश्र, भक्ति-आन्दोलन और भक्ति, पृ.सं. 46

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 53-54
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

कबीर का सामाजिक आन्दोलन

*निगम प्रकाश कश्यप**

कबीर सच्चे समाज सुधारक थे। कबीर का व्यक्तित्व न केवल हिन्दी सन्त कवियों में अपितु पूरे हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। हिन्दी साहित्य के लगभग बारह सो वर्षों के इतिहास में तुलसीदास को छोड़कर इतना प्रतिभाशाली और महिमामंडित व्यक्तित्व दूसरे कवि का नहीं है।[1] किसी रचनाकार की समाज दृष्टि, उसकी वैचारिक प्रतिबद्धता और सामाजिक पक्षधरता से ही बनती है। कबीर की पक्षधरता उसी जनता से है, जो धर्म कर्मकाण्ड और बाह्य आडम्बर में बुरी तरह फँसी हुई है।[2] साहित्य सामाजिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रायः कभी भी पूरी तरह तटस्थ नहीं हो सकता। वह पर्यावरण का सर्वेक्षण करता है, सामाजिक प्रवृत्तियों की निगरानी भी सामाजिक रीति-नीति चाहे पुरानी या नई, उसकी टिप्पणी का विषय बनती है।

कबीर भारतीय इतिहास के जिस युग में पैदा हुए, वह युग मुस्लिम काल के नाम से जाना जाता है। उनके जन्म से पहले दिल्ली में मुस्लिम शासन स्थापित हो चुका था। कबीर के समय तक उत्तर भारत की आबादी का एक अच्छा-खासा भाग मुसलमान हो चुका था। स्वयं कबीर जिस जुलाहा परिवार में पैदा हुए थे, वह एक-दो पीढ़ी पहले मुसलमान हो चुकी थी।[3]

इस्लाम के भारत में आने के फलस्वरूप हिन्दू धर्म की जो पुर्नव्याख्या शुरू हुई उनमें हिन्दुओं को और हिन्दू बना दिया। हिन्दू धर्म तीर्थ, व्रत, उपवास और होमाचार की परम्परा उसकी केन्द्र बिन्दु हो गई। इस समय पूर्व और उत्तर में सबसे प्रबल सम्प्रदाय नाथपंथी योगियों का था। विविध सिद्धियों के द्वारा वे काफी सम्मान और संभ्रम के पात्र बन गये थे। ये गुणातीत शिव या निर्गुण तत्व के उपासक थे। पर इनकी उपासना, ध्यान और समाधि के द्वारा होती थी। कुछ काल के इस्लामी संसर्ग के बाद ये लोग धीरे-धीरे मुसलमानी धर्म मत की ओर झुकने लगे, पर इनके संस्कार बहुत दिनों तक बने रहे।[4]

कबीर के सामने एक ओर हिन्दू समाज था तो दूसरी तरफ मुस्लिम समाज। कबीर दोनों समाजों के धार्मिक आडम्बर एवं पाखंड के खिलाफ खड़े थे। धर्म उनके लिए एकमात्र सत्य था। किन्तु हिन्दू-मुस्लिम में वे भेद नहीं मानते थे। वे एकेश्वरवादी थे जिसके सन्दर्भ में इरफान हबीब लिखते हैं कि–''वास्तव में कबीर ऐसे एकेश्वरवाद की स्थापना करते हैं, जिसमें ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तो है परन्तु सारे धार्मिक अनुष्ठानों को नकारा गया है और इस तरह वह कट्टर इस्लाम से आगे निकल गया है। कबीर के लिए ईश्वर से एकाकार होने का अर्थ मनुष्यों का एक होना है और इसलिए वहाँ शुद्धता और छुआछूत की प्रथा को सम्पूर्ण रूप से स्पष्ट शब्दों में नकारा गया है तथा सब तरह के अनुष्ठानों को अस्वीकार किया गया है।[5]

कबीर के समय में समाज में वर्ण-व्यवस्था, जाति-भेद, छुआछूत का जबरदस्त बोलबाला था। कबीर ने उसका प्रतिवाद किया है। वे कुल परिवार की श्रेष्ठता के आधार पर अपने को श्रेष्ट मान लेने वालों पर तीखा व्यंग्य करते हैं–

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जै करणी ऊँच न होई।
सोवन कलस सुरे भरया, साँधु निंद्या सोई।।[6]

कबीर ने आजीवन सम्प्रदायवाद, बाह्याचार और बाहरी भेदभाव पर कठोरतम आघात किया था।[7]

कबीर अपने समय एवं समाज के कटु आलोचक ही नहीं बल्कि समाज को लेकर स्वप्नद्रष्टा भी हैं। उनके मन में भारतीय समाज का एक प्रारूप है जिस पर वे आत्मीयता के साथ काम कर रहे थे। ''वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। वे साधु होकर भी योगी नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे।[8]

धर्म निरपेक्ष लोकतान्त्रिक भारत के लिए हमें आदर्श समाज की रूपरेखा कबीर के सन्देशों में मिलती है। हिन्दू समाज द्वारा बहिष्कृत तथा मुस्लिम समाज द्वारा तिरस्कृत कबीर ने ईश्वरीय एकता की बात कही। उन्होंने धर्म के नाम पर भेदभाव तथा ईश्वर के नाम पर लड़ाई का तार्किक खण्डन किया।[9]

**सहायक अध्यापक मंगला प्रसाद इण्टर कालेज बामपुर, माण्डा, इलाहाबाद*

अबुल फजल ने आइने अकबरी में लिखा है कि–''कबीर ने समाज के सड़े-गले रीति-रिवाजों को नकार दिया। कबीर ने समाज के लिए कोड़े खाए तो व्यंग्य तथा हँसी-ठिठोली द्वारा भी जनमानस में सुधार के प्रति सोच विकसित की। उन्होंने आलोचना के साथ सृजन की रूपरेखा रखी। आज के दौर में जब भौतिक साधनों हेतु भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, मिलावटखोरी जैसी अपराध मानवता को झकझोर रहे हैं तब कबीर के विचार अति प्रासंगिक हैं।''[10]

कबीर की उलटबासियाँ पग-पग पर मानव को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाती हैं। वे हर उस व्यवस्था का विरोध करते हैं जो मानव को अवनति की जंजीरों में जकड़ती है तथा उसे रसातल में ले जाती है।

अतः कबीर भारतीय परम्परा में आज जुझारू प्रेरणा के प्रतीक हैं एवं मानवता तथा भारतीयता के सच्चे पोषक हैं।[11]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. द्विवेदी; हजारी प्रसाद (1990), कबीर : व्यक्तित्व विश्लेषण, पृ. 1
2. दुबे; श्यामाचरण (1991), परम्परा, इतिहास और संस्कृति, पृ. 154
3. राजकिशोर (सं.), कबीर की खोज, पृ. 53
4. द्विवेदी; हजारी प्रसाद (1990), कबीर, पृ. 139
5. इरफान हबीब, साम्प्रदायिकता एवं संस्कृति के सवाल, पृ0 23
6. द्विवेदी; हजारी प्रसाद (1990), कबीर : प्रस्तावना, पृ0 26
7. श्यामसुन्दर दास (2011), कबीर ग्रन्थावली, पृ0 85
8. द्विवेदी; हजारी प्रसाद (1991), हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, पृ0 17
9. वेव : हिन्दी साहित्य आई.ए.एस. प्राप्त सामग्री।
10. इण्टरनेट पर उपलब्ध सामग्री।
11. इण्टरनेट पर उपलब्ध सामग्री।

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 55-58
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

समानांतर सिनेमा : एक दृष्टि

*शालिनी सिंह**

भारतीय सिनेमा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना विश्व सिनेमा का। 28 दिसंबर, 1895 को ल्यूमियर बंधुओं ने अपने कैमरे से दुनिया को हिलती-डुलती तस्वीरें दिखाई। सत्य है कि मनुष्य ने अपने जीवन और प्रकृति के यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए जितनी भी कलाओं का आविष्कार किया है, यह आविष्कार उन सभी की तुलना में सर्वाधिक प्रभावशाली था। 7 जुलाई, 1896 को ल्यूमियर बंधुओं ने मुंबई के वाटसंस होटल में अपनी फिल्मों का प्रदर्शन करके भारतीय जनता को इस नए आविष्कार का दर्शन कराया। मनोरंजन और चमत्कार के प्रति मनुष्य में एक स्वाभाविक आकर्षण होता है, इसी आकर्षण के मोहपाश में भारतीय जनता भी बँधती चली गई और इसी आकर्षण को साधने की कोशिश सावे दादा से लेकर अब तक के निर्माता-निर्देशकों ने निरंतर जारी रखा है। ''1912 में रामचंद्र गोपाल तोरणे (आर. जी तोरणे) ने प्रथम फीचर फिल्म 'पुडलिक' बनाई। लेकिन विशेषज्ञों ने इसे प्रथम भारतीय फीचर फिल्म मानने से इंकार किया है क्योंकि इसके कैमरा मैंन व अन्य तकनीशियन विदेशी थे तथा इसकी प्रोसेसिंग लंदन में हुई थी।''

1913 में धुंडिराज गोविंद फाल्के (दादासाहब फाल्के) ने 'राजा हरिश्चंद्र' नामक कथा पर फिल्म बनाई जिस संपूर्ण रूप से प्रथम भारतीय फिल्म की मान्यता प्राप्त है। 14 मार्च, 1931 को आर्देशिर ईरानी की फिल्म 'आलम आरा' के प्रदर्शन के साथ ही फिल्मे और जीवंत हो उठी क्योंकि पर्दे पर चलती-फिरती तस्वीरों ने बोलना सीख लिया। अपने प्रारंभिक दौर में फिल्मों का उद्देश्य मुख्यतः मनोरंजन करना ही था। गंभीर विषयों पर फिल्में बनाने का साहस कोई विरला व्यक्ति ही कर पाता था। यही कारण है कि 1913 से लेकर बीसवीं सदी के तीसवें दशक तक बनी अधिकांश फिल्में, मनोरंजन प्रधान थी, इन फिल्मों में गंभीर विषयों का अभाव था। 1925 में बाबूराव पेंटर को मूक फिल्म 'सावकारी पाश' सूदखोरों और ज़मीदारों का किसानों के प्रति अत्याचार व शोषण पूर्ण रवैये पर आधारित थी। इस फिल्म में वी0 शांताराम ने किसान की भूमिका निभाई थी, यह उस समय की सामाजिक सरोकारों पर आधारित एक गंभीर फिल्म कही जा सकती है। वी0 शांताराम जैसे कुछ निर्माता ऐसे भी थे जो चाहते थे कि फिल्में मनोरंजन के साथ-समाज व राष्ट्र का यथार्थ व कलात्मक चित्रण प्रस्तुत करने में भी समर्थ हो। ऐसे निर्माताओं की श्रेणी में चेतनआनंद, के.ए. अब्बास, श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी आदि के नाम लिए जा सकते हैं। एक तरफ मनोरंजन प्रधान फिल्में, आम लोगों को इंद्रधनुषी रंग-बिरंगे स्वप्न दिखाते, नाच-गाना प्रेम कहानियों से भरपूर, दर्शकों' के लिए उनका पूरा पैसा-वसूल के सिद्धांत पर मसाला फिल्में बनती रही और ठीक इसके समानांतर कम बजट की फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ जिसमें आम लोगों के जीवन पर देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर आधारित यथार्थ का नग्न चित्र प्रस्तुत करती सार्थक फिल्में सम्मिलित थीं। फिल्मों का यह स्वरूप इनकी भाषा और प्रस्तुति भारतीय लोकप्रिय सिनेमा देखने के आदी दर्शकों के लिए नितांत नया था। लोग इस नए सिनेमा को 'कला फिल्म,' 'गैर व्यावसायिक कला फिल्में, 'समानांतर फिल्में' जैसे अलग-अलग नामों से संबोधित करने लगे धीरे-धीरे नई धारा की इस समानांतर फिल्मों का निर्माण, हिंदी भाषा के अतिरिक्त देश की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी होने लगा।

''भारत में समानांतर सिनेमा की पहली फिल्म कौन-सी थी, इस पर एक मत बनाना तो मुश्किल है। लेकिन ज्यादातर आलोचकों का मानना है कि 1925 में निर्देशक वी. शांताराम द्वारा बनाई गई 'सावकारी पाश' पहली कला फिल्म थी। सावकारी पाश को अंग्रेजी में 'इंडियन शाईलॉक' का नाम दिया गया। दरअसल, इस फिल्म में वी. शांताराम ने एक ऐसे गरीब किसान की कहानी दिखाई थी, जो एक लोभी सूदखोर के चंगुल में फँसकर अपनी जमीन खो बैठता है। बाद में उसे शहर में आकर एक कारखाने में मजदूरी करने को मजबूर होना पड़ता है। उस दौर की वास्तविकता बयां करने वाली यह शायद पहली फिल्म थी। इसी वजह से इसे भारतीय सिनेमा में मील का पत्थर माना जाता है। गौरतलब है कि खुद वो शांताराम ने इस फिल्म में

* *शोध छात्रा (हिन्दी विभाग), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

गरीब किसान की भूमिका निभाई थी। इसके बाद शांताराम ने एक और फिल्म 'दुनिया न माने' (1937) का निर्माण किया, जिसे इन धारा की फिल्मों में काफी सराहा गया।''[1]

इन नई धारा की फिल्मों में मुख्य रूप से जमींदारों और पूँजीपतियों द्वारा किसानों मजदूरों का आर्थिक, सामाजिक व शारीरिक शोषण, सामाजिक कुरीतियों यथा अंधविश्वास, छुआछूत, दहेज, विधवा विवाह, बालविवाह आदि के विरूद्ध आवाज उठाई गई। महानगरों में गरीब और मध्यमवर्गीय समाज की दुर्दशा, मिल मजदूरों की समस्याओं, युवाओं के अंदर बढ़ती हुई असंतोष की भावनाएँ, बेरोजगारी की समस्या आदि जैसी कई मानवीय और सामाजिक समस्याओं को फिल्मों की कथावस्तु बनाई गयी। सिनेमा की इस नई प्रस्तुति से विदेशों में भारतीय सिनेमा का आकर्षण बढ़ने लगा। कई अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में तत्कालीन नई धारा की अनेक कलात्मक फिल्मों की विभिन्न पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही हिंदुस्तानियों के बीज साम्प्रदायिकता के बीजों को अंकुरित कर दिया गया था। हिंदी सिनेमा ने अपने ढंग से समय-समय पर इन विभाजनकारी शक्तियों का विरोध किया है। वी0 शांताराम ने तत्कालीन परिस्थितियों के माँग के अनुरूप सन् 1942 के आस-पास 'पड़ोसी' फिल्म बनाई थी। कहा जाता है कि सन् 1948 में जब 'पड़ोसी' भागलपुर के 'चित्रपर' सिनेमा हॉल में लगी तो शहर में जो दंगे हो रहे थे, वे समाप्त हो गए थे, तब वी0 शांताराम ने कहा था कि ''मुझे मिलने वाला यह सबसे बड़ा उपहार है।''

भारतीय सिनेमा ने समय-समय पर गैर जरूरी सामाजिक मान्यताओं, रुढ़ियों, अंधविश्वासों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करता रहा है और अपनी फिल्मों के माध्यम से समाज में नवीन चेतना का संचार प्रसारित करने में अहम् भूमिका निभाता रहा है। सामाजिक चेतना जाग्रत करने में कुछ महत्त्वपूर्ण फिल्में 'अछूत कन्या' (1936), 'नीचा नगर' (1946), 'दहेज' (1950), 'आवारा' (1951), 'दो बीघा जमीन' (1953), 'मदर इंडिया' (1957), 'बंदिनी' (1963), 'शहर और सपना' (1963) आई जिनमें सामाजिक यथार्थ को एक कथासूत्र में पिरोकर दर्शकों के समक्ष रखा गया। ''दूसरी ओर कुछ ऐसी फिल्में भी बन रही पी, जो, ऑफबीट होने के साथ व्यावसायिक दृष्टि से सफलता प्राप्त कर रही थीं। 1953 में बनी विमल रॉय की 'दो बीघा जमीन' बेशक ऑफबीट फिल्म थी लेकिन इसने आलोचकों के साथ आय की भी खूब वाहवाही बटोरी। इस फिल्म ने भी 1954 में फ्रांस के कान फिल्म समारोह में अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार जीता।''[2]

गौरतलब है कि नए सिनेमा के उद्‌भव का काल वही है जब देश, स्वतंत्रता के मोहभंग से गुजर रहा था, देश स्वतंत्र हुए बीस वर्ष हो गए थे लेकिन जिस खुशहाली और सामाजिक समानता की कल्पना लोगों ने की थी, उसका साकार होना दूर की कौड़ी साबित हो रही थी। राजनीतिक व सामाजिक अस्थिरता दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी, बेरोजगारों की एक फौज तैयार होती जा रही थी। सरकारी और राजनैतिक स्वर पर भ्रष्टाचार अपना विकृत रूप धारण करता जा रहा था इस सारी सामाजिक अराजकता और राजनीतिक अस्थिरता का प्रभाव तत्कालीन नई धारा की कलात्मक फिल्मों पर भी पड़ा। सर्वाधिक प्रभाव सिनेमा की भाषा पर पड़ा जो अधिक सटीक व पैनी होती चली गई। ''लेकिन हिन्दुस्तान में नया सिनेमा के जन्म और विकास के कारण सिर्फ यही नहीं थे। इसके दो प्रमुख कारण थे-देशभर में तत्कालीन प्रगतिशील चेतना में आया उफान और पहले 'भारतीय फिल्म संस्थान' तथा बाद में 'फिल्म वित्त निगम' की स्थापना। प्रगतिशीलता की धारा में अनेक लेखक, बुद्धि जीवी और कलाकार आते थे। 'इप्टा' और 'जनसंस्कृति मंच' से संबंध रखने वाले कलाकारों में सामाजिक प्रतिबद्धता थी उन्होंने आरंभ से ही रूढ़िवाद, शोषण और दमन का रचनात्मक स्तर पर विरोध किया था। ऐसे में कोई कारण नहीं था कि नया सिनेमा का सामाजिक आयाम तैयार नहीं होता।''[3]

हिन्दुस्तान में कला सिनेमा के प्रेरणास्रोत सत्यजीत रे माने जाते हैं जिन्होंने सन् 1955 में 'पाथेर पंचाली' बनाकर भारत को विश्व सिने-पटल पर पहचान दिलाई। यह फिल्म 'फिल्म फाइनेंस कॉरपोरेशन' से ऋण लेकर बनाई गई थी, सन् 1960 में यह कारपोरेशन 'राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम' में बदल गया। औपचारिक रूप से एक आन्दोलन के रूप में कला सिनेमा की शुरूआत सन् 1969 में बनी मृणालसेन की फिल्म 'भुवनसोम' से हुई। ''हिंदी में कला सिनेमा एक आंदोलन के रूप सन् 70 में प्रस्फुटित होता है, आजादी के 23 साल बाद। उसके पहले कला सिनेमा या व्यावसायिक सिनेमा जैसा कोई वर्गीकरण नहीं था। फिल्मों का मूल्यांकन अच्छे और बुरे के रूप में किया जाता था। वर्गीकरण का आधार मुख्यतः मनोरंजन हुआ करता था। इनका अर्थ यह नहीं कि सन् 1970 से पहले सिर्फ मनोरंजन को ही मुख्य ध्येय बनाकर फिल्में बनती थी, बल्कि उसके पहले भी सिने पट का उपयोग रचनात्मक सरोकारों के संदर्भ में हुआ।''[4] जाहिर है सातवें दशक में शुरू हुआ कला सिनेमा आन्दोलन अचानक प्रस्फुटित नहीं हुआ था। इसके बीज राजकपूर, गुरूदत्त और महबूब खान जैसे फिल्मकारों ने अलग-अलग संवेदनशील सामाजिक विषयों पर फिल्में बनाकर पहले ही बो दिए, मृणाल सेन ने तो 1969 में 'भुवनसोम' बनाकर उस बीज को 'वर्द्धित' होने का उचित वातावरण दिया।

साहित्य, समाज का दर्पण होता है और फिल्में साहित्य की। 70 के दशक में एक नए तरीके से उत्कृष्ट पृष्ठभूमि पर फिल्म बनाने वाले अनेक फिल्म निर्देशक सामने आये जिसमें मणिकौल, कुमार शाहनी, अडूर गोपालकृष्णन आदि थे जिन्होंने

लीक से हटकर भिन्न प्रकार की फिल्में बनाने की शुरूआत की जिससे भारतीय सिनेमा में न सिर्फ कथा के आधार पर बल्कि शिल्प के आधार पर भी नए रूप की फिल्मकला का उदय हुआ। इन निर्देशकों ने साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्में बनाई जिसमें 'सारा आकाश' (1969 ई0), 'उसकी रोटी' (1970 ई0), 'फिर भी' (1971 ई0), 'मायादर्पण' (1972 ई0), रजनीगंधा' (1974 ई0) आदि है। इन निर्देशकों के अतिरिक्त आठवें दशक के महत्त्वपूर्ण निर्देशकों में सई अख्तर मिर्जा, केतन मेहता, श्याम बेनेगल, अपर्णा सेन, गौतम घोष, गोविंद निहलानी, बुद्धदेव दास गुप्त आदि हैं जिन्होंने कला सिनेमा आंदोलन को अपनी विशिष्ट कला फिल्मों से सशक्त बनाया। इस दौर की बहुचर्चित कला फिल्में 'अंकुर' (1974 ई0), 'निशांत' (1975 ई0), 'मंथन' (1976 ई0), 'भूमिका' (1977 ई0), 'जुनून' (1970 ई0), 'त्यागपत्र' (1979 ई0), 'गरम हवा' (1973 ई0), 'आक्रोश' (1980 ई0), 'अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है?' (1980 ई0), 'स्पर्श' (1979 ई0) आदि है।

''दरअसल नया सिनेमा आंदोलन जब अस्तित्व में आया और समाज तथा मीडिया में उसके यथार्थवाद की चर्चा गर्म हो गई, उसी बीच मुख्य धारा का सिनेमा भी अपने शबाब पर। जिस वर्ष 'भुवनशोम' बनी थी, उसके कुछ ही वर्षों बाद 'बॉबी' और 'जंजीर', 'दीवार' और 'शोले' जैसी अति लोकप्रिय फिल्में भी बनी थी, इसलिए यह बिल्कुल नहीं कहा जा सकता कि नया सिनेमा ने किसी भी स्वर पर मुख्यधारा के सिनेमा को क्षति पहुँचायी। हाँ, यह सही है कि मुख्यधारा के सिनेमा में जिस प्रकार सस्ते मनोरंजनवादी तत्व डाले जाते हैं, वहीं नया सिनेमा इनसे परहेज करते हुए सच्चाई को विवेकपूर्वक प्रस्तुत करता है।''[5] इस दौर की फिल्मों ने सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति देने का पूरा प्रयास किया हिन्दी में इस यथार्थवादी फिल्मों का चलन बांग्ला फिल्मों से शुरू हुआ था। सत्यजीत राय, ऋत्विक घटक और मृणाल सेन की छवि ने प्रचलित सिनेमा की परिपाटी को तोड़ दिया।

नौवें दशक में कला सिनेमा परिपक्व हो चुका था। सन् 1980 के पश्चात् की कला फिल्मों में कई सामाजिक समस्याओं को गंभीरता से उठाया गया था। इन फिल्मों में 'गोविंदनिहलानी की 'अर्द्धसत्य' (1985), 'पार' (1985), 'आघात' (1988), 'दृष्टि' (1990), अपर्णासेन की '36 चौरंगी लेन' (1981), 'परमा' (1985), 'सती' (1989), बुद्धदेवदास गुप्त की 'दूरत्व' (1978), 'नीम अन्नपूर्वा' (1979), 'गृहयुद्ध' (1981), 'अंधी गली' (1989), 'फेरा' (1986), गौतम घोष की 'डरवाल' (1982), केतन मेहता की 'भवनी भवाई' (1980), 'मिर्च मसाला' (1986) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी दशक में अपर्णा सेन समेत कई महिलाएँ फिल्म निर्माण के क्षेत्र में आईं। सई परांजपे की 'स्पर्श' (1979), 'चश्मे बद्दूर' (1981), 'कथा' (1982) कल्पना लाजमी की 'एक पल' (1980), विजया मेहता की 'राव साहब' (1986), 'पेस्टन जी' (1987) आदि महत्त्वपूर्ण फिल्में है।

फिल्म समालोचकों ने नौवें दशक को 'नए सिनेमा का स्वर्णकाल' कहा है। अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली इन फिल्मों में फिल्म निर्माण एवं प्रस्तुति की सभी बेहतरीन तकनीकों का प्रयोग हुआ। यह तय है कि यदि कला फिल्मों का आन्दोलन न हुआ होता तो शायद हिन्दी सिनेमा कुछ प्रतिभाशाली कलाकारों से वंचित रह जाता। शबाना आजमी, स्मिता पाटिल, अमोल पालेकर, नसीरूद्दीन शाह, ओमपुरी, कुलभूषण खरबंदा, पंकज कपूर, दीप्ति नवल, फारूख शेख आदि कलाकार, कला फिल्म आंदोलन के गर्भ से ही उत्पन्न हुए हैं। कला और संस्कृति के विश्वस्तरीय पुरोधा 'ब्रेख्त' का यह मानना है कि सिनेमा तभी लोकप्रिय हो पायेगा जब वह आम लोगों के जीवन दृष्टि पर आधारित हो। आम लोगों के जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन लाकर ही सिनेमा को लोकप्रिय बनाया जा सकता है। 'ब्रेख्त' की इस सोच का प्रभाव भले ही अन्य किसी देश के सिनेमा पर पड़ा हो लेकिन भारत पर तो बिल्कुल नहीं पड़ा है। भारतीय लोकप्रिय सिनेमा, चमकीले व सत्य लगने वाले असत्य सपनों को मखमली सेज पर दिखाता रहा है क्योंकि अपने देश के अधिकांश लोग बस 'टाइमपास' के लिए सिनेमा देखने का आदी रहा है क्योंकि भारतीय सिनेमा का अधिकांश दर्शक वर्ग निम्न व मध्यवर्ग से आता है और सिनेमा के इस दर्शक वर्ग को कला फिल्में बोझिल लगती हैं क्योंकि ये फिल्में उच्चकोटि के साहित्य की तरह होती हैं और जब साहित्य से ही आम जन की दूरी रही है तो उस पर बनी फिल्में भी लोगों को आकर्षित नहीं कर सकतीं।

''दरअसल जिस लिखित वैचारिक साहित्य को समाज के दबे और कुचले लोग पढ़ नहीं सकते थे, वे अपनी वास्तविक प्रतीति की गहराई इन फिल्मों को देखकर प्राप्त कर सकते थे किन्तु नया सिनेमा की सबसे बड़ी विडम्बना यही रही कि इन फिल्मों को इन्हीं वास्तविक चरित्रों ने नहीं देखा; वरन् विदेशों में तो इन फिल्मों ने अपूर्व ख्याति हासिल की। भारत के बुद्धिजीवी वर्ग ने अपनी वैचारिकता के पोषण और संतुष्टि के लिए इसे बहुत ही सशक्त माध्यम समझा परन्तु यह केवल बौद्धिक विमर्शों, गोष्ठियों और सेमिनारों तक ही सीमित रह गया। समाज में ये फिल्में क्रांति नहीं कर सकीं। हालाँकि इसके उद्देश्यों पर आज भी सवाल नहीं उठाए जा सकते, परन्तु इतना तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि इसके क्रियान्वयन की खामियों ने इस आंदोलन को सफल नहीं होने दिया।''[6] इन सभी के बावजूद कला फिल्मों ने हिंदी सिनेमा को विश्व-सिनेमा मंच पर प्रतिष्ठित करने में महती भूमिका निभाई। भारतीय सिनेमा के अंतःकरण में श्री विनोद दास कहते हैं, ''दरअसल एक अच्छी फिल्म हमें देखना सिखाती

है। सिनेमा के यथार्थ से हम जीवन के यथार्थ को एक नई दृष्टि से देखने लगते है। यह दृष्टि किसी दर्शन से नहीं, फिल्म के उन छोटे-छोटे दृश्यों और संवादों से उपलब्ध होती है जिन्हें हर दर्शक एक नया अर्थ देता है। भारतीय सिनेमा ने अपनी एक प्रौढ़ फिल्म भाषा विकसित की है और यह अकारण नहीं है कि विश्व सिनेमा परिदृश्य में भारतीय सिनेमा को बहुत आदर और सम्मान के साथ देखा जाता है।''[7]

कला फिल्मों की असफलता का सबसे बड़ा कारण इसकी लोकजीवन से असंगति थी। यह महानगरीय जीवन की विडम्बनाओं और दाम्पत्य और पारिवारिक जीवन की विसंगतियों के भँवर में ही उलझा रहा। लोकरंजन का इनमें नितांत अभाव था। सबसे बड़ी कमी इन फिल्मों की यह थी कि इन फिल्मों में लोक संगीत नहीं थे और लोक संगीत जो कि हिन्दी सिनेमा की प्राणवायु हैं, जिसके अभाव में कोई भी फिल्म नीरस लगती है, उसी का इसमें नितांत अभाव था। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने भी व्यवसाय के नाम पर छद्म सभ्यता की भौतिकवादी आवश्यकताओं और उसकी उपलब्धियों पर प्रचार करके झूठ को सत्य बनाकर दर्शकों को बेच रहा है क्योंकि आज की फिल्में कला की अभिव्यक्ति न होकर महज एक 'प्रोडक्ट' बनकर रह गई हैं। इस उपभोक्तावादी संस्कृति के आदी बन चुके दर्शकों को अब सच देखने की आदत नहीं रही। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि फिल्में बनती ही है दर्शकों के लिए और जिसे दर्शक की स्वीकृति मिल जाए, वह फिल्म हो गई हिट या सुपरहिट नहीं तो चारों खाने चित्त। यही कारण है कि दर्शकों की इसी सोच को भाँपकर श्याम बेनेगल, प्रकाश झा, दीपा मेहता, मीरा नायर, गोविन्द निहलानी जैसे फिल्मकारों ने नए सिरे से फिल्में बनाने की ओर उन्मुख हुए जिससे फिल्में सोद्देश्यता के साथ-साथ मुनाफा भी कमा सकें और इन फिल्मों के लिए दर्शक भी सिनेमाघरों तक पहुँचे। फलस्वरूप हिन्दी सिनेमा में एक नई प्रवृत्ति के सिनेमा की शुरूआत हुई जो कला फिल्मों का ही एक नया व परिवर्तित रूप कहा जा सकता है इस नये रूप के सिनेमा की कुछ चर्चित फिल्मों में प्रकाश झा की 'मृत्युदण्ड' (1998), 'गंगा जल' (2003), राजकुमार संतोषी की 'दामिनी' (1999), दीपा मेहता की 'फायर' (1999) आदि के नाम लिए जा सकते हैं, इसी परंपरा को आगे बढ़ाने वाली फिल्मों में मधुर भंडारकर की 'चांदनीबार' (2001), 'पेज-3' (2003), 'कारपोरेट' (2006), रामगोपाल वर्मा की 'कंपनी' (2001), 'डी' (2005), महेश भट्ट की 'जख्म' (1999), 'तमन्ना' आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

कला फिल्मों के दौर के बाद फिल्मकारों ने जो मध्यमार्गी मार्ग अपनाया, यह महज एक संयोग न था बल्कि इसके पीछे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक कारण थे। बीसवीं सदी का आखिरी दशक अपने साथ उदारीकरण की लहर लेकर आया था और इसका प्रभाव समाज के प्रत्येक तबके व अंग पर पड़ा। ''हमारे सामने ग्लोबल अवधारणाओं का विकास होने लगा। जीवन स्तर और सामाजिक संबंधों को ये अवधारणाएं गहरे रूप से प्रभावित करने लगीं। मीडिया विस्फोट और सूचना प्रौद्योगिकी के 'ग्लोबल विजन' ने हमारे समाज को लोकतांत्रिक तरीके से बदल दिया। फिल्मों की विचारधारा का बदलना भी इसी परिवर्तन की बयार की देन है। नौवें दशक के पश्चात् सामाजिक उद्देश्यों से लैस किन्तु अपेक्षाकृत कम बोझिल किस्म की फिल्में बनाई जाने लगीं, ताकि व्यापक जन समुदाय उसे जज्ब कर सके। वह केवल समारोहों और छोटे सिनेमाघरों तक सीमित न हों। हम उसे मीडिया विस्फोट की ही तरह फिल्म माध्यम का भी लोकतांत्रीकरण कह सकते हैं।''[8]

सिनेमा के लोकतंत्रीकरण ने न सिर्फ निम्नमध्य वर्ग में 'नए सिनेमा' की असंप्रेषणीयता' की दुरूहता को समाप्त किया बल्कि एक ऐसे 'मध्यमार्गी सिनेमा' को जन्म दिया जिसका शिल्प उसके कथ्य को अवरूद्ध नहीं करता था। अतः कहा जा सकता है कि कला फिल्म आंदोलन ने समय की माँग के अनुरूप अपने को परिवर्तित कर लिया है अर्थात् उसका उदारीकरण हो गया है। फिल्मों में मनोरंजक और सामाजिक सोद्देश्यता अर्थात् व्यावसायिकता और सार्थकता के अनुपात के संतुलन को ध्यान में रखते हुए यदि फिल्मकार, फिल्में बनाए तो ये फिल्में अधिक प्रभावी होंगी जो कि हमें रुढ़िवादी परम्पराओं और मान्यताओं से लड़ना सिखाएगी और इन फिल्मों के माध्यम से होने वाला परिवर्तन समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए सुखद होगा।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. Joshi; Lalit Mohan (2007), Indian Art House Cinema, British Film Institute
2. दो बीघा जमीन, 'सीड्स आफ न्यू सिनेमा' (www.film-ference.com)
3. संजीव श्रीवास्तव, हिन्दी सिनेमा का इतिहास, पृ. 108
4. अनुपम ओझा, भारतीय सिने-सिद्धांत, पृ. 90
5. संजीव श्रीवास्तव, हिन्दी सिनेमा का इतिहास, पृ. 109
6. वही; पृ. 111
7. विनोद दास, भारतीय सिनेमा अंतःकरण, पृ. 12-13
8. संजीव श्रीवास्तव, हिन्दी सिनेमा का इतिहास, पृ. 112

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 59-65
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

सूर-राम चरितावली का काव्य वैशिष्ट्य

*डॉ. पूनम**

कृष्ण-भक्ति-शाखा के प्रतिनिधि भक्त-कवि सूरदास ब्रज लोकजीवन के सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं। समाज तथा जीवन की चेतना फनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। यद्यपि वे अनन्य कृष्ण-भक्त हैं तथा सख्य-भाव से अपने आराध्य की लीलाओं का गायन करते तथा अहर्निश अपने नंद-नंदन कृष्ण के ब्रह्मलोक में विचरण करते हैं, तथापि राम और कृष्ण में सूरदास की अभेद बुद्धि है। उनके लिये राम अथवा कृष्ण विष्णु के अवतार ही नहीं हैं, वरन् एक ही परब्रह्म के प्रतीक हैं।

सगुणोपासक भक्त कवियों की यह विशेषता रही है कि अपने उपास्य के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का भाव रखने पर भी उनमें निर्गुणोपासकों की भाँति असहिष्णुता नहीं है। रामोपासकों ने कृष्ण को स्वीकार किया है और कृष्णोपासकों ने राम को। तुलसी की कृष्ण-गीतावली और सूर के रामकथा विषयक पद इसके प्रमाण हैं।[1] वैष्णव धर्म के पुनर्जागरण और पुनरुत्थान काल में सर्वश्रेष्ठ रामभक्त कवि तुलसी ने 'श्री कृष्णगीतावली' की रचना की तथा विनयपत्रिका में उन्होंने सभी देवी-देवताओं की महिमा का गुणगान किया। कृष्ण भक्त कवि सूर का रामचरितमानस का रहस्य भी धार्मिक-साम्प्रदायिक समन्वय-साधना ही है। तुलसी के राम-काव्य का आधार अध्यात्मवादी अथवा आदर्शवादी था, तो सूर ने राम काव्य को सौन्दर्यमूलक आधार प्रदान किया। यद्यपि तुलसी का 'रामचरित मानस' शताब्दियों से भक्तों का कंठहार बना हुआ है, परन्तु कालक्रमानुसार सूर ही हिन्दी भाषा में रामकाव्य के प्रथम गायक सिद्ध होते हैं।

जो भगवान के कृपापात्र जन हैं, उनमें न संकीर्णता संभव है, न भेद-दृष्टि। भक्तश्रेष्ठ सूरदासजी के आराध्य यद्यपि नंद-नंदन श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं, किन्तु भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण में सूरदास जी की तो अभेद बुद्धि है। सूरदास जी ने पूरे श्रीमद्भागवत् के चरितों का अत्यन्त संक्षेप में अपने पदों में गायन किया है।[2]

गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'सूर-रामचरितावली' सूरदास की कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है, अपितु सूरसागर तथा सूरसारावली का ही अंश है। यह 212 पदों का संग्रह है, जिसमें सूरसागर के 199 पद हैं तथा अंत में सूरसारावली के 13 पदों में ही पूरा रामचरितसंक्षेप में आ गया है। इन कुल 212 प्राप्त पदों का आधार मुख्यतः भागवत् ही प्रतीत होता है, यद्यपि वाल्मीकि का भी इन पर प्रभाव है।

भागवत् के पहले व दूसरे स्कन्ध में देवताओं का काज सँवारने के लिए 18वीं बार विष्णु के रामरूप में अवतार आदि कथा के संकेत मिलते हैं तथा नवम्स्कन्ध के 56श्लोकों में राजसिंहासनारूढ़ तक का राम-आख्यान यद्यपि संक्षिप्त है, तथा प्रबंधात्मक है। सूरदास ने भावत् से हृदयंगम की इसी रामकथा को अपनी भक्तिपरक भावना तथा अपनी प्रतिभा के संस्पर्श से उसे कुछ मौलिक, नवीन तथा विस्तृत बनाकर उसे एक सुगठित भावपूर्ण मुक्तक काव्य का रूप दिया है। आख्यान-काव्य की-सी प्रवाहपूर्ण प्रबंधात्मकता के दर्शन इसमें नहीं होते।

गेय-मुक्तक-शैली में काव्य-रचना में सिद्धहस्त सूर ने अपने व्यक्तित्व एवं स्वभाव के अनुकूल 'सूर-राम-चरितावली' के मुक्तक पदों के सीमित कलेवर में श्रीराम की लीलाओं के सभी मार्मिक प्रसंगों का चित्रण सुरुचिपूर्ण ढंग से किया है। कुछ स्थलों पर तो उनकी वात्सल्य, श्रृंगार तथा भक्ति की अत्यन्त मनोहारी छटाएँ देखने को मिलती हैं।

सूर ने तुलसी की भाँति रामजन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा का ही वर्णन किया है तथा यहाँ भी कथा शुकदेव के द्वारा राजा परीक्षित के सम्मुख संवाद-रूप में ही वर्णित है–

नृप सौं ज्यौं सुकदेव सुनायौ। 'सूरदास' त्यौं ही कहि गायौ।।[3]

* *सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, पी.जी. गवर्नमेण्ट कालेज, सेक्टर-2, चंडीगढ़*

बालकाण्ड की घटनाओं का प्रारम्भ रामजन्म से होता है। रामजन्म के अवसर पर अयोध्या में चहुँ ओर आनन्द-उल्लास का वातावरण है। दुष्टों के दलन तथा भक्तों के उद्धार-हित भगवान साकार रूप में प्रकट होकर सामाजिक दायित्व पूरा करते हैं–

आजु दशरथ के आँगन भीर।
ये भू-भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम-सरीर।।[4]

दो पदों में दशरथ के कनकमय आँगन में धनुषक्रीड़ा करते अवधकुमारों का वर्णन है।[5] राम के संघर्षशील व्यक्ति के उतार-चढ़ावों को–ऋषि विश्वामित्र का अयोध्या आकर राम-लक्ष्मण को यज्ञ-रक्षार्थ ले जाना, ताड़कावध, अहिल्योद्धार, दशरथ का जनकपुर आगमन प्रसंग, परशुराम प्रसंग आदि सभी एक-एक पद में ही वर्णित हैं। धनुष-भंग से पूर्व जानकी जी के मानसिक द्वन्द्व का बड़ा सुन्दर चित्रण है–

चितै रघुनाथ बदन की ओर।
रघुपित सों अब नेम हमारौ, निधि सों कराते निहोर।।
यह अति दुसह पिनाक, पिता-पुत्र, राघव-बयस किशोर।
इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यौं, सखि! यह संसय मोर।।[6]

शृंगार रस के प्रसंग में 'दिव्य-चक्षु' सूर अपना 'सूरत्न' सिद्ध करते हैं। सभा में राम द्वारा धनुष-भंग से लेकर पूरे विवाह-प्रसंग का श्रीराम का चित्र एक ही पद में सुन्दर बन पड़ा है–

ललित गति राजत अति रघुवीर।
नरपति सभा मध्य मनों ठाढ़े, जुगल हंस मतिधीर।।
दुष्टनि दुःख-सुख संतनि दीन्हौ, नृप-ब्रत पूरन कीन।
रामचंद्र-दसरथहि बिदा करि 'सूरदास' रस भीन।।[7]

सीता-विवाह के अवसर पर कंकण-मोचन प्रसंग में सात्विक अनुमान की कल्पना अत्यन्त सुकोमल बन पड़ी है–

कर कंपै कंकन नहिं छूटै।
राम-सिया कर परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।।...[8]

अयोध्याकाण्ड की सभी घटनाएँ 28 छंदों में वर्णित है। रामकथा का अत्यन्त मर्मस्पर्शी प्रसंग है–रामवन-गमन। इस प्रसंग में दशरथ की मूर्छा एवं तन-त्याग प्रसंग अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं–

बिन रथ रूढ़, दुसह दुःख मारग, बिन पद-त्रान चलैं दोउ भ्रात।
इहिं विधि सोच करत अतिहीं नृप, जनकि ओर निरखि बिलखात।।[9]

राम से बिछुड़कर प्राण शरीर से भी बिछुड़ जायेंगे, इसलिए राजा दशरथ राम को मात्र एक दिन के लिए रोककर उनके दुर्लभ दर्शन पाना चाहते हैं–

बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु, पुनि पंथ गहौ (हो)।
अब सूरज दिन दरसन दुरलभ, कलित कमल-कर कंठ गहौ (हो)।।[10]

भरत का मिलाप दास्य-भक्ति पर आधारित है, क्योंकि वे स्वयं को राम का सेवक कहते हैं–

तुमहि बिमुख रघुनाथ, कौन बिधि जीवन कहा बनै।
चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै।।

--- --- ---- ---- ----

चौदह बरस तात की आज्ञा, मोपै मेटि न जाई।
'सूर' स्वामि की पाँवर सिर धरि, भरत चले बिलखाई।।[11]

केवट-संवाद एवं विनय के तीन पद ही सूर ने लिखे हैं, जिनमें कवि को राम के सम्मुख आत्मनिवेदन एवं सरल, निष्कपट भाव-भक्ति भावना का मानो परोक्ष अवसर प्राप्त हो गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

नौका हौं नाहीं लै आऊँ।
प्रगट प्रताप चरन कौ देखौं, ताहि कहाँ पुनि पाऊँ।।

--- --- ---- ---- ----

मेरी सकल जीविका यामैं, रघुपति मुक्त न कीजै

'सूरदास' चढ़ौ प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै।।[12]

वन-मार्ग में राम-लक्ष्मण और सीता के लावण्यमयी रूपों से अभिभूत होते सरल-स्वभाव पुरवधुओं की सहज जिज्ञासा का सीता द्वारा सांकेतिक समाधान तुलसी के मानस और कवितावली की भाँति ही सात्विक एवं रोचक बन पड़ा है–

सखी री! कौन तिहारे जात।
राजिव नैन धनुष कर लीन्हे, बदन मनोहर गात।।...[13]
तथा अन्यत्र भी–
कहि धौं सखी! बटाऊ का हैं।
अद्‌भुत वधू लिये संग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं।।
--- --- ---- ---- ----
इन मैं को पति आहिं तिहारे, पुरजनि पूछैं धाई।
राजिव नैन मैन की मूरति, सैननि दियौ बताइ।।[13]

अरण्यकाण्ड के कुल 13 पदों में शूर्पणखा-नासिकोच्छेदन, खर-दूषण वध, सीताहरण, रामविलाप, शबरी उद्धार आदि प्रसंग संक्षेप में वर्णित हैं। यहाँ छाया सीता का उल्लेख भी है।

स्वर्ण-मृग के पीछे दौड़ते राम का चित्र अत्यन्त मनोहारी बन पड़ा है–

राम धनुष अरु सायक साँधे।
सिय हित मृग पाछैं उठि धाए, बलकल बसन फेंट दृढ़ बाँधे।।
नव-धन, नील-सरोज-बरन बपु, बिपुल बाहु, केहरि-फल-काँधे।
इंदु-बदन, राजीव-नैन-बर, सीस जटा सिव-सम सिर बाँधे।।[14]

सीता-हरण प्रसंग के मात्र चार पदों में ही सूरदास जी ने विषादग्रस्त राम की व्याकुलता एवं विलाप का करुण चित्र अत्यन्त निपुणता से अंकित किया है–

रघुपति कहि प्रिय-नाम पुकारत।
हाथ धनुष लीन्हे, कटि भाथा, चकित भए दिसि-बिदिसि निहारत।।
निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, खिन लोटत धर, बपु न सँभारत।
हा सीता, सीता, कहि सियपति, उमड़ि नयन जल भरि-भरि ढारत।।[15]

अपने मानस में बसी प्रिया के सम्पूर्ण चित्र प्रकृति की दृश्यावली के माध्यम से उभारते राम मानव की सहज भूमि पर आ जाते हैं–

फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली।
अहो बंधु, काहू अवलोकी, इहिं मग बधू अकेली?
अहो बिहंग, अहो पन्नग-नृप, या कंदर के राइ।
अब कें मेरी बिपति मिटाऔ, जानकि देहु बताइ।।
चंपक-पुहुप बरन तन सुंदर, मनो चित्र-अवरेखी।
हो रघुनाथ, निसाचर के संग अबै जात हौं देखी।।
--- --- ---- ---- ----
कहुँ हिय-हार, कहूँ कर-कंकन, कहुँ नूपुर, कहुँ चीर।
'सूरदास' बन-बन अवलोकत, बिलख बदन रघुवीर।।[16]

किष्किन्धाकाण्ड के कुल सात पदों में ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान एवं सुग्रीव से राम का मिलन, बालि-वध, सुग्रीव-राज्याभिषेक, सीता-शोध, संपाती-वानर-संवाद का वर्णन मात्र कथा-क्रम के निर्वाह हेतु ही हुआ है।

सुंदरकाण्ड के 45 पदों में हनुमान का लंकागमन, रावण-त्रिजटा संवाद, विषादग्रस्त सीता से हनुमान की भेंट और वार्तालाप, सीता-संदेश, हनुमान-रावण-संवाद, आदि प्रसंग बड़े नाटकीय व रोचक बन पड़े हैं। मूल भागवत् में ये घटनाएँ वर्णित नहीं हैं।

सूरदास के भक्त हनुमान भी श्रीराम के प्रति सादर समर्पित हैं। विशाल राक्षस नगरी को मथकर तथा अशोक वन में पहुँचकर सीता को तलाशने में हनुमान की कठिनता, चिन्ता, क्रोध, शौर्य आदि अनेक मनोभावों का सुन्दर चित्रण इस कांड के अनेक पदों में उपलब्ध होता है।

लखि लोचन, सोचे हनुमान।
चहुँ दिसि लंक-दुर्ग दानवदल, कैसे पाऊँ जान।।[17]

तथा–

सोच लाग्यौ करन, यहै धौं जानकी,
कै कौऊ और, मोहि नहहिं चिन्हारा।
'सूर' आकासबानी भई तबै तहँ,
यहै वैदेहि है, करु जुहारा।।[17]

तथा–

कैसैं नाथहिं मुख दिखराऊँ, जो बिनु देखे जाउँ।
बानर बीर हँसैंगे मोकौं, तैं बोर्‌यौ पितु-नाउँ।।
मारौं आजु लंक लंकापति, लै दिखराऊँ ताहि।
चौदह सहस जुबति अंतःपुर, लैहैं राघव चाहि।।[17]

अशोक-वन-बन्दिनी सीता की रावण के समक्ष घोर निराशाक्रांत मनःस्थिति, राम के प्रति सीता का करुण संदेश तथा विनयोक्तियाँ सहृदयों को सहज ही भाव-विह्वल कर देती हैं–

मैं परदेसनि नारि अकेली।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु-पिता न सहेली।।
राव भेष धर्‌यौ तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़ मति मेरी, राम-रेख पग पेली।।
विरह-ताप तन अधिक जरावत, जैसे द्रव-द्रुम बेली।
'सूरदास' प्रभु बेगि मिलाऔ, प्रान जात हैं खेली।।[18]

तथा अन्यत्र–

कहियौ कपि! रघुनाथ राज सौं, सादर यह इक विनती मेरी।
नाहीं परति मोपै अब, दारुन त्रास निसाचर केरी।।
यह तौ अंध बीस हूँ लोचन, छल-बल करत आनि मुख हेरी।
आइ शृगाल सिंह-बलि चाहत, यह मरजाद जाति प्रभु तेरी।।
जिहिं सनेह जानि करुनामय, लेहु छुड़ाइ जानकी चेरी।।[18]

अशोकवाटिका विध्वंस करके सियसुधि लेकर विजयी हनुमान के राम के पास लौटने आदि सभी प्रसंगों में रामभक्त हनुमान की सम्पूर्ण चुनौतियों के प्रति ललकार, निर्भयता, आत्मविश्वास, पुरुषार्थ द्रष्टव्य है–

जननी! हौं अनुचर रघुपति कौ,
कहौं तौ लंक उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ।
कहौं तौ मारि-संहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ।।[19]

अन्यत्र–

रावण के दससीस तोरि कै, कुटुँब समेत बहैहौं।
तैंतिस कोटि देवता बंधन, तिनहि समस्त छुड़ैहौं।।[19]

तथा–

रावन हति, लै चलौं साथ ही, लंका धरौं अपूठी।
यातें जिय सकुचात, नाथ को होइ प्रतिज्ञा झूठी।।[19]

हनुमान-रावण-संवाद के अन्तर्गत वीर हनुमान की निर्भयता तथा गर्वोक्तियाँ देखते ही बनती हैं–

सीतापति-सेवक तोहि देखन कौं आयौ।
का कैं बल बैर तैं जु राम तैं बढ़ायौ।
जे-जे तुव सूर सुभट, कीट-सम न लेखौं।
तो कौ दसकंध अंध, प्राननि बिनु देखौं।।[20]

लंकाकांड 'सूर-राम-चरितावली' का सर्वाधिक विस्तृत कांड है। इसमें हनुमान जी की राम-प्रताप से विजय की आश्वस्ति, विभीषण-रावण, रावण-मंदोदरी, कुंभकरण-रावण, अंगद-रावण, रावण की गर्वोक्ति, लक्ष्मण मूर्छा, राम-रावण युद्ध, सीता-मिलन, अग्नि परीक्षा, अयोध्या आगमन, राज-समाज वर्णन सहित सारी कथा 10 छंदों में वर्णित है। इसके अनेक स्थल वीररस के श्रेष्ठ निदर्शन हैं। इस कांड के पहले ही पद में सूचना है–'सीय सुधि सुनत रघुवीर धाए।'[21]

हनुमान कहते हैं कि प्रभु आज्ञा दें तो मैं अकेला ही राक्षस-संहार कर दूँ–

राफन-से गहि कोटिक मारौं।
जो तुम आज्ञा देहु कृपानिधि! तौ यह परिहस सारौं।।
कहौ तौ जननि जानकी ल्याऊँ, कहौ तौ लंक बिदारौं।

--- --- ---- ---- ----

कहौ तौ सचिव-सुबंधु सकल अरि, एकहिं-एक पछारौं।।
कहौ तो तुम प्रताप श्री रघुबर, उदधि पखाननि तारौं।
कहौ तो दसौ सीस, बीसौ भुज, काटि छिनक मैं डारौं।।[22]

अंदग-रावण संवाद के अन्तर्गत 12 पदों में अंदग की अनेक प्रकार से मदांध रावण को समझाना है। रावण के प्रति अंदग की उक्तियाँ कितनी निर्द्वन्द्व, निर्भीकता एवं आत्मविश्वास का परिचायक हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

मोकौं राम-रजायसु नाहीं।
नातरु सुनि दसकंध निसाचर, प्रलय करौं छिन माहीं।।

--- --- ---- ---- ----

जारौं लंक, छेदि दस मस्तक, सुर-संकोच निवारौं।
श्रीरघुनाथ-प्रताप चरन करि, उर तैं भुजा उपारौं।।

--- --- ---- ---- ----

अजहूँ कह्यौ सुनै जो मेरौ, आए निकट मुरारी।
जनक-सुता लै चलि, पाइनि परि, श्रीरघुनाथ-पियारी।।[23]

मंदोदरी भी अनेक प्रकार से (18 पदों में) रावण को समझाना चाहती है कि सीता श्रीराम को सौंप दीजिए–

लंका लीजति है रे रावन।
तुम जिन को हरि ल्याये सीता ते कहते हैं आवन।।
जा सागर कौ गरब करत है, सो दूधनि मैं जावन।
आवत रामचंद्र सर साँधें, ज्यौं बरसा घन सावन।।
तूँ मेरौ समझायौ न समझत, बहुत सहैगो ताँवन।
'सूर' राम कौं लै मिलि सीता! हाथ जोरि परि पावन।।[24]

सेतुबंध के चार पदों में समुद्र की राम-शरणागति का वर्णन बड़ा ही नाटकीय बन पड़ा है–

सागर गरब धर्‌यौ उर भीतर, रघुपति नर करि जान्यौ।
तब रघुबीर धीर अपने कर, अगिनि-बान गहि तान्यौ।।
कह्यौ, न नाथ बान मोहि जारौ, सरन पर्‌यौ हौं आइ।।[25]

लक्ष्मण-मूर्छा प्रसंग भी कवि ने 10 पदों में व्यक्त किया है–

निरखि मुख राघव धरत न धीर।
भए अति अरुन, बिसाल कमल-दल-लोचन मोचत नीर।।[26]

इस करुण प्रसंग पर व्याकुल राम के समक्ष हनुमान की आश्वस्ति महत्वपूर्ण बन पड़ी है–

रघुपति! मन संदेह न कीजै।
मो देखत लछिमन क्यौं मरिहैं, मोकौं आज्ञा दीजै।।[27]

राम-रावण-युद्ध प्रसंग में क्रोध में डूबे राम के चित्र में राम की दैवीय शक्तियों का संकेत मिलता है–

आजु अति कोपे हैं रन राम।
ब्रह्मादिक आरूढ़ विमाननि, देखत हैं संग्राम।।

--- --- ---- ---- ----

सुरपुर तैं आयौ रथ सजि कै, रघुपति भए सवार।
काँपी भूमि, कहा अब ह्वैहै, सुमिरत नाम मुरारि।।[28]

देवकाज सँवार कर राम का अयोध्या लौटना मानों एक पर्व है। कवि ने उसे 8 पदों में गाया है। उदाहरण देखिए–

राघव आवत हैं अवध आज। रिपु जीते, साधे देव-काज।।
प्रभु कुसल बंधु-सीता समेत। जस सकल देस आनंद देत।।

--- --- ---- ---- ----

सुनि भेरि-बेद-धुनि संखनाद। सब निरखत पुलकित अति प्रसाद।।

--- --- ---- ---- ----

जै दिनि भूतल सोभा समान। जै-जै-जै 'सूर' न सब्द आन।।[29]

अंतिम पद में राजकार्यों में व्यस्त प्रभु राम की सेवा में विनयपत्रिका प्रस्तुत कर भक्तकवि ने अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है–

बिनती केहि बिधि प्रभुहि सुनाऊँ।
महाराज रघुबीर धीर कौ समय न कबहूँ पाऊँ।।

--- --- ---- ---- ----

एक उपाय करौं कमलापति, कहौ तौ कहि समझाऊँ।
पतित उधारन 'सूर' नाम प्रभु लिखि कागद पहुँचाऊँ।।[30]

वस्तुतः तुलसी की तरह सम्पूर्ण 'रामचरितावली' द्वारा उच्चतर मानवीय मूल्यों की स्थापना करना अपना पात्रों का चरित्रांकन करना सूर को अभीष्ट प्रतीत नहीं होता। सूर की इस प्रबंधात्मक मुक्तक रचना (अवली) में तुलसी की 'कवितावली' अथवा 'गीतावली' की भाँति ही भावात्मक चित्रों और मार्मिक कथा-स्थलों के मुक्तक छन्द में अंकन कर रसिकों-भक्तों को भाव-रसामृत पान कराने का प्रयास किया गया है। सूर की वृत्ति उन्हीं प्रसंगों के चित्रण में अधिक रमी है, जिनमें भक्तिभाव-परक गीतात्मक संवेदनाएँ अधिक हैं। शेष प्रसंगों में मात्र क्रम-निर्वाह द्वारा इतिवृत्त मिलाने का प्रयास-सा जान पड़ता है।

सूर का यह काव्य आकार की दृष्टि से लघु अवश्य है, परन्तु उन्हें रामकाव्य के अग्रणी कवियों में प्रतिष्ठित करने में यथेष्ट है। इस काव्य का वैशिष्ट्य यह भी है कि यह सर्वश्रेष्ठ कृष्णभक्त कवि द्वारा रचा गया तथा रामकाव्य परम्परा के सर्वश्रेष्ठ रामभक्त कवि तुलसी के काव्य से पूर्व रचा गया है। अतः हिन्दी साहित्य की रामकथा शृंखला में निःसन्देह 'सूर-राम-चरितावली' एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

सन्दर्भ-सूची

1. डॉ. आशारानी, रामकाव्य परम्पराएँ और भरत, शारदा प्रकाशन, दिल्ली, 1996
2. घनश्यामदास जालान (प्रकाशक), सूर-राम-चरितावली, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2014, पृ. 3
3. सूर-राम-चरितावली, मंगलाचरण, पद 1
4. सूर-राम-चरितावली, बालकाण्ड, पद 4
5. वही; पद 5-6
6. वही; पद 10
7. वही; पद 13
8. वही; पद 12
9. वही; अयोध्याकाण्ड, पद-26

10. वही; पद 20
11. वही; पद 42
12. वही; पद 29
13. वही; पद 31, 33
14. वही; अरण्यकाण्ड, पद 47
15. वही; पद 51
16. वही; पद 54
17. वही; सुन्दरकाण्ड, पद 66, 67, 68
18. वही; पद 90, 89
19. वही; पद 78, 83, 87
20. वही; पद 95
21. वही; लंकाकाण्ड, पद 110
22. वही; पद 112
23. वही; पद 149
24. वही; पद 122
25. वही; पद 133
26. वही; पद 165
27. वही; पद 168
28. वही; पद 179
29. वही; पद 190
30. वही; पद 198

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 66-72
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

निराला की प्रगतिवादी कविताओं में छायावाद का अवसान

*अन्जू प्रभा यादव**

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है जिस समय छायावाद का पतन हो रहा था और छायावादी काव्य भावुकता, कोमलता और रहस्य के आवरण में धुँधला होता जा रहा था। उस समय उस दौर में निराला ही एकमात्र ऐसे कवि थे, जिनकी सर्जनात्मक शक्ति बराबर कायम रही। इसीलिए छायावाद के पतन के बाद भी आज वे उस तरह जीवित है। इतिहास में निराला का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उन्होंने आने वाली पीढ़ियों को दिशा और दृष्टि दी। बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि परवर्ती कविता को जितना अधिक निराला ने प्रभावित किया है, उतना अन्य किसी दूसरे कवि ने नहीं। निराला के काव्य में हिन्दी कविता के तीन युग सुरक्षित है- छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता। निराला को इन विविध काव्यान्दोलनों का जनक कहा जा सकता है। किन्तु निराला के काव्य की सबसे बड़ी शक्ति यही है कि वे किसी वाद से बाँधकर नही चले न उन्होंने अपने को किसी राजनीतिक विचारधारा-विशेष का अनुगामी ही बनाया। उन्होंने मनुष्य को ही अपना विषय बनाया और उसी के अभावों और संघर्षों को अभिव्यक्ति दी। इसी अर्थ में वे हिन्दी के प्रथम प्रगतिवादी कवि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में जो विविध प्रयोग किये है, उन्हें देखते हुए उनको हिन्दी का प्रथम प्रयोगवादी कवि कहा जा सकता है। यह अवश्य है कि निराला ने प्रगति या प्रयोग के सम्बन्ध में कोई सैद्धान्तिक वक्तव्य नहीं दिया। यह आकास्मिक नहीं है कि आज का नया कवि निराला को अपना गुरु मानता है। 'नये पत्तों' और 'कुकुरमुत्ता' में काव्य-शिल्प के जो विविध प्रयोग हुए हैं, वे आज की कविताओं के अधिक निकट हैं। निराला की सैकड़ों कविताओं को आज की नयी कविताओं और नये भावबोध के साथ रखा जा सकता है। निराला ने अपनी कविताओं में सभी दृष्टियों से वह नींव तैयार कर दी थी, जिस पर नये कवियों का धरोहर खड़ा हुआ है।[1]

जनेश्वर वर्मा का मत है कि प्रगतिशील आंदोलन का आरंभ 1936 से माना जाना गलत है। उनका निश्चित मत है कि प्रगतिवाद छायावाद की प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि उसके समानांतर बचने वाली साहित्यधारा है। प्रगतिवाद छायावाद के जन्मकाल से ही उसके साथ-साथ विकासशील रहा है। रूस की समाजवादी क्रांति और भारतीय राष्ट्रीय जागरण के प्रभावस्वरूप सन् 1918 से भारतीय जन-जीवन में भी आत्मविश्वास वर्ग चेनता, मानवतावाद और जनजागृति की लहर आई, प्रगतिवाद उसी की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। अतः प्रगतिवाद का आरंभ 1918 से मानना चाहिए और हिंदी काव्य के क्षेत्र में गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' को उसका आदि प्रवर्तक मानना चाहिए।[2]

जनेश्वर वर्मा की इन मान्यताओं के पीछे उनकी दलील यह है कि सनेही, हितैषी, रामेश्वर करूण आदि की रचनाएं सन् '18 से सन्' 30 के बीच की हैं। उन रचनाओं में जनक्रांति का समर्थन और वर्ग संघर्ष का चित्रण है। इसी आधार पर वह कहते हैं कि साहित्य में छायावाद और प्रगतिवाद दोनों समानांतर चले है। आधुनिक साहित्य के इतिहासकारों को असुविधा न हो इसलिए वह इस मान्यता को स्थापित करने के उद्देश्य से कहते हैंः 'यह ठीक है कि आरंभ में प्रगतिवादी धारा बहुत निर्बल थी परंतु जैसे-जैसे देश में राजनीतिक चेतना का विकास होता गया और समाजवादी आंदोलन शक्ति संचय करते गए वैसे ही प्रगतिवादी धारा भी प्रबल होती गई और सन् 1936ई. में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ उसने छायावाद पर अपनी विजय की घोषणा कर दी।'[3]

ऐसा प्रतीत होता हैं कि जनेश्वर वर्मा छायावाद को एकांगी और पलायन की प्रवृत्ति वाला आंदोलन मानते हैं। अतः जहां छायावाद में पलायन से इतर सामाजिक प्रवृत्तियाँ दिखती हैं तो वे अन्य किसी समानांतर आंदोलन के अस्तित्व की कल्पना कर लेते हैं। दूसरी बात यह है कि शंकर, हितैषी, सनेही, करुण आदि की रचनाएं भारतेंदुकाल से चले आ रहे यथार्थवादी रुझानों का ही विकास हैं और खास कर समाजवादी क्रांति की विचारधारा का समसामयिक प्रभाव लेकरके अपने यथार्थवाद को बुराइयों

* शोध-छात्रा (हिन्दी-विभाग), नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, कोटवा-जमुनीपुर-दुबावल, इलाहाबाद, (उ.प्र.)

की आलोचना तक ही सीमित नहीं रखती बल्कि सर्वहारा की राजसत्ता और वर्गसंघर्ष तक की बात करती है। पर यह छिटफुट रूप में दो-चार कवियों तक ही सीमित है।

तीसरी सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि साहित्य में भी प्रवृत्तियों का संघर्ष द्वंद्वात्मक तरीके से होता है, जनेश्वर वर्मा इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को अनदेखा करते है। छायावाद के भीतर रोमांटिक्क विद्रोह, सामंती नैतिकता के बंधनों के प्रति आक्रोश, वेदना, प्रकृति प्रेम, स्त्री, पुरुष संबंधों में सहज स्वच्छंदता का आग्रह, साम्राज्यवाद का विरोध, व्यक्तिवाद, अहम्मन्यता, रीतिकालीन सामंती प्रेमदृटि के बदले नई रोमांटिक प्रेमदृष्टि आदि अनेक प्रकार के रुझान मिलते हैं जों कहीं परस्पर टकराते है, कहीं एक दुसरे के पूरक की भूमिका निभाते है। अतः यह समझ वैज्ञानिक नहीं कि छायावाद पलायन का काव्य था।

उपर्युक्त मान्यता के पीछे जनेश्वर वर्मा की यांत्रिक ढंग से समाजवादी क्रांति के प्रभावों को हिंदी में देखने का आग्रह है। वह समझते हे कि 1917 में अगर रूस में क्रांति हुई तो फौरन उसी साल हिंदी में प्रगतिवाद शुरू हो गया। इतिहास को समझने की यह विधि यांत्रिक है और पूरी तरह अवैज्ञानिक है। अतः यह मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता कि प्रगतिशील आंदोलन का आंरभ छायावाद के जन्मकाल के समानांतर हो गया था।

डॉ. जनेश्वर वर्मा इतिहास की तोड़मोड.और यांत्रिक समझ की वजह से जहां प्रगतिवाद का आरंभ स्वाभाविक रूप में 1918 से मानते है, वहीं दूसरी ओर उनसे ठीक उल्टी दिशा में चलते हुए डा. रांगेय राघव ने अपनी मान्यता रखी कि 1936 में प्रगतिशील आंदोलन विदेश से लाकर हिंदी में रोप दिया गया उनका विचार है :

हिंदी में इस भावना का विकास विलायत से लौटे हुए उन मध्यवर्गीय या उच्च मध्यवर्गीय युवकों ने किया जो मास्कर्सवाद से प्रभावित थे, किंतु जिनका ज्ञान भारत के विषय में नहीं के बराबर था। वे लोग भारत के इतिहास और संस्कृति को कुछ अंग्रेजी के माध्यम से ही पढ़ सके थे। हम उनके सद्प्रयत्नों को कम करके दिखाने का प्रयास नहीं कर रहे हैं, वरन् यह बताने का यत्न कर रहे हैं कि प्रारम्भ से ही जो नींच पड़ी उसकी ईंट टेढ़ी गिरी और दुर्भाग्य से उसके ऊपर के इमारत भी जरा तिरछी ही ऊठीं।[4] यह एक विचित्र ऐतिहासिक समझ है कि हिन्दी में प्रगतिशीलता की भावना का विकास कुछ विलायती नवयुवकों की कोशिशों से हुआ।

राष्ट्र प्रेम के छद्म के साथ अन्धकम्युनिष्ट विराध की चिरपरिचित तर्क-पद्धति यहां भी मौजूद है। धर्मवीर भारती के बातों पर ध्यान दे तो उन्होंने भी लगभग इसी शब्दावली में आरोप लगाया- 'यहाँ प्रगतिवाद का प्रवेश तब हुआ जब विदेशों में उसका दिवाला पिट चुका था। विदेशों की इस उतरन को हमने बड़े चाव से दौड़ कर पहना, जबकि हमारे अपने साहित्य में किसी भी प्रगतिवाद से सौगुनी शक्तिशाली प्रवृत्तियाँ पनप रही थी।'[5] इतिहास व्यक्तियों की इच्छा से पूर्णतः स्वतंत्र होता है। प्रगतिशीलता की भावना का जन्म भारत की अपनी परिस्थतियों, जन-आन्दोलनों, ब्रिटिश हुकूमत के दमन चक्र के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं समाजवादी विचारों तेजी से प्रसार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन के विरुद्ध व्यापक रूप के बिखरे हुए जन आक्रोश आदि कारणों से हुआ। 1929 के पश्चात् भारत की परिस्थितियों में एवं जनता की आत्मगत चेतना में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे थे। भारतेन्दु युगीन असंगतियों से मुक्त नये यथार्थवादी रुझान के विकास और देश के परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील रचनाकारों की ईमानदार प्रतिक्रिया से अग्रगामी चेतना वाला साहित्य जन्म ले रहा था, प्रगतिवाद उसी का सुसंगत ऐतिहासिक विकास था।

धर्मवीर भारती द्वारा कही गयी एक बात ध्यान योग्य है कि सन् 1936 से पूर्व ही हिन्दी में प्रगतिवाद से सौगुनी शक्तिशाली प्रवृत्तियाँ पनप रही थी। इस विषय में मुख्य प्रश्न यह है कि क्या 1936 से पहले प्रगतिवाद की तुलना में शक्तिशाली साहित्यिक प्रवृत्ति छायावाद नहीं थी? तो क्या उस छायावाद को जीवित रखना आवश्यक था जो क्रमशः पतन की ओर अग्रसर होता जा रहा था? रामवृक्ष बेनीपुरी ने लगभग ऐसी ही आलोचना प्रस्तुत की है-

'छायावाद का जन्म 1921 की राजनीतिक पराजय की पृष्ठभूमि में हुआ था। 1934 में किसानों और मजदूरों का जो व्यापक आन्दोलन हुआ, उसके कोलाहलों में प्रगतिवाद का जन्म हुआ। प्रगतिवाद मरता नहीं किंतु जिनके हाथों में इसके पालन-पोषण का जिम्मा रहा, उन्होंने पूतना का काम किया- दूध की जगह जहर पिलाया इसे। छायावाद इस जमीन की ऊपज थी। कबीर से लेकर रवींन्द्र तक इसी की परम्परा रहीं। प्रगतिवाद को विदेशों से लाकर हमारे यहाँ रोपा गया। रूस से प्रेरणा मिली, लन्दन में गर्भाधान हुआ। हिन्दुस्तान में पैदा होकर उसका रंग-रूप हिन्दुस्तानी नहीं हुआ।'[6]

आलोचना से पता चलता है कि रामवृक्षजी परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाओं व्यक्त कर रहे हैं। एक तरफ तो वे कहते हैं कि सन् 1934 के किसान मजदूर आन्दोलनों के बीच से प्रगतिवाद साहित्य का आरम्भ हुआ, दूसरी ओर वे कहते हैं कि यह विदेशी हैं ऐसी आलोचना बे सिर, पैर की प्रतीत होती है। सम्भव है कि यह समाजवादी नेता का प्रगतिशील लेखकों के विषय में दुराग्रह पूर्ण आलोचनात्मक बर्ताव है।

प्रगतिवाद के द्वारा निर्देशित की गयी नयी भूमि पर कविवर निराला तनिक विलम्ब से आए, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि निराला में प्रगति के संस्कार अन्यों की अपेक्षा कुछ कम थे या उस काल की अपेक्षाओं को दृष्टिगत करने में उन्होंने विलम्ब किया हो। वस्तुतः निराला की सामाजिक जागरुकता उस समय भी प्रर्याप्त प्रखर थी, जिस समय में निराला एवं पंत छायावाद के कल्पना-लोक तथा सौंदर्य लोक के मुसाफिर थे। 'बादल राग' नामक रचना के अधीर कृषक को विप्लव के बादल को आमंत्रण देते हुए वे बहुत पहले चित्रित कर चुके थे, वैयक्तिक भूमिका पर 'भिच्छुक', 'तोड़ती पत्थर', 'दान', जैसी कृतियों में अपनी तीव्र मानवतावादी संवेदनाओं का भली-भाँति प्रयोग कर चुके थे, अतएव उनके संदर्भ में देर-सवेर का यह प्रश्न बहुत आवश्यक नहीं था। निरा अपनी कव्य-चेतना की स्वाभाविक परिणति के साथ इस नयी भूमि पर सहज ही आये। यथार्थ की इस नवीन भूमि पर उनका प्रवेश सर्वप्रथम निम्नलिखित रचनाओं द्वारा हुआ- 'सड़क के किनारे दुकान है'', 'जलाशय के किनारे कुहरी थी' आदि जैसे कुछ सरल सादे रेखाचित्र। तत्पश्चात् 'कुकुरमुत्ता', 'खिजोहरा' जैसी हास्य व्यंग्य पूर्ण कवितायें निराला जी ने प्रस्तुत कि इन कविताओं में सूर्यकान्त जी ने यद्यपि सामाजिक यथार्थ की कुछ बड़ी साफ शक्लें भी उभारी थी, परन्तु फिर भी बहुतों को उनकी इन कृतियों ने कुछ विशेष प्रभावित नहीं किया। कुछ लोगों ने बताया कि निराला की रचनाओं में कवि का विक्षिप्त मानस ही अधिक दिखाई पड़ता है। परन्तु जब 'बेला और 'नये पत्ते' की अपनी कुछ कविताओं में निराला जी ने उस काल की राजनीतिक तथा सामाजिक हलचलों के विषय में अपनी गहन सूझ-बूझ का परिचय देते हुए कुछ अधिक प्रभावशाली व्यंग्य तथा यथार्थ की अधिक प्रभावशाली छवियाँ उघारी, तब उस समय के लोगों को यह विश्वास हो गया कि यह किसी विक्षिप्त मस्तिष्क वाले कवि की वाणी नहीं, सामाजिक यथार्थ के एक योग्य कवि का स्वर है, जो पुरानी भूमि का त्याग कर यथार्थ की नवीन भूमि पर संपूर्ण चेतना तथा जागरुकता के साथ खड़ा हो गया है। रचना 'नये पत्ते' कि 'देवी सरस्वती' की कविता को इस नये अभियान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है। लोकजीवन का ऐसा वास्तविक चित्रण, साधारण जनता के प्रति करुणा की भावना, सहानुभूति एवं प्रेम का ऐसा आख्यान, जनता की अपनी सरस्वती की ऐसी विशद् उदात्त तथा जीवन्त प्रतिमा, सांस्कृतिक विकास का ऐसा प्रभावी रूप, जो इस रचना में हमें मिलता है, केवल निराला द्वारा ही लिखा जा सकता था।

'नये-पत्ते' के पश्चात निराला की कविता में एक नया परिवर्तन होता है। 'अर्चना' एवं 'आराधना' जैसी भक्ति-भाव पूर्ण रचनायें इस नवीन परिवर्तन का सन्देश देती हैं। इन संग्रहों का मुख्य स्वर यद्यपि भक्ति का है परन्तु इनकी अनेक कविताओं में जीवन तथा समाज की चोटों से आहत हुए कवि निराला की अपनी व्यथा भी पूरी वास्तविकता से कहीं गई है। इन रचनाओं में भी मानवीय संवेदनाओं का दर्शन होता है साथ ही साथ इसमें सामाजिक भूमिका भी व्याप्त है। ध्यान देने योग्य यह है कि निराला की अपनी व्यथा एवं निवेदन में सम्पूर्ण समाज की व्यथा तथा निवेदन की झलक है। परन्तु यह तो है कि व्यवस्था तथा परिस्थितियों के चक्र से विवश होकर यह पूर्ण रूप से सामने नही आ पायी, जिसकी उस समय अत्यधिक मांग थी। फिर भी अपनी प्रेरणाओं में उनके इस काव्य के स्वर भी उतने ही प्रखर हैं जिनमे 'बादल राग 'बेला' तथा 'नये पत्ते' की कुछ कविताओं के। इस बात का प्रमाण इन भक्तिपरक गीतों की- माँ अपने आलोक निखारो, नर को नरक, वास से चारो', 'आशा-आशा हो, लोग देश के मरे', जैसी वे पंक्तिया हैं, जो भक्ति की भूमिका के बावजूद व्यवस्था जन्य विकृतियों तथा अतिचारों की सच्चाई समक्ष लाते हुए कवि की सजग समाजवादी चेतना का पूरी सजीवता से परिचय देती है।

निराला एवं कविवर पंत का उक्त काव्य प्रगतिवादी कविता का आधार निर्मित करता है जिस पर नई-पीढ़ी सरलता से प्रगति कर सकती है। कविता के क्षेत्र में प्रगति का सार्थक मन्त्र इन्हीं के रचनाओं से प्राप्त हुआ। जो अपने पूरे सार्मथ्य के संग गूंजा। संकीर्ण व्यक्तिवादिता के विचारों के स्थान पर प्रशस्त समाजवाद, अतिशय कल्पना, आध्यात्मिक एवं रहस्य के स्थान पर जीवन के यथार्थ एवं समाज के सुख-दुख लोक-जीवन के अनन्य पक्षों को लिए हुए पन्त, निराला एवं उदीयमान एवं नयें संकल्प दीप्त कवि वर्ग का यह अभियान अनेक प्रकार से अत्यन्त आवश्यक हैं। इन कवियों में अपने उद्देश्य तथा जीवन दृष्टि के प्रति अपार आस्था थी, अतः यह बड़े मनोयोग से, तत्कालिक समस्त बाधाओं का सामना करते हुए उसकी ओर आगे बढ़े। विषमता तथा विघटन के इस युग में इनकी सबसे बड़ी शक्ति जनता एवं इनका अपना मनोबल सिद्ध हुआ। ये कवि मुख्य रूप से जनता के प्रति जनता की भाषा में ही जनता के ही मनोभावों को लेकर अपनी रचनाओं को प्रस्तुत कर रहे थे। प्रगतिवाद के कारण उन्होंने संवेदना की जो प्रचण्ड ज्वाला देखीं उसी की गर्मी से इन्हें वस्तु एवं शिल्प, भाव एवं सौन्दर्य के नवीन भूमिकाओं में पहुँकर कविता का एक नवीन इतिहास रचना था। इनस कुछ गलतियाँ भी हुई परन्तु इससे उनकी उपलब्धि का महत्त्व कम नहीं हो सकता। जिस काल में कवियों का एक वर्ग ऐसा भी था जो कुंठा तथा विवशता की गहरी पर्तों में ढका जा रहा था। इन कवियों ने उस काल की नई संवेदनाओं को दृष्टिगत किया।

निराला ने सन् 1935 की 'सच है' शीर्षक कविता में अपनी कविताओं के सामाजिक ज्ञानसंवेदन को परिभाषित करते हुए रेखांकित किया 'जनता का जन-ताका ज्ञान वह।' यही वह जमाना था जब 'अपरिवर्तनवाद के चुस्त रूपकों' वाले टस से

मस न होने वाले साहित्यकारों ने शत्-शत् प्रहारों से निराला को छिन्नमूल कर देने की कोशिश की थी और निराला ने 'आत्मदया' (सेल्फ-पिटि) के संत्रास को व्यक्त किया था :

उड़ी धूल, तन सारा भर गया,
नहीं फूल, जीवन अविकच है-
यह सच है।[7]

निराला ने इसी भावभूमि पर सन' 1937 में 'वनबेला' में अपनी पराजय की गाथा अंकित की और स्वार्थजड़ित समाज पर व्यंग्य किया:

हो गया व्यर्थ जीवन,
मैं रण में गया हार!
सोचा न कभी-
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी।[8]

सन् 1935 में 'सरोजस्मृति' लिखते हुए कवि ने अपनी पुत्री की असामयिक मृत्यु पर आत्मदया के इस संत्रास को एक विशद पटभूमि प्रदान की। पिता के उस दु:ख का भी कवि स्मरण करता है, जो गृहस्वामी की विपन्नता से उत्पन्न होता है: 'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित न कर सका।' ऐसा क्यों? आर्थिक पथ पर अनर्थ था, इसलिए सरोज का पिता 'हारता रहा स्वार्थ-समर।' उसने 'क्षीण का न छीना कभी अन्न' और वह 'लख न सका वे दृग विपन्न।'

स्थिति रक्षा के आत्मसंघर्ष से उत्पन्न 'दुख की गहन अंधतम निशि और 'चिरकालिक क्रंदन की जो मनोभूमि शुरू हुई थी, वह' 1935 में सरोज की मृत्यु से पराकाष्ठा पर पहुँच गई। निराला को तोड़ने और ध्वस्त करने के जितने भी निकृष्ट साहित्यिक असाहित्यिक प्रयास हुए और इस क्रम में उन्हें जिस तरह के आभावों की भंयकर यातना से जूझना पड़ा, उस 'शर-क्षेप' से आहत होकर भी निराला 'हिंदी के सुमनों के प्रति' (सन् 37) शीर्षक कविता में नई पीढ़ी का स्वागत करते हैं। पर अपनी करुण गाथा भी कहते हैं : 'मैं जीईसाज बहुछिद्र आज' हिंदी के 'वसंत के अग्रदूत' की स्थिति कैसी है : ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत।'

'वनबेला' शीर्षक लंबी कविता में निराला के आत्मसंघर्ष का एक रूप व्यंग्बोधक युगचेतना से संवलित होकर एक स्थूल फंतासी का रूप लेता है:

फिर लगा सोचने यथासूत्र - मैं भी होता
यदि राजपुत्र - मैं क्यों ये सदा कलंक ढोता,
ये होते-जितने विद्याधर-मेरे अनुचर
मेरे प्रसाद के लिए विनत-सिर उद्यत-कर,
मैं देता कुछ, रख अधिक, किंतु जितने पेपर,
सम्मिलित कंठ से गाते मेरी कीर्ति अनर जीवन चरित्र
लिख अग्रलेख अथवा, छापते विशाल चित्र।'[9]

साहित्यकार और सच्चे कलाकार किस प्रकार राजपुत्रों, नवाबों, धनी कुल के नेताओं, विलायती शिक्षा प्राप्त झूठे शिक्षितों आदि से यशगान प्रतिष्ठा की प्रतिद्वंदिता में पराजित हो जाते हैं- इस कथ्य पर आधारित 'वनबेला' का व्यंग्य प्रसंग तत्कालीन समाज का सच्चा चित्र है। ध्यान योग्य बात यह है कि निराला 'साम्यवादी नेता के ढोंग का पर्दाफाश करते हैं। सन् 37 में ये कौन से साम्यवादी नेता थे। 'फिर पिता संग जनता की सेवा का व्रत' लेने वाले और मंच पर खड़े होकर साम्यवाद का प्रचार करने वाले।

सन् 35 के बाद निराला का व्यंग्य भरा स्वर आंरभ हो जाता है। क्या रुमानी मनोदशा से समाज के अंतर्विरोधों पर व्यंग्य हो सकता है? व्यंग्य यथार्थ की देन है या रुमानियत की।

निराला ने 35 के बाद कविता के माध्यम से व्यंग्य को एक शक्तिशाली अस्त्र के रूप में आजमाना शुरू किया। 'दान' शीर्षक कविता में विप्रवर की धार्मिकता और मानशीलता का घृणित नग्न रूप दिखाई देता है:

झोली से पुए निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिए,

देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं- 'धन्य श्रेष्ठ मानव!'[10]

सन् 35 की ही 'मित्र के प्रति' कविता में 'प्राचीनता भक्त' रुढ़िवादी और अपरिवर्तनवाद के प्रेमी साहित्य जगत के मठाधीशों पर व्यंग्य किया गया हैः

सत्य, बंधु, सत्य, वहां
नहीं अर्र-बर्र,
वहां नहीं भेक, वहां
नहीं टर्र-टर्र।
हाय रे मयूर-ब्याल
पूंछ से जुड़े।[11]

व्यंग्य और आत्मसंघर्ष एक-दूसरे के पूरक हैं। पर सामाजिक वास्तविकता के वैषम्यपूर्ण पक्षों पर से निराला की दृष्टि हटती नहीं है। 'विधवा', 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर', 'वे किसान की नई बहू की आँखें' आदि में सामान्य वास्तविकता और उनकी विशिष्टताएं- यथार्थ की गहरी पहचान का द्योतन कराती हैं। सन् 45 के लगभग जब अकाल और महंगाई की लपेट में सारी जनता तड़प रही थी, उस समय निराला ने अपनी प्रसिद्ध कजली लिखी :

काले-काले बादल छाए- न आए वीर जवाहर लाल।
कैसे-कैसे नाग मंडलाए, न आए वीर जवाहर लाल।[12]

इसी समय लिखी गई कृषि क्रांति के सारभूत सत्यों को प्रकट करने वाली कविता भी उल्लेखनीय हैः

आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।
यहां जहां सेठ जी बैठे हुए थे
बनिये को आंख दिखाते हुए,
उनके ऐंठाए ऐंठे थे
धोखे पर धोखा खाते हुए,
बैंक किसानों का खुलाओ।[13]

सन् 46 में विद्यार्थियों के देश प्रेम के सम्मान में 'खून की होली जो खेली' कविता तत्कालीन भारत की युवा चेतना का दस्तावेज है।

निराला की सन् 46 के दौर की सर्वश्रेष्ठ कविता 'देवी सरस्वती' अपनी अंतर्वस्तु में एक ओर यदि सामंत विरोधी है, वहीं दूसरी ओर कृषि सभ्यता के ग्रामीण भारतवर्ष की देवी सरस्वती का सभी रंग-रेखाओं में चित्र उपस्थित करती है। किसानों की दुरवस्था सामंती उत्पीड़न के कारण है। जमीन बटाई पर लगा कर जमींदार और सूद पर रुपया लगाकर महाजन किस प्रकार भोले-भाले कर्मनिरत किसानों की अंतिम कौड़ी तक छीनकर धनी हुए हैं, इसका वर्णन : 'जमींदार की बनी, महाजन धनी हुए हैं। जग के मूर्त पिशाच, धुर्तगण रानी हुए है।'[14] उत्पीड़ित ठेठ ग्रामीण जनसमूह अपनी दीनता और भूख के बावजूद लोकसंस्कृति का कैसा रूप रचे हुए हैं, कितना उन्नत और खुला हुआ

मुक्त समीरण से धीरता, धरा की छूरी। पके खेत, सोने के जैसे
अंचल लहरे। नव मनोज के मनोभाव लोगों में गहरे प्रतिसध्या
समवेत हुए ग्रामीण सभ्यजन। ढोलक और मजीरे पर करते हैं
गायन फाग हो रहा, उठ रहा है धुन धमार की। होली, चैती, लेज, गा रहे हैं सवांर की।[15]

राष्ट्रीय संस्कृति की यह सरस्वती- हिंदी- ऊर्दू भाषी ग्रामीण आबादी की ही नहीं पूरे हिंदुस्तान की देहाती आबादी की सभ्यता का आलेख बन गई है।

समसामयिक वास्तविकताओं के अनेक तथ्यों और पहलुओं को निराला जैसी समृद्ध काव्य संवेदना के साथ उत्कीर्ण करते हैं, वैसी समृद्ध काव्य संवेदना नए प्रगतिशील कवियों के लिए दिशा संकेत का काम करती है। पर पंत की यथार्थवादी संवेदना को लेकर अनेक प्रश्न उठते हैं।

राजनीतिक आंदोलनों, साहित्यिक मतवादों आदि के कारण 'युगात' की कविताओं की सृष्टि हुई है या कवि की अपनी अनुभूति की प्रेरणा से? श्रमजीवियों का रेखांकन करते हुए 'युगांत' का कवि कहता है: 'ये नाप रहे निज घर का मग, कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग, भारी है जीवन, भारी पग।' इस प्रकार के रेखांकन में क्या अनुभूति का स्वाभाविक प्रवाह है? इसी काल में लिखित निराला की 'तोड़ती पत्थर' से तुलना करने पर दोनों की संवेदना का अंतर स्पष्ट होता हैं। 'वह तोड़ती पत्थर' देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर वह तोड़ती पत्थर' 'गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार-बार प्रहार-सामने तरुमालिका अट्टालिका, प्राकार।' दोपर की लू में 'रूई ज्यों जलती हुई भू', गर्द चिनगी छा गई',-फिर भी, 'वह तोड़ती पत्थर'।

सूर्यकान्त जी की इस कृति में तथाकथित कल्याण करने की इच्छा से प्रेरित मतवादी कि 'उद्धारक दृष्टि' नहीं है। कवि सम्वेदना पूर्वक बड़ी अट्टालिका के आगे लगी तरुमालिका की सीमा से परे, लूह और गर्द में पत्थर तोड़ने वाली एक मजदूरनी का गतिचित्र प्रदर्शित करता है, ऐसा गतिचित्र जिसमें परवशता एवं अभाव को व्यक्त करने वाली आँखें कवि की तरफ ताकती है। 'देखकर कोई नहीं, देखा मुझे उस दृष्टि से, जो मार खा रोई नहीं।'

इस पंक्ति में कवि एवं मजदूरनी के मध्य गहरी संवेदना देखने को मिलती है। कवि की आत्मसंघर्ष की पीड़ा से उनकी रचनाओं में उत्पन्न संवेदना वह केवल अपने लिए प्रदर्शित नहीं करता।

निराला ने वादों या सिद्धान्तों की अभ्यर्थना में कोई कविता नहीं रची, अतः भविष्य चिन्तन का काव्य छद्म उनके यहाँ नहीं मिलता। इतिहास के आगे की गति की पहचान जीवन में किये जाने वाले संघर्षों एवं जनता द्वारा आयोजित आन्दोलनों के सानिध्य से उत्पन्न होती है।

स्त्रीपराधीनता एवं प्रेम को कुंठित करने वाले सामंती बन्धनों से प्रेमिका की मुक्ति निराला जी ने अपनी सन् 1935 में आने वाली कविता 'प्रेयसी' में दिखलाई थी। उसके तत्पश्चात् 'अष्टम एडवर्ड के प्रति' नामक कविता में कवि निराला ने पुरुष पर हावी सामंती बंन्धनों से मुक्ति मिलने पर उसके प्रेम की स्वतंत्रता दिखलाई साम्राज्य त्याग कर अष्टम एडवर्ड ने अपनी प्रेमिका को स्वीकार किया, 'धन के मान के बाँध को जर्जर कर', नवसंस्कृति के उर के बुलावे से अपना उर मिलाकर भेदों का क्रम तोड़कर:

सिंहासन तज उतरे भू पर,
सम्राट दिखाया
सत्य कौन सा वह सुंदर।[6]

प्रेम के इस प्रगतिशील यथार्थवादी सच की स्थापना की वजह से एडवर्ड से आलिंगित हुई 'सभ्यता यह नूतन'। निराला निजी विशिष्टताओं के बावजूद सामंती बन्धनों, रुढ़ सामाजिक मर्यादाओं एवं कुलशील के प्रश्नों से कुंठित हो रहे प्रेम की मुक्ति के भाव चित्र जीवंत हैं फिर भी सम्राट की प्रेममुक्ति तथा मजदूरनी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के मुक्ति में कितना अंतर है।

सन् 1934 से 1935 के पश्चात् निराला सामाजिक यथार्थ के जिन प्रश्नों से जूझ रहे थे नई पीढ़ी के अनेक रचनाकार भी उन्हीं प्रश्नों से जूझते नजर आये। इन रचनाकारों में ऐसे लोग भी सम्मिलित थे जो प्रारम्भ में छायावादी गीत या कविताएँ लिखा करते थे। इस प्रकार प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रसार सर्वथा नई यथार्थ दृष्टि लेकर आने वाले कवियों से लेकर सनेही मण्डल एवं उग्र राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों तक हो चुका था। निराला द्वारा यथार्थवाद दौर में लिखि रचनाओं की कथावस्तु एवं शैली का उन रचनाकारों पर जो नई पीढ़ी के थे काफी प्रभाव पड़ा, परन्तु इन लोगों ने स्वयं अपने लिए एक स्वतंत्र रचना पथ भी निर्धारित करना उचित समझा। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी कृतियाँ भी देखने को मिलती हैं जो निराला की यथार्थवादी रचनाओं के प्रकाशन से पूर्व ही छिटपुट छोटे-मोटे रूप में कहीं-कहीं छापी गयी थीं।

निराला की प्रारम्भिक दौर की कविताएं, जैसे 'विधवा' 'भिक्षुक' 'दान', 'वे किसान की नयी बहु की आँखें', 'वह तोड़ती पत्थर', उन्हें प्रगतिशील रचनाकार के रूप में स्थापित कर देती है। यहां उनकी करुणा, सहानुभूति और संवेदना का उन्मुक्त प्रकाशन हुआ है। वस्तुतः निराला की कविताओं की प्रगतिशील उनकी मानववादी दृष्टि का ही अंग है। अपनी परवर्ती कविताओं में निराला अधिक यथार्थवादी हुए हैं। समाज की विकृतियों, शोषितों की कठिनाइयों, राजनीतिज्ञों के दोहरे मानदण्डों का चित्रण

करने के कारण, आलोचकों ने इन कविताओं को प्रगतिवादी कहा है। इनमें निराला ने कहीं-कहीं व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, विशेषकर राजनीतिज्ञों की असलियत को उघाड़ने में। निराला की यथार्थवादी कविताओं में क्रान्ति, विप्लव और वर्ग-संघर्ष तथा वर्ग-चेतना के स्वर मिलते हैं। 'बेला' और 'नये पत्ते' में इस मिजाज की कई कविताएँ हैं। इन्हीं कविताओं के आधार पर उन्हें सर्वहारा का मसीहा कहा गया है। सम्भवतः इन कविताओं पर प्रगतिवादी आन्दोलन का कुछ प्रभाव रहा हो, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि निराला- जैसे महान कवि सिद्धांतों का अनुगमन नहीं करते, वरन् उनकी कविता से स्वयं सिद्धांत निर्मित होते हैं। वस्तुतः प्रगतिवादी आन्दोलन के आगमन के पूर्व ही उनकी कविता में समाज के दीन-हीनों, शोषितों, किसानों, मजदूरों श्रमिकों का चित्रण होने लगा था। समाज के इन वर्गों के साथ उनकी सहानुभूति तथा शोषक वर्ग के प्रति तिरस्कार उनकी प्रारम्भिक कविताओं से लेकर अन्तिम कविताओं तक मिलता है। इन्हीं कविताओं के आधार पर उन्हें जनवादी कहा जाता है। निराला ने समाज के इन वर्गों की समस्याओं को अपने जीवन में बड़े नजदीक से देखा था और उनमें अपरिमित मानवीय संवेदना थी, अतः इन्हें अपनी काव्य-वस्तु बनाया। अपनी कविता में निराला एक साथ अद्वैतवादी, प्रगतिवादी, जनवादी, मानवतावादी, और यर्थाथवादी हैं। सारे सिद्धान्त इस महाकवि से गौरवान्वित होते हैं। निराला की यथार्थवादी दृष्टि का पूर्ण विकास हमें उनके गद्य-साहित्य में उपलब्ध होता है। 'देवी', 'चतुरी चमार', 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चमेली', में निराला ने जन-जीवन का बड़ा ही सशक्त और समर्थ चित्रण किया है।

युग की विकृतियों और विषमताओं के बावजूद, निराला का आस्थावादी स्वर कभी डिगा नहीं है। उन्हें आस्था, विश्वास, संश्लेषण और संयोजन के कवि कहना उचित होगा। यह उनकी व्यावहारिक वेदान्त में अटूट आस्था का परिणाम है। मानव में उनकी आस्था कभी विचलित नहीं हुई। वे आरम्भ से लेकर अतं तक मानवतावादी भूमि पर प्रतिष्ठित रहे। कहीं भी वे समाज-निरपेक्ष नहीं हुए। प्रचुर सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण ही उनकी कविता में सामन्त-विरोधी मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई। वे भारतीय नवजागरण के कवि हैं और उनकी कविता को समझे बगैर भारतीय संस्कृति के उस दौर को समझना कदाचित् कठिन होगा उनकी कविता में एक ओर जीवन की व्यापकता, विविधता और अतल गहराई है तो दूसरी ओर अनुभव की प्रामाणिकता कविता का यह औदात्य विश्व-स्तर पर खोज पाना कठिन होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला की प्रगतिवादी कविताओं में छायावाद का पूर्ण अवसान हो जाता है।

संदर्भ-सूची

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, आधुनिक हिन्दी कविता, पृष्ठ 56
2. जनेश्वर वर्मा (1976), हिन्दी काव्य में मार्स्सवादी चेतना', ग्रंथम, कानपुर, पृ.305.06
3. जनेश्वर वर्मा, 'हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना', ग्रंथम,
4. रांगेय राघव (1954), 'प्रगतिशील साहित्य के मानदंड', सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, पृ. 7
5. धर्मवीर भारती (1949), 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा', साहित्य भवन लि. प्रयाग, पृ. 14
6. 'जनवाणी' मार्च 1948, 'प्रगतिवाद- उसके बाद?
7. 'अनामिका' (2015), भारतीय भंडार, प्रयाग, पृ. 44
8. 'अनामिका'(2015), भारतीय भंडार, प्रयाग, पृ. 84
9. 'अनामिका'(2015), भारतीय भंडार, प्रयाग, तृतीय संस्करण, पृ. 84
10. 'अनामिका' (2015), भारतीय भंडार, प्रयाग।
11. 'अनामिका' (2015), भारतीय भंडार, प्रयाग, पृ. 24-25
12. 'बेला' (1962), निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, पृ. 84
13. 'बेला' (1962), निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, पृ. 78
14. 'बेला' (1962), निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, पृ. 73
15. 'बेला' (1962), निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, पृ. 75
16. 'अनामिका', पृ. 27

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 73-75
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

'ग्राम्या' की प्रगतिशील चेतना

*रीना मद्धेशिया**

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। कई अप्रचिलत धारणाएँ और स्थितियाँ पुरानी पड़ जाती हैं। इसी कारण जो आदर्श और मूल्य किसी कालखण्ड के प्रतिमान होते हैं, वही कालान्तर में समाज के लिए बोझ बन जाते हैं। आधुनिक भारत की बदलती स्थितियों में ऐसा बहुधा सम्भव है। सुमित्रानंदन पंत अपने समय के सजग साहित्यकार थे। वे बदलते भारत की अनुगूँजों को सुन रहे थे। 'ग्राम्या' कवि की काव्य संवेदना में बदलाव की सशक्त साक्षी है।

'ग्राम्या' की रचना 'कालाकांकर' में निवास करते हुए पंत जी ने की थी। उस समय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृति बदलाव तेजी से हो रहे थे। इस बदलते परिवेश से पंत जी अछूते नहीं रहे। कोमल कल्पना के कवि माने जाने वाले पंत जी को महात्मा गाँधी से प्रेरणा मिली। स्वभावतः अपने आस-पास की बदलती हुई परिस्थितियों का गहन अध्ययन किया, तथा 'ग्राम्या' जैसी रचना के माध्यम से पाठकों को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विसंगतियों से परिचित करा सके। आत्मचिंतक एवं जागरुक कवि होने के कारण पंत जी ने मानव के भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन में सकारात्मक परिवर्तन की कल्पना की।

'ग्राम्या' की अधिकांश कविताओं में ग्राम-जीवन का सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में–''ग्राम्या में कवि ने ग्राम के समस्त रूप को, वहाँ के नर-नारी को, नित्य-प्रति जीवन को, उसकी संस्कृति को व्यष्टि रूप में नहीं, समष्टि रूप में देखा है। ग्राम, ग्राम-कवि, ग्राम-दृष्टि, ग्राम-चित्र आदि कविताओं में ग्राम का अखण्ड चित्र अंकित किया है।''[1] कवि ग्रामों की दैन्य अवस्था देखकर दुःखी होता है वह देखता है कि–

''ज्ञान नहीं है, तर्क नहीं है, कला न भाव विवेचन।
जन है जग है क्षुधा काम इच्छाएँ जीवन साधन॥''[2]

ग्राम के सामान्य जन सुसंस्कृत नहीं हैं, न ही सभ्य हैं। उनके पास तर्क की शक्ति नहीं है, अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं के लिए भी उन्हें बहुत संघर्ष करना पड़ता है। उन्हें इतना ज्ञान नहीं है कि इन परिस्थितियों से सामना करते हुए आत्म-विकास कैसे करें। परन्तु फिर भी कवि का यह विश्वास है कि–

''मनुष्यत्व का मूल तत्व ग्रामों में ही अन्तर्हित।
उपादान भावी संस्कृति के भरे हैं यहाँ अविकृत॥''[3]

इतनी कमी होने के पश्चात् भी ग्रामों में ही मानवता विद्यमान है। भावी संस्कृति एवं सभ्यता का उद्गम स्थल यही है।

'ग्राम युवती', 'ग्राम नारी', 'गाँव के लड़के', 'ग्राम वधु', 'वह बुड्ढा', 'वे आँखें', 'मजदूरनी' आदि ऐसी कविताएँ हैं, जिनमें पंत जी ने साधारण ग्राम जन के सुख-दुःख को भाव प्रधान वाणी के साथ चित्रित किया गया है।

'ग्राम-देवता', 'भारत ग्राम' में ग्राम संस्कृति का दर्शन किया जा सकता है। इन कविताओं में पंत जी का विश्लेषण करने पर उनमें प्रौढ़ विवेकशीलता का परिचय मिलता है। इन रचनाओं में बौद्धिकता के साथ-साथ कोमल भाव के भी दर्शन होते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में यह विशेषता देखी जा सकती है–

''वह मग में रुक मानो कुछ झुक आंचल सम्भालती।
फेर नयन मुख पा प्रियपद की आहट आ ग्राम युवक''
प्रेमी याचक! जब उसे ताकता है इकटक,
उल्लासित चकित वह लेती मूँद पलक पट।''[4]

प्रस्तुत पंक्तियों में 'पंत जी' ने चतुरता दिखाते हुए विवेक और भावना दोनों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। 'ग्राम्या' में पंत जी ने ग्रामीणों के प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट की है। पंत जी ने ग्रामीण जीवन को बहुत निकट से देखा है, फिर भी सुख-दुःख, हर्ष-विषाद का चित्रण बहुत गहराई से किया है।

* *शोध छात्रा (हिन्दी विभाग), जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार*

'ग्राम्या' में कवि ने वैचारिकता के साथ-साथ कवित्व का भी सुन्दर समावेश किया है। एक और खेतों की हरियाली से पूरी पृथ्वी ढँकी हुई है, जहाँ फूल, ओस की बूँद, कोयल की कूक, सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की चाँदनी सब कुछ है। वहीं दूसरी ओर इनका आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास रुका हुआ है। ये व्यक्तिगत राग-द्वेष से पीड़ित हैं। पंत जी इनकी इस स्थिति में परिवर्तन की अनिवार्यता पर बल देते हैं।

पंत जी का नारी-चित्रण भी बहुत मार्मिक है। ग्रामीण स्त्रियों पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। यद्यपि वह सुसंस्कृत नहीं हैं, सभ्य नहीं है, उसके होठ रंगे हुए नहीं हैं, सम्मोहन की विद्या उसे नहीं आती है। वह एक सरल स्त्री है, वह कृत्रिम प्रेम से बहुत दूर है। शील व सच्ची सेवा उसका गुण है जो उसे मानवी की प्रतिष्ठा दिलाती है–

''वह स्नेहशील सेवा ममता की मधुर मूर्ति।
यद्यपि चिर दैन्य अविद्या के तम से पीड़ित॥
कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्ति।
अग्रजा नारी की–यह ग्राम-वधु निश्चित॥''[5]

'ग्राम युवती' का चित्रण पंत जी करते हुए कहते हैं कि वह कठिन कार्य कर रही है, आगे का भी समस्त जीवन कठिनाइयों को समर्पित होने वाला है फिर भी हंस रही है–

''रे दो दिन का उसका यौवन!
दुःखों में पिस, दुर्दिन में घिस,
जर्जर होता उसका तन।''[6]

यह रचना यथार्थवादी चित्रण का श्रेष्ठ नमूना है। ग्राम नारी, ग्राम युवती का चित्रण हम देख चुके हैं, ग्राम के लड़के भी उनसे किसी स्तर पर सुखी नहीं हैं। गाँव-समाज के भविष्य कहे जाने वाले, भावी समाज के इन कर्णधारों का पालन-पोषण कैसे होता है, उनकी शिक्षा-दीक्षा का क्या स्वरूप है, इसका चित्रण पंत जी की पंक्तियों से मिलता है–

''मिट्टी से मटमैले तन, अधफटे कुचैले जीर्ण वसन।
कोई खण्डित कोई कुण्ठित, कृषबाहु पसलियाँ रेखांकित,
टहनी सी टाँगें बढ़ा पेट, टेढ़े-मेढ़े विकलांग घृणित॥''[7]

सहज ही अंदाज लगाया जा सकता है कि इस दुर्दशा में भावी समाज का सार कैसे उठाया जा सकता है। पंत जी के लिए यह असहनीय है। ग्राम-जीवन के कुछ ऐसे दृश्य हैं जो आपको सोचने पर विवश कर देते हैं कि मनुष्य-जीवन ऐसा होता है, जिसमें केवल दुख, अभाव, कष्ट की ही प्रधानता है, और केवल ऐसा ही रहा तो मनुष्य का जीवन-यापन कठिन एवं असह्य हो जायेगा। परन्तु यह केवल एक पक्ष है। ग्रामीण जीवन सदियों से दुःख-दरिद्रता शोषण झेलते हुए अपने करुण-क्रन्दन से भरे जीवन में मनोरंजन के साधन जुटाए हुई हैं, जिनका आधार नृत्य एवं संगीत है। 'पंत' जी ने 'धोबियों का नृत्य', 'चमारों का नृत्य' इन दो कविताओं में ग्रामीणों की कला का सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण किया है। इस तरह की कविताओं के माध्यम से उन्होंने समाज के वंचित एवं दलित वर्ग को भी अपनी रचनाशीलता से सुशोभित किया है।

'चमारों के नृत्य' नामक कविता में यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार व्यंग्य का सहारा लेकर शोषित किसान अपने शोषकों के प्रति असंतोष प्रकट करते हैं, क्योंकि उनकी ऐसी स्थिति नहीं है कि, प्रत्यक्ष विरोध प्रकट कर सकें। इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिक वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सजग है, क्योंकि एक पशु भी अपने प्रति होने वाले अत्याचार का प्रतिकार अपने तरीके से करता है तो यहाँ पर मानव की बात हो रही है। अगर वह पढ़ा-लिखा नहीं है, सुसंस्कृत नहीं है, सभ्य नहीं है लेकिन संवेदनशील तो है, मानवता तो उसके भीतर प्रतिष्ठित है, इसको पतित, निकृष्ट, कलाहीन कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

'ग्राम्या' में प्रकृति-चित्रण के भी विविध रूप मिलते हैं। 'गुलदावदी' नामक कविता के माध्यम से उन्होंने कहा है कि यहाँ तृण-तृण में जीवनधारा व्याप्त है। फूलों की उज्ज्वलता अर्न्तमन को छू लेती है। वह अपने कोमल स्पर्श से मानव का दुःख हर लेती है।

'ग्राम श्री', 'गंगा', 'खिड़की से', 'आँगन से' आदि कविताओं में हमें प्रकृति-चित्रण देखने को मिलते हैं जो ग्रामीण विशेषता का परिचय देते हैं, ग्रामीण प्रकृति के वैभव का चित्र पंत जी ने खींचा है–

''रोमांचित सी लगती वसुधा, आयी जौ, गेहूँ में बाली।
अरहर, सनई की सोने सी, किंकिड़िया है शोभाशाली॥''
उड़ती मीनी तैलाक्त गन्ध, फूली सरसों पीली-पीली।
लो हरित धरा से झाँक रही नीलन की कलि तीसी-नीली॥''[8]

यह प्राकृतिक सौन्दर्य नयी चेतना से भरने वाला है। इनकी रचनाओं का प्राकृतिक वर्णन केवल हिन्दी के लिए नहीं सम्पूर्ण साहित्य के लिए अद्‌भुत है। पंत जी के अनुसार गाँव की प्रकृति एक सार्थक सत्य है जो समस्त जन को ऊर्जा प्रदान करने वाली है।

पंत जी के काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर भी स्पष्ट रूप से सुनाई देता है। पंत जी की भारत माता गाँवों में निवास करती है, जहाँ श्रमिक हैं, किसान हैं, शोषित हैं। पंत की भारत माता भी उन्हीं की तरह निर्धन एवं दुःखी हैं–

''भारत माता
ग्राम वासिनी
-- --
वह अपने घर में प्रवासिनी''[9]

भारत माता आज अपने ही घर में प्रवासिनी बनी हुई हैं, उसके तीस करोड़ पुत्र नग्न, अशिक्षित एवं भूखे हैं, उनका मस्तक झुका हुआ है। यह भारत-माता तरुतल निवासिनी बनी हुई है। उसकी धन-सम्पदा विदेशी ले जा रहे हैं। 'राष्ट्रगान' नामक कविता भी इसी भाव से प्रेरित है। वास्तव में यह शोषित जनता का सामूहिक गान है–

''जन भारत हे
जाग्रत भारत हे
कोटि-कोटि हम श्रम-जीवी सुत।''[10]

'भारत-माता कविता में कवि नूतन निर्माण का आकांक्षी है–

पंत जी सदियों से चले आ रहे खण्डहर निष्क्रिय मन लक्षहीन जर्जर जीवन को फिर से सक्रिय बनाना चाहते हैं।

भाषा एवं भाव के भी सामंजस्य में पंत जी बहुत चतुर हैं। उन्होंने ब्रजभाषा, फारसी और अंग्रेजी की भी सहायता ली है। तद्‌भव और देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है। इसलिए इनकी भाषा में अपूर्व गति एवं वेग है। जो पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'ग्राम्या' के माध्यम से 'पंत जी' समाज में विकासात्मक परिवर्तन एवं नवीनता की स्थापना करना चाहते हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संघर्षों की पूर्ण चेतना उनके अन्दर व्याप्त थीं। पंत जी के इन्हीं गुणों के कारण हिन्दी में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। हिन्दी कविता को उन्होंने नवीन भाषा, नवीन रूपरेखा तथा नवीन कला प्रदान की।

पंत जी ने 'ग्राम्या' में जिन समस्याओं को उठाया है, वह आज भी गाँव में देखने को मिलती है। भले ही उसकी मात्रा कम हो गई हो। इनकी कविताओं में गहरा विद्रोह है. सांस्कृतिक परिवर्तन है जो प्रगतिवादी चेतना का परिचायक है। इसी कारण 'ग्राम्या' को पंत की काव्य चेतना का नया पड़ाव माना जाता है। यह छायावादी आदर्शों एवं प्रतिमानों का सार्थक प्रयास है, जो कालान्तर में प्रगतिशील कविता के रूप में बदल जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. 'डॉ0 नगेन्द्र', सुमित्रानन्दन पंत : पृ0 114
2. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'ग्राम-दृष्टि', पृ0 32
3. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'ग्राम-दृष्टि', पृ0 132
4. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'ग्राम-युवती', पृ0 133
5. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'ग्राम-नारी', पृ0 136
6. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'ग्राम-युवती', पृ0 135
7. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'गाँव के लड़के', पृ0 138
8. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'ग्राम श्री', पृ0 141
9. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'भारत-माता', पृ0 148
10. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली खण्ड (2) : 'राष्ट्रगान', पृ0 151

*****

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 76-79
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

गीतांजलि श्री की कहानियों में युग संवेदना

*अनिता गोयल**

साहित्यकार को सृजन की प्रेरणा देने वाली शक्तियुगीन संवेदना ही है। युग की संवेदना से संवेदित होकर ही रचनाकार रचना कर्म में प्रवृत्त होता है।

युग संवेदना शब्द दो शब्दों का सामासिक पद है, जिसका विग्रह होगा–युग की सम्वेदना। अब सम्वेदना शब्द का अवलोकन किया जाये तो प्रतीत होगा कि वेदना के साथ सम् उपसर्ग जुड़ा हुआ है। जिसका अभिप्राय होगा सहानुभूति, समान वेदना, सबकी वेदना इत्यादि।

समय के परिवर्तन के साथ युग की संवेदनशीलता भी बदलती है, जो घटनाएँ एक समय में मन को गहरे तक प्रभावित करती थीं, हो सकता है वही घटना आज प्रभावित न कर पाएँ। यह सब युग के अनुरूप होता है।

डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त संवेदना शब्द को परिभाषित करते हुये लिखते हैं–''साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदशा या अवस्था को संवेदना कहते हैं, जो सृजन की प्रेरणा, रचना विधान की क्षमता एवं लोकजीवन के प्रति आस्था प्रदान करती है।''[1]

डॉ0 अज्ञेय संवेदना शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि–''संवेदना रचना कर्म को जीवित रखने वाली ऊर्जा है। हाँ अनुभव, संवेदना की तेजस्विता को बनाये रखने वाला एक विशिष्ट ईंधन है। अनुभव को ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने वाला माध्यम भी संवेदना है।''[2]

वास्तविकता यही है कि अनुभव का संवेदना से गहरा सम्बन्ध है।

डॉ0 अज्ञेय एक स्थान पर लिखते हैं कि–''जैसे-जैसे जीवन दर्शन बदलता है, वैसे-वैसे संवेदना भी बदलती रहती है।''[3]

आज का लेखक वर्तमान जटिल यथार्थ, पल-पल परिवर्तित परिवेश, बदलते हुए जीवन मूल्यों को विभिन्न कोणों से अनुभव करता है। यह परिवर्तन हमारे जीवन दर्शन को भी जैसे बदलता जा रहा है। इस बदले हुए जीवन दर्शन को विभिन्न स्वरूपों में उद्घाटित करता, आज का लेखक अनुभव व संवेदना का सहारा लेता है।

आज के कथा साहित्य के सन्दर्भ में देखें तो युगीन अनास्था, मृत्युबोध, जिजीविषा, अकेलापन, अस्तित्वबोध, दैहिकता, राग-द्वेष, अवैध सम्बन्ध जैसी संवेदनाएँ युगीन संवेदनाएँ कही जा सकती हैं।

एक खास सिग्नेचर ट्यून में लिखने वाली कथाकार गीतांजलि श्री की कहानियाँ अपने युग की, अपने परिवर्तित युग की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति सफलतापूर्वक करती है। स्वतन्त्रता के बाद जो युग हमें प्राप्त हुआ है, वह मोहभंग टूटन, संत्रास, पीड़ाबोध, पर्यावरण ह्रास, धार्मिक कट्टरता जैसी संवेदनाओं को भी अपने में समाहित किये हुए है।

गीतांजलि श्री की प्रथम कहानी 'बेलपत्र' ही संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में सफल प्रस्तर प्रमाणित होती है। श्री जी के तीन कहानी संग्रह क्रमशः–'अनुगूँज', 'वैराग्य', 'यहाँ हाथी रहते थे' प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम संग्रह का प्रकाशन वर्ष 1991 है। उस समय की युगीन चेतना को यदि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैश्विक स्तर पर देखा जाये तो यह युग साम्प्रदायिकता, परमाणु आयुध संकट, पर्यावरणीय चेतना, मध्यमवर्गीय जीवन शैली, रिश्तों की टूटन, स्वार्थता का समय है। इन सभी संवेदनाओं की संकलित अनुभूति श्री जी की कहानियों में मिलती है।

हम यहाँ युगीन संवेदनाओं के सन्दर्भ में गीतांजलि श्री जी की कहानियों का अवलोकन करेंगे–

(1) साम्प्रदायिकता–पिछली सदी के अन्तिम दो दशक साम्प्रदायिकता की दृष्टि से हमारे देश का कलुषित पक्ष उजागर करते हैं। संवेदनशील कथाकार की कहानी 'आजकल', बेलपत्र', 'यहाँ हाथी रहते थे' में इस संवेदना की गहराई अनुभव की

* *व्याख्याता (हिन्दी विभाग). राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)*

जा सकती है। वर्षों से स्वयं को सैक्युलर मानते हुए भी हम अन्दर से कितने नॉन-सैक्युलर हैं। इसका प्रमाण है–'बेलपत्र' कहानी। यह कहानी साम्प्रदायिक दंगों की अपेक्षा साम्प्रदायिकता की जड़ों की पड़ताल करती है, जो हमारे समाज के माध्यम से हमारे मन के भीतर तक पहुँची हुई है।

'यहाँ हाथी रहते थे' कहानी साम्प्रदायिक दंगों के कारण अपना घर, परिवार खो चुकी वृद्ध स्त्री की कहानी है। 'आजकल' कहानी साम्प्रदायिक दंगों की अफवाह से उत्पन्न भय की कहानी है–''चूँकि अफवाह उड़ी है कि घर जलेगा और वह भी और वैसे एक को जला देना दोनों को जला देना ही होगा और वैसे ऐसी अफवाह उड़ा देना भी दोनों को जला देना है।''[4]

(2) प्रकृति के प्रति संवेदना–एक साक्षात्कार में गीतांजलि श्री कहती हैं कि–''प्रकृति मेरे लिए बहुत उम्दा चीज है, जिसके आगे मैं स्वयं को बिल्कुल बौना महसूस करती हूँ।''[5]

प्रकृति के लिए उनका यह प्रेम, सम्मान उनकी कई कहानियों में दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति की सुन्दरता का बखान 'मार्च माँ और साकुरा', 'बुलडोजर' जैसी कहानियों में है। वहीं 'जड़ें' कहानी में दिन-प्रतिदिन काटे जा रहे पेड़ों की समस्या की ओर लेखिका ध्यान आकर्षित करती है। कथा निवेदिका सरल शब्दों में पेड़ों के फायदे गिनाती है–

''ये नीम है लोगों, चनचनाया स्वर था मेरा। उसके आगे आँख बन्द करके हाथ बढ़ा दो, जो वह गिरा दे उसे नेमत समझो। शुद्ध हवा देगा, दवा देगा। इसके बीच से ही तो निकलता मारगोसा का तेल जो कोढ़ी को लगा दो।''[6]

(3) अवैध सम्बन्ध–समाज वैवाहिक संस्था को मान्यता देता है। इस संस्था से इतर शारीरिक सम्बन्ध अवैध सम्बन्ध के अन्तर्गत ही आते हैं। ऐसे अवैध सम्बन्ध वर्तमान युग में जैसे सामान्य हो गये हैं। इन अवैध सम्बन्धों के पीछे निहित संवेदना को श्री जी की कहानी 'लौटती आहट', 'थकान', 'नाम' में देखा जा सकता है। यह दैहिक सम्बन्ध 60 वर्ष के पुरुष स्त्री के बीच है तो कहीं नव-विवाहित दम्पतियों के भी अन्य के साथ सम्बन्ध हैं। गीतांजलि श्री की कहानी 'नाम' में तो एक स्त्री को केवल शारीरिक आवश्यकता के लिए अवैध सम्बन्ध में लिप्त दिखाया गया है।

(4) महानगरीय बोध–महानगरों में कार्य करने वाले युवक-युवतियाँ प्रेम जैसी सरस भावना से रिक्त होते जा रहे हैं। तेल की चिकट से भरे मेजपोश की तरह ही उनका जीवन हो चुका है। खुली हवा में खुलकर सांस लेने की फुर्सत भी यहाँ नहीं है। 'पंख' कहानी इसी संवेदना को उजागर करती है। काम की अधिकता और आपसी स्नेह की रिक्तता जैसे एम.एन.सी. कम्पनी में काम करने वालों की नियति है–

''तंग आ गई मैं काम से, मैंने फाइल को घूसा जड़ा।''[7]

'पंख' कहानी के अतिरिक्त 'वे तीन' कहानी में महानगरीय संवेदनहीनता की कहानी है। जहाँ तीन मित्रों के बीच एक मित्र की मृत्यु हो जाने पर भी ध्यान केवल औपचारिकता पर है। भावनाओं का स्रोत अहं के पत्थर से ढँका पड़ा रहता है।

(5) मध्यम वर्गीय चेतना–'पिला की माने फय' रिश्ते जैसी कहानियाँ मध्यम आय वाले व्यक्ति की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करती है। कम आय में स्टेटस भी मेन्टेन करना है। इसलिए अन्दर चाहे कपड़े फटे हुए हैं पर ऊपर पहनने वाले कपड़े नये होने चाहिए। दिखावा हमारी सोच पर हावी हो रहा है। 'रिश्ता' कहानी एक नौकरीपेशा आदमी की कहानी है। मध्यम वर्ग भविष्य की चिन्ता में अपने आज को परेशानी में डाले रखता है। आज मरते हैं कल बच पाएँ इसलिए। मध्यम वर्गीय इसी संवेदना को वाणी देती है प्रस्तुत कहानियाँ।

(6) पीढ़ियों का संघर्ष–जिस प्रकार परम्परा और आधुनिक मूल्य कभी एक साथ मिल नहीं पाते हैं। उसी तरह पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी कभी एक विचार नहीं हो सकते दोनों एक दूसरे के साथ अनफिट रहते हैं। 'मेरी गो राउण्ड' कहानी में पिता रिटायर्ड अफसर हैं। अब भी अपने अफसर बेटे दीपक को अपना बेटा ही मानते हैं, लेकिन आधुनिक दीपक और उसकी पत्नी की सोच के साथ पिता की सोच सामंजस्य नहीं बिठा पाती। यह मानसिक टकराव पुरानी पीढ़ी को निढ़ाल कर देता है।

'मार्च माँ और साकुरा' की माँ पुरानी पीढ़ी की है परन्तु उसकी जीवन्तता जैसे उसे सत्रह वर्ष की युवती बना देता है। परन्तु नयी पीढ़ी की माँ को यह जीवन्तता भी स्वीकार्य नहीं। फिर क्या पीढ़ियों का संघर्ष भी नियति है।

(7) मृत्यु बोध–मनुष्य जीवन ऐसे जीता है जैसे कि मृत्यु तो अभी बहुत दूर है, जबकि वास्तविकता तो यह है कि हम हर क्षण मृत्यु की ओर ही कदम बढ़ा रहे हैं। गीतांजिल श्री अपने एक साक्षात्कार में कहती हैं–

''अपने चारों ओर हम हरदम मृत्यु देखते हैं और यह जीवन का सबसे बड़ा अहसास है।''[8]

श्री जी की पारखी नजरों से मृत्यु अपने विविध रूपों में सामने आती है। 'भीतराग' कहानी पचहत्तर वर्षीय गिरधाटी लाल के माध्यम से मृत्यु भय को व्यंगित करती है–

''आँखें जबरन बन्द करें तो तरह-तरह की आकृतियाँ दिखती जाती–खुली आँखें, चढ़ी पुतलियों, काठ सा बदन, जबान बाहर को तिरछी लटकती आदि-आदि। पट से आँखें खोल देते तो दिमाग तजुर्बेकार आवाज में सुनाने लगता–आखिर फलाने के संग क्या हुआ था, खरबूजा खाया और पेट चल पड़ा, सात दफे बाथरूम गया और फिर टोटल गया।''[9]

मृत्यु भय के अतिरिक्त 'वैराग्य' कहानी में बीमारी से राख की तरह झरते शरीर की मृत्यु तक की मात्रा को अत्यन्त वेदनात्मक रूप से वर्णित किया गया है। 'पीला सूरज' और 'तितलियाँ' कहानियों में टुइयाँ की मृत्यु का संकेत है, वहीं 'तितलियाँ' कहानी में 'इक्की' नामक बच्चे की डूबने से मृत्यु का उल्लेख है। 'इति' कहानी में व्यक्त वृद्ध पिता की मृत्यु एक संतुष्टी प्रदान करती है। वहीं 'कसक' कहानी में आत्महत्या से हुई मृत्यु को जीवन ही बताया है। 'शांति पाठ' कहानी में वीभत्स मृत्यु का उल्लेख है। मृत्यु गीतांजलि श्री की कहानियों में कई-कई संवेदनाओं के साथ हमारे सामने आती है।

(8) जिजीविषा–गीतांजलि श्री की कहानियों में जिजीविषा भी कई स्थानों पर दृष्टिगोचर होती है। आसन्न मृत्यु होने पर भी जीने की ललक इनकी कहानियों की अपनी विशेषता है। 'बुलडोजर' कहानी की नायिका थाइराइड मेनोपॉज जैसी गम्भीर बीमारी से ग्रसित है, परन्तु फिर भी जीने की ललक बुलडोजर के समान मजबूत है वह सोचती है कि मैं अपनी बच्ची को बड़ा होते अवश्य देखूँगी यह उसके भीतर की जिजीविषा ही है।

''पर भरोसा मत छोड़ो। यह तमाम ऊहापोह की सर्जरी में चालीस प्रतिशत, कि साठ प्रतिशत सफलता मिलेगी, छोड़ो। सौ प्रतिशत कहो।''[10]

'तितलियाँ' कहानी की सत्रह लड़कियाँ मधुमेह रोग से ग्रसित हैं। वे कोमा में भी जा सकती हैं, परन्तु फिर भी जीवन को उल्लास व उत्साह के साथ जी रही हैं। वे दुःखी नहीं हैं। यह उन लड़कियों की जिजीविषा ही है जो उन्हें मृत्यु संत्रास से मुक्त रखती है।

(9) रिश्तों का बिखराव–रिश्तों का बिखराव वर्तमान समय की बहुत बड़ी वेदना है। संयुक्त परिवार तो टूट ही चुके हैं एकल परिवार भी बिखराव की कगार पर हैं। गीतांजलि श्री की कहानी 'इति' में बड़ा परिवार है परन्तु सभी भाई-बहिन अलग-अलग रहते हैं। पिता-माता को भी बारी-बारी से सँभालते हैं। 'चौक' कहानी में भी संयुक्त परिवार को बाधा के रूप में चित्रित किया गया। संयुक्त परिवार के साथ ही एकल परिवार के रिश्ते भी बिखर रहे हैं जैसे 'तिनके' कहानी की नायिका या 'सफेद गुड़हल' की नायिका अपने-अपने पतियों से कहीं न कहीं असंतुष्ट है। यह असंतुष्टता रिश्तों के बिखराव का कारण बनती है।

(10) पुरुष चेतना–युगीन परिवेश के अनुकूल आज के पुरुषों की मनोवृत्ति में भी बहुत बड़ा बदलाव आया है। इसकी गहन पड़ताल भी गीतांजलि श्री की कहानियों में दृष्टिगत होती है। एक तरफ 'तिनके' कहानी का हेमन्त है जो स्वयं एक वैज्ञानिक है। कॉलेज व्याख्याता अपनी पत्नी चन्दा के कार्यों में हाथ भी बँटाता है। फिर भी उसका व्यवहार 'चन्दा' को पुरुषवादी सोच से आहत करता है। 'दूसरा' कहानी में भागीरथ एक ऐसे पुरुष की सोच को उजागर करता है जो सोचता है कि उसकी पत्नी उस पर हावी हो रही है। इसलिए उसको अपमानित करने के लिए वह जो तरीका अपनाता है वह आज के पुरुष की गिरी हुई सोच का प्रमाण है।

'दरार' कहानी का 'कल्पेश', 'दिशाशूल' कहानी का 'मिथिलेश प्रवीण' जैसे पात्र ऐसे पुरुषों की चेतना को उजागर करते हैं जो स्त्री के शरीर को पाने के लिए लालायित हैं। वहां उनका चरित्र स्थिर नहीं है। यह युग की सच्चाई भी है।

(11) स्त्री चेतना-गीतांजलि श्री के स्त्री पात्र युगानुरूप बोल्ड है। 'प्राइवेट लाइफ' की कथा निवेदिका, चकरघिन्नी की नायिका ऐसी ही महिलाएँ हैं जो अपनी इच्छानुसार बिना बन्धन के जीवन जीना चाहती हैं। यहाँ स्त्री पात्र शराब पीती है, सिगरेट पीती है, अवैध सम्बन्ध कायम करती है। दिशाशूल की अपाला, गुरप्रीत आपस में पुरुषों को लेकर उनकी सुन्दरता को लेकर जो बातचीत करती है वह उनकी बोल्डनेस का प्रमाण है। आज के युग में स्त्री आत्मनिर्भर भी है। चकरघिन्नी, तिनके, कसम, नाम जैसी कहानियाँ आत्मनिर्भर नारी की कहानी कहती हैं।

स्त्री सशक्तता के साथ ही 'भार' जैसी कहानी में स्त्री की दैहिक सुन्दरता को ही महत्व देने वाली सोच की झलक है। 'भार' कहानी की चाची की हीनता उसके मोटापे के कारण है। स्त्रियों पर हावी होती यह हीनता भी आज के युग की सच्चाई है। 'हाशिए पर' कहानी में भी कथा निवेदिका अन्य पुरुष के परिवार के सामने स्वयं को हाशिए पर खड़ा पाती है। इस प्रकार युगीन सशक्त नारी के साथ कमजोर, हीन नारी की मानसिकता भी कहानियों में लक्षित हुई है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गीतांजलि श्री की कहानियाँ आम इंसान के संसार को चित्रित करती है। सामान्य तथा हमारे आस पास के लोग इन कहानियों में किरदार निभाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि श्री जी हमें हमारी ही कहानी कह रही हैं। हम ही कहानी के कथा निवेदक हैं। गीतांजलि श्री जी अपने युग की कथाकारा हैं। अतः वर्तमान युग की संवेदनाएँ इनकी कहानियों में पूर्णता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं। वैज्ञानिक उन्नति से पर्यावरण को जो श्रति पहुँच रही है उसका भावपूर्ण संयोजन 'इतना आसमान' और 'जड़ें' कहानी में देख सकते हैं। इसी प्रकार साम्प्रदायिकता, महानगरीय बोध, अवैध सम्बन्ध, पीढ़ियों का संघर्ष, मृत्युबोध, जिजीविषा, रिश्तों का बिखराव जैसी युगीन संवेदनाएँ विश्वसनीयता के साथ इनकी कहानियों में अभिव्यक्त हुई हैं। इन सबके साथ युगीन पुरुष व स्त्री चेतना को गीतांजलि श्री जी सच्चाई के साथ वाणी देती हैं। 'दरार' कहानी का कल्पेश, 'दीसरा' कहानी का भगीरथ, 'हाशिए पर' कहानी का रजत, 'अनुगूँज' कहानी का राहुल, 'दिशाशूल' कहानी का मिथिलेश प्रवीण इत्यादि के माध्यम से पुरुष चेतना के विविध रूप हमारे सामने आते हैं। इसी प्रकार 'प्राइवेट लाइफ' की 'मैं' 'बेलपत्र' की फातिमा, 'तिनके' की चन्दा, 'नाम' कहानी की 'मैं' जैसे पात्र स्त्री की विविध संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। कुल मिलाकर गीतांजलि श्री की कहानियाँ परिस्थितियों से संचालित युगीन संवेदनाओं की कहानियाँ तो हैं ही, परन्तु साथ ही वे हमारी व्यक्तिगत संवेदनों से भी बहुत कुछ साम्य रखती हैं। यह गीतांजलि की गहन निरीक्षण क्षमता संवेदनशीलता, मौलिकता का प्रमाण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. देवी प्रसाद गुप्त : दिनमान–साहित्य, सिद्धान्त और समालोचना
2. डॉ. अज्ञेय : सामाजिक यथार्थ और काव्य भाषा, पृ0 46
3. डॉ. अज्ञेय : हिन्दी साहित्य का एक आधुनिक परिदृश्य, पृ0 19
4. गीतांजलि श्री : यहाँ हाथी रहते थे, पृ0 48
5. डॉ. गीतांजलि श्री से डॉ. राजेश्वरी की बातचीत, जनवरी-मार्च, 2015
6. गीतांजलि श्री : यहाँ हाथी रहते थे, पृ. 148
7. गीतांजलि श्री : वैराग्य, पृ. 50
8. डॉ. गीतांजलि श्री से डॉ. राजेश्वरी की बातचीत
9. गीतांजलि श्री : वैराग्य, पृ. 62
10. गीतांजलि श्री : यहाँ हाथी रहते थे, पृ. 178

Hindi Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 80-82
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

हिन्दी में राम काव्य

*अरुण कुमार सिंह**

आदिकाल से अजस्र प्रवाहित हिन्दी काव्यधारा भक्ति काल में आकर दो रूपों में विभाजित हो गयी। प्रथम निर्गुण काव्यधारा और द्वितीय सगुण काव्यधारा। इसी सगुण काव्यधारा की दो शाखाएं पुनः हुई- (1) राम भक्त शाखा और (2) कृष्ण भक्ति शाखा। राम भक्ति शाखा में राम के चरित का गुणगान हुआ तो कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्ण का। एक मर्यादा पुरुषोत्तम थे तो दूसरे लीला पुरुषोत्तम।

राम काव्य की रचना हिन्दी में भक्तिकाल में ही नहीं हुयी अपितु संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में भी हजारों वर्षों में हुयी। हिन्दी में रचा राम काव्य तो इनका नया अवतार है। स्वयं गोस्वामी जी ने स्वीकारा है-

जेहिं इमि गावहि वेद बुध, जाहिं धरहिं मुनि ध्यान।
सो दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान।

उपलब्ध प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि बाल्मीकि द्वारा संस्कृत में रचित रामायण ही रामकथा का मूल स्रोत है। इसके रचना काल के बारे में मत वैभिन्य है, किन्तु इतना निश्चित है कि इसकी रचना गौतम बुद्ध के जन्म से पहले हो चुकी थी, क्योंकि इसमें बुद्धवतार का उल्लेख नहीं है।

बाल्मीकि रामायण की कथा महाभारत में भी विविध स्थलों, आरण्यक पर्व, द्रोण पर्व एवं शान्ति पर्व में है। ऋषि मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को रामोपाख्यान सुनाया जिसमें राम कथन का वर्णन है। कुछ संहिता ग्रन्थों अगस्त्य संहिता, राघवीय संहिता में तथा कुछ उपनिषदों- राम रहस्योपनिषद् में भी रामकथा आख्यान है। इसके अतिरिक्त विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण और कूर्मपुराण में रामकथा का कुछ अंश है। अन्य पुराणों में भी रामकथा के अनेक प्रसंग हैं।

संस्कृत भाषा में रचित अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, भुशुण्डि रामायण, हनुमान संहिता और राघवोल्लास में रामकथा की धार्मिक एवं दार्शनिक व्याख्या की गई है।

बौद्धजातक कथाओं में रामकथा दशरथ जातक और अनामर्क जातक में मिलती है। जैन साहित्य में रामकथा पर आधारित अनेक ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें प्रमुख विमलसूरी रचित पद्मचरियम, भुवनतुंग सूरि रचित सियाचरियम, रामचरियम गुणभद्र रचित उत्तर पुराण, स्वयंभूकृत पद्मचरित, पुण्यदत्त कृत महापुराण हैं। दक्षिण के आलवार भक्तों में रामभक्ति पायी जाती है। आलवार भक्तों की संख्या 12 मानी जाती है। इनमें से शठकोरप और नक्मालवार को 'राम की पदुका' का अवतार माना जाता है। इनके द्वारा रचित अन्य तीन प्रसिद्ध कृतियाँ हैंः तिरूविरूतम् तिरूवर्गशरिमेय तथा पेरिय निरूवन्दादि। सातवें आलवार भक्त चेरवंशी राजा कुलशेखर ने सीताहरण का प्रसंग सुनकर भावावेश में तुरन्त ही लंका पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी थी। इनके रामभक्तिपरक सरस गीतों का संकलन पे रुमाल विरुमोवि नामक रचना में हैं।

विविध रचनाओं में वर्णित तथा विविध शाखाओं द्वारा पालित रामभक्ति शाखा के दो सम्प्रदाय हैं- (1) श्री संप्रदाय, (2) बह्म संप्रदाय।

उत्तर भारत में रामभक्ति शाखा का प्रवर्तन आचार्य रामानुज की परम्परा में राघवानन्द द्वारा हुआ। इन्हीं राघवानन्द के शिष्य रामानन्द थे। उन्होंने धनुषवाणी राम के लोकरक्षक रूप की उपासना प्रारम्भ कर हिन्दू समाज की पराजित मनोवृत्ति का शमन किया और बलात् मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं को 'रामतारक मंत्र' देकर हिन्दू धर्म में पुनः लौटने का मार्ग खोल दिया।

* *यू.जी.सी नेट, हिन्दी साहित्य*

भक्तिभावना को ऊँच-नीच सबके लिए खोलकर उन्होंने भक्ति को वाह्याडम्बरों से मुक्त किया। इनके शिष्यों में निगुर्णोपासक एवं सगुणोंपासक दोनों थे। इनके बारह शिष्यों में कबीर और रैदास के नाम गिने जाते हैं। आकाश धर्मा व्यक्तित्व वाले रामानन्द ने कहा-

जात पांत पूछै नहिं कोय, हरिका भजे सो हरिका होय।।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल की राममार्गीशाखा के जितने भी कवि हुए हैं प्रथमतः वे सभी ब्राह्मण थे और इनकी रचनाएं अवधी में हुई थी। भारत की अन्य भाषाओं जैसे मराठी, मानपाली, तमिल, तेलगू, कन्नड़, पंजाबी, बंगला, उड़िया, असमिया, गुजराती में भी रामकथा का आश्रय लेकर मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का चित्रण हुआ। मैथिलीशरण गुप्त ने तो यहाँ तक कह दिया :

'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है
कोई कवि वन जाए, सहज सम्भाव्य है।'

किन्तु जो उत्कृष्टता हिन्दी कवियों को नसीब हुयी वह अन्यत्र दुर्लभ है। राम काव्य परम्परा के भक्ति कवि व उनकी रचनाएँ निम्न हैं:

(1) स्वामी रामानन्द- काशी में जन्मे रामानन्द का समय 1400 से 1470 के बीच माना जाता है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान रामानन्द जी ने रामावत संप्रदाय चलाया। इनके 12 शिष्य थे। इनके लिखे दो संस्कृत ग्रन्थ वैष्णव मताब्ज भाष्कर और श्रीरामार्चन पद्धति अति प्रसिद्ध है। रामानन्द जी तत्त्वतः रामानुजाचार्य के मतावलम्बी थे। इन्होंने राम के लोकरक्षक और घनुषवाणधारी रूप को स्वीकार कर सबके लिए भक्ति सुलभ बनाया। इन्होंने उत्साही विरक्त बल बनाया। प्रसिद्ध आरती है ''आरती कीजै हनुमान कला की'' इन्हीं के द्वारा विरचित हैं। रामानन्द के शिष्यों की चर्चा भक्तिकाल में है। इनके द्वारा रचित दो पद गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित हैं।

(2) गोस्वामी तुलसीदास- मूलगोसाईंचरित और तुलसीचरित से तुलसी दास के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। दोनों ग्रन्थों के आधार पर तुलसीदास का जन्म 1554 विक्रमी और मृत्यु 1680 विक्रमी माना जाता है। जन्म स्थान एटा जिले का सोरो नामक स्थान तथा राजापुर नामक स्थान बताया जाता है। बचपन में रामबोध के नाम से मशहूर तुलसी आत्माराम व हुलसी की संतान थे। इनके बारे में निम्न दोहा प्रसिद्ध है:

सुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहति अस कोय।
गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

श्री तुलसी दास जी का विवाह रत्नावली से हुआ था जिसे वे बहुत प्यार करते थे। कहते हैं कि उसी के झिड़की भरे उपदेश से तुलसी में वैराग्य उत्पन्न हो गया। दोहे अति प्रसिद्ध हैं :

लाज न लागत आपको दौरे आयो साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देहमय तामै ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मंह होति न तब भव भीति।

तुलसी की रचनाओं की संख्या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बारह मानी है जिसमें पाँच बड़े और सात छोटे ग्रन्थ हैं :

बड़े ग्रन्थ- (1) रामचरित मानस (2) विनय पत्रिका (3) कवितावली (4) दोहावली (5) गीतावली

छोटे ग्रन्थ- (1) रामलला नहछू (2) कृष्ण गीतावली (3) वैराग्य सन्दीपनी (4) रामाज्ञा प्रश्नावली (5) वैरवै रामायण (6) जानकी मंगल (7) पार्वती मंगल (8) हनुमान बाहुक।

(1) **रामचरित मानस-** तुलसी की अक्षय कीर्ति का आधार उनके द्वारा रचित महाकाव्य रामचरित मानस है। रामचरित मानस की रचना का प्रारम्भ अयोध्या में संवत् 1631वि. (1574ई.) में हुआ और उसे 2 वर्ष 7 माह में पूरा किया। इसका कुछ अंश विशेषतः किष्किन्धाकाण्ड काशी में रचा गया। रामचरित मानस की रचना अवधी भाषा में दोहा चौपाई शैली में की गयी है। यह रामकथा पर आधारित महाकाव्य है जिसमें सात काण्ड हैं। रामचरितमानस के राम लोकरक्षक हैं। वे शक्ति, शील एवं सौन्दर्य के भण्डार हैं। कवि द्वारा कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान सूक्ष्मता से की गयी है। श्रृंगार रस का शिष्ट एवं मर्यादिन वर्णन है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मानस की प्रशंसा में कहा है : ''लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी की प्रशंसा में कहा है ''भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो तुलसी दास को।'' तुलसी रचित रामचरितमानस मानव व्यवहार का दर्पण है।

विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली और दोहावली में भी रामकथा वर्णित है। विनयपत्रिका के कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं :

कबहुंक अम्ब अवसर पाइ।
मेरि औ सुधि धाइबी कछु करुन कथा चलाइ।
सुनत राम कृपाल के मेरी विगरिऔ बनि जाइ॥

और

श्रीराम चन्द्र कृपाल भज मन हरण भव भय दारुणं।
नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं।

श्री रामानंद और गोस्वामी तुलसीदास जी के अतिरिक्त अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास, केशवदास, सेनापति, माधवदास, प्राणचन्द चौहान, हृदयराम, नरहरि वारहट, लालदास आदि प्रमुख रामभक्त कवि हैं जिनकी कृतियों ने रामकथा को आगे बढ़ाया है।

कृष्ण भक्त कवियों जैसे सूरदास, नन्ददास, परसुरामदेव, हितहरिवंश ये भी अपनी-अपनी रचनाओं द्वारा रामकथा की चर्चा की है।

रीतिकालीन कवियों ने भी राम का यश गान किया है। केशवदास जो भक्तिकाल और रीतिकाल की सांध्यवेला में जन्में थे, ने रामचन्द्रिका लिखकर इस परम्परा को आगे बढ़ाया है।

राम का काम कहाँ रिपु जीतहिं कौन कबै रिप जोत्यो कहाँ।
बालि बली छल सो, भृगुनन्दनु गर्व हर्‌यो, द्विज दीन महा।
दीन सो क्यों छिति छत्र हत्या, विन प्राणन हैहयराज कियो।
हैं हम कौन? वहै विसर्‌यो? जिन खेलत ही तोहि वांध लिया॥

रीतिकाल के बाद आधुनिक काल में भी हिन्दी में रामकाव्य की रचना हुयी किन्तु तुलसी के मानस के आने के बाद रामायण की कथा प्रसंगवश दुहरायी जानी अच्छी नहीं लगी।

2. लेखन कला- जो लिखे भी गये थे वे प्रसिद्ध नहीं प्राप्त कर सके। मैथिलीशरण गुप्त का साकेत यात्किंचित चर्चित रहा है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
3. डा. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास।
4. प्रतियोगिता दर्पण की हिन्दी सीरीज।
5. कवियों की उक्ति हेतु उनकी रचनाएं।

History
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 83-84
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

गुप्तोत्तर कालीन समाज में शिक्षा

*डॉ. राजीव शुक्ला**

प्राचीन भारत में आर्थिक संगठन के अन्तर्गत ब्राह्मणीय एवं बौद्ध दोनों प्रकार की शिक्षण संस्थाओं की आय के साधन समान थे। दोनों ही प्रकार की शिक्षण संस्थाएँ राजा एवं समाज द्वारा दिए गये अनुदान से चलती थी। गुरुकुल में गुरुदक्षिणा कि परम्परा थी। गुरुदक्षिण आय का एक प्रमुख साधन थी। बौद्ध शिक्षण संस्थाओं में ऐसा नहीं था। क्योकि बौद्ध शिक्षण संस्थाएँ गिने चुने छात्रों को लेकर नहीं चलती थी। प्राचीन काल से ही धार्मिक भावना से प्रेरित राजाओं की उन संस्थाओं पर विशेष कृपा थी। विवेच्य काल भी इस दृष्टि से समृद्ध काल था।

प्राचीन काल में भी ज्ञान प्राप्त करने वाले ब्राह्मणों को राजाओं द्वारा सहायता के अनेक विवरण मिलते हैं। मनु नें राजा के द्वारा निरन्तर क्षत्रियों को कुछ दिए जाने अर्थात उनका सत्कार करने तथा वेदगायन में निपुण और धार्मिक यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के रत्न और उपहार दिए जाने के विधान का उल्लेख किया है। विवेच्य काल में अनेकानेक उदाहरण इस प्रकार के मिलते हैं। जिसमें राजाओं द्वारा भूमिदान और वृत्तिदान का उल्लेख हुआ है। राज्य द्वारा शिक्षा को पूर्ण प्रश्रय मिलता था। उपाध्याय के सम्मान में दिये गए अग्रहारों का विशद उल्लेख मिलता है। राज्याभिषेक जैसे शुभ अवसरों पर राजा विद्वान ब्राह्मणों को आमंत्रित कर उन्हें गाँव दान में देकर वहीं बसा देते थे। कालान्तर में यहीं शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र हो जाते थे। दरबार में आने वाले अधिकांश विद्वान ब्राह्मणों को राजा भूमिदान करता था अथवा उनकी वृत्ति बाँध देता था। इस सम्बन्ध में विवेच्च्य काल के अनेक राजाओं के नाम उल्लेखनीय हैं।

महाराज हर्ष विद्वानों के आश्रय दाता ही नहीं अपितु स्वयं-श्रेष्ठ कवि और नाटककार थे। भवभूति तथा वाक्पति को कन्नौज के राजा यशोवर्मन का आश्रय प्राप्त था। राजशेखर इसी नगर के राजा महेन्द्र पाल और महीपाल के आश्रय में रहते थे। मुंज सिंधुराज तथा भोज के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित है। भोज स्वयं भी एक अच्छे लेखक थे। चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ के दरबार में कश्मीर के कवि विल्हण को आमन्त्रित किया था। विज्ञानेश्वर जिनकी मिताक्षरा आज भी न्यायालयों में प्रमाण मानी जाती है। इन्हीं के दरबार में थे।

बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन ने उमापतिदेव, गोवर्धवन और जयदेव आदि को आश्रय दिया था। इसी प्रकार हेमचन्द्र गुजरात के राजा कुमारपाल तथा नैषधचरित के लेखक श्री हर्ष कन्नौज के राजा विजयचन्द्र तथा जयचंद के आश्रित कवि थे।

गढ़ी निधियों से सम्बन्धित जो कानून थे उनमें भी विद्या के प्रसार में सहायता मिलती थी। राजा को गड़ा धन यदि प्राप्त होता तो उसका आधा विद्वान ब्राह्मणों को दान करना पड़ता था। किन्तु यदि वही धन कोई ब्राह्मण पाता तो वह सब रख सकता था। अन्य व्यक्तियों को उस धन का अष्टमांश राज्य को देना पड़ता था।

अपरार्क के अनुसार उपनयन तथा विवाह जैसे शुभ अवसरों पर अध्यापकों एवं विद्यालयों को नकद या वस्तु के रूप में प्रचुर दान दिया जाता था।

पाठशाला का व्यय चलाने के लिए भूमिदान के अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। सालोत्गी के एक व्यापारी ने एक विद्यालय की स्थापना के लिए 200 निवर्तन भूमि दी थी। इस सम्बन्ध में सौरतूर और धारवाड़ के इस प्रसार के दान भी उल्लेखनीय हैं।

विवेच्य काल के साहित्यिक ग्रन्थों जैसे- राजतरंगिणी, कथा सरित्सागर आदि तथा अभिलेखीय साक्ष्यों में उनके अनेक मठों का विस्तृत विवरण मिलता है जो शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र थे और राज्य अथवा धनिकवर्ग द्वारा संरक्षण प्राप्त थे। धर्म शास्त्रकारों ने विद्यार्थियों के प्रवेश के पूर्व मोलभाव की निन्दा की है। परन्तु जिस प्रकार अध्यापक के लिए शिक्षण उसका प्रमुख कर्तव्य

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया

था, उसी प्रकार अभिभावकों के लिए संसार में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो गुरू के ऋण से मुक्ति दिला सके। स्मृतियों ने इसका समर्थन इसलिए किया है कि पारिश्रमिक के रूप में शिष्यों से शुल्क ने लेने वाले गुरुओं का जीवन निर्वाह हो सके। आचार्य अध्ययन की समाप्ति के पश्चात् गुरु-दक्षिणा का अधिकारी होता था।

इस प्रकार विवेच्य काल की शिक्षण संस्थाएँ समाज या राज्य द्वारा दी गयी सहायता से चलती थी। चाहे यह सहायता गुरुदक्षिणा के रूप में हो चाहे भिक्षा माँगने पर समाज द्वारा छात्रों को दी गयी धनराशि या वस्तु के रूप में हो अथवा राजा या समाज के सम्पन्न लोगों द्वारा स्वेच्छा से दिये गये अनुदान अथवा भूमिदान के रूप में हो।

कल्हण के विवरण के अनुसार कश्मीर के राजा जयसिंह ने विद्या केन्द्र के रुप में इतनी ऊँची इमारत का निर्माण कराया था जिसे देखने के लिए सात ऋषियों का आगमन हुआ था। इस प्रकार विद्वानों, आचार्यों, गुरुकुलों तथा बिहारों एवं अन्य शिक्षण संस्थाओं को राजाओं का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। अध्यापक को अध्यापन का कर्त्तव्य निस्पृह होकर ही निस्पन्न करना पड़ता था। विद्यार्थी का यह हार्दिक प्रयास होता था कि वह अपने आचार्य को गुरुदक्षिणा प्रदान करके घर की ओर प्रस्थान करें। विष्णु पुराण गुरू से शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त कृष्ण और बलराम द्वारा गुरू को दक्षिणा अर्पित करने का उल्लेख करता है। साथ ही कोशि ध्वज का अध्ययनोपरान्त अपने गुरु रवाणिक्य को गुरुदक्षिणा अर्पित करने का भी वर्णन है।

बारहवीं शताब्दी के एक अभिलेख के अनुसार दक्षिण भारत में अन्य ब्राह्मणों के न मिलने पर मुकना कदम्ब उत्तर में अहिच्क्षत्र अग्रहार में आकर 1200 अग्निहोत्रियों के 32 परिवारों से मिला। इन ब्राह्मणों को दक्षिणा में भेजकर शिमोगा में नगर के बाहरी क्षेत्रों में स्थान गुंड में उन्हें अग्रहार देकर बसाया। दसवीं शताब्दी के नन्जनगुड अभिलेख से भी अहिच्छेत्र से विद्वान ब्राह्मणों के समूह का दक्षिणी क्षेत्र में आना प्रमाणित होता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों से ब्राह्मणों के मैसूर आकर भूमिदान प्राप्त कर बसने के स्पश्ट प्रमाण मिले हैं। 1039 ई0 के शिलाहार नागार्जुन के थाना पत्र के अनुसार राजा द्वारा यजुर्वेद शाखा के परमार गोत्रीय ब्राह्मण गोकरण के पुत्र माधव पण्डित को भूमिदान दिये जाने के विवरण का पता चलता है।

10वीं-11वीं शताब्दी के शिलाहार अपरादित्य प्रथम और उसके पुत्र विक्रमादित्य के ताम्रपत्र अभिलेख में चन्द्रग्रहण के अवसर पर विद्याधर महोपाध्याय के पौत्र तथा केशव द्विवेदी महोपाध्याय के पुत्र शट महोपाध्याय को शिक्षा के लिए गाँव दान में दिए जाने का उल्लेख है।

विवेच्य काल समाज शुभ अवसरों पर राजा वेदविद् विद्वान ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणों के समूह को भूमिदान से विभूषित किया जाता था। ब्राह्मणों की समाज में उच्चतम प्रतिष्ठा थी। वे शिक्षा एवं संस्कृति के पोशक व संरक्षक थे। राज्याश्रय प्राप्त इन्हीं प्रब्रजित ब्राह्मणों के द्वारा आर्येत्तर, संस्कृति का प्रसार हुआ। चंदेल राजाओं द्वारा भी विद्वान ब्राह्मणों को शिक्षा के प्रसार हेतु संरक्षण देने के कार्य को विस्तारित करने तथा साथ ही कालिंजर क्षेत्र में ब्राह्मणों को प्रब्रजित होने की चर्चा मिलती है। परमार देवपाल के मांधाता पत्र में त्रिपुरस्थान से प्रब्रजित दो दान ग्रहीताओं का उल्लेख है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थी अग्रहारों, मठों एवं मन्दिरों में जाते थे और वहीं शिक्षा ग्रहण करते थे। इन अग्रहारों, मठों एवं मन्दिरों को शिक्षा के प्रसार के लिए समाज और राज्य द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। विवेच्य युग में शैक्षणिक प्रतिष्ठानों में सबसे अधिक अग्रहार ही थे।

सन्दर्भ-सूची

1. अल्तेकर, प्रा.भा.शि. पद्धति, पाद टिप्पणी।
2. एपिग्राफिया इंडिया भाग-4
3. इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, भाग-1
4. अलबरूनीज इण्डिया, भाग-1 दिल्ली।
5. कौशम्बी : कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एन्श्येंट इण्डिया।
6. उपाध्याय, वासुदेव : सोशियो रिलीजियस कंडिशन ऑफ नार्थ इण्डिया।

*****

History
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 85-86
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

प्राचीन भारत के सामाजिक इतिहास सर्जन की समस्याएँ

*डॉ. शशांक शेखर**

प्राचीन काल के सामाजिक इतिहास लेखन में हमें समाजशास्त्र, मानव विज्ञान की मदद लेनी चाहिए, किन्तु इनकी अपनी सीमाएँ हैं। इतिहास की प्रकृति इनसे इतर है। समाजशास्त्र और मानवशास्त्र के सूत्र सभी काल खण्ड में अलग-अलग पर्यावरण में समाजों पर एक समान लागू नहीं होते अतः इतिहास में यंत्रवत् निष्कर्ष नहीं निकाले जाने चाहिए।

अतः प्राचीन काल के भौतिक अवशेष तथा लिखित सामग्री के मध्य सम्बन्ध पर हमें विशेष ध्यान देना चाहिए। वैदिक ग्रन्थों के सहयोग से प्राप्त पुरातत्व से शुरुआत हुई थी, जिसने हमें महाकाव्यों में उल्लिखित स्थलों की खोज के लिए प्रेरित किया। परन्तु अब हम एक ऐसी स्थिति में पहुँच गये हैं, जिसमें हमें पुरातत्व की सहायता से लिखे गये ग्रन्थों पर कार्य करने की आवश्यकता है। यद्यपि पुरातात्विक साक्ष्य का लिखित साक्ष्य से सम्बन्ध स्थापित करने का कुछ प्रारम्भिक कार्य किया गया है, किन्तु इस विधि में अनेक जटिलताएँ हैं। ऐसे बहुत कम प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनकी रचना एक ही लेखक ने एक ही काल और स्थान में की थी। अतः पहला कार्य यह किया जाना चाहिए कि एक ग्रन्थ के विभिन्न स्तरों में अंतर किया जाये और उनका क्रम स्थापित किया जाए। महाभारत के विवरणात्मक, वर्णनात्मक तथा शिक्षात्मक अंशों को पहचाना जा सकता है, लेकिन प्रथम स्थिति में 8800 श्लोकों वाले ग्रन्थ के 'जय', द्वितीय में 24000 श्लोकों से युक्त 'भारत' तथा अंतिम स्थिति में 100000 श्लोकों से निर्मित 'महाभारत' को हमें अभी संतोषजनक रूप से पहचाना है। इसके लिए शैली और विषय-सामग्री के सम्बन्ध में आंतरिक मानदण्ड एवं बाह्य तुलनाएँ विकसित करनी होंगी। संगणक द्वारा कुछ शब्दों की आवृत्ति के अनुपात का पता लगाना आवश्यक हो सकती है, जैसा कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में किया गया है। ग्रंथों के शब्द-भंडार की तुलना अभिलेखों की शब्दावली से की जा सकती है। यह आश्चर्यजनक है कि कौटिल्य द्वारा प्रयुक्त कुछ आर्थिक एवं प्रशासनिक शब्द आठवीं से दसवीं शताब्दी तक के उड़ीसा से प्राप्त अभिलेखों में उपलब्ध होते हैं। एक बार यदि साहित्यिक स्तर –विन्यास स्थापित कर लिया जाये तो पुरातात्विक स्तर विन्यास के साथ संयोजन तथा तुलना में इसका अधिक अच्छा उपयोग किया जा सकता है। अनेक उदाहरणों में साहित्यिक साक्ष्य को रूपान्तरित करना पड़ सकता है तथा कभी-कभी पुरातात्विक साक्ष्य के पक्ष में उसे त्यागना भी पड़ सकता है।

भाषा के अन्य कार्य जो कुछ भी हों, यह मुख्य रूप से सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं, कार्यों तथा दैनिक जीवन के सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। अतः भौतिक संस्कृति के तत्वों के प्रसार तथा भारत के अन्दर और बाहर के विभिन्न लोगों के मध्य पारस्परिक क्रिया के विषय को तुलनात्मक भाषा विज्ञान के माध्यम से आगे बढ़ाया जा सकता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में लिए गये अनाजों, फलों, पशुओं, धातुओं, उपकरणों, हथियारों, स्थानों, देवताओं, नातेदारी के सम्बन्धों, सामाजिक विभेदीकरण आदि के शब्दों की पहचान से सांस्कृतिक सम्बन्धों की प्रकृति पर प्रकाश पड़ता है। चावल, सिक्के (पण), सिल्क-कपास एवं कपास के संसाधन के लिए प्रयुक्त आस्ट्रिक शब्द पूर्वी भारत की भारतीय आर्य भाषाओं में प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार माह, ऋतु, गेहूँ, लकड़ी, ईंट, पीतल, लोहे की छड़, कुल्हाड़ी, धुरी, कैंची, कोल्हू, गन्ना पेराई का कोल्हू, तालाब खोदने वाले, गड़रिया जाति, बलात मजदूर (विष्टि) आदि के लिये भारतीय आर्य शब्द मध्य और दक्षिण भारत के अनेक द्राविड़ बोलियों और भाषाओं में प्राप्त होते हैं। यह ढूँढ़ना हमारा कार्य है कि कब, कहाँ और कैसे इन शब्दों का आदान-प्रदान हुआ और इसका क्या महत्व है। इसके लिए हमें भारतीय भाषाओं के एक वृहद् तुलनात्मक शब्दकोश की आवश्यकता है। कुछ ऐसे अंतःक्षेत्र अब भी विद्यमान हैं, जहाँ प्राचीन आदिम बोलियाँ जीवित हैं। उन क्षेत्रों में, जहाँ वे आज भी प्रयुक्त होते हैं, अब भी विद्यमान समानार्थी शब्दों के सन्दर्भ से अनेक वैदिक, शास्त्रीय तथा अभिलेखीय शब्दों की व्याख्या की जा सकती है। दूसरी ओर, अनेक शताब्दियों में शब्दों के अर्थ परिवर्तन को नकारा नहीं जा सकता। इस प्रकार चौदहवीं शताब्दी के किसी भाष्य में एक वैदिक शब्द को दिये गए अर्थ को सदा उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। समान विस्तृत भाषात्मक तथा सांस्कृतिक समूह के अन्तर्गत समान विचारों की अभिव्यक्ति के लिए पुरोहित, अभिजात, व्यापारी, दस्तकार और

* अतिथि प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

कृषक जैसे विभिन्न सामाजिक वर्गों के सदस्यों द्वारा भिन्न-भिन्न शब्दों व शैलियों का प्रयोग किया जाता है। अतः वर्ग तथा व्यापार की शब्दावली को ही देखना न केवल आवश्यक होगा, बल्कि पारस्परिक सम्बन्धों में विभिन्न वर्गों द्वारा प्रयुक्त अभिव्यक्ति के मुहावरों को भी देखा जाना चाहिए। अंततः, हमें प्राचीन परम्पराओं तथा अनुष्ठानों के अवशेषों की ओर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इनमें से अनेक परम्पराएँ समय के साथ-साथ छिन्न-भिन्न हो गई हैं। प्राचीन ग्रंथों की व्याख्या एवं अतीत के पुनर्निर्माण के लिए ये कभी-कभी उतने महत्वपूर्ण हो सकते हैं, जितने भौतिक अवशेष। ये तथा कृषकों के मस्तिष्क और विचारधारा को प्रकट करने वाली अभिलिखित मौखिक लोक परम्पराएँ, सामाजिक इतिहासकार के लिए अच्छा स्रोत बन सकती हैं। तंजावूर के कुछ दस्तकार समूह, न केवल अपने सौराष्ट्र से स्थानांतरण के संबंध में मौखिक परम्पराओं को जीवित रखे हुए हैं, वरन् अपने उपकरणों के लिए भी वही शब्द प्रयोग करते हैं, जो काठियावाड़ में प्रचलित हैं।

त्यागने, निरुत्साहित करने तथा रूपांतरित करने योग्य मतों व प्रारूपों, परीक्षण योग्य विकल्पों, हाथ में ली जाने योग्य समस्याओं एवं उपयोग में लाई जाने योग्य विधियों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। साथ-साथ उत्पादन-विधि के सन्दर्भ में प्रारम्भिक भारत की सामाजिक संरचनाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण है। मैं जानता हूँ कि मैंने जटिल समस्याओं के बाह्य को केवल छुआ मात्र है। ये समस्याएँ इतनी सामान्यीकरण के उपयुक्त नहीं हैं, जैसा मैंने प्रयास किया है। परन्तु, इन पर अपने कुछ विचार व्यक्त करने के लोभ का संवरण इस आशा से न कर सका कि इन पर अन्य विद्वानों द्वारा भी कुछ विचार किया जा सके। प्राचीन भारत के भौतिक जीवन एवं सामाजिक संरचनाओं के अध्ययन पर इनमें से कुछ विचारों व विधियों को हम लागू करने का प्रयास करेंगे। वैदिक काल से वैदिकोत्तर काल तथा मौर्य काल के गुप्तोत्तर काल तक शूद्र वर्ण तथा नारी की सामाजिक हैसियत में परिवर्तन सामाजिक इतिहास लेखन की मुख्य विषयवस्तु है। शूद्र वर्ण में जातियों का प्रगुणन एवं नारी की सामाजिक स्थिति में प्राचीन भारत के विभिन्न काल खण्ड में होने वाले परिवर्तन का तुलनात्मक अध्ययन और उत्पादन पर नियंत्रण को अध्ययन की विषयवस्तु बनाने का संगठित प्रयास विगत दशकों में इसी का प्रतिफलन रहा। इन मुद्दों को ऐतिहासिकता के दायरे में अध्ययन की विषयवस्तु बनाना महत्वपूर्ण रहा है। सामाजिक इतिहास लेखन में भारतीय समाज के वर्तमान भविष्य की कई समस्याओं का हल छिपा हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कीथ हार्पिकस, स्लेव्स एंड कांकरर्स, कैंब्रिज, 1978
2. यूनान के सन्दर्भ में नातेदारी व्यवस्था के मुख्य कार्य नहीं थे; यह निष्कर्ष हेसियोड के वर्क्स एण्ड डेज से निकाला जा सकता है, एस. सी. हमफ्रीज, एंथ्रोपोलॉजी एण्ड द ग्रीक्स, लंदन, 1978, पृ0 70
3. फ्रांस तथा अन्य स्थानों के 'नव मार्क्सवादी' मानव शास्त्रियों के अनुसार एक समाज की धार्मिक अथवा राजनैतिक व्यवस्था भी उत्पादन के सम्बन्धों के रूप में कार्य कर सकती है। हम्फ्रीज, ऊपर उल्लिखित, पृ0 73-74
4. सुवीरा जायसवाल, 'कास्ट इन द सोशियो-इकोनामिक फ्रेमवर्क आफ अर्ली इंडिया', अध्यक्षीय भाषण, अनुभाग-1, भारतीय इतिहास कांग्रेस, अड़तीसवाँ अधिवेशन, भुवनेश्वर, 1977 ; 'सम रीसेंट थियरीज आफ द ओरिजिन आफ अनटचेबिलिटी : ए हिस्टोरियोग्राफिकल एसेसमेंट', इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, प्रोसीडिंग्स आफ द थर्टी-नाइन्थ सेशन, हैदराबाद, 1978, पृ0 218-29 ; विवेकानन्द झा, अनटचेबुल्स इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री, अप्रकाशित पी-एच. डी. निबंध, पटना विश्वविद्यालय, 1962.
5. आर. एन. नंदी : 'आसपेक्ट्स आफ अनटचेबिलिटी इन अर्ली साउथ इंडिया', इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, प्रोसीडिंग्स आफ द थर्टी फोर्थ सेशन, जि0 1, चंडीगढ़, 1973, पृ0 120-25
6. एस. सी. हम्फ्रीज, ऊपर उल्लिखित, पृ0 61-62 ; और भी देखिए, वही; पाद टिप्पणी 129 तथा 130, पृ0 282
7. वही, पृ0 62; के. पोलनयी, सी. आरेसबर्ग तथा एच. डब्ल्यू. पियर्सन (संपा.) ट्रेड एण्ड मार्केट इन अर्ली एम्पायर्स शिकागो, 1975 के माध्यम से कार्ल पोलनयी प्रभावशाली बने, यद्यपि इनकी रचनाएँ 1922 से 1974 के बीच लिखी गईं। एस. सी. हम्फ्रीज, ऊपर उल्लिखित, पृ0 339-40 में ग्रन्थ सूची दी गई है।
8. आर. एस. शर्मा : पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन (500-1200 ई.) देवराज चनना व्याख्यान माला-एक, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1993
9. डॉ0 झिनकू यादव द्वारा सम्पादित पूर्व मध्यकाल में शूद्र वर्णान्तर्गत जातियों का प्रगुणन और उनकी स्थिति ; राष्ट्रीय मानव संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी, 1993, पृ0 26
10. आर. एस. शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति और सामाजिक संरचनाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1996
11. डॉ0 उर्मिला पाण्डेय, प्राचीन भारत में नारी, मध्य प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, 1997, पृ0 1-9

*****

History
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 87-89
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

जौनपुर में धार्मिक पर्यटन-विकास के अभिनव आयाम

*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय**

'आधुनिक पर्यटन' समाज विनिर्मित कोई नया शब्द अथवा खोज न होकर एक पुरातन भारतीय भ्रमणशील श्रमण-परम्परा है, जिसके अस्तित्व के प्रमाण धार्मिक जन-जीवन एवं साहित्य में सुरक्षित हैं। प्राचीन काल में पर्यटन अथवा भ्रमणशीलता को पृथकता में महत्व प्रदान नहीं किया गया था अपितु आश्रम व्यवस्थान्तर्गत वानप्रस्थी हेतु दूर-दराज के क्षेत्रों के भ्रमण द्वारा ज्ञान के प्राप्ति का आदर्श एवं उद्देश्य सन्निहित किया गया था क्योंकि ऐसे भ्रमण के धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, प्राकृतिक एवं कलात्मक आदि अत्यन्त मजबूत पहलू हैं।

भारतीय परम्परा में तीर्थ यात्रा मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग रही है। इन तीर्थ यात्राओं का सम्बन्ध मात्र आध्यात्मिक लाभ एवं पुण्य प्राप्ति तक ही परिसीमित नहीं था, प्रत्युत् आनुषंगिक रूप से यह भारतवर्ष की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता को भी सम्वर्द्धित करने में निरन्तर सहायक रही है। इसके फलस्वरूप मानव स्वार्थमय तथा भौतिक शिक्षा से ऊपर उठकर नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के विषय में सोचने लगता था और यही भावना उसे दीर्घकाल तक अनुप्राणित करती रहती थी। भारत के प्रमुख धर्मों के ग्रन्थों में तीर्थ यात्रा सम्पादित करने के सन्दर्भ में मानव द्वारा नैतिक एवं आध्यात्मिक कृत्यों के सम्पादन के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से तीर्थ यात्रा के सूत्रपात का अभिज्ञान होता है। ताण्ड्य ब्राह्मण में वर्णित है कि प्राचीन काल में सारस्वत सत्रों का स्थान-स्थान पर आयोजन/सम्पादन होता था, जिनमें अनेक स्थानों से ऋषिगण एकत्रित होते थे।[1] पालि साहित्य में तीर्थ यात्रा का समानार्थी शब्द 'चेतियाचारिका' प्राप्त होता है। यह परम्परा प्राक् बुद्ध युगीन प्रतीत होती है। चेतिय तथा चैत्य पवित्र संरचना होते थे, जिस कारण उस स्थान को पवित्र माना जाता था। गौतम बुद्ध ने स्वयं इन चेतिय या चैत्यों का दर्शन किया था।[2] महापरिनिर्वाण सूत्र के अनुसार अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में महात्मा बुद्ध ने शिष्यों को पवित्र स्थलों की यात्रा कर अच्छे एवं उच्च विचारों के संकल्प द्वारा उच्चतर आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त करने का उपदेश दिया गया।[3] अशोक की धर्मयात्रा सुविदित ही है। तीर्थ यात्रा की महत्ता शनैः शनैः यज्ञों से भी अधिक होती गयी। महाभारत में तो यहाँ तक कहा गया कि तीर्थ यात्रा द्वारा प्राप्त पुण्य अग्निष्टोम सदृश यज्ञों के सम्पादन से भी सम्भव नहीं है।[4] स्मृतियों में तीर्थ यात्रा को विविध व्रतों से उपमेय बताया गया है। दो योजन की तीर्थ यात्रा एक कच्छ व्रत के समतुल्य होती है। गंगा-स्नान हेतु साठ योजन की यात्रा एक सौ अस्सी कच्छ के बराबर मानी गयी है।[5]

तीर्थ यात्रा एवं पर्यटन परस्पर सम्पूरक हैं। पर्यटन भारतीय परम्परा में मात्र मनोरंजन का साधन नहीं रहा प्रत्युत् भूमि का स्थान, वहाँ के निवासी और उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं और भौतिक जीवन के अध्ययन का प्रमुख एवं अन्यतम माध्यम रहा है। तीर्थ यात्रा के साथ सम्बद्ध होकर पर्यटन भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन का मजबूत संवाहक बन जाता है। कोई भी व्यक्ति विश्व की विविधता के विषय में ज्ञान-लाभ प्राप्त करना चाहता है तो उसे एतन्निमित्त भ्रमणशील (परिव्राजक) होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि यदि पुस्तकीय अध्ययन से ही व्यक्ति ज्ञानी बन जाता तो समस्त संसार अद्यतन ज्ञानी बन गया होता। पुस्तकीय ज्ञान मात्र परानुभूति कराता है जबकि वास्तविक ज्ञान स्वानुभूति के माध्यम से होता है। विश्व में वैविध्य एवं विचित्रता का वास्तविक बोध तभी सम्भव है, जब व्यक्ति स्वतः वहाँ जाकर देखे। भारत के सर्वप्रथम विश्व भ्रमणकर्ता का श्रेय महर्षि अगस्त्य को दिया जाता है जिन्होंने भ्रमण के माध्यम से उत्तर-दक्षिण भारत के विविध स्वरूपों का बोध प्राप्त किया था। तदनन्तर महर्षि कृष्णद्वैपायन का नाम आता है जिन्होंने भ्रमणोपरान्त 18 पुराणों की रचना की थी। शंकराचार्य द्वारा स्थापित चारों मठ अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा के साथ-साथ परिभ्रमण के परिणाम हैं। महात्मा बुद्ध की सम्पूर्ण चारिकाएँ, कालिदास के मेघ का दूतत्व, कश्मीर

* एसोसिएट प्रोफेसर प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, स.ब.पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर

से यात्रा प्रारम्भ कर लगभग 12 वर्षों में कल्याणपुर पहुँचकर विक्रमांकदेव के राजदरबार को सुशोभित करने वाले विल्हण का देश-दर्शन प्राचीन भारत की अमूल्य धरोहर है जो इस देश की माटी के प्रत्यक्ष दर्शन की देन है। तीर्थ यात्रा के सन्दर्भ में भी अपरोक्षतः नैतिकोन्मुखी पर्यटन का ही अभिप्राय अभिप्रेत है। पाश्चात्य देशों में पर्यटन का अर्थ मनोरंजन या कृत्रिम शान्ति की अस्थायी इच्छा मात्र है जबकि भारत में देशाटन/पर्यटन विशेषतः तीर्थों में सदाचार एवं मानवीय गुणों की उपलब्धि तथा प्रसार का एक साधन था। हर्षवर्धन का प्रयाग महोत्सव इसी परम्परा का रूप था।

ब्रह्म पुराण में तीर्थों की अनेक कोटियों का उल्लेख है। इनमें देव, आर्ष एवं मानुष प्रमुख हैं। इनमें से प्रत्येक पूर्ववर्ती अपने अनुवर्ती से उत्तर श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है।[6] गंगा-यमुना की पुण्य अंतर्वेदी में अवस्थित जौनपुर जनपद अयोध्या-प्रयाग काशी (भारत के तीन प्रमुख धर्म क्षेत्रों) के सन्निकट अवस्थित होने के कारण ऋषिवन था जहाँ हिन्दू, जैन एवं बौद्ध ऋषियों, श्रमणों के आश्रम एवं विहार थे। गंगा-गोमती-सई-वरुणा घाटी का यह परिक्षेत्र प्राचीन काल में प्रवाहित धार्मिक आन्दोलनों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था, जिसकी अभिपुष्टि कुषाण काल से लेकर राजपूत युगीन पुरावशेषों की प्राप्ति से हो जाती है जिनमें वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, नाग-यक्ष-गणेश-कार्तिकेय-वराह प्रतिमाओं का प्रमुख स्थान है।[7] प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य जौनपुर से प्राप्त प्राचीन शिव-मुखलिंगों के आधार पर उन स्थानों का महत्व निरूपित करना है, जो जनपद के पर्यटन-विकास में महत्वपूर्ण योगदान करने की संभावनाओं से ओत-प्रोत हैं।

धार्मिक मान्यतानुसार आदिकाल में जौनपुर परिक्षेत्र प्रकृति की प्रारम्भिक उपासना के अनन्तर महाशक्ति की उपासना का केन्द्र बना। सृष्टि में जब मातृकुल थे, उस समय इस महाशक्ति ने सर्वप्रथम ब्रह्मा तत्पश्चात् विष्णु और अन्त में शिव को जन्म दिया। इन्हीं त्रिदेवों की मान्यता प्राचीन भारतीय शिल्प-शास्त्र का मेरुदण्ड है। सृष्टि प्रक्रिया के मूल तत्व सत्, रज एवं तम के आधार पर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की कल्पना की गई।[8] जिन्हें पुराणों में सृष्टिकर्ता, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता कहा गया है।[9] पौराणिक त्रिदेवबाद का यह स्वरूप वैदिक त्रिमूर्ति (अग्नि, सूर्य एवं वायु) का विकसित स्वरूप है। इन त्रिदेवों को आश्रम व्यवस्था से सम्पृक्त करते हुए ब्रह्मा को ब्रह्मचर्याश्रम, विष्णु को गृहस्थाश्रम एवं शिव को संन्यासाश्रम का प्रतिनिधिदेव माना गया।[10]

जौनपुर से अद्यतन ब्रह्म की कोई स्वतंत्र प्रतिमा तो प्रतिवेदित नहीं है किन्तु कतिपय प्रतिमाओं- हरिहर (चतुर्भुजपुर), उमा-माहेश्वर (अशरफाबाद डीह), (शाहगंज) अमरौना (केराकत), कमरूद्दीन पुर, सारोडीह, सेउर, काजिहद, हथेरा, चतुर्भुजपुर, नगेसरा, नोनारी, परियत एवं मन उराडीह (मड़ियाहूँ) एवं दशावतार (मुण्डाव, हीरापट्टी, सुरेरीडीह, चतुर्भुजपुर, कठवतिया, हथेरा, आदमपुर, निगोह, परियत, मनउराडीह (मड़ियाहूँ) आदि तथ्य शेषशायी (हीरापट्टी मड़ियाहूँ) के परिकर में ब्रह्मा को चित्रित किया गया है जिनमें उनकी अप्रत्यक्ष उपस्थिति मानी जा सकती है।

जौनपुर परिक्षेत्र की धार्मिक मान्यतानुसार यहाँ वैष्णव धर्म का आविर्भाव त्रेतायुग में भगवान श्रीराम के आगमन एवं केरारवीर नामक दैत्य के पराभव से माना जाता है, किन्तु ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक स्त्रोतों के अनुसार वैष्णव उपासना का प्रारम्भ उस समय हुआ जब यह परिक्षेत्र विन्ध्याटवी के रूप में गुप्त शासन के अन्तर्गत था। गुतवन नामक स्थल इसका प्रमाण है। यहाँ भगवान विष्णु एवं ऊनके अवतारों से समबन्धित प्रतिमाएँ अशरफाबाद डीह (शाहगंज) अमरौना, मढ़ी, बमुई, बरइद (केराकत), कमरूद्दीनपुर, सरायडीह, करौनी खुर्द, कोचारी, सुरेरीडीह, हीरापट्टी, धनेथू, हथेरा, कसेरूडीह, चतुर्भुजपुर, चनेयू, मुण्डाव, कुम्भ, टेकारी, सेउर, कठवतिया, निगाह, परियत, मनउरा डीह, सारंग डीह आदि (मड़ियाहूँ) अधकचा (मछलीशहर) से उपलब्ध हैं। वराहावतार प्रतिमाएँ अशरफाबाद डीह (शाहगंज), रामगढ़ (केराकत) एवं बरगुदर पुल (मछलीशहर) से प्रतिवेदित हैं। वराह कोटि तीर्थ धाम (रामगढ़) का उल्लेख महाभारत के आदि पर्व में मिलता है।

देवत्रयी में विष्णु के अनन्तर 'शिव की प्रधानता है। जौनपुर का 'छोटी काशी' होने का श्रेय प्राप्त होने के पीछे यहाँ से प्रतिवेदित अधिसंख्या में शैव प्रतिमाओं को भी माना जा सकता है। इस क्षेत्र से एक मुखी शिवलिंग प्रतिमाएँ शिव गुलाम गंज, बारीनाथ शम्भूगंज (सदर) त्रिलोचन, महादेव (केराकत) सुजानगंज (इसे अज्ञानतावश इसी मुखलिंग होने के कारण अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा कहा जाता है) (मछलीशहर), टेमा, करशूलनाथ चन्दापुर (बदलापुर), कोटिगाँव, कठवतिया, नोनारी, रामनगर, तुलसीपुर, सरसरा, महेवा तथा मनउरा डीह आदि (मड़ियाहूँ) तथा चतुर्मुखी शिवलिंग प्रतिमाएँ चुरावनपुर, पानदरीबा (बक्शा ब्लाक सदर), बस्ती, कुम्भ, सरसरा आदि (मड़ियाहूँ) से उपलब्ध होती है।

सूर्य प्रतिमाओं की उपलब्धता इस बात का परिचायक है कि यह परिक्षेत्र सौर पूजा का केन्द्र रहा होगा। बगौझर (बदलापुर) की आदमकद सूर्य प्रतिमा सम्भवतः भारतवर्ष की सर्वाधिक ऊँची प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त धँवर-भँवर नेवादा (सदर), कमरूद्दीन पुर, कोचारी, सेउर धनेथू, मनउराडीह, नगेसरा, नोनारी (मड़ियाहूँ) की प्रतिमाएँ भी शिल्पशास्त्रीय विशेषताओं से युक्त है। रामूजानकी मन्दिर (बदलापुर) की भग्न सूर्य प्रतिमा का अभिज्ञान सूर्य के सारथि अरुण से हो जाती है जो रथ पर संचालन मुद्रा में रथ पर सवार है।

कार्तिकेय पूजा की प्रतिनिधि प्रतिमाएँ चन्दापुर (बदलापुर), हीरापट्टी तथा कमरुद्दीन पुर (मड़ियाहूँ) से प्रतिवेदित है। उल्लेखनीय है कि गुप्त शासक कुमारगुप्त द्वारा प्रवर्तित कार्तिकेय प्रकार की मुद्राएँ भी जनपद से प्राप्त हैं जिनसे इस क्षेत्र में इस सम्प्रदाय के प्रचलन का पता चलता है। नागोपासना से सम्बन्धित प्रतिमाएँ कोठवाँ (जलालपुर) एवं रामगढ़ (केराकत) से प्रतिवेदित हैं। इसके अतिरिक्त सप्तमातृका प्रतिमाएँ बस्ती, नगेसरा, नोनारी, परियत, मनउराडीह (मड़ियाहूँ), वैष्णवी प्रतिमा पूरेडीह (मड़ियाहूँ), सधोजात प्रतिमाएँ हीरापट्टी (मड़ियाहूँ), अशरफाबाद डीह (शाहगंज), गंगा-जौनपुर शहर एवं कमरुद्दीन पुर (मड़ियाहूँ), महिषासुरमर्दिनी, सेल्हुआपुर, सुबासपुर (पाली), परियत, गजलक्ष्मी-नगेसरा, नोनारी मड़ियाहूँ), गणेश प्रतिमाएँ–चन्दापुर (बदलापुर) कसेरूडीह, परियत कमरुद्दीनपुर मड़ियाहूँ), हनुमान प्रतिमाएँ–सुरेरीडीह, चतुर्भुजपुर एवं मुण्डाव तथा लोक धर्म की परिचायक विराट प्रतिमा फिफिऔना (मड़ियाहूँ) से प्राप्त हुई है। बलराम की मनोस प्रतिमाएँ हथेरा (मड़ियाहूँ) से प्रतिवेदित हैं। मद्यप कुबेर एवं मदिरमत्ता स्त्री प्रतिमा (इण्ड्रोशीथियन) क्रमशः नेवादा एवं शकर मण्डी पुलिस चौकी के पास मन्दिर (सदर) से उपलब्ध हैं।

11-12वीं शताब्दी में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार जौनपुर परिक्षेत्र में हुआ। इस धर्म की प्रतिदर्शक ऋषभ देव की प्रतिमाएँ भी हैं तथा इस परिक्षेत्र में बौद्ध धर्म के अस्तित्व की सम्भावना भी पाई जाती है। शाही पुल पर अवस्थित शार्दूल गजशावक प्रतिमा तथा शीतला चौकिया प्रतिमा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है जबकि जनपद के केराकत एवं मछली शहर स्थानों का प्रत्यभिज्ञान पं. राहुल सांकृत्यायन ने क्रमशः कीटागिरि एवं मस्सिका सण्ड नामक बौद्ध स्थलों से किया है[11] जहाँ भगवान बुद्ध ने वर्षावास व्यतीत किए एवं चर्याक्रम सम्पन्न किए। बौद्ध युगीन व्यापारिक स्थल 'सण्ड' कहे जाते थे, अस्तु, सण्ड नामान्त जनपद के चोरसण्ड, नयनसण्ड, अतरसण्ड आदि स्थलों को व्यापारिक केन्द्र के रूप में महत्ता प्राप्त रही होगी।

तदनन्तर जनपद परिक्षेत्र मुस्लिम धर्मावलम्बियों की सत्ता का केन्द्र बना। शर्की काल में अनेक भवन, मस्जिदों एवं मकबरों का निर्माण हुआ, जिनमें शाही किला, अटाला मस्जिद, झंझरी मस्जिद, मस्जिद लाल दरवाजा, बड़ी मस्जिद, जामा मस्जिद, शेर मस्जिद, शाह का पंजा, जफरशाह की मजार चार अंगुल मस्जिद, शाही ईदगाह, सदर इमामबाड़ा एवं दरगाहें प्रमुख हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जनपद जौनपुर का धार्मिक पक्ष अत्यन्त सशक्त एवं बहुआयामी है। यदि यहाँ की वास्तविक स्थिति से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त स्थल वाराणसी आए। पर्यटकों को अवगत कराने में सफल हो जाते हैं तो वह चाहे जिस भी धर्म एवं सम्प्रदाय का अनुयायी होगा, यहाँ आने का लोभ संवरण नहीं कर पायेगा। यहाँ उन्हें संस्कृति-वैविध्य के दर्शन एक साथ होंगे, अस्तु धार्मिक पर्यटन के विकास की दृष्टि से जौनपुर एक महत्वपूर्ण स्थल की भूमिका निभाने में सक्षम होगा।

सन्दर्भ-सूची

1. ताण्ड्य ब्राह्मण : 25.10; 25.11-12; काणे, पी.वी. : धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, पृ. 1303-04
2. दीघनिकाय, जिल्द-2, पृ0 100
3. वही, पृ0 58
4. महा0, वन पर्व अ0 82, श्लोक 13-17
5. सोलोमन, रिचर्ड : रैंकिंग ऑफ हिन्दू पिलिग्रिमेज साइट्स इन क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर, भाग 129, अंक 1
6. ब्रह्म0 अ0 70, श्लोक 16-19
7. पाण्डेय, विमलेश कुमार : जनपद जौनपुर के पौराणिक कलावशेषों का शिल्पशास्त्रीय अनुशीलन, भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा वित्त पोषित, अप्रकाशित शोध प्रकल्प।
8. श्रीमद्भागवत : 2,4,12
9. विष्णु पुराण : 1,2,66
10. भट्टाचार्य : इण्डियन इमेजेज, पृ. 5
11. डॉ. पाण्डेय, विमलेश कुमार : जौनपुर जनपद के प्रसिद्ध बौद्ध केन्द्र एवं भिक्षु, बौद्ध संस्कृति का वैश्विक प्रभाव, संपा. डॉ0 अजय कुमार पाण्डेय, पृ0 76-82

*****

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 90-96
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

ग्रामीण नारी-जीवन में धर्म तथा विज्ञान : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

*डॉ. रवीन्द्र नाथ मिश्र**

भारतीय धर्मशास्त्रों में कर्तव्य निर्वहन के रूप में धर्म तथा अलौकिक शक्ति में विश्वास के रूप में धर्म का विवेचन मिलता है। ईश्वर का अस्तित्व, कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास तथा पाप और पुण्य की अवधारणा से प्रेरित भारतीय-मानव-समाज ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानते हुए उसकी प्रसन्नता और कृपा प्राप्ति के लिये पूजा-पाठ एवं आराधना आदि कृत्य सम्पन्न करता है और ऐसा न करने वाले को धर्म से विमुख मानने लगता है। अपने कर्तव्य निर्वहन को इन्हीं ईश्वरीय विश्वासों के आधार पर सुनिश्चित करने वाला धर्म में आस्थावान कहलाता है। धार्मिक मान्यताएँ, विश्वास एवं मूल्य व्यक्ति की जीवनचर्या बन जाते हैं तथा कालान्तर में कुछ रूढ़ियाँ प्रकट होकर समाज को विकृत करने लगती हैं। रूढ़ियों पर तार्किकता से प्रहार आधुनिकता की ओर प्रेरणा है, जो वैज्ञानिक आविश्कारों की स्वीकृति के रूप में ग्राह्य होती है। धार्मिक आस्थायें न टूटने पाएँ तथा उनके विकृत मोहपाश से अहित भी न होने पाए इस बात का विवेक ही मानव के जीवन में धर्म और विज्ञान का समन्वय प्रतीत होता है।

भारतवर्ष की ग्रामीण नारी के जीवन में एक ओर धार्मिक विश्वास होता है तथा साथ ही साथ दूसरी ओर विज्ञान की बातें रहती हैं। पूजा-पाठ, व्रत-त्योहार, रोग-बीमारी तथा यात्रा में शुभ-अशुभ की बातों के बीच धर्म एवं विज्ञान के बीच का अन्तर्संघर्ष महिला जगत को उद्वेलित करता है। चेचक की बीमारी में पूजा-पाठ, मान-मनौती तथा पुजारी-सेवकिया की सेवायें एक तरफ होती हैं तथा दूसरी तरफ रोग मुक्ति हेतु चिकित्सा की कशमकश से पीड़ित ग्रामीण नारी मानसिक संत्रास झेलती है।

प्रस्तुत समाजशास्त्रीय विश्लेषण में धर्म एवं विज्ञान का तार्किक विवेचन नारी सन्दर्भ में किया गया है।

आदिकाल से धर्म मानव जीवन का मूलाधार है। धर्म एक ऐसा शाष्वत तत्व है जो मानव समाज का समग्र स्वरूप प्रस्तुत करने की सामर्थ्य रखता है। धर्म एक विस्तृत धारणा है जिसने मानव समाज को सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। धर्म ने सदैव मानव के आचार-विचार, सभ्यता-संस्कृति, रहन-सहन तथा रीति-रिवाजों आदि का निर्देशन किया है। धर्म एक ऐसी प्रणाली है जिसने यह बताने का कार्य किया है कि हमें कौन से कार्य करने चाहिए और कौन से नहीं। इस प्रकार धर्म ने समस्त क्रियाओं को अच्छे और बुरे-दो वर्गों में बाँट दिया है। जो क्रियाएँ मानव कल्याण हेतु हो रही हैं, उन्हें मान्यताओं, धारणाओं, प्रथाओं और मूल्यों का रूप प्रदान कर उनके प्रति अपनी स्वीकृति व्यक्त कर दिया है।

मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष-धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक धर्म से प्रभावित रहा है। एक समय ऐसा भी था जब इन सभी क्रियाओं का प्रमुख आधार धर्म ही था और धर्म के द्वारा ही इन पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता था। वर्तमान समय में भी भारतीय जीवन धर्म पर ही टिका हुआ है। ग्रामीण जीवन की समस्त क्रियाएँ फसल काटने से लेकर बोने तक की क्रियाएँ धर्म के ही मार्ग-दर्शन में होती हैं। इस प्रकार धर्म सदा से ही समाज से सम्बन्धित रहा है और मनुष्य अपने जीवन में पूर्ण आस्था एवं विश्वास के साथ धर्म एवं धार्मिक क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेता रहा है।

धर्म की महत्ताा को स्पष्ट करते हुए किंग्सले डेविस ने कहा है-''मानव समाज में धर्म इतना सार्वभौमिक, स्थायी एवं व्यापक है कि उसके सही स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझे बिना हम समाज को नहीं समझ सकते हैं।''[1]

जब मानव इस पृथ्वी पर आया, तब वह प्रकृति पर पूर्ण रूप से आश्रित था। प्रकृति ने उसे रहने के लिए पृथ्वी, उदर पूर्ति के लिए खाद्यान्न, तृष्णा पूर्ति के लिए जल, प्रकाश के लिए सूर्य, चन्द्रादि प्रकृति प्रदत्ता जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्रदान की वहीं दूसरी ओर आँधी, वर्षा, तूफान, ताप, शीत, अंधकार आदि जैसी प्रतिकूल शक्तियाँ भी मानव को दीं ताकि मानव अपनी प्रखर बुद्धि

* *एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, मर्यादा पुरुषोत्तम पी.जी.कालेज, भुड़सुरी, रतनपुरा, मऊ*

के बल पर विपरीत परिस्थितियों तथा पर्यावरण का सामना कर सके, परन्तु कुछ प्रश्न ऐसे भी थे जिनका उत्तार व्यक्ति की मेधा की समझ से परे था। जैसे-मनुष्य क्यों मरता है? वह मर कर कहाँ जाता है? आत्मा क्या है? उसका स्वरूप क्या है? इस सृष्टि की रचना कैसे हुई? इसकी रचना किसने की? इत्यादि प्रश्नों का उत्तार मानव के पास नहीं था।

जिसने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है, उसकी मृत्यु निश्चित है। जीवन और मरण मानव जीवन का शाश्वत सत्य है। फिर भी मानव इन घटनाओं का कारण ढूंढ़ने का निरन्तर प्रयास करता रहा है और सफलता की प्राप्ति के अभाव में आश्चर्यचकित रह जाता है। अन्ततः मानव ने यह स्वीकार कर लिया कि संसार में कोई अदृश्य शक्ति अवश्य है जो मानव से अधिक श्रेष्ठ एवं शक्तिशाली है। उसी शक्ति पर अटूट श्रद्धा और अनन्य विश्वास के कारण ही धर्म का उदय हुआ।

धर्म को दो अर्थों में व्यक्त किया जा सकता है-विश्वास और स्तुति (पूजा)। दोनों ही धर्म के मुख्य अंग हैं। धर्म के निम्न दो पक्ष हैं-1. आन्तरिक पक्ष, 2. बाह्य पक्ष।

धर्म के आन्तरिक पक्ष में विचारों का समूह-संवेग व भावनाएँ, धार्मिक प्रथाएँ तथा मानव के ईश्वर से सम्बन्धों के बारे में विश्वास आदि बातें सम्मिलित रहती हैं। धर्म के वाह्य पक्ष के अन्तर्गत प्रार्थना की प्रथा, धार्मिक उत्सव, स्तुतियों आदि को सम्मिलित किया जाता है। उसके माध्यम से धार्मिक विश्वास को अभिव्यक्ति दी जा सकती है। चर्च, गुरुद्वारा, मन्दिर एवं मस्जिद आदि में की जाने वाली पूजा, आरती, स्तुति आदि धर्म के बाह्य पक्ष से सम्बन्धित है।

धर्म के सम्पादन की विभिन्न रीतियाँ या क्रिया-कलाप होते हैं। धर्म का प्रमुख लक्ष्य आराध्य देवी-देवता या सर्वोच्च शक्ति को प्रसन्न रखना है। इसके लिए पूजा, कीर्तन, भजन आदि का सहारा लिया जाता है। एक धर्म की रीति दूसरे धर्म के लिए नकारात्मक हो सकती है। जैसे हिन्दू धर्म में मूर्ति पूजा को महत्व दिया गया है तो इस्लाम धर्म इसका खण्डन करता है, परन्तु समस्त धर्मों का उद्देश्य ईश्वर की कृपा प्राप्ति ही रही है।

धर्म एक संवेगात्मक क्रिया है जिसमें धार्मिक विश्वासों का एक संवेगात्मक आधार होता है। इसमें प्रेम और भय दोनों का समावेश होता है। जैसे भगवान कृष्ण की पूजा प्रेममयी भक्ति का स्वरूप है और माँ काली अथवा भूत-प्रेतों की पूजा भय को प्रदर्शित करती है, धर्म का पवित्रता और अपवित्रता से गहरा सम्बन्ध रहा है। धर्म में पवित्रता को महत्व दिया गया है और अपवित्रता से दूर रहने का उपदेश। एक अद्‌भुत सांवेगिक अभिवृत्ति पवित्रता को विशिष्टता प्रदान करती है। साथ ही अपवित्र वस्तुएँ वे मानी जाती हैं जिनका स्पर्श पवित्र वस्तुओं को दूषित कर देता है। यह कार्य एक प्रकार से पवित्र वस्तुओं की मर्यादा को कम कर देता है। अपवित्र वस्तुओं के प्रति हमारी अभिवृत्तियाँ और व्यवहार नकारात्मक मनोभावों से युक्त होते हैं।[2] क्या पवित्र है और क्या अपवित्र है, यह उस समाज विशेष की संस्कृति विशेष की संस्कृति और मान्यताओं पर निर्भर करता है।

धर्म व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार का हो सकता है। दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति को सामूहिक परिस्थितियों या सामूहिक दबाव का प्रतिफल माना है।[3] मंदिरों, गिरिजाघरों या मस्जिदों में की जाने वाली क्रियाएँ धर्म का सामूहिक रूप हैं। स्वयं व्यक्ति द्वारा की जाने वाली उपासना और आराधना धर्म का व्यक्तिगत रूप हैं।

धर्म का समाज से गहरा सम्बन्ध रहा है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र को धर्म ही संरक्षण प्रदान करता है। डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है कि धर्मों ने हमें महसूस कराया है कि जीवन में भूख, काम और नींद की तात्कालिक आवश्यकताओं के अलावा और भी बहुत कुछ है। वे हमारे जीवन मूल्यों के आधार बने हैं और उन्होंने हमारे स्वप्नों और आकांक्षाओं की पूर्ति में हमारी सहायता की है।[4]

धार्मिक तत्व मानव जीवन के आर्थिक और राजनीतिक जीवन पर निरन्तर प्रभाव डालते रहे हैं। जहाँ एक तरफ धर्म द्वारा मनुष्य को आजीविका कमाने से लेकर अन्य कार्यों उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं उधार लेने व लौटाने आदि से सम्बद्ध विभिन्न निर्देश दिये जाते हैं, वहीं दूसरी ओर राजनीति का प्रमुख आधार धर्म ही रहा है। कभी राज्य धर्म पर शासन करता है तो कभी धर्म राज्य पर। इस प्रकार धर्म और राजनीति समाज की महत्वपूर्ण संस्था के रूप में सदैव क्रियाशील रहे हैं।

धर्म ने मानव के समाजीकरण पर अप्रतिम प्रभाव डाला है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव धार्मिक संस्कारों से घिरा रहता है। धर्म मनुष्य को आशावान बनाता है। इसी कारण व्यक्ति निराशाओं में भी आशाओं का दामन नहीं छोड़ता है। दुर्खीम ने अपने आत्महत्या के सिद्धान्त[5] में यह पाया है कि धार्मिक-प्रवृत्ति के लोग आत्महत्या कम करते हैं। उन्हें धर्म अपने प्रति व्यक्ति के दृढ़ विश्वासों द्वारा विघटित होने से बचाता है।

इस प्रकार धर्म समाज के प्रत्येक अंग को प्रभावित करता है। अतः समाज के अभिन्न अंग के रूप में नारी समाज सदैव धर्म के प्रभाव में रहा है। पुरुष समाज अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण भिन्नता का परिचय देता रहा है, परन्तु स्त्री धर्म से अपेक्षाकृत

अधिक जुड़ी रही है। इस तथ्य की पुश्टि करते हुए डॉ. राधाकृष्णन का कथन है-''वे हमारी संस्कृति की संरक्षिकाएँ हैं। जिन परिवारों में उन्हें आधुनिक शिक्षा प्राप्त हुई है, उनमें भी वे घरेलू काम करती हैं। गीत और लोकप्रिय कविता को आश्रय देती हैं। इनमें एक निश्चित जीवन-दर्शन पाया जाता है। अपनी स्वभावगत विशेषता के कारण नारियाँ सभ्यता की प्रचारिकाएँ होती हैं।[6]

धर्म भारतीय नारी के जीवन का अभिन्न अंग रहा हे। यह धर्म की ही महत्ताा है जिसने भारतीय नारी को अर्द्धांगिनी, धर्मपत्नी, सहधर्मिणी आदि नामों से पुकारा है। कोई भी धार्मिक क्रिया पत्नी की अनुपस्थिति में पूर्ण नहीं हो सकती है। धर्म नारी के लिए आध्यात्मिक और बौद्धिक विकास का एक साधन है। इस सम्बन्ध में डॉ. राधाकृष्णन का कथन सर्वथा उपयुक्त है-''भारतीय संस्कृति नारी के लिए आध्यात्मिक विकास और बौद्धिक उत्कर्ष का निषेध नहीं करती।[7] अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण ही नारी ने सदैव अपने कर्तव्यों का पालन एवं निर्वहन प्रचलित परम्पराओं एवं मान्यताओं तथा प्रथाओं के अनुसार ही किया है। परिवार और विवाह दोनों ही नारी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और धर्म में विवाह के उच्च आदर्शों तथा संयुक्त परिवार को लम्बे समय तक बने रहने में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

हमारे समाज में नारियों की स्थिति में काफी उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। वैदिक काल में नारी स्वतंत्र थी, अतः वह स्वतन्त्रतापूर्वक धार्मिक क्रियाओं में भाग लेती थी, परन्तु वैदिक काल के पश्चात् भारतीय नारी धर्म की मान्यताओं तथा बंधनों में फँस गयी। विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप हिन्दू धर्म का पालन एक कठिन कार्य हो गया। नाना प्रकार के प्रतिबन्ध और निषेध तोड़-मरोड़ कर समाज के सामने प्रस्तुत किये गये और भारतीय नारी को तरह-तरह के नियमों में जकड़ दिया गया। धर्म के नाम पर दहेज प्रथा, बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध आदि प्रस्तुत किये गये। इस प्रकार नारी अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को मूकदर्शक बनकर देखती रही और पराधीनता की सहचरी बन गयी।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। इक्कीसवीं शताब्दी में नारी में चेतना आयी है और उसने अपने आपको नये जीवन के लिए तैयार कर लिया है। स्वामी दयानन्द, श्री राजाराम मोहनराय और गाँधी जी जैसे महापुरुषों ने नारी जागरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। नारी की नवचेतना तथा उत्थान ने समाज को चकित कर दिया। इस प्रकार नारी उत्थान तथा नारी नवजागरण ने धर्म पर भी अपना प्रभाव डाला।

शिक्षा के प्रचार के कारण नारी जीवन में परिवर्तन आया और साथ-साथ धर्म पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। वैदिक युग में नारी शिक्षा को पर्याप्त महत्व प्राप्त था, परन्तु विदेशी आक्रमणों के पश्चात् नारी शिक्षा भारतीय समाज से गायब हो गयी और समाज नारी शिक्षा का विरोधी हो गया। समाज का जब इसके दुष्परिणामों की ओर ध्यान गया तो धीरे-धीरे पुनः स्त्री शिक्षा की ओर समाज सुधारक आकर्षित हुए। शिक्षा ने नारी में चेतना जागृत की और उसमें महत्वाकांक्षा तथा स्वतंत्र सोचने-विचारने की क्षमता का उदय हुआ।

आज की नारी निषेधों और कर्मकाण्डों का अन्धानुकरण नहीं करती है। शिक्षा प्राप्त करने के कारण वह विभिन्न निषेधों और कर्मकाण्डों को तर्क के आधार पर देखने लगी है। यह एक सत्य है कि वैज्ञानिक शिक्षा मानव को ज्ञान पिपासु बनाती है और अर्जित ज्ञान व्यक्ति में तर्क उत्पन्न करता है। इसी कारण नारी के मन में उचित-अनुचित, उपयोगी-अनुपयोगी आदि बातें उठने लगी हैं और नारी उन्हीं आदेशों, आदर्शों, नियमों तथा मान्यताओं का पालन करती है जो तर्कसंगत, आवश्यक और उपयोगी हे। केवल वे ही नियम उनके लिए महत्वपूर्ण हैं जो उनके जीवन को व्यवस्थित बनाते हैं तथा सुचारु रूप से जीने में उनकी मदद करते हैं। आज की नारी धर्म के नाम पर रूढ़िवादी, परम्परागत, क्रूर और अनावश्यक प्रतिबन्धों और नियमों को मानने के लिए तैयार नहीं है।

वैसे आज भी नारी धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। शिक्षा ने जहाँ एक ओर नारी में जागृति पैदा की है, वहीं दूसरी ओर धर्म के प्रति उसे आस्थावान भी बनाया है। आज की नारी समाज के किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं है, फिर भी वह धर्म के प्रति अपने कर्तव्यों को सफलतापूर्वक निभा रही है। परिवर्तन मात्र धर्म के स्वरूप में ही हुआ है। जीवन के विभिन्न अवसरों जैसे-शुभ कार्यों पर, त्योहारों, उत्सवों, विवाह आदि के अवसरों पर आज भी नारी धर्म का ही आश्रय लेती है।

नारी सदैव ईश्वर के प्रति आशक्त रही है। नारी स्वभाव से भावुक और कोमल होने के कारण बहुत जल्दी प्रसन्न और दुखी हो जाती है। अतः सुख और दुख दोनों ही स्थितियों में नारी अपने पर पूर्ण संयम नहीं रख पाती हैं। उसके मन में ईश्वर के प्रति भक्ति भावना का अधिक विकास होता है। सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप धर्म के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ, फिर भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि आज भी नारी धर्म से बराबर जुड़ी हुई है।

आज की नारी विवाह के पश्चात पारिवारिक जीवन को स्वीकारने के साथ-साथ धर्म के महत्व को भी स्वीकार करती है। वर्तमान में परिवर्तित परिस्थितियों ने भारतीय नारी और धर्म को क्या स्वरूप प्रदान कर दिया है, यह प्रश्न विचारणीय है। क्या धर्म आज भी उनके जीवन का महत्वपूर्ण पहलू है?

प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण नारी की धर्म के प्रति भीरुता कितने अंशों में क्षीण हुई है और उसी अनुपात में नारी के अन्तर्मन में विज्ञान के प्रति कितनी जागरुकता आई है।

विज्ञान के प्रति जागरुकता—वर्तमान युग में सामाजिक परिवर्तन का श्रेय विज्ञान को ही है। समाज में नये-नये आविश्कार होते रहते हैं और इसमें हमारे जीवन में नये सिरे से अनुकूलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इन नये आविष्कारों से व्यक्तियों के व्यवहारों और मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन होता है। आज से कुछ समय पूर्व तक जब छापेखाने, रेडियो, टेलीविजन, बिजली, स्वचालित गाड़ियों और अणुशक्ति का आविष्कार नयी हुआ था तो हमारा सामाजिक जीवन बिल्कुल भिन्न था। इन्हीं आविष्कारों के कारण 500 वर्ष पूर्व आदिम जीवन बिताने वाला मानव समाज आज सभ्यता की नयी सीढ़ियों को पार कर संसार की सभ्यता का नेतृत्व कर रहा है। हमारे समाज में मशीनों द्वारा उत्पादन होने के फलस्वरूप हमारे सामाजिक संबंधों, परम्परागत नियमों, जाति व्यवस्था रूढ़िवादी विश्वासों, मूल्यों तथा मान्यताओं में इतना व्यापक परिवर्तन हुआ है कि सम्पूर्ण समाज की संरचना ही बदल गयी है। आज हमारे जीवन का प्रत्येक पहलू विज्ञान से प्रभावित है।

साधारण शब्दों में हम विज्ञान का अर्थ मशीनों के आविष्कार, उपयोग अथवा मशीनीकरण से लगाते हैं। कुछ व्यक्ति विज्ञान का तात्पर्य शिक्षण संस्थाओं में दी जाने वाली इंजीनियरिंग अथवा विद्युत शक्ति की जानकारी से लगाते हैं, परन्तु उपर्युक्त वर्णन विज्ञान के अर्थ को अत्यधिक संकुचित बना देता है।

आज के इस वैज्ञानिक युग को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम विज्ञान के सही अर्थ को जानना अत्यन्त आवश्यक है। सामान्य अर्थों में देखा जाय तो विज्ञान का अर्थ एक विशेष ज्ञान से है। मानव की प्रवृत्ति सदैव ही जिज्ञासु रही है। वह प्रत्येक घटना के पीछे निहित कारणों की व्याख्या विशेष रूप से करता है जिसके परिणाम स्वरूप उसका तार्किक मस्तिष्क विकसित हुआ उसकी रचनात्मक विचार शक्ति ने प्रत्येक घटना का अवलोकन, निरीक्षण, परीक्षण, सामान्यीकरण तथा वर्गीकरण करना प्रारम्भ कर दिया। इन सभी प्रक्रियाओं से गुजरे हुए परिणामों ने वैज्ञानिक तथ्य का रूप धारण कर लिया।

कुछ लोग विज्ञान का अर्थ एक विशेष प्रकार के विषय सामग्री से लगाते हैं और वे भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान एवं गणित आदि विषयों को ही विज्ञान मानते हैं। ऐसे लोग सामाजिक तथ्यों एवं प्रघटनाओं, सामाजिक समूहों, संस्थाओं, समाजों एवं सामाजिक संबंधों का अध्ययन करने वाले विषय को विज्ञान नहीं मानते हैं, परन्तु एक यह मिथ्या है, एक भ्रम है। वास्तव में विज्ञान अपने आप में कोई विषय सामग्री न होकर वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किया गया व्यवस्थित ज्ञान है। यदि किसी भी विषय से संबंधित तथ्यों का संकलन वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करते हुए किया जाय तथा इस प्रकार से प्राप्त तथ्यों के आधार पर सिद्धान्त बनाये जायँ तो ऐसे विषय को विज्ञान ही माना जायेगा।

बर्नार्ड ने विज्ञान की परिभाषा छः प्रमुख प्रक्रियाओं के रूप में की है। परीक्षा, सत्यापन, परिभाषा, वर्गीकरण, संगठन तथा अभिविन्यास। इनमें भविष्यवाणी करना तथा व्यवहार में लाना भी सम्मिलित है।[8] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विशेष रूप से वैज्ञानिक ज्ञान को एक ऐसा ज्ञान मानना चाहिए जो निश्चित, कारण युक्त तथा सामान्य हो। ऐसा व्यवस्थित ज्ञान ही विज्ञान है।

अनेकानेक विद्वानों ने विज्ञान का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार की पद्धति से बताया है जिसके द्वारा हम नवीन ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह एक ऐसा ज्ञान है जो विभिन्न क्षेत्रों में हमारे उद्देश्यों की पूर्ति का प्रत्यक्ष साधन होता है। इस प्रकार विज्ञान एक पद्धति है और इसका सम्बन्ध में विषय सामग्री से न होकर पद्धति से है। विज्ञान को एक पद्धति के रूप में परिभाषित करते हुए **वीसेंज** एवं **वीसेंज** ने कहा है-"यह एक पद्धति या उपागम है, न कि विषय सामग्री, जो विज्ञान की कसौटी है।"[9] इस तथ्य पर बल देते हुए **लुण्डवर्ग** ने स्पष्ट किया है कि-"विज्ञान की विषय सामग्री के रूप में परिभाषित करने का प्रयत्न भ्रम ही उत्पन्न करता है।[10]

अतः यह स्पष्ट है कि विज्ञान का संबंध किसी विशिष्ट प्रकार की विषय सामग्री से न होकर वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किये गये क्रमबद्ध और व्यवस्थित ज्ञान से है। इस प्रकार विज्ञान को समझने के लिए हमें वैज्ञानिक पद्धति को जानना परम आवश्यक है। इस पद्धति के अर्थ के सम्बन्ध में लुण्डवर्ग ने लिखा है-"व्यापक अर्थ में वैज्ञानिक पद्धति तथ्यों के व्यवस्थित अवलोकन, वर्गीकरण तथा व्याख्या (निर्वचन) से निर्मित है।"[11] इस प्रकार हमारे समक्ष विज्ञान के प्रमुख तत्व अवलोकन, सत्यापन तथा वर्गीकरण, सामान्यीकरण, भविष्यवाणी तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति आदि आते हैं जिससे किसी आविष्कार या सिद्धान्त का जन्म होता है।

विज्ञान का सम्बन्ध उच्च श्रेणी के साधनों की एक ऐसी व्यवस्था एवं क्रमबद्धता से है जिससे हम अपने उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों की पूर्ति सुनियोजित और ठोस नियमों के आधार पर करते हैं। इस प्रकार यह विभिन्न व्यक्तियों के आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न आविष्कारों और व्यवहार के नये ढंग को जन्म देती है। इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि मानव अपनी सभ्यता

के प्रत्येक पहलू में किसी न किसी वैज्ञानिक पद्धति से जुड़ा रहा है। पाषाण युगीन मानव पत्थर के औजारों का प्रयोग करता था। पशुओं की खाल का वस्त्र पहनता था, सामन्तवादी युग में मानव हल, बैल और कुदाल का प्रयोग करता था। ये सभी चीजें मानव के विज्ञान के प्रति झुकाव का ही परिचायक हैं और आज के इस आधुनिक युग में मनुष्य के विकास में लगातार संचयी वृद्धि होती जा रही है। यह विज्ञान की ही देन है कि आज का मानव नित नये उपकरणों के विकास में सफल हो रहा है। विज्ञान का सम्बन्ध उस ज्ञान अथवा विधि से है जिसके माध्यम से मनुष्य आस-पास के अथवा पर्यावरण में उपस्थित भौतिक और जैविकीय परिस्थितियों को अपने नियंत्रण में रखता है तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल उनका प्रयोग सफलतापूर्वक करता है।

आज मनुष्य के जीवन का प्रत्येक चरण विज्ञान से प्रभावित है। समाज का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जो विज्ञान के नियंत्रण में न हो। हमारे जीवन की कोई भी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक संस्था ऐसी नहीं है जो विज्ञान के विकास से प्रभावित न हुई हो। प्रारम्भ में जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक व्यवस्थायें थीं, वे आज विज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण बदल गयी है। व्यक्ति दिन-प्रतिदिन तार्किक शक्ति का प्रयोग करके निराधार और रूढ़िवादी नियमों पर अपनी आपत्ति व्यक्त करने लगा है। आज व्यक्ति उन्हीं तथ्यों पर अपनी सहमति व्यक्त करता है, जिसे वह तर्क की कसौटी पर खरा पाता है।

वर्तमान युग में विज्ञान सामाजिक परिवर्तन में सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। आज से कुछ समय पहले व्यक्ति की आवश्यकतायें अत्यधिक सीमित थीं। समुदाय का आकार बहुत छोटा था। धर्म, जाति और परम्परागत नियमों द्वारा ही व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण रखा जाता था। ग्रामीण और अधिकांश दूसरे समुदायों का जीवन बहुत कुछ आत्मनिर्भर था। जैसे-जैसे विज्ञान का विकास हुआ हमारे सामाजिक सम्बन्धों, सांस्कृतिक दशाओं, अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे। वाष्प इंजन का आविष्कार तथा औद्योगीकरण ने स्थानीय गतिशीलता में व्यापक सहयोग दिया है जिसके फलस्वरूप हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में परिवर्तन आया।

यंत्रीकरण (मशीनीकरण) वैज्ञानिक खोज का एक ऐसा स्वरूप है जिसने सामाजिक व्यवस्था पर अमिट प्रभाव डाला है। यंत्रीकरण का प्रारम्भिक स्वरूप पहिये के आविष्कार से प्रारम्भ हुआ जो वाष्प शक्ति के उपयोग तथा बेतार के तार के ज्ञान से हुआ। आज इन्हीं से जुड़े हुए अनेक नये आविष्कार हो चुके हैं।

आज भौतिकवादिता तथा आर्थिक सफलता व्यक्ति के जीवन का आधार है। इस कारण व्यक्ति उसी को सम्मान देता है जो धनी, शक्तिशाली तथा अधिकार सम्पन्न है। नैतिकता, चरित्र, शिष्टता तथा आयु व्यक्ति के संबंध का आधार नहीं है। वर्तमानयुगीन मानव इस बात को भलीभांति जान चुका है कि वैज्ञानिक प्रयत्नों के द्वारा सभी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है।

प्रारम्भ में मानव फसल बोने से लेकर काटने तक की क्रियाओं में धर्म तथा धार्मिक क्रियाओं से जुड़ा रहता था लेकिन विज्ञान के प्रभावों ने उसमें जागरुकता पैदा कर दी है और वह उन्नत बीजों, उपकरणों, पशुपालन की नयी प्रविधियों तथा नयी-नयी मशीनों के प्रयोग में विश्वास करने लगा है। ग्रामीण जीवन स्तर में अत्यधिक सुधार आया है और परम्परागत जीवन शैली और अंधविश्वासों में कमी आयी है।

परिवहन के साधनों और तकनीकी ज्ञान में अभिवृद्धि भी विज्ञान की ही देन है। जहाँ एक ओर परिवहन के उन्नत साधनों जैसे-हवाई जहाज, रेल, बसों तथा कारों के विकास के फलस्वरूप विभिन्न लोगों के मध्य स्थानीय दूरी का प्रभाव कम हुआ है तो दूसरी ओर संचार की नयी प्रविधियों जैसे-टेलीफोन, मोबाइल, रेडियो, टेलीविजन तथा फैक्स, वीडियोग्राफी एवं वीडियो कानफ्रेंसिंग आदि के फलस्वरूप हम किसी भी घटना की तात्कालिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। परिवहन तथा संचार के साधनों के विकास ने व्यक्ति को और अधिक अनुभवी बना दिया है। ग्रामीण तथा नगरीय जीवन के बीच की खाईं खत्म हो चुकी है। तकनीकी ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने लगा है। तकनीकी ज्ञान ने रहस्यमयी विश्वासों तथा परम्पराओं पर पड़ा पर्दा हटा दिया है। अतः व्यक्ति केवल उसी तथ्य को स्वीकार करता है जिसे प्रयोग तथा तर्क के आधार पर खरा पाता है।

परम्परागत समाजों में व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करने में धार्मिक मूल्यों तथा विश्वासों का महत्वपूर्ण स्थान था, परन्तु वैज्ञानिक ज्ञान तथा शिक्षा ने धर्म के प्रभाव को कम कर दिया है। वैज्ञानिक आविष्कारों और तार्किक ज्ञान के कारण व्यक्ति उन्हीं व्यवहारों को अब अधिक उपयोगी समझता है जिन्हें तर्क और विवेक के आधार पर समझा जा सके। वर्तमान समय में धर्म का सम्बन्ध कर्म-काण्डों, संस्कारों तथा रूढ़ियों के पालन से नहीं समझा जाता बल्कि धर्म मानवतावादी तथा नैतिक विचारों से सम्बन्धित होता जा रहा है।

इस प्रकार विज्ञान ने सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बदल दिया है। समाज का महत्वपूर्ण अंग नारी भी विज्ञान के प्रभावों से अछूती नहीं है। आज की नारी वैज्ञानिक शिक्षा के बल पर स्वावलम्बी बन चुकी है। नारी रूढ़िवादिता, परम्परागत नियमों तथा खोखले विश्वासों से परे अपने तार्किक शक्ति का प्रयोग करने लगी है। आज की नारी जटिल और कठोर जीवन जीने को विवश नहीं है बल्कि अपने ज्ञान और मेधा के बल पर अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम करने का प्रयास कर रही है।

विज्ञान के विकास ने स्त्रियों में स्वतंत्रता, समानता तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता का भाव उत्पन्न कर दिया है। वह आज प्रताड़ित और निन्दित जीवन जीने के लिए विवश नहीं है। स्त्रियों की परिस्थिति पहले से सुधरी है। उसके मूल्यों तथा मनोवृत्तियों में परिवर्तन हुआ है। नारी जीवन जीने के परम्परागत नियमों और ढंगों को उपयोगी नहीं समझती है। वह अपने ज्ञान और तर्क के द्वारा सत्यता की तलाश करती है। इस प्रकार नारी की प्रस्थिति और भूमिका में परिवर्तन आया है जिससे सम्पूर्ण समाज के ढांचे में परिवर्तन दिखलायी पड़ता है। विज्ञान के बढ़ते हुए प्रभावों ने नारी के जीवन के प्रत्येक स्तर को प्रभावित किया है। वैज्ञानिक शिक्षा ने जहाँ नारी को एक ओर आत्मनिर्भर होना सिखाया, वहीं उसके घरेलू जीवन में भी जागरुकता पैदा किया है। केवल प्रेशर कूकर, गैस के चूल्हों, कपड़ा धोने तथा सफाई की मशीनों के कारण स्त्रियों को परिवार में खाली समय भी मिलने लगा है और फलस्वरूप वह स्वयं अपने बारे में चिन्तन करने लगी हैं।

वैज्ञानिक शिक्षा ने नारी के धार्मिक मान्यताओं को बदल डाला है। कालान्तर में जो नारी पति को परमेश्वर मानकर उसे अपना आराध्य समझती है वह अब पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर हर क्षेत्र में कार्यरत है। अब नारी किसी भी धार्मिक मान्यता, कर्मकाण्ड तथा विश्वास का अन्धानुकरण नहीं कर रही है बल्कि अपनी तार्किक बुद्धि का प्रयोग कर उपयोगी विश्वासों तथा नियमों का ही पालन करती है।

भारतवर्ष का ग्रामीण समाज तुलनात्मक रूप से विकास की दौड़ में पिछड़ रहा है। नगरीय समाज की महिलाओं की परवर्तित सोच विज्ञान के महत्व को स्वीकार करती है, किन्तु भारतीय ग्रामीण नारी जीवन आज भी नवाचारों और प्राचीन परम्पराओं के झूले में झूलती प्रतीत होती है। जिन ग्रामीण महिलाओं को शिक्षित होने का अवसर मिला उन्होंने शिक्षा ग्रहण करके नौकरी को प्राथमिकता देना प्रारम्भ किया है, किन्तु वे नारियाँ जो अर्धशिक्षित या नाममात्र की शिक्षा प्राप्त की हैं आज भी घर के चूल्हे-चक्की से बँधी हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र हेतु ग्रामीण महिलाओं से सम्पर्क किया गया और उनके विश्वासों एवं मान्यताओं को जानने का प्रयास किया गया। ग्रामीण नारी जगत वर्तमान समय में तर्कयुक्त हुई है। सरकार की विभिन्न योजनाओं तथा परिवार एवं पड़ोस के प्रभाव के कारण ग्रामीण महिलाओं में जागृति आना प्रारम्भ हुई है। आज की ग्रामीण महिलायें धर्म के बाह्य आडंबरों से मुक्ति पाने का प्रयास करती दिखाई पड़ती हैं, किन्तु पूजा-पाठ, दर्शन-स्नान तथा तीर्थ यात्रा का विश्वास आज भी उनमें कायम है। हैण्ड पम्प का पानी चमड़े का वाशर लगा होने के कारण न पीने की रुढ़ि से आज ग्रामीण महिलायें मुक्त हुई हैं। आज की अधिकांश ग्रामीण महिलायें स्नान और रसोई के अन्तर्सम्बन्ध की बाध्यता से मुक्त होती प्रतीत होती हैं। घर के बड़े-बूढ़ों या पति के भोजन कर लेने के बाद ही भोजन करने की बाध्यता भी आज ग्रामीण महिलाओं में कम दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आज के वर्तमान परिदृश्य में 21वीं सदी के भारत में ग्रामीण महिलायें सुविधानुसार धर्म का पालन करने में विश्वास करना प्रारम्भ की हैं तथा विज्ञान के प्रति जागरुक हुई हैं। इस प्रकार आज पूर्ण रूप से ग्रामीण नारी, धर्म भीरू नहीं है और न ही पूर्ण रूप से वैज्ञानिक प्रवृत्ति पर आधारित आधुनिक की भूमिका में ही है। आज की ग्रामीण नारी के क्रिया-कलाप और मनोवृत्ति में धर्म और विज्ञान का समन्वय दिखाई पड़ता है।

सन्दर्भ-सूची

1. किंग्सले डेविस (1973) : मानव समाज, किताब महल, इलाहाबाद, पृ. 442
2. किंग्सले डेविस अनुवादक गोपाल कृष्ण अग्रवाल (1973) : मानव समाज, किताब महल इलाहाबाद, पृ. 452
3. इमाइल दुर्खीम (1947) : एलीमेन्टरी फार्म्स आफ रिलीजियस लाइफ, अनुवादक जे. डब्लू. स्वेन फ्री प्रेस ग्लेनको,
4. राधाकृष्णन (1968) : आधुनिक युग में धर्म, राजकमल प्रकाशन (प्रा.) लि., दिल्ली, पृ. 16
5. इमाइल दुर्खीम (1857) : दि सुसाईड ग्लेनको।
6. डॉ. राधाकृष्णन (1976) : भारत और विश्व, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 63
7. डॉ. राधाकृष्णन (1976) : भारत और विश्व, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली, पृ. 62

8. एल.एल. बर्नाड, फील्ड्स एण्ड मेथड्स ऑफ सोसियॉलॉजी, पृ. 73-74
9. जे. बीसेंज एवं एम. बीसेंज, मॉडर्न सोसायटी, पृ. 3
10. जार्ज ए. लुण्डबर्ग, सोशल रिसर्च, पृ. 3
11. लुण्डबर्ग सोशल रिसर्च

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. अस्थाना; प्रमिला, वुमेन्स मूवमेंट इन इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हॉउस, कानपुर 1974
2. डेविस; किंग्सले, ह्यूमन सोसाइटी (हिन्दी), अनु. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, किताब महल इलाहाबाद, 1973
3. त्रिपाठी; चन्द्रबली, भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, दुर्गावती प्रकाशन गोरखपुर, 1981
4. दुर्खीम; इमाइल, एलीमेंटरी फार्म्स ऑफ रिलीजियस लाइफ, फ्री प्रेस, ग्लेनको, अनुवादक-जे.डब्लू., 1947
5. दुर्खीम, इमाइल, दि सुसाइड, ग्लेनको, 1897
6. बर्नार्ड; एल.एल. फील्ड्स एण्ड मेथड्स ऑफ सोसीयॉलोजी
7. बीसंज जे. और बींसज एम., मॉडर्न सोसाइटी
8. देसाई; नीरा, वुमेन, इन मॉडर्न इण्डिया, वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स (प्रा.) लि. बम्बई, 1957
9. नन्दा; बी.आर., इण्डियन वुमेन, विकास पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1976
10. नेहरू; जवाहरलाल, फारवर्ड वूमेन इन इण्डिया, दि पब्लिकेशन्स डिवीजन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया प्रेस, फरीदाबाद
11. मिश्रा; आर. एन., सामाजिक शोध एवं सामान्य सांख्यिकी, शिवालिक प्रकाशन दिल्ली, 2017
12. मुकर्जी; राधाकमल, भारतीय समाज विन्यास, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1957
13. यंग; पी.वी., साइन्टिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च, प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया(प्रा.) लि. दिल्ली, 1968
14. राधाकृष्णन; सर्वपल्ली, आधुनिक युग में धर्म, राजकमल प्रकाशन (प्रा.) लि. दिल्ली, 1968
15. लुण्डवर्ग; जार्ज ए., सोशल रिसर्च
16. सर्वपल्ली; राधाकृष्णन, भारत और विश्व, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-7, 1976
17. सिंह, रमा, शिक्षित हिन्दू महिलाएँ एवं धर्म : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण, बी.आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, 1988

*****

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 97-104
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

गोंड़ जनजाति की परम्परागत प्रथाएँ एवं जादू-टोने की अवधारणा

*डॉ. रचना श्रीवास्तव**
*गंगा बैरागी***

गोंड़ जनजाति में सामाजिक परिवर्तन (शहडोल जिले के वशेष सन्दर्भ में) शोध कार्य करते समय मुझे गोंड़ जनजाति के लोगों में अलग ही विशेषता देखने को मिली। वो विशेषता थी, उनकी अद्भुत प्रथाएं एवं परम्पराएं एवं उनकी जादू-टोने की अवधारणा जिस पर वो अटूट विश्वास रखते हैं, और जादू-टोने की अवधारणा को आज के विज्ञान के इस युग में भी विशेष महत्व देते हैं और अन्धविश्वास की हद तक उनका पालन भी करते है।

शोध कार्य करते समय मैंने देखा कि इनकी प्रथाएं, परम्पराएं ही उनकी विरासत है और ये अपने जीवन के हर संस्कार में उनका पालन पूरी निष्ठा से करते हैं, गोंड़ जनजाति की सांस्कृतिक विरासत ही उनकी धरोहर है।

मेरा मानना है कि यदि आप गोंड़ जनजाति पर अध्ययन या शोध कार्य कर रहे हैं, तो उनकी अद्भुत और रोचक परम्पराओं प्रथाओं, और जादू-टोने पर उनके विश्वास का अध्ययन किये बिना आपका शोध कार्य अधूरा ही रहेगा। यही विशेषता उन्हें अन्य समाजों से पृथक बनाती है।

ये गोंड़ जनजाति के लोग जिन्दगी को अपनी ही लय में जीने वाले, अपनी ही धुन में रहने वाले मदमस्त लोग हैं। ये अपने जीवन को अपने ही ढंग से जीने वाले लोग हैं मैंने शोध कार्य करते समय जाना कि, ये आज के वैज्ञानिक युग में भी बीमार होने पर डाक्टर के पास न जाकर पूजा-पाठ और झाड़-फूंक में विश्वास करने वाले लोग हैं।

वर्तमान से अनभिज्ञ अपनी ही दुनिया में खोये रहने वाले इन गोड़ आदिवासियों की पम्परागत प्रथाओं और आदू-टोने के अवधारणा का शोध कार्य करते समय जो जानकारी मुझे प्राप्त हुई उसी का वर्णन मैं यहां करने जा रही हूँ।

(1) गोंड़ जनजाति की पम्परागत प्रथाएँ–गोड़ जनजाजति में सामाजिक परिवर्तन विषय पर शोध कार्य करते समय मुझे इस जनजाजति के रीति-रिवाज, रहन-सहन एवं परम्परागत प्रथाओं की जो जानकारी प्राप्त हुई, वह इस प्रकार है-

1. जन्म से सम्बन्धित प्रथाएं-मैंने सर्वेक्षण के समय जाना कि गोंड़ों में परम्परागत प्रथाओं का शुभारंभ किसी बच्चे के जन्म होते समय ही प्रारंभ हो जाता है। जैसे जब किसी स्त्री को प्रसव पीड़ा होती है तो, गोंव की कुछ सयानी महिलाएं प्रसव का कार्य पूरा करती हैं। प्रसव कराने हेतु ये प्रसूता को अस्पताल ले जाना पसंद नहीं करते। प्रसव में अधिक पीड़ा होने पर ये सायानी महिलाएं कुछ टोटके करती हैं। जैसे प्रसूता को गरुण वृक्ष की लकड़ी सूंघाना, सर्प की केंचुली दिखाना आदि। उनका मानना है कि ऐसा करने से प्रसव कष्टरहित और आसानी से हो जाता है।

मैंने सर्वेक्षण के दौरान देखा कि प्रकृति ने गोंड़ महिलाओं को ऐसा साहस प्रदान कर दिया है कि प्रसव होने के पूर्व तक और प्रसव होने के तुरंत बाद भी वे कार्य करने में सक्षम होती है। मैंने देखा कि घर के कोने में कुछ आड़ करके सौरगृह बना लिया जाता है। यहीं जच्चा-बच्चा को खटिया या जमीन पर पायरा (एक प्रकार का चारा) बिछाकर सुलाते हैं। प्रसव के बाद प्रसूता को जड़ी-बूटी का एक उसाँव पिलाते हैं। यह एक काढ़े की तरह पेय पदार्थ है। इसके बाद हल्दी, सोंठ और गुड़ के घोल को घी से बघार कर पिलाते हैं। प्रसूता को तीसरे दिन कुदई का भात व उड़द की दाल खाने को दी जाती है। मैंने यहां एक विशेष बात यह भी देखी कि, प्रसूता को प्रसव के तुरन्त बाद ये लोग महुए के शराब से भरी हुई परांत (बड़ी थाल) में बैठा देते हैं। पूँछने पर उन्होंने बताया कि हम लोग ऐसा इसलिए करते हैं, जिससे की महिला का शरीर शराब सोख लेता है

* प्राध्यापक समाजशास्त्र, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
** *शिक्षक, शास. उ.मा.वि. सीधी खुर्द, सीधी (म.प्र.)*

और उसे कभी कमर दर्द की शिकायत नहीं होती। इसी तरह टॉनिक के रूप में भी प्रसूता को महुए के साथ पुराना गुड़ कूटकर खिलाया जाता है जिससे जच्चे और बच्चे में ताकत आती है।

मैंने देखा कि शिशु का नारा (गर्भनाल) को सयानी बांस की एक पतली नेर (डगाल) से काटती है और नारा को वहीं जन्मस्थान के बाद गड्ढा खोदकर गाड़ देते हैं। मैंने सर्वेक्षण के समय उनसे पूछा कि क्या आप लोग प्रसूता को प्रसव हेतु अस्पताल ले जाते हैं तो, जो जानकारी मुझे प्राप्त हुई वह निम्न तालिका में वर्णित है।

तालिका क्रमांक-1

क्र.	विकल्प	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	क्या आप प्रसव हेतु अस्पताल जाते हैं	5	8.33%
2.	क्या आप प्रसव हेतु अस्पताल नहीं जाते हैं	55	91.67%
	योग	**60**	**100%**

इस प्रकार कुल परिवारों में से 8.33 प्रतिशत लोग ही ऐसे मिले जिन्होंने कहा कि वे प्रसव के दौरान प्रसूता को प्रसव हेतु अस्पताल ले जाना चाहेंगे। बांकी 91.67 प्रतिशत लोग घर पर ही पारम्परिक ढंग से प्रसव कराने की प्रथा का पालन करते हैं।

2. विवाह से संबंधित परम्परागत प्रथाएँ-आदिवासियों में विवाह केवल वंश वृद्धि के लिये नहीं रचाए जाते बल्कि विवाह आदिम प्रेम, परस्पर सहयोग और सहज आकर्षण की अभिव्यक्ति होते हैं। गोंड़ों में सच्चे अर्थों में महिला पुरुष की अर्धांगिनी होती है।

गोड़ों में बाल विवाह का चलन पूर्व में था, किन्तु अब यह धारणा बदल रही है। पहले रजस्वला होने के पूर्व लड़की के हाथ पीले करना पवित्र कार्य समझा जाता था। मैंने शोध कार्य के सर्वेक्षण से यह जाना कि गोड़ों में समगोत्री विवाह नहीं होते हैं किन्तु ददिहाल और ननिहाल के परिवारों में विवाह करना गोड़ लोग अपना नैतिक धर्म समझते हैं। भाई अपनी सगी बहन की लड़की से अपने पुत्र का विवाह कर सकता है। वह यह विवाह करने का प्रथम अधिकारी होता है। इस रिश्ते को दूध लौटाना कहते हैं। गोड़ों में प्रायः विवाह की आयु 13 से 16 वर्ष तक की उम्र में होती है। यह विवाह माता-पिता की रजामन्दी से होती है। किन्तु इसमें भी लड़की की इच्छा सर्वोपरि होती है। वयस्क गोड़ युवक-युवतियां अपनी पसंद का जीवनसाथी चुनने हेतु स्वतंत्र होते हैं।

मैंने सर्वेक्षण में जानना चाहा कि क्या आप विवाह अपनी रजामन्दी से करते हैं तो उसका जो प्रतिउत्तर प्राप्त हुआ, वह निम्न तालिका में वर्णित हैं-

तालिका क्रमांक-2

क्र.	विकल्प	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	अपनी इच्छा से विवाह	35	58.33%
2.	माता–पिता की इच्छा से विवाह	25	44.67%
	योग	**60**	**100%**

इस प्रकार 58.33 प्रतिशत गोड़ युवक-युवतियां अपनी इच्छा से विवाह करते हैं, जिसमें उनका परिवार भी अपनी सहमति देता है। जबकि 44.67 प्रतिशत लोग अपने माता-पिता की इच्छा से विवाह करते हैं। माता-पिता की इच्छा से विवाह करने वाले प्रायः 13 से 18 वर्ष की उम्र के होते हैं।

गोड़ों में लड़की-लड़के के चुनाव में रंग एवं सौन्दर्य की अपेक्षा, परिश्रम, कार्य कुशलता और शारीरिक पुष्टता देखी जाती है। इन सब चीजों को परखने के लिये लड़की वाले वर के घर जाते हैं।

गोड़ों में प्रायः विवाह के मुख्य तीन प्रकार पाए जाते हैं-

1. चढ़ विवाह-इस विवाह में दूल्हा बारात लेकर वधू पक्ष के यहां जाता है। साथ में नगरिया और टिमकी आदि वाद्य यंत्र बजाए जाते हैं। बारात गाजे-बाजे के साथ पैदल ही रवाना होती है। रास्ते में गोड़ लोग विरहा और ददरिया गाते हुए चलते हैं। बारात में महिलाएं भी जाती हैं। नगाड़े, नगरिया, सींग बाजा शहनाई आदि ढुलिया लोग बजाते हैं। दूल्हे को परम्परागत हल्दी में रंगी हुई पियरी धोती और झंगा पहनाया जाता है। सिर पर सफेद या पीले रंग का साफा बांधा जाता है। साफे पर बांस की नेर (टहनी) से बंधा मोर पंख बांधा जाता है। गले में सुन्दर सुतिया हमेल कमर में कटार या सरौता, हाथ में बांस का पंखा लिए

जब दूल्हा निकलता है तो उसकी छवि देखते ही बनती है। लड़की के घर में पहुंचकर बारात आगमन, फेरों और कन्यादान आदि की रस्म होती है। बारातियों का स्वागत प्रायः महुए की शराब से किया जाता है। इसे वे मोहलाइन पत्तों के दोनों में भरकर पेश करते हैं। दूसरे प्रकार का विवाह लमसनाई विवाह कहलाता है।

2. लमसनाई विवाह-लमसना को घर जवाई भी कहा जाता है। सर्वेक्षण के समय मैंने देखा कि इसमें लड़का (वर) विवाह के पूर्व ही अपनी होने वाली ससुराल में रहता है। वह घर, जंगल और खेत से संबंधित सारे कार्य करता है। यह स्थिति लगभग तीन वर्ष तक रहती है। लमसना की अवधि समाप्त होने व होने वाले दामाद के इन कार्यों में खरा उतरने के बाद लड़की का पिता स्वयं विवाह का सारा खर्च उठाकर अपनी बेटी का विवाह लमसना (वर) के साथ कर देता है। इसे लमसनाई जीतना कहते हैं। विवाह होने के पश्चात् भी बेटी-दामाद वहीं रहते हैं। उन्हें लड़की के गांव में ही एक अलग घर और कुछ जमीन, हल, बैल आदि देकर, स्वतंत्र जीवन यापन की सुविधा दी जाती है।

3. पठौनी विवाह-इस विवाह में लड़की की बारात लड़के के यहां आती है। लड़के के घर के मण्डप में भांवरे होती है। लड़की अपने दूल्हे को विदा करके अपने पिता के घर लाती है। कुछ वयोवृद्ध गोड़ लोगों ने मुझे इस प्रथा के बारे में बताया। किन्तु अब ये पठौनी विवाह प्रथा लुप्त हो रही है।

इन परम्परागत विवाह के अतिरिक्त गोड़ों में कुछ और विवाह भी पाए जाते हैं, जैसे भगेली विवाह, बलात विवाह, अर्न्तजातीय विवाह आदि।

सर्वेक्षण के दौरान इनके विवाह प्रथा के संबंध में एक अच्छी बात मुझे यह जानने को मिली कि ये जनजातीय लोग अशिक्षित होने पर भी विधवा विवाह का पूर्ण समर्थन करते हैं और इनका समाज विधवा विवाह को सहर्ष अपनी स्वीकृत देता है।

गोड़ों में बहुविवाह की भी प्रथा है एक पति एक से अधिक पत्नियां रख सकता है। इनकी मान्यता है कि ज्यादा पत्नियां घर और बाहर के काम-काज संभाल लेंगी।

गोड़ों में विवाह की प्रचलित पद्धतियां इस प्रकार हैं-

तालिका क्रमांक-3

क्र.	विकल्प	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	चढ़ विवाह	32	53.33%
2.	लमसना विवाह	14	23.33%
3.	भगोलिया, बलात विवाह	12	20%
4.	पठौनी विवाह	02	3.34%
	योग	**60**	100%

स्रोत : सर्वेक्षण के आधार पर।

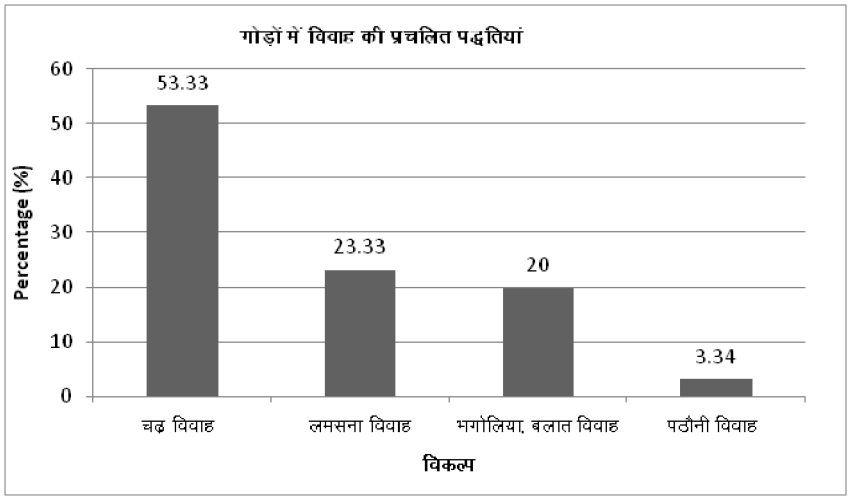

इस प्रकार हम देखते हैं कि 53.33 प्रतिशत लोग परम्परागत चढ़ विवाह को मान्यता देते हैं एवं 23.33 प्रतिशत लोग लमसनाई विवाह को महत्व देते हैं तथा बलात विवाह व भगोलिया विवाह अपनी इच्छा से 20 प्रतिशत लोग करते हैं। किन्तु अब पठौनी विवाह लगभग समाप्त हो चुका है।

3. गोड़ जनजाति में गुदने से संबंधित परम्परागत प्रथा-मैंने शहडोल जिले की गोड़ जनजाति पर सर्वेक्षण करते समय यह देखा कि यहां लगभग हर घर पर सभी लोगों के शरीर मे गुदने गुदवाने की प्रथा है। मैंने जब इसका कारण जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि गोदना, स्त्री के सच्चे जेवरों की निशानी मानी जाती है, जो मरते समय भी उसके साथ आती है और देवता इससे प्रसन्न रहते हैं। उन्होंने कहा ये गोदने शरीर को सुन्दरा और स्वस्थ बनाते हैं। इस तरह की धारणा प्रत्येक आदिवासी गोड़ों में मैंने देखी।

गोड़ लोग, बाँह, हाथ पोहचा, गले, छाती, मस्तक, पैर आदि शरीर के विभिन्न अंगों में छः से सात वर्ष की उम्र से गुदने गुदवाना प्रारंभ कर देते हैं। मैंने शोध कार्य में सर्वेक्षण के समय देखा कि यह सबसे पहले भृकुटी (भौंहों के बीच) में अर्द्धचन्द्राकार पोंहचा गुदवाते हैं। चेहरे पर बायीं आंख और गाल पर बिन्दी की तरह गुदना जिसे ये टिपका बोलते हैं, वह गुदवाते हैं। नाक पर भी कहीं-कहीं पर टिपका गुदवाने की प्रथा है।

मैंने देखा कि कई गोड़ जाति के लोग, जाँघ से लेकर पैर तक गुदना, गुदवाते हैं। कुछ लोग केवल पैरों में गुदना गुदवाते हैं।

शरीर पर गुदना गुदवाना महिलाओं के लिए सौभाग्य की बात मानी जाती है। गोड़ पुरुष कम गोदने गुदवाते हैं। किन्तु महिलाएं गोदनों की ज्यादा शौकीन होती है।

महिलाओं के गुदने में कई तरह के रूपांकरों का समावेश होता है। बाँह, छाती, मस्तक, पोहचा आदि तरह-तरह के परम्परागत गोदने होते हैं। जिन्हें उन्हीं निर्धारित जगहों पर गुदवाना अनिवार्य होता है।

गोड़ों में गुदना गोदने वाली महिलाएं बादी जाति की होती है। इन्हें बदनिन कहा जाता है। बदनिन का गोड़ समाज में बड़ा सम्मान होता है। गोदने गुदवाने के लिए बदनिन को आमंत्रित किया जाता है और गोदना गुदवाने के बाद बदनिन को कोदो, कुटकी और महुंए की शराब नेंग में दी जाती है। कहीं-कहीं पर बदनिन गुदना, गोदने का पांच रुपये से लेकर पचाय रुपये तक प्रत्येक गोदनों के हिसाब से वसूल करती है।

मैंने सर्वेक्षण के समय एक रोचक बात यह देखी कि गोदने की स्याही को कैसे बनाते हैं- इसमें पहले रामतिला को भूंज लेते हैं, भूजने पर रामतिला का लोंदा बन जाता है। लोंदे को खपरैल में जलाकर काजल बना लिया जाता है। पानी में काजल को फेंटकर गाढ़ी स्याही बना ली जाती है। काजल से पहले जो आकृति शरीर पर गोदना है, उसे बना लिया जाता है, फिर सुई से काजल स्याही में डुबो-डुबो कर, बनाई हुई आकृतियों पर चुभाते चले जाते हैं। गोदना, गुदवाने के बाद शरीर को गोबर, पानी से धो दिया जाता है उनका मानना है कि इससे गोदना पकता नहीं है।

मैंने सर्वेक्षण में देखा कि इनको ये गोदना, गुदवाते समय काफी दर्द महसूस होता है। किन्तु ये गोदना गुदवाने के इतने शौकीन होते हैं कि हंसते-हंसते इस दर्द को सह जाते हैं। कुछ ही दिनों में ये गोदने, शरीर पर अमिट निशान बन जाते हैं और पूरी जिन्दगी गोड़ और अन्य आदिवासी महिलाओं के शरीर पर जगमगाते रहते हैं।

सबसे कठिन गोदना छाती का होता है। आजकल ये लोग बाजार में मशीनों से भी गोदना गुदवाते हैं। मैंने देखा गोदना, गुदवाने को लोग शरीरिक अलंकरण के रूप में तो मानते ही हैं साथ ही ये इसे बुरी आत्माओं से रक्षा के प्रतीक रूप में भी मानते हैं। जब मैंने पूछा कि गोदना, गुदवाने की प्रथा क्यों हैं तो जो जानकारी मुझे प्राप्त हुई वह इस तालिका में दर्शायी गयी है-

तालिका क्रमांक-4

क्र.	विकल्प	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	धर्माचार एवं बीमरी से सम्बन्धित मान्यता	24	40%
2.	जादू–टोने से संबंधित धारण	26	43.34%
3.	स्वर्ग–नर्क की धारणा से संबंधित	10	16.66%
	योग	**60**	100%

स्रोत : सर्वेक्षण के आधार पर।

इस प्रकार 40 प्रतिशत लोगों की यह मान्यता है कि गुदना, गुदवाने से सौभाग्य की प्राप्त होती है और इससे देवता प्रसन्न रहते है। उनकी यह धारण भी है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से भी गुदनों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। इससे स्त्रियों को बादी की बीमारी नहीं होती है एवं शरीर पर बदलते मौसम का असर नहीं होता है।

तथा 40 प्रतिशत लोगों द्वारा यह विचार बाताए गए कि इससे जादू टोने का प्रभाव शरीर पर नहीं होता है तथा सांप बिच्छू के काटने पर जहर नहीं लगता है। मैंने एक और विचित्र बात यह देखी कि इनके गोदनों पर सांप, बिच्छू आदि की आकृतियां बनी हुई हैं इसका कारण उन्होंने बताया कि जिस भी जानवर की आकृति हमारे शरीर पर होती है, उन जानवरों के द्वारा गुदना गदुवाने वाले व्यक्ति को कोई हानि नहीं पहुँचती तथा इस सर्वेक्षण से 20 प्रतिशत लोगों का गोदनों के संबंध में यह विचार था कि इससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जो गहने हमने शरीर पर गोदवाये हैं, वो भी हमें स्वर्ग में मृत्यु के बाद प्राप्त होंगे। इस प्रकार गोड़ जनजाति की गुदने की प्रथा अद्‌भुत है।

4. लोक-संगीत एवं लोक नृत्य की परम्परागत प्रथाएँ-गोंड़ जनजाति के लोगों का जीवन लोकगीत एवं लोकनृत्यों के बिना अधूरा है। लोक नृत्यों को गोंड़ समाज स्वयं की प्रेरणा से, बिना संगीत, लय, ताल के सीखे हुए स्वयं ही नाचते हैं। नाचते-नाचते प्रत्येक आदिवासी उसमें पारंगत हो जाता है। ये नृत्य, विभिन्न क्षेत्रों में वहां की प्राकृतिक बनावट के अनुसार अपना विविध स्वरूप पा लेते हैं।

गोड़ आदिवासियों के प्रमुख नृत्य एवं गीत इस प्रकार है-

1. करमा नृत्य-यह नृत्य कर्म की पूजा के उत्सव के रूप में मनाया जाता है। इसी से इसका नाम करमा नृत्य पड़ा। यह कर्म की प्रेरणा देने वाला नृत्य है। आंगन में माँदर की थाप पड़ी नहीं कि, गांव के युवक युवतियां नाचते-गाने के लिये अपने घरों से निकल आते हैं और नृत्य जम जाता है। माघ-पूस की ठण्डी रातों में यह नृत्य करते हुए इनकी रात कट जाती है। वर्षा ऋतु को छोड़कर हर ऋतु में करमा नृत्य किया जाता है। युवक-युवती अपने साधारण बोलों से गीतों की रचना करते हैं और उसी लय में थिरकते रहते हैं। इसमें नृतकों की वेश-भूषा दिन-प्रतिदिन के वस्त्रों में होती है।

2. शैला नृत्य-शैल-शिखरों में नाचे जाने के कारण इसका नाम शैला नृत्य पड़ा। प्राचीन समय गोंड़ सैनिक शैल-शिखरों पर इसी नृत्य से व्यायाम करते थे। गोड़ छावनिया टूट जाने पर यह नृत्य पहाड़ों से उतरकर गांवों में आ गया। यह नृत्य भी दैनिक वस्त्रों में अर्द्ध गोले में अथवा कतारबद्ध होकर किया जाता है। यह केवल पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है। एक गायक, गीत उठाता है और सभी उसे दोहराते हुए नाचते हैं। जब सैला दल अपने गांव से दूसरे गांव में नाचने जाता है तो उसे गिरदा नृत्य कहते हैं।

3. भड़ौनी-यह विवाह नृत्य गीत है। महिलाएं मण्डप के नीचे खड़े होकर बारात वालों को मीठे शब्छों में गाली देती हैं और नाचती हैं ये गालियां बारातियों को मीठी लगती है, और ये उन्हें नेंग देते हैं।

4. बिरहा-बारात जब दूल्हे के घर से चलती है तो रास्ते में दोहों के रूप में बिरहा गाया जाता है। इन गीतों में लड़की के विरह का वर्णन मिलता हैं। इसी से इसका नाम विरहा गीत पड़ा।

5. सुआ नृत्य-जब धान की फसल पक जाती है उसी खुशी में यह नृत्य होता है।

लोक गीत

1. पंडवानी-लोकगीतों में पंडवानी का गायन प्रमुख होता है। गोंड़ लोग शक्तिशाली डील-डौल और पौरुष को अधिक पसंद करते हैं। इसीलिए अर्जुन की अपेक्षा भीमसेन को पंडवानी में प्रधानता मिली है। इसे ये लोग अपने अंदाज में गाते हैं।

2. रामायणी-ये लोग रामायणी में भी राम को महत्व न देकर लक्ष्मण को महत्व देते हैं। रामायणी में ये लोग लक्ष्मण की लमसनाई का वर्णन करते हैं। ये दोनों ही गीत पंडवानी व रामायणी इनके लिये दसौंधी गाता है जो जजमान की इच्छा से कभी रामायणी तो कभी पंडवानी गाता है।

3. गोंडवानी-गोंडवानी में गोंड़ राजाओं की वीर गाथाएं गायी जाती है। ये गोंड़ क्षत्रिय किसी इतिहास के पात्र भी होते हैं और कभी-कभी काल्पनिक भी होते हैं। गोंडवानी गायन में गोंड़ राजा के श्रृंगार का वर्णन प्रायः रहता है। जैसे- योद्धा का श्रृंगार, पुरुष श्रृंगार तथा घोड़े का श्रृंगार आदि।

4. ददरिया-यह भी प्रीत-गीत है।

5. करमा ठाढ़ा-यह जीवन के सुख-दुख का गीत है।

6. **सैला भड़ौनी**-यह जीजा साली और देवर भाभी के मजाक का गीत है।

7. **जसगीत**-यह बूढ़ा देव के लिये गाया जाता है।

8. **रीना गीत**-यह त्यौहारों के अवसर पर गाते हैं।

सर्वेक्षण के दौरान इन लोक गीतों एवं नृत्यों की लोकप्रियता के सम्बन्ध में क्रमशः जो जानकारी मुझे प्राप्त हुई, वह इस तालिका में दर्शायी गयी है।

तालिका क्रमांक-5

लोक नृत्यों एवं लोकगीतों की लोकप्रियता से संबंधित

क्र.	विकल्प सर्वाधिक लोकप्रिय	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	करमा	12	20%
2.	शैला	14	23.33%
3.	पंडवानी	13	21.67%
4.	गोड़वानी	11	18.34%
5.	ददरिया एवं रीना	10	16.66%
	योग	**60**	100%

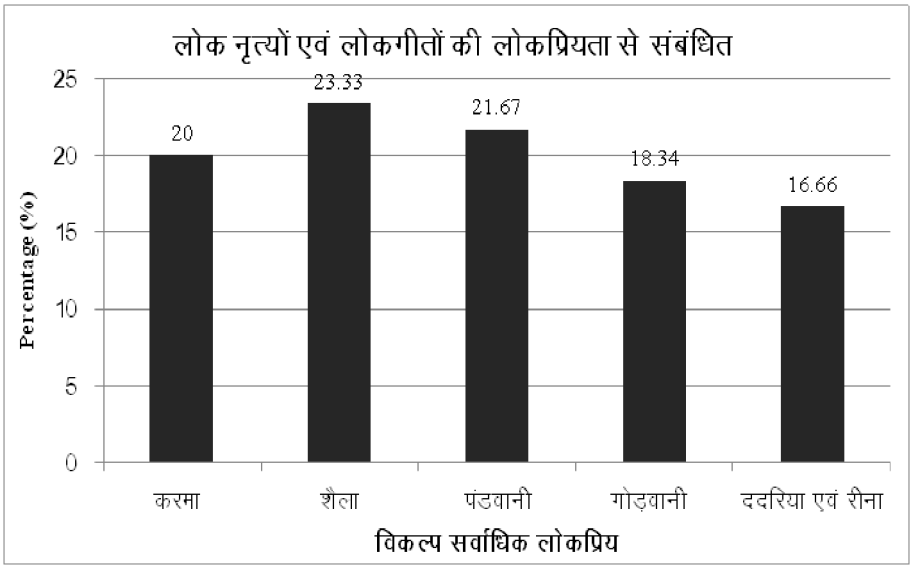

इस प्रकार सभी नृत्यों का बराबर महत्व मुझे देखने को मिला। सर्वेक्षण के दौरान मैंने जाना कि गोंड़ों के अलमस्त जीवन में गीत और नृत्य का प्रमुख स्थान है। इनमें खोकर ये अपने दुःख और संघर्ष को भूल जाते हैं, नृत्य, संगीत में ये, सुरतालों की सृष्टि मॉदर टिमकी और बांसुरी के सहारे करते हैं। यही इनकी सांस्कृतिक विरासत भी है। जो इन्हें अन्य समाजों षे हटकर इन्द्रधनुषी छटा प्रदान करती है।

गोंड़ समाज में जादू-टोने-टोटके की अवधारण–मैंने अपने शोध कार्य के दौरान सर्वेक्षण में यह बात देखी कि, गोड़ जाति के लोग टोने-टोटकों में अत्यधिक भरोशा करते हैं। इनका विश्वास है कि जादू-टोने से और तंत्र-मंत्र से ही कोई व्यक्ति बीमार पड़ता है,और इसका इलाज तंत्र-मंत्र और झाड़-फूंक से ही संभव है। इस प्रकार ये लोग बीमार पड़ने पर डाक्टर के पास न जाकर झाड़-फूंक करते रहते हैं। इसी क्रम में कभी-कभी पीड़ित व्यक्ति मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है।

1. धार्मिक अन्ध विश्वास –गोड़ जनजाति के लोग रोगों की उत्पत्ति का कारण देवी-देवताओं की नाराजगी या क्रोध को मानते हैं। अनेक देवी-देवताओं का संबंध कई रोगों से होता है। यह इनकी मान्यता है जैसे- सर्प, बिच्छू या हिंसक पशु के काटने का कारण रातामाई देवी का नाराज होना मानते हैं। उनकी धारणा यह है कि देवी मनुष्य को हिंसक पशुओं से बचाती है।

ये बहुत अधिक अन्धविश्वासी होते हैं, यदि किसी व्यक्ति के हाथ-पैर में दर्द है तो उसे बूढ़ा देव का प्रकोप मानते हैं। गोंड़ जनजाति का मानना है कि ठाकुर देवकी नाराजगी से समस्त गांव के लोगों को उल्टी और दस्त की बीमारी हो जाती है। इस प्रकार मैंने देखा कि यदि गांव में कोई उल्टी-दस्त से ग्रसित है तो ये लोग डाक्टर के पास न ले जाकर, ठाकुर देव की पूजा में लग जाते हैं।

यदि किसी बच्चे को चेचक या मोतीझरा हो जाता है, तो यह माना जाता है कि देवी आ गई है। सम्पूर्ण ग्रामवासी, परिवार सहित उस चेचक वाले बच्चे के घर में आकर भजन-पूजन करने लगते हैं। इस तरह से संक्रामक बीमारी पूरे गांव में फैल जाती है। इसी तरह हैजा एवं प्लेग की बीमारी को ये लोग मराई देवी का प्रकोप समझते हैं।

2. भूत-प्रेत संबंधी मान्यताएँ –भूत-प्रेत आदि प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास करना, गोंड़ जनजातीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है और ये लोग मानते हैं कि जिनको भूत-बाधा होती है, उनका स्वास्थ्य कभी अच्छा नहीं रहता है जब किसी व्यक्ति को किसी कारण से भूख नहीं लगती, रात में नींद नहीं आती है, आखें लाल हो जाती है। अथवा यदि वो पागलपन का शिकार हो जाता है तो, गोड़ समुदाय में यह माना जाता है कि वह भूत-प्रेत का शिकार हो गया है। उसको मनोचिकित्सक के पास न ले जाकर ये लोग भूत झड़वाते रहते हैं। जिससे मानसिक रोगी की हालत और बिगड़ जाती है।

3. पाप-पुण्य संबंधी मान्यताएँ – बीमारियों को गोड़ जाति के कुछ लोग, पूर्व जन्म में किये गये पाप का फल मानते हैं- जैसे, स्त्रियों का बांझ होना, कोढ़ की बीमारी होना आदि। इनको ये भाग्य में यही लिखा है, कहकर इलाज नहीं कराते हैं।

सर्वेक्षण के समय इन मान्यताओं के संबंध में जब मैंने उनसे यह प्रश्न किया कि- आप बीमारी का कारण किसे मानते हैं, उसका जो उत्तर मुझे प्राप्त हुआ वह निम्न तालिका में वर्णित है-

तालिका क्रमांक-6

जादू-टोने से संबंधित मान्यता

क्र.	विकल्प सर्वाधिक लोकप्रिय	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	क्या आप मानते हैं कि बीमारिया जादू टोने से होती है।	59	98.33%
2.	क्या आप मानते हैं कि बीमारियों का जादू टोने से संबंधि नहीं है।	1	1.67%
	योग	**60**	**100%**

स्रोत : सर्वेक्षण के आधार पर।

इस प्रकार मैंने यह जाना कि गोंड़, जनजातियों के लोग बीमारियों को जादू-टोने से संबंधित मानते हैं।

इस प्रकार मैंने देखा कि इनके जीवन में अंधविश्वास की जड़ अशिक्षा है। जिसे दूर करके ही इन्हें इस अन्धविश्वास की जकड़ से मुक्ति दिलायी जा सकती है। किन्तु इनकी प्रथाएं एवं परम्पराएं अपने आप में अनूठी एवं अद्‌भुत विरासत लिये हुये हैं। उन्हें संरक्षण की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. बसंत निरगुणे, सम्पदा
2. डॉ. रचना श्रीवास्तव, बैगा जनजाति में सामाजिक परिवर्तन
3. अटल योगेश्वर, आदिवासी भारत।
4. डॉ. श्यामाचरण दुबे, मानव और संस्कृति।

5. आदिवासी लोक कला परिषद्, भोपाल।
6. डॉ. सिंह एम.पी., मध्यप्रदेश की जनजातियों का विकास योजनाओं का प्रभाव
7. डॉ. मजूमदार डी.एन., भारतीय जनसंस्कृति।
8. आदिवासी विकास परिषद्, वन्याचल।
9. डॉ. तिवारी, शिव कुमार, मध्यप्रदेश के आदिवासी।
10. डॉ. सोलंकी राम सिंह, भारत की सांस्कृति विरासत।
11. अधिक प्रयास अधिक सफलता, आदिमजाति।

पत्र-पत्रिकाएँ एवं बेवसाइट :-

1. समाज कल्याण पत्रिकाएँ, समाज कल्याण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. जनजाति भारतीय आदिम जाति सेवक संघ नई दिल्ली।
3. आदिवासी संसार स्मारिका भोपाल।
4. म.प्र. संदेश 1986-87 एवं 1991 जन सम्पर्क संचालनालय, म.प्र. शासन भोपाल, म.प्र.
5. www.mp.gov.in
6. www.mp.tribalmuseum.com
7. www.wikipedia.org

*****

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 105-109
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

घरेलू हिंसा के उभरते नये प्रतिमान : एक समाजशस्त्रीय अध्ययन

*डॉ. सरिता सिंह**

भारतीय समाज में पारिवारिक समस्याओं के अंतर्गत घरेलू हिंसा एक प्रमुख समस्या है। घरेलू हिंसा परिवार के भीतर होने वाली हिंसा है जिसमें कोई एक वयस्क सदस्य अन्य सम्बन्धी को नियन्त्रित करने हेतु अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है। सामान्यतः इसे पति द्वारा पत्नी के साथ दुर्व्यवहार के रूप में देखा जाता है। यह दुर्व्यवहार भौतिक, लैंगिक, मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक, आर्थिक धमकी से लेकर मार-पीट तक किसी भी रूप में हो सकता है। इसीलिए इसे घरेलू दुर्व्यवहार भी कहा जाता है। यद्यपि यह मुख्य रूप से पति द्वारा पत्नी पर किये जाने वाले दुर्व्यवहार से सम्बन्धित है, परन्तु इसमें लिव-इन-रिलेशनशिप तथा परिवार के किसी एक सदस्य द्वारा अन्य सदस्यों के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार को भी सम्मिलित किया जाता है। जिन परिवारों में घरेलू हिंसा होती है उनमें बच्चों की उपेक्षा भी सामान्य बात है। घरेलू हिंसा विशेषकर पुरुषवादी सोच, लिंग पहचान, सम्पत्ति पर पुरुषों का अधिकार, स्त्रियों के प्रति चल-सम्पत्ति सम्बन्धी धारणा, ईर्ष्या की भावना, स्त्रियों की शारीरिक कमजोरी आदि की देन है। इनके अलावा पीड़ित महिलाओं का स्वयं का व्यवहार तथा कुछ परिस्थितियाँ भी स्त्रियों के प्रति हिंसा उत्पन्न करने, उकसाने और प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

घरेलू हिंसा का सम्बन्ध प्रतिवादी के किसी कार्य या आचरण से है, जिससे व्यथित व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुरक्षा, जीवन या किसी अंग को हानि या नुकसान हो। इसमें शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न, लैंगिक शोषण, मौखिक और भावनात्मक शोषण व आर्थिक उत्पीड़न शामिल है। व्यथित व्यक्ति और उसके किसी सम्बन्धी को दहेज या किसी अन्य सम्पत्ति के मांग के लिये हानि या नुकसान पहुँचाना भी इसके अन्तर्गत आता है। इसके अलावा घरेलू सम्बन्धों या नातेदारी में किसी प्रकार का–

शारीरिक उत्पीड़न जैसे मार पीट करना, थप्पड़ मारना, दाँत काटना, ठोकर मारना, लात मारना इत्यादि।

लैंगिक शोषण जैसे–बलात्कार अथवा बलपूर्वक बनाए गए शारीरिक सम्बन्ध, अश्लील साहित्य या सामग्री देखने के लिए मजबूर करना, अपमानित करने के दृष्टिकोण से किया गया लैंगिक व्यवहार और बालकों के साथ लैंगिक दुर्व्यवहार।

मौखिक और भावनात्मक हिंसा जैसे–अपमानित करना, गालियाँ देना, चरित्र और आचरण पर आरोप लगाना, लड़का न होने पर प्रताड़ित करना, दहेज के नाम पर प्रताड़ित करना, नौकरी न करने या छोड़ने के लिये मजबूर करना, अपने मन से विवाह न करने देना या किसी व्यक्ति से विवाह के लिये मजबूर करना, आत्महत्या की धमकी देना इत्यादि।

आर्थिक हिंसा जैसे– आपको या आपके बच्चे को अपनी देखभाल के लिये धन और संसाधन न देना, आपको अपना रोजगार न करने देना या उसमें रुकावट डालना, आपकी आय, वेतन इत्यादि आपसे ले लेना, घर से बाहर निकाल देना इत्यादि भी घरेलू हिंसा है।

अध्ययन की समस्या–यहाँ महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या पत्नी ही पति के द्वारा प्रताड़ित होती है या पति भी? यदि पति भी प्रताड़ित होते हैं तो पति और पत्नी के हिंसा की प्रकृति क्या है? क्या दोनों ही शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित होते हैं? इसी तरह के अनेकों सवालों के जवाब प्रस्तुत शोध के माध्यम से ढूँढ़ने के प्रयास किये गये हैं।

हमारे देश में अधिकारों की बात प्रायः महिलाओं से जोड़ कर ही की जाती है। यहाँ महिलाओं के लिये महिला थाना, राज्य और राष्ट्रीय महिला आयोग हैं लेकिन अगर पुरुष को प्रताड़ना सहना पड़े तो उसके पास कोई ऐसा दरवाजा नहीं, जहाँ वह न्याय मांग सके। ऐसे पीड़ित पुरुषों की आवाज को सशक्त करने के लिए **सेव इंडियन फैमिली** नामक एक संगठन काम करता है। सेव इंडियन फैमिली ने विभिन्न गैर-सरकारी संस्थाओं के साथ मिल कर महिला आयोग के गठन की मांग को लेकर आंदोलन छेड़ रखा है। इसके लिए देश भर के विभिन्न संस्थाओं के साथ मिलकर पुरुषों के साथ होने वाली मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना

* अध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग), *श्री गणेश राय पी.जी. कॉलेज, डोभी, जौनपुर (उ.प्र.)*

के मामलों का रिकॉर्ड तैयार किया जा रहा है। आम तौर पर पत्नी पीड़ित संघ जैसे संगठनों के नाम सुन कर हंसी आती है लेकिन आज समय की मांग है। सेव इंडियन फैमिली के संस्थापक सदस्य नीलाद्रि शेखर दास का कहना है कि दहेज और दुष्कर्म से सम्बन्धित सभी कानून महिलाओं के पक्ष में हैं और महिलाएं इनका दुरुपयोग करती हैं। वर्तमान कानून पुरुषों के साथ लैंगिक भेदभाव करते हैं। संस्था ने भारत के कई शहरों में अपनी हेल्पलाइन सर्विस भी शुरू की है जिसके जरिये पीड़ित पुरुष आवश्यकता पड़ने पर कानूनी मदद ले सकते हैं। मानसिक रूप से परेशान पुरुषों की काउंसलिंग भी इसके माध्यम से की जाती है। इस हेल्पलाइन पर ज्यादा लोग यौन शोषण के आरोप में गलत तरीके से फंसा दिये जाने, दुष्कर्म, घरेलू हिंसा, और संतान संरक्षण अधिकार से जुड़े मामलों में अपने साथ हुई पक्षपाती कारवाई की शिकायत करते हैं। संस्था का दावा है कि शादीशुदा पुरुषों में महिलाओं के मुकाबले आत्महत्या के मामले ज्यादा हैं। पुरुषों को समाज की पितृसत्तात्मक सोच का शिकार बताते हुए नीलाद्रि कहते हैं कि पुरुषों को उनके परिवार के लिए एटीएम बना दिया जाता है और जब वे अपनी पत्नी को सुरक्षा या सहूलियत देने में चूकते हैं या उन पर बुरा बर्ताव करने का आरोप लगा दिया जाता है।

आज देश भर में लगभग ऐसे बीस समूह और संगठन हैं जो अपने क्षेत्र में पुरुषों के हक, हित और हिफाजत की बात करते हैं। दरअसल, इस अभियान की शुरूआत वर्ष 1988 में सुप्रीम कोर्ट के वकील राम प्रकाश चुग ने 'सोसाइटी फॉर प्रिवेंशन ऑफ क्रुएल्टी टू अस्बंड्स' के नाम से की। इसकी वजह थी- उन पर ला दहेज प्रताड़ना का झूठा मामला। 70 वर्षीय राम प्रकाश आज भी पुरुषों के मुकदमें लड़ते हैं। वह कहते हैं, ''जब मैंने पीड़ित पुरुषों के संगठन की शुरुआत की, तो लोगों ने मेरा मजाक उड़ाया। वे यह मानने को तैयार ही नहीं थे कि पुरुष भी पीड़ित होते हैं।''

'द वीक' में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक ऐसे समूहों की शुरुआत करने वाले और उसके स्वयंसेवक प्रायः ऐसे लोग होते हैं जो किसी न किसी रूप में महिला की यातना के शिकार हैं। इसी क्रम में बेंगलुरु के संतोष पाटिल का उल्लेख भी मिलता है, जो पेश से इंजीनियर हैं। 41 वर्षीय संतोष ने पुरुष अधिकार केन्द्र की शुरुआत की है। उन्हें अपनी पत्नी से शिकायत है, जिसने उन्हें अपनी बेटी से मिलने पर रोक लगा रखी है। संतोष कहते हैं, हमारी हेल्पलाइन पर हर दिन लगभग 15-20 लोग अपनी शिकायत दर्ज कराते हैं। इनमें दहेज प्रताड़ना से लेकर यौन हिंसा और घरेलू हिंसा के आरोपी होते हैं जिनमें लगभग 70 प्रतिशत मामले आधारहीन और झूठे होते हैं।

सेव इंडियन फैमिली के स्वयंसेवक डी.एस. राव की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। 48 वर्ष के राव कोलकाता में व्यवसायी हैं, उनकी पत्नी ने उनके खिलाफ धारा 498ए के तहत दहेज प्रताड़ना का झूठा मामला वर्ष 2005 में दायर किया था, पाँच वर्ष तक चले इस मुकदमे के बाद राव को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया। इस सदमे से उनके पिता का देहान्त हो गया। उनका कहना है कि ''मेरे बीते हुए दिन वापस नहीं लौटेंगे लेकिन मैं इस बात की कोशिश करता हूँ कि जितना मैंने झेला, किसी और को न झेलना पड़े।''

सेव इंडियन फैमिली के अनुसार महिलाओं द्वारा पुरुषों का उत्पीड़न निम्नांकित रूप से किया जा सकता है–

- यदि आप की पत्नी बिना मर्जी के सम्बन्ध बनाने को मजबूर करती है।
- लिव-इन में रहने के बाद यदि लड़की किसी अन्य से विवाह कर लेती है।
- आपसे कोई ऐसी मांग करती है जिसे आप पूरा नहीं कर सकते हैं।
- आपकी बातों का जवाब न देना और चुप रहना।
- आपको या आपके परिवार के सदस्यों को अपमानजनक शब्द या नाम से पुकारना।
- नामर्द कहकर पुकारना।
- लगातार आपका फोन चेक करना।
- छिपकर आपका पीछा करना।
- लड़के को अपने घरवालों से मिलने से रोकना।
- खरीदारी के लिए दबाव बनाना।
- किसी भी तरह से भावनात्मक रूप से अत्याचार करना।
- आत्महत्या करने की धमकी देना।
- बात-बात पर मायके जाने की धमकी देना।

इसके अलावा फैमिली कोर्ट में पुरुषों को भेदभाव का शिकार होना, तलाक के 90 प्रतिशत मामलों में बच्चे पुरुषों को नहीं, बल्कि महिलाओं को सौंप दिये जाना आदि।

सेव फेमिली फाउण्डेशन, नोएडा के संस्थापक ऋत्विक हिसारिया घरेलू हिंसा के शिकार पुरुषों के अब तक कुल लगभग 6000 केस हैंडल कर चुके हैं। उनका मानना है कि हमारे देश में लगभग 50 कानून ऐसे हैं जो केवल महिलाओं के समर्थन में ही हैं। महिलाएं इन कानूनों को हथियार की तरह इस्तेमाल करती हैं। इन सबमें बड़ा हथियार है–बलात्कार का कानून, दहेज एक्ट, घरेलू हिंसा कानून। इसके अलावा वर्कप्लेस हैरासमेंट, एबार्शन, एडल्टी जैसे कानून भी पुरुष विरोधी हैं। एक आंकलन के अनुसार भारत में प्रतिदिन 242 आदमी आत्महत्या करते हैं जिनमें से 84 प्रतिशत लोग घरेलू परेशानियों की वजह से तथा 11 प्रतिशत लोग प्रेम-प्रसंग के कारण अपने आप को खत्म कर लेते हैं। सरकार या न्यायालयों ने ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बनायी है जिससे शादीशुदा पुरुषों को आत्महत्या करने से बचाया जा सके। पुरुष अनजाने में घरेलू हिंसा के शिकार होते रहते हैं। और इसकी स्थिति के लिए खुद को जिम्मेदार भी मानने लगते हैं। एक पुरुष अपने परिवार के लिए जितने भी त्याग करता है उन्हें कभी मान्यता नहीं मिलती और न ही समाज में पुरुषों को होने वाली समस्याओं को गम्भीरता से समझा जाता है। संस्था की मानें, तो आज न्याय व्यवस्था से लेकर लोगों का सामाजिक नजरिया तक पुरुष विरोधी हो चुका है, जिसे बदलना बेहद जरूरी है।

(Save India Family Foundation, Kolkata) के महासचिव अमित गुप्ता ने (Save India Family) नामक एक एप बनाया है जिसके माध्यम से पुरुष अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को बेहिचक बता सकते हैं। अमित गुप्ता ने बताया है कि हेल्पलाइन जारी होने के 50 दिन के भीतर 16000 से ज्यादा कालें मिली हैं। इस ऐप के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार भारत में प्रत्येक छः मिनट में एक पुरुष आत्महत्या करता है। इसके बावजूद भी सरकार पुरुषों पर होने वाली घरेलू हिंसा को स्वीकार नहीं करती। इस ऐप के बारे में सवाल उठता है कि क्या इस तरह के ऐप महिलाओं की स्थिति को कमजोर नहीं करेंगे। जवाब में अमित गुप्ता का कहना है कि ''हम यह नहीं कह रहे कि महिलाओं को सुरक्षा नहीं मिलनी चाहिए, हम यह कह रहे हैं कि उन्हीं परिस्थितियों में पुरुषों को भी सुरक्षा मिले।''

वृत्तचित्र निर्माता दीपिका नारायण भारद्वाज महिलाओं द्वारा शोषित पुरुषों के लिए आवाज उठा रही हैं। साथ ही धारा 498ए के दुरुपयोग के खिलाफ लड़ भी रही हैं। दीपिका का कहना है कि पिछले कई वर्षों में पतियों द्वारा आत्महत्या किए जाने के मामलों का ग्राफ तेजी से बढ़ा है। वहीं पत्नियों के आत्महत्या के मामले में तेजी से गिरावट दर्ज की गई। कई मामले ऐसे भी देखने को मिले, जहाँ झूठे अरोप में फंसाये जाने के कारण लड़के माँ-बाप ने समाज में बदनामी के डर से आत्महत्या तक कर ली। उन्होंने इस मुद्दे पर Martyrs of Marriage नामक एक फिल्म भी बनायी है। दीपिका यह सवाल करती हैं कि क्या घरेलू हिंसा की शिकार सिर्फ महिलाएं ही हो सकती हैं पुरुष नहीं? पुरुष को समाज से आरम्भ से ही मजबूत माने जाने का अर्थ नहीं है कि घर की चारदिवारी के अन्दर पुरुष को सताया न जाता हो। एक महिला थाने या कोर्ट में जाकर बड़ी आसानी से अपने पति एवं उसके परिवार वालों के खिलाफ शिकायत कर सकती है किन्तु पुरुष ऐसा करता है तो समाज उसका मजाक उड़ायेगा। यद्यपि अब उच्चतम न्यायालय ने भी यह माना है कि अधिकतर रेप केस फर्जी होते हैं। एक अनुमान के अनुसार लगभग 78 प्रतिशत रेप केस बदला लेने की भावना से प्रेरित होते हैं।

उच्चतम न्यायालय द्वारा घरेलू हिंसा कानून में फेरबदल भी किया गया। धारा 2Q में पुरुष के स्थान पर व्यक्ति कर दिया गया है। घरेलू हिंसा विरोधी कानूनी के तहत पत्नी या पुरुष के साथ रह रही महिला पर मारपीट, यौन-शोषण, आर्थिक शोषण या फिर अपमानजनक भाषा के इस्तेमाल की परिस्थिति में कार्यवाही की जा सकती है। न्यायाधीश जस्टिन कुरियन और नरीमन ने एक ऐतिहासिक फैसलाा दिया है जिसके तहत पुरुषों पर होने वाले शोषण के विरुद्ध महिलाओं पर भी कार्यवाही हो सकती है।

अध्ययन की आवश्यकता–किसी भी समाज के संचालन में महिला एवं पुरुष दोनों का बराबर का योगदान होता है। किसी एक पक्ष को नकारकर स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। यदि महिला एवं पुरुष दोनों में कोई भी एक पक्ष दूसरे पक्ष के द्वारा प्रताड़ित होता है तो निश्चित रूप से दोनों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। चूंकि महिलायें हमारे समाज में सदैव उपेक्षित रही हैं इसलिए उनके संरक्षण हेतु अनेक कानून भी बने हैं। अब सिक्के का दूसरा पहलू यह सामने आया है जिसमें पुरुषों को भी घर या समाज में किसी न किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक या आर्थिक हिंसा का सामना करना पड़ता है। पुरुषों को इस बात का मलाल है कि उनकी इन शिकायतों का न तो कहीं निपटारा होता है और न ही समाज उनकी शिकायतों को स्वीकार

करता है। परिणामस्वरूप अब पुरुष भी घरेलू हिंसा की व्याख्या के विरोध में मुखर होने लगे हैं। उनका मानना है कि केवल पत्नियाँ ही नहीं, बल्कि पति भी घरेलू हिंसा के शिकार होते हैं। विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर विचार करने हेतु प्रस्तुत अध्ययन की विशेष आवश्यकता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में घरेलू हिंसा के अन्य पहलुओं को उपेक्षित रखना समता के अधिकार एवं मानवाधिकार का सीधा उल्लंघन है। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन का विशेष महत्व है।

अध्ययन का उद्देश्य–पुरुष घरेलू हिंसा से किस प्रकार प्रभावित होते हैं? यह ज्ञात करना प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

आधारभूत मान्यताएँ–

- घरेलू हिंसा की शिकार सिर्फ महिलायें होती हैं।
- घरेलू हिंसा में पति अपनी पत्नी को शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित करता है।
- घरेलू हिंसा की शिकार सिर्फ महिलायें ही नहीं, पुरुष भी होते हैं।

अध्ययन पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन अनुभवजन्य एवं तथ्यपरक अध्ययन है।

समग्र एवं निदर्शन–प्रस्तुत अध्ययन हेतु सोद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से कुल 50 विवाहित पुरुषों का चयन सूचनादाता के रूप में किया गया है। इसमें विभिन्न जाति, आय, वर्ग, व्यवसाय, एवं शैक्षिक स्तर के व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया है।

तथ्य संकलन–प्रस्तुत शोध-पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार-अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इस प्रविधि के माध्यम से अध्ययन-विषय से सम्बन्धित आँकड़ों का संग्रह किया गया है। सर्वेक्षण के दौरान कई महत्वपूर्ण तथ्य ऐसे भी उभर कर सामने आये, जो अध्ययन के लिए आवश्यक थे, किन्तु अनुसूची में सम्मिलित नहीं किये जा सकते थे, उन तथ्यों को भी सम्मिलित किया गया है। प्राथमिक तथ्यों के साथ-साथ द्वैतीयक स्रोत-पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाओं, अखबार, इंटरनेट, साइट्स आदि से उपलब्ध तथ्यों का उपयोग भी प्रस्तुत शोध-पत्र में किया गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या :

सूचनादाताओं से अनेक वैकल्पिक प्रश्न पूछे गये, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नांकित हैं–

- आपका अपनी पत्नी से कैसा सम्बन्ध है?
  जवाब में 80 प्रतिशत सूचनादाताओं ने अपनी पत्नी के साथ अत्यन्त मधुर, प्रेमपूर्ण एवं सामान्य सम्बन्ध माना शेष 20 प्रतिशत ने सम्बन्धों को नासमझने की बात कही।
- आपको अपनी पत्नी से किस बात की शिकायत है?
  20 प्रतिशत सूचनादाताओं को अपनी पत्नी से इस बात की शिकायत है कि वह उसके परिवार से दूर करना चाहती है। 40 प्रतिशत को पत्नी के बात करने का तरीका पसंद नहीं है। शेष पति के बातों को महत्व नहीं देती हैं।
- आपकी पत्नी का आपके परिवार के सदस्यों के साथ किस तरह का सम्बन्ध है?
  74 प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि उनकी पत्नी परिवार के बीच रहना पसंद करती है, 6 प्रतिशत ने माना कि सिर्फ पति एवं बच्चों के साथ रहना चाहती हैं। 20 प्रतिशत को अपनी पत्नी के दबाव में आकर परिवार से अलग रहना पड़ता है।
- आप अपनी पत्नी के आर्थिक मांग को किस तरह पूरा करते हैं?
  80 प्रतिशत सूचनादाताओं ने माना कि उनके पैसे पर जीवन साथी का पूरा अधिकारा है किन्तु 20 प्रतिशता को तनाव से बचने के लिए उनकी मांगों को पूरा करना पड़ता है।
- आप अपनी पत्नी के किस बात से प्रायः नाराज हो जाते हैं?
  60 प्रतिशत सूचनादाताओं को पत्नी की उचित एवं अनुचित सभी तरह के बातों को मानना पड़ता है। 14 प्रतिशत ने फिजूलखर्ची एवं समय की बर्बादी को मुख्य कारण बताया। शेष को किसी तरह की शिकायत नहीं है।
- यदि आपकी पत्नी आपके परिवार में किसी सदस्य का अपमान करती है, तो ऐसी स्थिति में आप क्या करेंगे?
  74 प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि पत्नी को समझाकर माफी मांगने को कहेंगे। 10 प्रतिशत ने उसकी इच्छा को प्रमुखता दी। 16 प्रतिशत दबावा डालकर माफी मांगने की बात कही।

- यदि आपकी पत्नी का अपमान परिवार, कोई सदस्य करे, तो आप क्या करेंगे?
  80 प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि वह अपनी पत्नी एवं परिवार दोनों को समझाने का पूरा प्रयास करेंगे। 20 प्रतिशत ने परिवार से तनाव की बात स्वीकार की।
- आप अपनी पत्नी के क्रोध पर किस तरह नियंत्रण रखते हैं?
  33 प्रतिशत सूचनादाता पत्नी को उसकी स्थिति पर छोड़ देना ही बेहतर समझते हैं। 27 प्रतिशत प्यार से समझाने तथा 20 प्रतिशत क्रोध की अवस्था में बात नहीं करने को उचित ठहराया, शेष 20 प्रतिशत सूचनादाता ऐसी स्थिति में स्वयं को विवश एवं असहाय महसूस करते हैं।
- क्या आप किसी त्यौहार या आयोजन पर पत्नी को उपहार देते हैं?
  52 प्रतिशत सूचनादाताओं ने माना कि उपहारा से सम्बन्धों में प्रणाढ़ता आती है। 27 प्रतिशत ने पूरी सम्पत्ति पर पत्नी के अधिकार को स्वीकार करते हुए उपहार को अनावश्यक तथा 14 प्रतिशत ने दिखावा माना है, किन्तु 07 प्रतिशता ने उपहार न देने की स्थिति में तनाव बढ़ने की बात को स्वीकार किया है।
- किसी त्यौहारा या आयोजन पर उपहार नहीं देने पर पत्नी की प्रतिक्रिया किस तरह की होती है?
  60 प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि पत्नी की तकलीफ को देखकर पश्चाताप होता है कि उपहार देना चाहि, 20 प्रतिशत ने माना कि पत्नी कोई उम्मीद नहीं रखती है, इसलिए उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसी क्रम में 14 प्रतिशत सूचनादाताओं ने माना कि पत्नी को बुरा लगने पर उन्हें कोई फर्क नहीं पडाता शेष, 06 प्रतिशत ने उपहार न देने की स्थिति में तनावपूर्णा माहौल उत्पन्न होने की बात को स्वीकार किया है।
- आपकी पत्नी की कड़वी बातों का आप पर क्या असर पड़ता है?
  68 प्रतिशत सूचनादाता बेवजह की बातों में उलझने के पक्ष में नहीं हैं, 13 प्रतिशत अच्छा या बुरा लगने की परवाह न करते हुए जवाब देना बेहतर समझते हैं। 13 प्रतिशत सूचनादाताओं के पत्नियों में ऐसी बात करने की हिम्मत नहीं होती तथा शेष 06 प्रतिशत बेवजह बोलने की आदत समझकर नजर अन्दाज कर देते हैं।
- क्या आप अपने जीवनसाथी के साथ खुश हैं?
  80 प्रतिशत सूचनादाताओं ने दाम्पत्य जीवन को सुखी बताया, किन्तु 20 प्रतिशत ने अपने जीवन को संघर्षपूर्ण बताया।

निष्कर्ष—समाजशास्त्रीय अध्ययन में घरेलू हिंसा के अन्य पहलुओं को उपेक्षित रखना समता के अधिकार एवं मानवाधिकार का सीधा उल्लंघन है। सदैव पुरुष को शोषक एवं महिला को शोषित मान लेना न्यायसंगत नहीं है। सच तो यह है कि पुरुषों की नकारात्मक छवि से महिलाओं का भी कोई खास भला नहीं होने वाला है क्योंकि जिस घर में महिलायें रहती हैं, वहीं पुरुष भी रहते हैं। यदि आधी आबादी सिर्फ शोषण करने वाली हो, तो न तो कोई समाज चल सकता है और न ही उसका विकास हो सकता है। अतः घरेलू हिंसा से महिलाओं की तरह पुरुषों को भी कानूनी संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है।

शैक्षिक निहितार्थ—प्रस्तुत अध्ययन विषय को किसी सीमा में बाँधना उपयुक्त नहीं है। यह अध्ययन छोटे पैमाने पर है, इस विषय में व्यापक स्तर पर गहन चिंतन की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-सूची

1. रावत, हरिकृष्ण : उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली।
2. महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश : समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
3. आहूजा, राम : सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
4. http://hi.m.wikipidia.org.wiki.17

*****

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 110-112
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

ग्रामीण जन-जीवन के विकास में जनसम्प्रेषण माध्यमों का योगदान

*डॉ. नीतू सिंह**

1970 के दशक से जनसम्प्रेषण माध्यमों ने वैश्विक स्तर पर अभूतपूर्व परिवर्तन किये हैं जो विगत पाँच हजार सालों के इतिहास में भी नहीं हुए हैं। सूचना क्रांति के दौर में विभिन्न आधुनिक संचार माध्यमों ने मानवीय अन्तःक्रिया, समझ, ज्ञान, जिज्ञासा एवं इच्छा इत्यादि को निरन्तरता और व्यापकता प्रदान की है। जनसम्प्रेषण माध्यमों के प्रसार का प्रभाव भारतीय ग्रामीण समाज पर विभिन्न रूपों से स्पष्ट हो रहा है।

ग्रामीण जनजीवन में जनसम्प्रेषण माध्यमों विशेषतः टी. वी., सेटेलाइट, कम्प्यूटर और इण्टरनेट की पर्याप्त सुलभता नहीं है, फिर भी अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों के समृद्ध परिवारों में ये सुलभ हो रहे हैं और इनका सामूहिक प्रभाव ग्रामीण संगठन से जुड़े स्त्री, पुरुष एवं बच्चों पर पड़ रहा है। जनसम्प्रेषण के विभिन्न साधन जैसे टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाइल, सेटेलाइट, टी. वी. की पहुँच यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में नहीं है फिर भी औसत रूप से प्रत्येक ग्रामीण इसका प्रयोग करता है या इसके प्रयोग का लाभ लेता है। आज ग्रामीण समाज परम्परागत जीवन शैली को धीरे-धीरे छोड़कर आधुनिक जीवनवृत्त को अंगीकार करता जा रहा है। यातायात के साधनों, सूचना की उपलब्धता तथा संचार साधनों ने ग्रामीण समाज के शहरी स्वरूप का आविर्भाव किया है। अतएव व्यवहार चिन्तन के ढंग, खान-पान, पहनावे से लेकर आर्थिक एवं राजनीतिक जागरुकता, विशेषकर महिलाओं में सशक्तीकरण का एक नवीन अभियान भी प्रारम्भ हो गया है। परिणामस्वरूप विवाह, परिवार, धर्म, नैतिकता से जुड़े रीतियों एवं परम्पराओं में अप्रत्याशित एवं अभूतपूर्व रूपान्तरण परिलक्षित हो रहा है। श्रमिक वर्ग में भी कार्यशैली व पारिश्रमिक की नयी चेतनाएँ जागृत हुई हैं।

ग्रामीण विकास की दौड़ में प्राविधिक कौशल के प्रति उन्मुखता और नवाचारमूलक प्रविधियों के सम्प्रेषण की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। परिणामस्वरूप ग्रामीण सामाजिक जीवन की प्रणाली में परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। जनसंचार माध्यम से प्रतिदिन मिलने वाली वैश्विक स्तर की सूचनाएँ ग्रामीण समाज के लोगों के चेतना स्तर में परिवर्तन ला रही है और जब चेतना के स्तर में परिवर्तन होता है तो आदत, व्यवहार एवं कार्यशैली में परिवर्तन होता है। फलतः नये आर्थिक उन्मेष, राजनीतिक जागरूकता और सांस्कृतिक क्षेत्र में व्यवहार, दृष्टिकोण, जीवनशैली, परिधान या परिवर्तन नगरीय जीवन के साथ उन्हें अनुरूपित कर रहे हैं।

सूचना तंत्र का सबसे बड़ा योगदान विकास की आवश्यकता के सन्दर्भ में जनचेतना जागृत करना है। अपने विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा ये माध्यम साक्षरता के नये व आधुनिक तरीकों का प्रयोग, बच्चों एवं महिलाओं की स्थिति में सुधार और समाज के प्रति उनकी अधिक सार्थक भूमिका के प्रति चेतना जागृत करने एवं कृषि खाद्यान्न और पशुपालन के नये आयामों द्वारा गाँवों की आर्थिक स्थिति सँवारने में भी अद्‌भुत भूमिका निभा रहे हैं। साथ ही गाँवों में स्वास्थ्य सम्बन्धी चेतना जगाने, बीमारियों की रोकथाम, किसानों के खाद्यान्नों की सही मूल्य की सूचना, पंचायत प्रणाली को मजबूत बनाने तथा रुढ़ियों एवं अंधविश्वासों को मिटाने का कार्य कर रहे हैं। भजन, कीर्तन, लोकोक्तियाँ जो अवकाश काल में ग्रामीणों के मनोरंजन का आधार रहे हैं उनका स्थान जनसम्प्रेषण माध्यमों द्वारा प्रदत्त दैनिक समाचार कार्यक्रम और दृश्य व श्रव्य माध्यमों से प्रस्तुत उपाख्यान तथा चलचित्रों के संगीत कार्यक्रम ग्रहण कर रहे हैं। स्वाभाविक है कि ग्रामीण समाज की यात्रा परम्परागत से आधुनिकता, विशिष्ट से सार्वभौम, लघु से दीर्घ परम्पराओं एवं प्रदत्त, प्रस्थितियों की जगह अर्जित स्तरों की तरफ रूपान्तरित हो रही हैं। यह एक समकालीन परिवर्तन है, जो वैश्विक स्तर पर दृष्टिगत हो रहा है।

* *असि. प्रोफेसर (समाजशास्त्र विभाग) स.ब.पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

ग्रामीण विकास की प्रक्रिया और उसकी प्रविधि जितनी आसान प्रतीत होती है, वास्तविक रूप से उतनी ही कठिन है। समग्र और सार्थक ग्रामीण विकास के लिए देश, काल व परिस्थिति तीनों के प्रति उनके सम्पूर्ण आयामों में एक साथ विचार करते हुए प्रयासरत रहना जरूरी है। कहना गलत नहीं होगा कि ऐसा तभी हो पायेगा जब सूचना की उपलब्धता से लेकर जागरूकता, प्रसार और अनुभवों के आदान-प्रदान तक को सम्भव बनाने वाले संसाधन प्रचुरता से सुलभ हों। इन्हीं संसाधनों को जनसम्प्रेषण माध्यम के रूप में व्यक्त किया जाता है, जो आधुनिक समय में ग्रामीण विकास में भरपूर योगदान करते आ रहे हैं।

संचार क्रांति के चलते पिछले बीस वर्षों में भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अभूतपूर्व परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। देश के अधिकतर राज्यों के ग्रामीण इलाकों में समाचार पत्रों और पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी जगह बना ली है। टेलीविजन, रेडियो, इण्टरनेट, मोबाइल फोन और संचार के कई साधन गाँव की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। इन साधनों का उपयोग आज हर एक व्यक्ति कर रहा है। समाचार पत्रों और चैनलों ने कई ऐसे लक्षित समूहों को ध्यान में रखकर नये कार्यक्रम शूरू किये हैं। भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश में जनसंचार माध्यमों की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सजगता को सुदृढ़ करना आवश्यक है। पर सबसे चिन्ता की बात यह है कि देश में ग्रामीण विकास का क्षेत्र कभी भी संचार माध्यम के मुख्य चिन्ता का विषय नहीं बन सका है।

वास्तव में जनसंचार माध्यम का मुख्य केन्द्र महानगर और नगर ही रहे हैं। ऐसे में ग्रामीणों की बहुत अधिक उपेक्षा की जा रही है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में शहरी आबादी 28.53 करोड़ की तुलना में ग्रामीणों की आबादी 74.16 करोड़ है। पर विशुद्ध व्यावसायिक नजरिये की वजह से खासकर बड़े अखबार गाँव की जितनी उपेक्षा कर सकते हैं, कर रहे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रामीण विकास में जनसंचार माध्यम बहुत कारगर साबित हो सकता है। पर यह दुःख की बात है कि हाल के सालों में काफी साधन सम्पन्न और विकसित हुए, कई अखबार और चैनल अपनी इस भूमिका के प्रति बहुत उदासीन हैं। धीरे-धीरे खबरों की एक अलग तस्वीर दिख रही है।

ग्रामीण विकास का सबसे अहम पक्ष कृषि एवं कृषि संसाधनों का विकास करना। दसवीं योजना में कृषि की उत्पादकता बढ़ाने को उच्च प्राथमिकता दी गई है ताकि कृषि क्षेत्र वार्षिक चार प्रतिशत की वृद्धि दर हासिल कर सके। पर अभी तक जो स्पष्ट है वह बहुत आशाजनक नहीं है। कृषि की विकासदर लगातार झटके खा रही है। भूमण्डलीकरण के इस दौर ने भारत के किसानों को दुनिया के साथ प्रतिस्पर्धा में लाकर खड़ा कर दिया है जिसके लिये वे मानसिक तौर पर तैयार नहीं थे। यही कारण है कि कई प्रान्तों में किसानों ने बड़ी संख्या में आत्महत्याएँ तक की हैं। गाँव समाज का ताना-बाना आज भी बहुत मजबूत है। ऐसे में आत्महत्याओं की नौबत तक आना निश्चय ही बहुत चिन्ता की बात है। चिन्ताजनक बात यह है कि देश के कई हिस्सों में किसान को न्यूनतम समर्थन मूल्य भी नहीं मिल पाता है। मजबूरी में उन्हें अपनी फसलों को कम दामों में बेचना पड़ता है। यह सब गंभीर चिन्ता का विषय है। पर जनसंचार साधनों द्वारा इसके प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई पड़ती है।

भारत सरकार गरीबी दूर करने व योजनाओं एवं कार्यक्रमों को क्रियान्वयन करने के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खर्च करती है हालाँकि आजादी के बाद से लोगों के जीवन-यापन, रहन-सहन, स्वास्थ्य, शिक्षा में कुछ हद तक सुधार हुआ है परन्तु उन योजनाओं और कार्यक्रमों की अवधि में नहीं अपितु विलम्ब से यह सुधार हुआ है। आज भी भारत में अनेक योजनाएँ एवं कार्यक्रम ग्रामीणों के विकास के लिए चलाये जा रहे हैं परन्तु सबसे बड़ी समस्या यह है कि जनता को हर योजनाओं एवं कार्यक्रमों को बनाने व शूरू करने से पहले नजरअंदाज किया जाता है। हालांकि आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना के अनेक साधन मौजूद हैं परन्तु अभी तक भी उनका सही तरीके से इस्तेमाल नहीं किया गया है।

भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ की पूरी अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना ही ग्रामोन्मुख है, ग्रामीण और क्षेत्रीय जनसंचार की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। विकासशील देशों में ग्रामीण जनसंचार को मजबूत बनाये बिना विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

ग्रामीण जनसंचार के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास से सम्बन्धित विषय आते हैं। अर्थात् ग्रामीणों को खेती करने के नये तौर-तरीकों से अवगत कराने, खाद और बीज आदि के बारे में उन्हें जानकारी देने, घरेलू उद्योग-धन्धों को अच्छी तरह से चलाने के उपाय बताने से लेकर जातिगत बंधनों से बाहर निकलने, रुढ़ियों और अंधविश्वासों को तोड़ने, जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने, साक्षर बनने और बनाने, बच्चों को शिक्षित बनाने, अपने कृषि या घरेलू उत्पादों की अच्छी मार्केटिंग करके अधिक से अधिक लाभ कमाने तथा साम्प्रदायिक सौहार्द्र कायम रखने तक के विषय ग्रामीण संचार की विषयवस्तु बनते हैं। ग्रामीण जनसंचार का स्वरूप इस ढंग से निर्धारित किया जाना चाहिए कि इसकी सहायता से ग्रामीण विकास की गति को तीव्र किया जा सके तथा ग्रामीणों का सामाजिक-आर्थिक जीवन स्तर ऊपर उठाया जा सके।

जनसम्प्रेषण के विविध माध्यमों के प्रभाव एवं उनसे उत्पन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक विकास के उभरते परिदृश्य पर प्रायः सभी राष्ट्रों ने आनुभविक एवं प्रायोगिक अध्ययन किये हैं। भारत में भी स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर जनसम्प्रेषण के विभिन्न माध्यमों का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, क्षेत्रीय संस्कृति, धार्मिक एवं आर्थिक विकास को प्रभावित करने में भूमिका एवं महत्व का विश्लेषण समय-समय पर अनेक विद्वानों एवं समाजवैज्ञानिकों ने अध्ययनों एवं विचारों में प्रस्तुत किया है। किन्तु ग्रामीण विकास सम्बन्धित अध्ययन एवं विश्लेषण का अभी भी अभाव दिखायी देता है।

Reference

1. Ansu; Kyeremeh Kwasi (1992) : 'Cultural Aspects of Constraints on Village Education by Radio', Media Culture and Society, Vol. 14, No. 1.
2. Chaturvedi; Jagadishwar (2001) : 'Doordarshan Evam Samajik Vikas', W. Newman and Co., Kolkata.
3. Parakh; Jawarimathar (2000) : 'Jansanchar Madhyamo Ka Vaicharik Pariprekchya', Granth Academy, Jaipur.
4. Singh; O. P. (2002) : 'Sanchar Ke Mool Sidhant', Classical Publishing Company, New Delhi.
5. Nainan; Sevanti (2004) : 'Gaon Kee Or Barata Media', 'Vidur', The Journal of Press Institute of India, New Delhi, Issue 3, Year 41, Jul.-Sep.
6. Bhanavat; Sanjeev and Kshipra Mathur (2005) : 'Vikas Aur Jansnachar Madhyam', 'Vidur', the Journal of Press Institute of India, New Delhi, Issue 1, Year 42, Jan.-March.
7. Menaria; Yeshwant, Snehlata Maheshwari and Dhriti Solanki (2008) : 'Rural Women's Comprehension of Multimedia CD on Drainage System', Journal of Communication Studies, New Delhi, Vol. XXVIII, April.
8. Saxena; Ambarish (2008) : 'Gramin Jansanchar Ki Chunautiyan', Sanchar Madhyam, New Delhi, April-June.
9. Sharma; Abhinav Kumar (2009) : 'Gramin Bharat-Vikas Ki Or', Kurukshetra, October.
10. Singh; N. (2004) : Information Technology and Rural Development in India, Paper Presented at Scholarship Repository, University of California.
11. Harwit; E. (2004) : Spreding Telecommunication to Developing Area in Thing : Peter Phones tne Internet and the Digital Divide : The China Quarterly Cambridge University Press.
12. Lee; L. C. (2004) : Gender, Technology and Development, Sage Publication, India, 8, 2, May, Aug.

*****

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 113-115
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

पिछड़े वर्ग के स्नातकोत्तर छात्र/छात्राओं के शिक्षा की वर्तमान स्थिति का एक विश्लेषण

डॉ. भागवत मिश्र

भूमिका

भारतवर्ष विश्व का एक प्राचीनतम देश है, यहाँ की संस्कृति एवं सभ्यता प्राचीन है। इसके समग्र इतिहास का अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट होता है।

भारतीय सामाजिक ढाँचे में वर्ण और जाति व्यवस्था की प्रस्थापित वैचारिकी ने समाज के प्रत्येक घटक को कुछ निश्चित परम्पराओं, व्यवहार प्रतिमानों, मूल्यों और संस्कारों में जीवनयापन हेतु नियोजित कर रखा था। परम्परागत सामाजिक-आर्थिक संरचना के नियोजन में जाति व्यवस्था की भूमिका सबसे अधिक प्रबल रही है। जाति संरचना की मूल विशिष्टता व्यक्ति को उसके जन्म के आधार पर एक विशेष सामाजिक प्रस्थिति प्रदान करने में रही है। जन्म के आधार पर जाति की सदस्यता सुनिश्चित होती रही है। प्रत्येक जाति का सदस्य अपनी जाति के निर्धारित व्यावसायिक प्रस्थिति के कारण अन्य जाति के सदस्य से जाति व्यवस्था में उच्च या निम्न सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति से सम्बद्ध हो जाता था। प्रारम्भ में जाति व्यवस्था व्यावसायिक वर्गीकरण आधिारित व्यवस्था थी (जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते)। प्रत्येक व्यक्ति का व्यवसायिक हित जाति विशेष के संरचनात्मक मूल्यों से जुड़ा हुआ था। उत्तरवैदिक समाज में परम्परागत जाति संरचना की सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आया। शुद्धता और अशुद्धता की अवधारणाओं के व्यवहारिक जीवन में प्रवेश के कारण जाति अपरिवर्तनशील एवं बन्द समूह की भाँति हो गयी। इस स्थिति में व्यक्ति का कर्मों के आधार पर एक जाति से दूसरी जाति में स्थानान्तरण प्रतिबन्धित हो गया। जाति विशेष में जन्म लेने वाला व्यक्ति जातिगत व्यवहारों और व्यवसायों का निर्वाह करने के लिए बाध्य कर दिया गया। परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था समाज में विलगतावादी घटकों का समुच्चय बनकर रह गई।[1]

उपनिवेशकालीन भारतीय सामाजिक ढाँचे में जमींदारी उन्मूलन और रैयतवाड़ी, महालवाड़ी, ग्रामवाड़ी आदि भू-राजस्व एवं अतिरिक्त श्रममूल्य के दोहन की प्रक्रियाओं की समाप्ति के बाद स्वतन्त्र भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय के साथ-साथ प्रतिष्ठा और अवसर की समता, सभी कृषकों एवं नागरिकों को सुलभ कराने के लिए लोकतन्त्रात्मक गणराज्य का प्रारूप प्रस्तुत किया गया।[2] संविधान में मूल अधिकारों में शोषण एवं परतन्त्रता के उन्मूलन के साथ-साथ वैयक्तिक विकास के समग्र अवसरों की उपलब्धि को सुनिश्चित करने का इस प्रकार प्रयास किया गया कि वह दुर्बल वर्गों के हितों की सुरक्षा के साथ-साथ सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करें। संविधान की मूल भावनाओं का अनुरूपण करते हुए 1970 के दशक में केन्द्र सरकार द्वारा मण्डल आयोग का गठन किया गया था। इस आयोग के गठन का मूल उद्देश्य भारतीय समाज के अन्य पिछड़े वर्गों के सर्वांगीण विकास के सुलभ माध्यमों की खोज करना था। मण्डल आयोग ने केन्द्र सरकार की नीतियों के अनुपालन में प्रत्येक राज्य की विभिन्न जातियों की जातीय प्रस्थिति का विश्लेषण करने के उपरान्त अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत किया। उत्तर प्रदेश राज्य के सम्बन्ध में आयोग के प्रतिवेदन के अध्याय पाँच के अन्तर्गत पिछड़ी जातियों की गतिशीलता के सम्बन्ध में तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं।

मण्डल आयोग द्वारा उत्तर प्रदेश की दलित पिछड़ी जातियों की जो सूची प्रस्तुत की गई है उसमें 67 जातियों का उल्लेख किया गया है और अन्य पिछड़ी जातियों की सूची के अन्तर्गत कुल 116 जातियों का उल्लेख किया गया है। आयोग के प्रतिवेदन में स्पष्ट किया गया है कि उत्तर प्रदेश में 1931 जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार द्विज जातियों की संख्या लगभग 20.34 प्रतिशत है। ब्राह्मणों की कुल जनसंख्या 9.23 प्रतिशत और राजपूत 7.28 प्रतिशत थे। उच्च कृषक जातियों में यादव, कुर्मी, जाट, लोहार और कोइरी जाति की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 16.4 प्रतिशत थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनसंख्या की जातीय स्थिति

* *असि. प्रोफेसर, आर.बी.टी. बी.एड्. कालेज, डोम्बीवाली, मुम्बई।*

बिहार राज्य के ही समान थी। इस क्षेत्र में जातीय संघर्ष के विभिन्न स्वरूप देखने को मिलते हैं जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ब्राह्मणों का अभाव है। इस क्षेत्र में ग्रामीण जाटों और मुसलमानों में संघर्ष देखने को मिलता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में नगरीय क्षेत्र में बनिया जाति का बाहुल्य है और जातीय संरचना में वे सबसे अधिक प्रभावी भूमिका में हैं। उनमें और अन्य जातियों में संघर्ष की घटनाएँ सामान्य हैं। अवध क्षेत्र में ब्राह्मण और राजपूतों का वर्चस्व है। पहाड़ी जनपदों के साथ-साथ बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जातीय तनाव नहीं है।[3]

सन् 1945 में शिक्षा के क्षेत्र में कुछ विशेष सुविधाओं की पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षित करने के सम्बन्ध में संयुक्त प्रान्त के शासक वर्ग ने 37 हिन्दुओं में और 21 मुसलमानों में जातियों की सूची तैयार की थी। अनुसूचित जाति के लिए 1950 में पदों पर आरक्षण का 10 प्रतिशत कोटा निर्धारित करते समय यह स्पष्ट किया गया था कि पिछड़े वर्गों के हितों को ही ध्यान में रखा गया है।

सन् 1955 में पिछड़ी जातियों की दो सूची तैयार की गयी। पहली सूची के अन्तर्गत नौकरी में 15 जातियों को आरक्षण प्रदान करने और दूसरी सूची में 59 जातियों की शैक्षणिक सुविधा प्रदान करने के लिए व्यवस्था की गई। 1958 में सरकार द्वारा अन्य पिछड़ी जातियों की पुनः दो सूची बनाई गयी। एक के अन्तर्गत 37 हिन्दू जातियों को और दूसरे के अन्तर्गत 21 मुस्लिम जातियों को रखा गया। लेकिन आरक्षण की कोई योजना प्रस्तावित नहीं की गई।

अक्टूबर 1975 में उत्तर प्रदेश पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने जून, 1977 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। निर्धनता, निरक्षरता, निवास-स्थान, व्यवसाय, लाभहीनता, जाति, सामाजिक असमानता, सरकार में प्रतिनिधित्व, व्यापार और वाणिज्य में असमान प्रतिनिधित्व के आधार पर आयोग ने अन्य पिछड़ी जातियों की तीन सूची तैयार किया था। सूची ''अ'' के अन्तर्गत 36 जातियाँ थीं, जिनमें अधिकांश भूमिहीन थीं। सूची ''ब'' के अन्तर्गत भूमि से सम्बन्धित कृषक जातियों को रखा गया था इनमें यादव, गूजर और कुर्मी आदि जातियाँ थीं। सूची ''स'' के अन्तर्गत 23 मुस्लिम पिछड़ी जातियों को रखा गया था। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जाटों ने स्वयं को कभी भी पिछड़ी जाति के रूप में सूचीबद्ध करने का दावा प्रस्तुत नहीं किया था। क्योंकि यह उनके आत्म-सम्मान के विरुद्ध था। पिछड़ा वर्ग आयोग द्वारा प्रभागीय आरक्षण योजना संस्तुत की गयी, इसके अन्तर्गत सूची ''अ'' के लोगों के लिए सेवाओं और पदों में 17 प्रतिशत आरक्षण, सूची ''ब'' के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण और सूची ''स'' के लिए 2.5 प्रतिशत आरक्षण संस्तुत किया गया था। यह आरक्षण जातियों और जनजातियों को देय 20 प्रतिशत आरक्षण के अतिरिक्त था। 20 अगस्त, 1977 को यादव सरकार द्वारा वर्ग 1 एवं 2 सेवाओं में अनुच्छेद 16(4) के अन्तर्गत आरक्षण योजना से सम्बन्धित सरकारी आदेश प्रेषित किया गया। इसके अंतर्गत 18 प्रतिशत पद अनुसूचित जाति के लिए, 2 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के लिए, 2 प्रतिशत पद शारीरिक रूप से अपंग व्यक्तियों एवं पूर्व सैन्य अधिकारियों के लिए और 15 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों के लिए सुनिश्चित किया गया था।

जाति व्यवस्था—भारतीय सामाजिक संस्थाओं में जाति एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है। आदि काल से हमारे यहाँ जाति प्रथा का प्रचलन रहा है। भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण के रूप में जाति व्यवस्था पायी जाती है। हमारे समाज में जाति के आधार पर लोगों का वर्गीय विभाजन आधुनिक राजनीतिक परिवेश में तीन प्रखण्डों में बँटा हुआ है। प्रथम खण्ड अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों का है, तो दूसरा वर्ग अन्य पिछड़ी जातियों में सम्मिलित जाति समूहों का है, तीसरे वर्ग के अन्तर्गत अन्य सभी जातियों, धर्म एवं सम्प्रदायों के लोगों को रखा जा सकता है। पिछड़ी जाति की पृष्ठभूमि का मूल्यांकन जाति व्यवस्था की प्रकृति और उसकी उत्पत्ति में ही किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में जाति की परिभाषा, जाति व्यवस्था बन्द स्वरूप और उसकी संरचनात्मक विशिष्टताओं पर किये गये कुछ अध्ययनों का मूल्यांकन किया जा रहा है।

मजूमदार एवं मदान ने जाति की परिभाषा करते हुए लिखा है ''जाति एक बन्द वर्ग है'' कूले के शब्दों में ''जब एक वर्ग पूर्णतः आनुवंशिकता पर आधारित होता है तो हम उसे जाति कहते हैं।

क्रोबर (1930 : 554) ने जाति को परिभाषित करते हुए इसे रक्त सम्बन्धियों की इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति जाति विशेष की श्रेणीगत संरचना में उच्च या निम्न सामाजिक प्रस्थिति से संयुक्त हो जाता है। अन्तर्जातीय विवाही समूह के रूप में जाति के वंशानुगत उपखण्ड होते हैं जो जाति को निरन्तरता एवं स्थायित्व प्रदान करते हैं।

प्रो0 घूर्ये (1969 : 2) ने जाति व्यवस्था को स्पष्ट किया है उनके अनुसार हिन्दू समाज के विशिष्ट लक्षणों के रूप में जाति के छः प्रधान लक्षण बतलाये जा सकते हैं।

प्रो. घुर्ये (1961 : 1-27)[5] और कर्वे (1958 : 125-135) ने जाति व्यवस्था के निम्नलिखित छः गुणों का उल्लेख किया है–(1) समाज का विखण्डनीय विभाजन, (2) श्रेणीबद्धता, (3) भोजन तथा सामाजिक व्यवहार पर नियंत्रण, (4) विभिन्न उप-विभागों की नागरिकता, धार्मिक असमर्थता तथा विशेषाधिकार, (5) निर्बाध व्यवसाय चयन का अभाव, (6) विवाह पर नियंत्रण।

शोध का उद्देश्य

1. अन्य पिछड़ा जाति के परास्नातक विद्यार्थियों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि का मूल्यांकन करना।
2. अन्य पिछड़ा जाति के परास्नातक विद्यार्थियों की सामाजिक भूमिका का अध्ययन करना।
3. अन्य पिछड़ी जाति के परास्नातक विद्यार्थियों के सामाजिक भूमिका का अध्ययन करना।
4. अन्य पिछड़ी जाति के परास्नातक विद्यार्थियों पर आरक्षण के सुविधा को उनके परिस्थिति पर प्रभाव का अध्ययन करना।
5. अन्य पिछड़ी जाति के परास्नातक विद्यार्थियों की आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
6. अन्य पिछड़ी जाति के परास्नातक विद्यार्थियों की जागरूकता के स्तर को ज्ञात करना।
7. केन्द्र और राज्य सरकार की नीतियों का अन्य पिछड़ी जाति पर प्रभाव का अध्ययन करना।
8. अन्य पिछड़ी जाति के परास्नातक विद्यार्थियों की प्रस्थिति के सर्वांगीण पदों की सक्रियता का अध्ययन करना।
9. अन्य पिछड़ी जाति के परास्नातक विद्यार्थियों के परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर अन्य व्यवसाय के प्रति बढ़ती अभिरुचि का अध्ययन करना।

अध्ययन क्षेत्र–वर्तमान शोध भारत के बहुसंख्यक जनसंख्या वाले प्रदेश के नगरीय परिवेश में अवस्थित, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ पर आधारित है। 1991 जनगणना प्रतिवेदन के अन्तर्गत दिये गये आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि 1981 से 1991 के मध्य भारतीय जनसंख्या में 23.85 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जनसंख्या वृद्धि की तुलना में अनुसूचित जाति एवं जनजाति की जनसंख्या में 30.99 प्रतिशत वृद्धि हुई। स्वतन्त्रता के बाद साक्षरता दर में भी वृद्धि हुई। भारतीय स्तर पर कुल साक्षरता 52.19 प्रतिशत पायी गई है, जबकि उत्तर प्रदेश में यह मात्र 41.60 प्रतिशत है। साक्षरता की श्रेणी में यह राज्य 26वें स्थान पर है। पुरुषों की साक्षरता दर 55.73 प्रतिशत और महिलाओं में साक्षरता 25.31 प्रतिशत पायी गयी है। उत्तर प्रदेश के नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर में भिन्नता थी। नगरीय क्षेत्रों में 62.34 प्रतिशत लोग और ग्रामीण क्षेत्रों में 36.66 प्रतिशत लोग साक्षर थे।

उत्तर प्रदेश जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार 1991 में कुल जनसंख्या 13,91,12,287 थी जिसमें 11,15,06,372 लोग ग्रामीण क्षेत्रों में और 1.85 प्रतिशत लोग नगरीय क्षेत्रों में निवास करते थे।

पिछड़े वर्ग के छात्रों की वर्तमान स्थिति

1. निर्धन परिवार में सदस्यों की बहुलता और आय के सीमित अवसर सदस्यों की शिक्षा में कठिनाई उत्पन्न करती हैं।
2. व्यक्ति के सामाजिक जीवन में उसकी आर्थिक स्थिति की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।
3. उच्च आर्थिक स्थिति वाले परिवारों से जुड़े युवा सामान्यतः उद्भव गतिशीलता में सक्षम होते हैं।
4. आर्थिक सुविधाओं से वंचित परिवारों के युवा सामान्यतः उच्च आय वाले व्यवसाय में सहभागिता में असफल रहते हैं।
5. युवा देश के विकास के साधन हैं और मानव शक्ति के विकास के उत्पादन स्रोत हैं।
6. पिछड़ी जाति के युवा बाहर स्वतन्त्रतापूर्वक एक-दूसरे से घुल मिल जाते हैं।
7. अन्य पिछड़ी जाति के युवाओं की शैक्षणिक गतिविधियाँ सकारात्मक हैं।
8. पिछड़ी जाति के छात्र एवं छात्राएँ आधुनिक परिवर्तनशीलता मूल्यों को आत्मसात् करने की ओर उन्मुख हैं।
9. शिक्षा एवं अवसर की सुलभता, लोकतांत्रिक मूल्य समाज के कमजोर लोगों को सुरक्षित करने की व्यवस्था प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. खरे; पी. सी. एवं सिन्हा, बी. पी. (1984) : औद्योगिक सामाजिक विज्ञान, नेशनल पब्लिशिंग हाइस, इलाहाबाद (उ.प्र.)
2. कुमावत; वी. के. (1993) : औद्योगिक सन्नियम, साहित्य सदन, आगरा (उ.प्र.)
3. गुप्ता; एम. एल. एवं शर्मा, डी. डी. (1989) : सामाजिक विघटन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, नई दिल्ली
4. विद्याभूषण एवं सचदेव; डी. आर. (1993) : समाजशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, इलाहाबाद (उ.प्र.)
5. मुखर्जी; रवीन्द्रनाथ (1998) : समाजशास्त्र के मूल तत्व, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, नई दिल्ली
6. मिश्रा; के. के. (1995) : सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन, वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर (उ.प्र.)

*****

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 116-118
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

जातिवाद एवं राजनीति के अन्तर्सम्बन्ध (वर्तमान परिप्रेक्ष्य में)

*डॉ. बृजेश सिंह**

जाति भारतीय समाज का अटूट अंग है, जाति जो कि समाज में एकता संगठन का आधार रही है, जातिवाद भारतीय सामाजिक व्यवस्था की संतुलित मनोवृत्ति है या जातिगत आधारित गुटबंदी है। के0एन0 शर्मा के अनुसार जातिवाद जाति के व्यक्तियों की वह सीमित भावना है, जो देश के या सामाज के सामान्य हितों को ध्यान न रखते हुए शिक्षा, नौकरियों, सरकारी पद, राजनीतिक सत्ता व शक्ति प्राप्त कर केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान, जातीय एकता और जाति की सामाजिक प्रस्थिति को दृढ़ करने के लिए प्रेरित करती है अर्थात् व्यक्ति मनोवैज्ञानिक व व्यावहारिक दृष्टि से भी अपनी जाति के स्वार्थ हित व कल्याण की चिन्ता करता है।

यद्यपि औद्योगीकरण शिक्षा के प्रचार शहरीकरण की प्रवृति से जातिगत बंधन ढ़ीले होते जा रहे हैं पर दूसरी ओर जातिवाद की भावना अधिक प्रबल होती जा रही है। प्रजातंत्र स्वतंत्रता, समानता व बन्धुत्व के सिद्धान्त पर आधारित है पर एक सुनियोजित रणनीति के तहत् जातिवाद से भेदभाव, सामाजिक असमानता,धार्मिक कट्टरता ,जाति विद्वेष की खाई चौड़ी होती जा रही है। लोकसभा, विधानसभा, स्थानीय संस्थाओं के चुनावों मे जातिवाद के आधार पर चुनाव लड़ जाते है। नेता जाति के नाम पर वोट मांगते है और जाति विशेष के आधार पर ऐसे व्यक्ति चुन लिए जाते हैं जो राष्ट्र व समाज के हितों को प्रधानता देने की बजाय केवल अपनी जाति के हितों को प्रधानता देते है। हमारे यहां सियासी राजनीति की फितरत जाति व धर्म से गंभीर रूप से जुड़ी हुई है। राजनीतिक दल संसदीय प्रजातंत्र चलाने के लिए आज धर्म, जाति, वर्ग भाषा आदि का सहारा लेते है। चुनावी माहौल पर नजर डालें,तो लोकतंत्र की विकृत तस्वीर सामने आती है। आज राजनीतिक दलों पर जातिवाद हावी होता नजर आता है , जो लोकतंत्र के लिए नुकसानदेह है।

भारतीय राजनीति में जब कोई राजनेता या राजनीति दल किसी मसले का हल नहीं कर पाता तो तुरन्त उसे जाति का रंग दे देता है। शायद यह कहना अतिश्योक्ति नही होगा कि भारतीय राजनीति में जाति एक लाभ पदावली बन गयी है। विकास की विविध समस्याओं जैसे गरीबों को रोजी रोटी उपलब्ध कराना या लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापाना आदि में सरकार असफल होती है तब सूनीयोजित तरीके से जाति को अहम मसला बना कर प्रस्तुत कर दिया जाता है। निर्धनों की दशा सुधारनें में असफल रहीं तो हरिजनों पर अत्याचार का मामला उछाल दिया जाता है।

सम्प्रति समाज की सामाजिक सरंचना सम्बद्ध संस्थाओं , सभायुगीन सम्प्रत्ययों की संकुल संगठन होती है। जाति सामाजिक संस्थाओं में एक विलक्षण अंकिचन आश्चर्यजनक अन्वेषणीय चिरकालिक सांस्कृतिक घटना है।[1] जाति ने हिन्दू समाज को अनेक समूहों में विभक्त किया है जिनकी मानप्रतिष्ठा सामाजिक परिस्थिति तथा भूमिका के स्तर भी जन्मना, आनुवंशिकता के आधार पर भिन्न है।[2] इस स्तरीकृत जाति प्रणाली में शूद्रों को अति निकृष्टतम् स्थान प्राप्त है। ये जाति के सिद्धान्तानुसार चार प्रकार के वर्णधर्मबद्ध समाज की पांचवीं श्रेणी है।[3] प्राचीन धर्म ग्रन्थों में इन्हें चाण्डाल, अन्त्यज, खपच, पतित आदि नामों से संज्ञायित किया गया है। ये सामाजिक , धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से कोढ़ी, दास, पतित, अगतिशील वेदाध्ययन तथा यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने का अधिकार

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, पी.बी.पी.जी. कालेज, सिटी प्रतापगढ़

नहीं है।[4] इन्हें उपनयन संस्कार, वेदाध्ययन तथा यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने का अधिकार नहीं है।[5] इन्हें न केवल गांवों से ही पृथक कर दिया गया था अपितु उनके लिए ऐसे कर्त्तव्यों तथा अवलाभों को निर्धारित कर दिया गया जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे मानवता के अधम उदाहरण थे।[6] अतः स्पष्ट होता है कि प्राचीन धर्मशास्त्रों में वर्णित कानून लोकतंत्र की दृष्टि से सबके लिए समान आधार आश्रित न होकर जातीय दृष्टिकोण पर आधारित थे। परिणामतः पंचमवर्ग की स्थिति नगण्य और उनका जीवन निरर्थक प्रतीत होता है।

उपर्युक्त प्राचीन संदर्भ ग्रन्थीय अभिव्यक्तियों एवं विभिन्न विद्वानों के ऐतिहासिक अध्ययनों से स्पष्ट है कि तत्कालीन सामाजिक सरंचना का संग्रन्थित, संकुल स्वरूप सामाजिक असमानता, जन्मना संस्तरण एंव कतिपय जातीय समुदायों के विशेषाधिकारों से गर्हित रहा है। सामाजिक सम्पर्क, सार्वजनिक वस्तुओं के संसर्ग, शिक्षा एवं आवासीय प्रतिबन्ध, व्यावसायिक कुण्ठा तथा आर्थिक शोषण, मन्दिरों मे प्रवेश से वंचित, संस्कारों एवं धार्मिक रूढ़ियों से बद्ध, सुविधाओं से त्यक्त, दण्ड के क्रूर विधानों से प्रताड़ित अस्पृश्य जातियां सामाजिक दृष्टि से कोढ़ी, धार्मिक दृष्टि से पतित, आर्थिक दृष्टि से अगतिशील तथा राजनीतिक रूप से अचैतन्य एवं अजागरूक रही है।

वस्तुतः परिवर्तन के निर्देश्य रूप में धर्मसूत्र लेखकों एवं ऐतिहासिक आध्यात्मिक अध्येताओं द्वारा प्रोक्त विवरण इतना विरल और टुटा हुआ है कि अनुसूचित जातियों में परिवर्तन तथा गतिशीलता की पूर्ण अरूद्धता की कल्पना भ्रामक प्रतीत होती है। परिवर्तन समाज की अपरिहार्य स्थिति है।[7] आर्ययीकरण से लेकर औद्योगिकीकरण तक तथा ब्रिटिश शासनकाल में संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण ने परिवर्तन तथा गतिशीलता में वृद्धि की है।[8] इस प्रकार आधुनिकीकरण की ओर बढ़ते हुए परिवर्तन के अनेक आयामों में गुम्फित हरिजन समुदाय वर्तमान परिवेश में स्वतंत्र गणतन्त्रीय समाजवादी प्रजातन्त्र का विकासमान प्रत्यय है।

वस्तुतः भारत की आजादी भारत के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की प्रथम स्तम्भ थी । आजाद होना मात्र अंग्रेजों से नहीं था, आजाद होना था सामाजिक रूढ़ियों से, सांस्कृतिक विडम्बनाओं से, आर्थिक उलझनों से, वैज्ञानिक पिछड़ापन तथा शैक्षणिक गिरावट से। इसी अर्थो में स्वतंत्रता मात्र एक साधन रही है। इस प्रक्रिया से हरिजन कैसे अछूता रह सकता था। मूधन्य अध्येता भौतिक जीवन को ऊँचे स्तर तक ले जाने वाली प्रक्रिया को ही आधुनिकीकरण मान बैठे है लेंकिन वास्तविक आधुनिकीकरण तो अनुसूचित मानस का विस्तार होना है, उसकी वैचारिकी, मूल्यों, मनोवृत्तियों में परिवर्तन होना है जो वर्षों से राष्ट्रीय विघटन, सामाजिक अलगाव और संस्कृतिक उथल–पुथल के बीच ऊबता–डूबता रहा है। यह प्रपत्र और कुछ नहीं केवल एक नम्र प्रयास है उन मानसिक स्थिति को व्यावहारिक स्थिति में पकड़ने की जो परिवर्तन के कुछ प्रमुख प्रत्ययों को आलोचित करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि जाति व्यवस्था के अन्तर्गत आनुवंशिक श्रेणी क्रम पाया जाता है कि जिसमें प्रत्येक जाति एक दूसरे से उच्च या निम्न होती है तथा इस उपजाति या जातीय दूरी को प्रत्येक जाति मान्यता भी देती रही है। यद्यपि सामाजिक असमानता को वैधानिक अमान्यता एवं अन्य क्रिया–कलापों के परिप्रेक्ष्य में उक्त आत्मचिन्तन स्वरूप में अवश्य ह्रास हुआ है लेकिन परम्परागत मान्यताओं के प्रति अभिव्यक्ति आज भी महत्तम हैं।

जाति व्यवस्था में उच्चता, निम्नता का संस्तरण अद्यतन सार्वभौम है। ज्ञातव्य है कि उच्च जातीय सदस्यों का सम्बोधन उनके मानस में अकिंचन स्वयं को निम्न मानने की अनूभूति है । यह विभेद की प्रतिछाया है। यद्यपि समतावादी तथा विद्रोही स्वर भी मुखरित है लेकिन प्रतिशतता अल्प है।

स्व0 जयप्रकाश नारायण का कथन ''भारत में जाति ही सर्वप्रमुख राजनीतिक दल है।'' पंचायत से लेकर लोक सभा तक के चुनावों में यह उचित प्रतीत होता है । चुनाव का प्रत्येक कदम उम्मीदवार का चयन, नामाकंन, टिकट वितरण, चुनाव प्रचार व मतदान जातिवाद से प्रभावित होता है। राजनीतिक दल जनता को गुमराह करते है, ग्रामीण जनता औचित्य व विवेक से योग्यतम प्रत्याशी का चयन करने की बजाय जातिगत आधार पर मतदान करते है। जातिवाद की दुहाई देकर वोट बटोरने वाले नेता अपनी जाति के दूसरे नेताओं से राजनीति के स्वार्थो की वजह से झगड़ते नजर आते हैं। जब एक ही जाति के नेता कभी एक नहीं हो सकते तो बिरादरी का भला कैसे कर सकते है ? आज राजनीति सिद्धान्तविहीन हो गई है। जातीय आधार राजनीतिक दलों द्वारा अपने वोट बैंक को कायम रखने का एक प्रमुख हथियार बन गया है। पिछले दो दशकों से धार्मिक असहिष्णुता तथा जातीय संघर्षो में लगातार वृद्धि हो रही है। चाहे 1984 में सिख विरोधी दंगे या 1992 की बाबरी मस्जिद तोड़ने की घटना

या 2002 में गोधरा के दंगे या दलितों पर हमला ये घटनाएँ हम भारतीयों को गम्भीरतापूर्व सोचने को मजबूर कर देती है कि क्या हम जातिवादी कट्टरताओं धार्मिक असहिष्णुता को जारी रहने देंगे या इसे रोकने को मजबूर कर देती है कि क्या हम जातिवादी का गढ़ कहा जाता है क्षेत्र विशेष में जिस जाति का बाहुल्य है। जाति पर आधारित राजनीतिक दल साम्प्रदायिक ताकतों से लड़ने की कसमें खाते है। साल भर आम सभाओं मे दिए जाने वाले भाषणों में जातिवाद को कोसा जाता है परन्तु चुनाव के समय जाति के नाम ही पर वोट माँगे जाते है।

जातिवाद के कारण आज समुदाय में विभक्त होता जा रहा है। राष्ट्र व समाज के दृष्टिकोण की उपेक्षा कर केवल जातिगत कल्याण के लिए सोचने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। देष का प्रबद्ध वर्ग भी इसी रूझान का पिछलग्गू है जिससे सच्ची, स्वस्थ, राष्ट्रीयता का विकास नहीं हो पा रहा है। इन जातियों में आए दिन ऊँच–नीच, श्रेष्ठता को लेकर विवाद होते रहते है। आम नागरिकों में जाति की मान्यता इतनी गहरी है कि व्यक्ति की समग्र पहचान जाति बनी हुई है। व्यक्ति का पेशा, स्वभाव, चरित्र, संस्कृति जाति में निहित है। सामज के लिए अभिशापित इस व्यवस्था ने समाज को विखण्डित कर छोटी–छोटी इकाइयों में बाँट दिया है।

जातिवाद के प्रभाव में सामाजिक समरसता की बातें काल्पनिक रह गई है। समाज में दरारें बढ़ती जा रही है। जाति के आधार पर बने राजनीतिक दल साम्प्रदायिक ताकतो से लड़नें की कसमें खातें है। जातिगत व्यवस्था की जड़े भारतीय में इतनी गहरी बैठी हुई है कि कानूनों के द्वारा भी इन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता है। उचित शिक्षा के माध्यम से लोगो की मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाकर,जातिवाद के विरूद्ध स्वस्थ जनमत जाग्रत अन्तर्जातीय विवाहों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया है। जाति व्यवस्था की समाज पर इतनी गहरी छाप है कि एक जाति के व्यक्ति दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करते है। पर इनमें सामूहिक चेतना का आभाव है । गरीबी, भ्रष्टाचार, भुखमरी, अपराध, पिछड़ेपन से नागरिकों का नैतिक पतन होता जा रहा है, क्योंकि जातिगत आधारों पर हम केवल अपने स्वार्थ के लिए सोचते है, राष्ट्रीय महत्व से जुड़े मुद्दों पर हमारे विचार एक रूप नहीं हो पाते है। प्राचीन सभ्यता जो सामाजिक समरसता पर आधारित थी पर आज हम जातिगत दलदल में इस कदर फँसे हुए है कि इंसानों के बीच जातिगत भेदभाव की दीवारें मौजूद है। प्रेम, शान्ति, इंसानियत नहीं,बल्कि नफरत, ईर्ष्या, हिंसा के जीवाणु फैले हुए है। समाज में सबसे बड़ी कमी राष्ट्रीय एकता व सामाजिक समरसता की हैं, क्योकि जातिवाद का जहर समाज में घुला हुआ है। जातिवाद से धार्मिक कट्टरता को प्रोत्साहन मिला है। यद्यपि राजा राममोहन राय, दयांनद सरस्वती, केशवचन्द सेन,महादेव गोविन्द रानाडे आदि समाज सुधारकों ने जातिवाद के विरूद्ध आवाजें उठाई जॉत–पॉत के भेद–भाव, छुआछूत, ब्राह्माणवाद का विरोध किया । महात्मा कबीर ने जॉत–पॉत पर कुठारघात करते हुए कहा–''जात पात पूछै नहीं कोई हरि को भजे सो हरि का होई।'' यदि गुजरात के वर्तमान चुनाव पर नजर डालें तो वहां भी राजनीतिक क्षेत्र में उभरते हुए चेहरे जैसे हार्दिक पटेल और जिग्नेष मेवानी भी जातिवाद से अछूते नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुनन्दा पटवर्धन : चेन्ज एमन्ग इण्डियाज हरिजन्स, ओरियन्ट लॉग मैन, दिल्ली, 1973 पृष्ठ 4–5
2. निरूपण विद्यालंकार : भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति, साहित्य भण्डार, मेरठ 1971 पृष्ठ 426
3. जे0एच0 हट्टन : कास्ट इन इण्डिया, आक्सफोर्ड 1943 पृष्ठ सं0 206
4. उपर्युक्त, पृष्ठ 2017 ।
5. डी0एन0 मजूमदार : रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया, एषिया पब्लिषिग हाउस बम्बई, 1958 पृष्ठ 226 ।
6. जी0एस0 घुर्ये : जाति, वर्ग एवं व्यवसाय, पापुलर प्रकाषन, बम्बई, 1961, पृष्ठ 24 ।
7. आर0 आईसैक हेराल्ड : इण्डियन एक्स अनटमेंबुल्स, जानी डे, न्यूयार्क, 1965 पृष्ठ 31।
8. एम0 एन श्रीनिवास : कास्ट इन मार्डन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस बाम्बे, 1962 पृष्ठ 42–62।
9. एम0एन0 श्रीनिवासः पूर्वोक्त पृष्ठ 70।
10. नर्मदेश्वर प्रसाद : जाति व्यवस्था, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1965 पृष्ठ 84 ।
11. ए0आर0 देसाई : रूरल इण्डिया इन ट्रन्जिसन, पापुलर बुक डिपो, बम्बई 1967 पृष्ठ 165–66।
12. आस्कर ल्युइस : विलेज लाइफ इन नार्दन इण्डिया, यूनिवसिटी ऑफ इलियन्स अरबना 1958 पृष्ठ 142।

*****

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 119-121
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

VIOLENCE AGAINST WOMEN : A SOCIOLOGICAL ANALYSIS

*Renu Rani**

Historical Background :

Before studying the relationship between India's hierarchal culture and violence against women, it is necessary to investigate, from a higher level, the very notion of hierarchy. Because, hierarchy is religiously-inspired idea of the superiority of the pure over the impure[1] . The emergence of inequality can be traced throughout out the foundations of India's history, from the pre-Vedic period to India post independence. In doing so, the deeply ingrained quality of subjugation became apparent. The beginning of civilization saw how violence against women increasing slowly. The condition of women in ancient period is some people thinks, women is the way to reach God, but others thinks that the best way to reach God avoid women[2]. Such a situation is read touch stone to test the geniuses of society's sympathy towards weaker gender. Man thinks in society women is source of all evil, here is love to be dreaded more than the heatered of men; then the poor young men who seek women in matrimony are like fish who go to meet the hook[3]. The age of the Sutras, Epics and early Smirtis, changed the condition of women in society, women are supposed to be in the custody, of her father when they are children; they must be in the custody of their husband when they married, when they old or as widow under the uestody of their children[4]. Ancient Hindi law given Manu changed the ideology of male in society against women and there is no circumstances she would allowed herself independent. The prevalence of dominant ideology which confines women to definite roles and obligations lead to their discrimination in a range of areas. Women come to be regarded as both as object of control and one of worship. Women also saw the subjection of the two, on hand, they were reverse as goddess form, while on the other their presence and participation was forbidden in religious practices on the bases of their purity and impurity. In the post Vedic period women became of commodity, Sati is a example of it, it is Hindu funeral ritual in which a widow commit suicide by way of lighting herself on fire. There are many restrictions who bounded her such as ; child marriage, pardah partha and restrictions on widow remarriage, no participation in religious practices.

Modern Social Aspect :

Human behaviour is largely directed and determined by the different aspect of society. Society determined the status and role of women on the bases of its structure like, family, marriage, religion, caste etc. In society women produce children, women are mothers and wives; women do the cooking, mending, sewing, and washing; they take care of men and are subordinate to male authority[5]. They are largly excluded from high status occupations and from position of power. Even norms, values and roles are culturally determined socially transmitted.

Violence in India is a function of the status of women in society and culturally notions regarding gender roles. Women constitute nearly one-half of the Indian population, but they are placed at various disadvantageous position due to gender discrimination and bias. In the male dominated society, women have been victims of violence and exploitation. India being a tradition bound society; women have been

* *Research Scholar, Sociology, S.M.J.N.(P.G.) College, Haridwar*

socially, economically, physically, psychologically and sexually exploited from centuries. Any acts of gender based violence that result in, or is likely to result in physical, sexual or psychological harm or suffering to women; including threats of such act coercion or arbitrary deprivation or liberty whether occurring in public or private[6]. Violence against women is an old phenomenon. It is the most serious violation of all basic rights that a women suffer in her own family. Violence against women is a manifestation of historically unequal power relations between men and women which have lead to domination over and discrimination against women; by men and to the prevention of the full advancement of women[7]. Gender discrimination deeply rooted in the notion of patriarchy, endorsed through a women's life, from her childhood to death. Even in contemporary Indian society, women are viewed as property of men and measured by their ability to produce male children. Harm or injures health endogers health safety, life limb or well being whether mental or physical of includes causing physical abuse, sexual abuse, verbal and emotional abuse[8]. Due to violence women became a victims of many of crimes such as murder, rape, dowry, sexual harassment, domestic violence etc. Violence against women is not a contemporary incidence; its deeply rooted Indian traditions, values, culture and patriarchal system.

From the sociological point of view some thinker define it in the form of anomie, according to Durkheim, anomie it as the weakening of the fundamental bonds uniting individual in a collective social order[9]. According to Merton, anomie is a source of crime; anomie is conceived as a breakdown in the cultural structure occurring particularly[10]. Menon and Johnson (1999) studied the paternal violence and patriarchy, women have been subjected to cultural and familial institutions that result in physical, sexual and psychological harm. In India this violence takes the form of rape, sexual harassment, female infanticide, widow burning, dowry deaths and domestic violence.

Rege (1995) examined caste and violence against women; the cases of rape of lower caste women which reveal the links between virtue and rights to protest against rape, sexual abuse of dalit women by the upper caste males and customary sanction that legitimate such violence. These explanations about violence shows that through the norms controleon the individual is necessary it occurring due to norms lessness of the society. In the present scenario, violence increased day by day against women; and takes new forms of crime in 1972 there were 2,562 cases of rape reported from all over India, in 1975 there were 3,283 and in 1978, 3,899[11]. By the late 1980's, these figures had more than doubled to 7,317, in 1976 and 7,645 in 1987, this figure shows that crime increase century to century. According to National Crime Bureau records, 2015 there has been a marginal increase of 2.5% however, in the sexual offences against, women; saw 84,222 being registered the country. A total of 2,28,650 incidents of crime against women (both under IPC and SLL) were reported in the country 2011 as compared 2,13,585 during 2010 recording an increase of 7.1%, during 2011. There crimes continuously increased during 2007-2011 with 1,85,312 cases in 2007, 1,95,856 cases in 2008, 2,03,804 cases in 2011[12]. The rate of crime has increased marginally from 18 in the year 2010 to 18.9 during the year 2011. The above data show that the security of women in Indian society.

Conclusion :

To sum up, we can say that violence against women increased from many decades. Women feel unsecured herself in society, it is not a contemporary issues, it is going on ancient times in different forms. It is deeply rooted in the Indians traditions, culture, norms, values and patriarchy systems which is emerged by the process of socialization, which changed the ideology of human society. If we see in the present context, one side societies law talks about equality for women and on the other side, they comment on it. Justice of Karnataka 2008, stated that immodest dressing was the cause of increasing crimes against women and other, Human Rights Commission said in public meeting, yes men are bad, but who asked them (the women) to venture out at the night. Women should not have gone out in the night and when do, there is no point, in complaining that men touched them and hit them. In this patriarchal understanding women is responsible for crime against her because either she crossed the lakshman rekha of time or the lakshman rekha of respectability.

Suggestions :

Violence against women is a social phenomenon that crosses age, culture and national boundaries because the main reason of it in India is that its system is based on the patriarchy, by which the ideology of male society changed in domination. Its, caste system and institutions learn him superiority; and other tradition values, norms and culture makes women to sub-ordinate of the men because the process of socialization create differences between men and women. To get rid off this system, first of all women think to their self respect and improve to herself and make strong to take decisions in home and outside the home, other, out judicial system makes strict rules and take action immediately against criminals, due to which the attitude of persons would be changed.

REFERENCES

1. Dumont, Louis (1966), Home Hierarchicus : The Caste System and its Implications,The University of Chicago Press Chicago and London. P.N. 5.
2. Altekar, A.S. (1938), The Position of Women in Hindi Civilization, Motilal Banarsidas Publishers Private Limited, Delhi. P.N. 305.
3. Ibid, P.N. 325 .
4. Manu Smiriti, IX, V, P.N. 283 .
5. Haralambos, Michael (1980), Sociology : Themes and Perspective, Oxford University Press, New York. P.N. 369.
6. Menon, Nivedita (2012), Seening Like A Feminist, Zubaan Publication, New Delhi. P.N. 117 .
7. Ibid, P.N. 120 .
8. Modi, M.P. (2013), Violence Against Women, A Journal of Asia for Democracy and Development, Vol. XIII, No. 004, ISSN 0973-3833, P.N. 12 .
9. Ritzer, George (2003), Sociological Theory, McGraw Hill, New York. P.N. 90 .
10. OP. Cit., P.N. 414 .
11. Kumar, Radha (1993), History of Doing, Zubaan Publication, New Delhi. P.N. 128 .
12. Modi, M.P., OP. Cit., P.N. 15 .
13. Menon, Nivedita and Johnson (1999), Patriarchy and Paternalism in Intimate Partner Violence : A Study of Domestic Violence in Rural India (Ed.), in Dube, M.P. and Bora, Neeta, Social Justice and Women in India, Delhi, Swaj Publications. P.N. 30-46 .
14. Rege, Sharmila (1995), Caste and Gender : The Violence Against Women in India (ed.) in Jogdand, P.G., Dalit Women : issues and perspective, Gyan Book Publishers, New Delhi. P.N. 68-79 .

*****

Sociology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 122-124
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

नगरीय परिवेश में संयुक्त परिवार के बदलते प्रतिमान

(रीवा नगर के विशेष सन्दर्भ में)

*डॉ0 यू0 पी0 सिंह**
*रेखा शुक्ला***

परम्परागत भारतीय सामाजिक संरचना का एक मौलिक आधार संयुक्त परिवार व्यवस्था है। संयुक्त परिवार का अस्तित्व भारतीय समाज में अत्यन्त प्रचीनकाल से रहा है। जब हम कभी हिन्दू परिवार की चर्चा करते हैं तब हमारे सामने संयुक्त परिवार का दृष्य उभर कर आता है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति जिन मौलिक विशेषताओं के लिए विश्व में जानी जाती है, उनमें से एक संयुक्त परिवार भी है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवारों का प्रचलन अतीत में भी रहा है। यद्यपि अनेक कारणों से वर्तमान में संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आज भी भारत में मुख्यतः संयुक्त परिवारों का ही प्रचलन है। ग्रामीण समाज में तो आज भी एकाकी परिवारों का प्रचलन बहुत कम है। ग्रामीण समाज संयुक्त परिवार से सम्बन्धित संयुक्त परिवारों पर आधारित और संयुक्त परिवारों के द्वारा शासित रही है। हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म विश्व की प्राचीनतम जीवित संस्कृति और धर्म है। अनेक विदेशी आक्रमणों और संघाती के बावजूद आज भी यदि यह जीवित है तो इसका श्रेय बहुत कुछ संयुक्त परिवार व्यवस्था को ही है। सदस्यों की संख्या की दृष्टि से परिवार के विभाजन में परिवार का एक प्रमुख प्रकार संयुक्त परिवार है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि मानवीय सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के क्रम में परिवार की उत्पत्ति संयुक्त परिवार के रूप में हुई है।

सदस्यों की संख्या की दृष्टि से परिवार के विभाजन में परिवार का एक प्रमुख प्रकार संयुक्त परिवार है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि मानवीय सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के क्रम में परिवार की उत्पत्ति संयुक्त परिवार के रूप में हुई है।

संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की धारणा का प्रतीक है तथा भारतीय सामाजिक संरचना में इसका अधिक महत्व है। हिन्दू धर्म-शास्त्रों में सम्पत्ति विभाजन के सम्बन्ध में यह नियम है कि संयुक्त परिवार का कोई ऐसा भी सदस्य जो सामान्य पूर्वज से तीन पीढ़ी दूर है तो उसे संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में अपने हिस्से के विभाजन का अधिकार है। साधारण तौर पर एक संयुक्त परिवार में तीन या चार पीढ़ियों के सदस्य एक साथ पत्नी सहित रहते हैं। संयुक्त परिवार में मुखिया पारिवारिक सत्ता का प्रमुख होता है और परिवार के हर छोटे-बड़े मामलों के निर्णय में उनकी भूमिका निर्विवाद होती रही है। पूर्व के समय में परिवार का मुखिया परिवार के किसी मामले में बिना किसी की सलाह लिये अपना निर्णय दिया करता था और सभी को मुखिया की बात का पालन करना पड़ता था। मुखिया की कही गई बात पत्थर की लकीर के समान होती थी जिसे न चाहते हुए भी सभी को स्वीकार करना होता था। परिवार के समस्त कार्य मुखिया की आज्ञा से उसी के निर्देशन में होते थे।

जब संयुक्त परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक हो जाती है तो कभी-कभी कुछ व्यक्तिगत इकाईयों के लिए अलग-अलग मकानों की सहायता ली जाती है। ये निवास स्थान भी सामान्यतः परम्परागत घर के निकट ही लेने का प्रयत्न किया जाता है। सभी सदस्य भोजन के लिए अपने परम्परागत घर पर ही आते हैं। संयुक्त परिवार के सदस्यों का भोजन एक ही चौके में बनता है। यद्यपि व्यक्तिगत रुचियों का ध्यान रखा जाता है परन्तु चौके का खर्चा संयुक्त रूप से उठाया जाता है। परिवार के मुखिया की पत्नी, जो घर की सबसे बुजुर्ग महिला होती है, कि देख-रेख में घर की अन्य महिलाएँ, कन्याएँ एवं बहुएँ चौके का कार्य करती हैं। संयुक्त परिवारों में पुरुष एवं महिलाएँ एक साथ भोजन नहीं करते। परम्परा के अनुसार महिलाएँ पहले पुरुषों को भोजन

* *प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय महाविद्यालय, त्योंथर, रीवा, म.प्र.*
** *शोधार्थिनी, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय (उत्कृष्टता केन्द्र) रीवा, म. प्र.*

परोसती हैं, घर के प्रमुख सदस्यों के भोजन करने के बाद भोजन करती हैं। संयुक्त परिवारों में पूजा करने का स्थान भी एक ही होता है। परिवार के सभी सदस्य एक ही धर्म की उपासना करते हैं। वे धार्मिक कार्यों में संयुक्त रूप से भाग लेते हैं। धार्मिक कार्य प्रायः सभी सदस्य मिलकर करते हैं। प्रायः यह कार्य सबसे बुजुर्ग पुरुष सदस्य के नेतृत्व में किया जाता है। वर्तमान में नौकरी या अन्य कारणों से संयुक्त परिवार के सदस्य अलग-अलग स्थानों पर रहते हैं, परन्तु त्यौहार या अन्य किसी अवसर पर अपने पैतृक घर पर एकत्रित होकर संयुक्त रूप से धार्मिक कार्यों में भाग लेते हैं। संयुक्त परिवार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि परिवार के प्रत्येक सदस्यों में अत्यधिक प्रगाढ़ व घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं। सम्बन्धों की यह प्रगाढ़ता ही उन्हें संयुक्त रखती है। वे इसी प्रगाढ़ता के कारण ही परस्पर एक-दूसरे का विश्वास अर्जित करते हैं, यह विश्वास ही संयुक्त परिवार की आधारशिला है। सम्बन्धों की घनिष्ठता ही संयुक्त परिवार को एक प्राथमिक समूह बना देती है। यहाँ व्यक्तियों का एक ऐसा समूह बन जाता है, जो परस्पर सहयोग करते हैं। उनके सम्बन्धों में इतनी घनिष्ठता रहती है कि प्रत्येक सदस्य का ''मैं'' परिवार के ''हम'' में परिवर्तित हो जाता है, वे परस्पर इतने घुले-मिले रहते हैं कि परिवार की सामूहिक इच्छा व्यक्ति की इच्छा बन जाती है। एक दूसरे के सुख-दुख में वे समान रूप से सहभागी रहते हैं।

अध्ययन क्षेत्र

रीवा नगर विन्ध्यन कगारी प्रदेश के मध्यवर्ती भाग पर $24^{2}.42$ उत्तरी अक्षांश एवं $81^{0}.15'$ पूर्वी देशान्तर पर बीहर एवं बिछिया नदी के संगम पर स्थित है। इसका नामकरण पवित्र रेवा नदी के नाम पर प्रतिष्ठित हुआ है। रीवा नगर के उत्तर में उत्तर प्रदेश का पवित्र नगर इलाहाबाद (प्रयाग) 135 किमी. की दूरी पर तथा पूर्व में उत्तर प्रदेश राज्य का मिर्जापुर नगर 170 किमी. की दूरी पर स्थित है। रीवा नगर के पश्चिम में मध्य प्रदेश राज्य का सतना नगर 52 किमी. तथा दक्षिण में शहडोल एवं सीधी नगर क्रमशः 170 किमी. एवं 90 किमी. की दूरी पर स्थित हैं। समुद्र के सतह से 300 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह नगर पुण्य सलिला नर्मदा नदी के उपनाम रेवा के उत्तर में तथा गंगा नदी के दक्षिण में स्थित है। इस नगर के सम्पूर्ण भू-भाग के चारों और विस्तृत को 'रेवाखण्ड' के नाम से जाना जाता है। यह नगर विन्ध्यन शृंखलाओं से आच्छादित रीवा-पन्ना पठारी प्रदेश का महत्वपूर्ण नगर है।

विन्ध्य प्रदेश का मध्य प्रदेश राज्य में विलीनीकरण (1 नवम्बर, 1956) के पश्चात् यह नगर जिला मुख्यालय एवं संभागीय मुख्यालय के रूप में प्रतिष्ठित है। 2011 की जनगणना के आधार पर इस नगर की कुल जनसंख्या 235422 है, जिसमें से 124634 पुरुष एवं 110788 महिलाएँ हैं।

भारतवर्ष के मध्य में स्थित मध्य प्रदेश राज्य के उत्तरी-पूर्वी द्वार के नाम से प्रसिद्ध रीवा नगर एक मध्यकालीन ऐतिहासिक नगर है। भारतवर्ष के उन 250 नगरों में से एक नगर रीवा है जहाँ की जनसंख्या 2.00 लाख के ऊपर है। रीवा नगर बघेल राजाओं की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। रीवा बघेलखण्ड पठार पर स्थित रीवा राज्य के नाम से जाना जाता है।

रीवा नगर ग्रामीण समाज से युक्त है। विकास की दृष्टि से रीवा नगर को विकासशील नगर के अन्तर्गत रखा जा सकता है, किन्तु रीवा नगर के समाज पर ग्रामीण प्रभाव एवं पाश्चात्य प्रभाव देखने को मिलता है। जबकि ग्रामीण अंचलों में मूलभूत सुविधाओं जैसे शिक्षा-दीक्षा, रोटी, कपड़ा और मकान का अभाव है। इसलिए यहाँ संयुक्त परिवार के बदलते प्रतिमान अधिक देखे जा रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र में लगातार संयुक्त परिवारों में हो रहे विघटन को देखकर ही शोधार्थिनी ने अपने अध्ययन का आधार रीवा नगर के संयुक्त परिवार के बदलते प्रतिमान को बनाया है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य परिवर्तनशील नगरीय और औद्योगिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में भारतीय परिवार के संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक पक्षों से सम्बन्धित नवीन प्रतिमानों का अध्ययन करना है।

वर्तमान अध्ययन पारिवारिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों के कालक्रम और परिवर्तन के विभिन्न आयामों के सन्दर्भ में अध्ययन करने का प्रयत्न करेगा। विगत दो पीढ़ियों की तुलना में वर्तमान पीढ़ी में निवास, व्यवसाय, शिक्षा, पारिवारिक सम्बन्ध, पारिवारिक निर्णय, पारिवारिक सत्ता, स्त्रियों की स्थिति इत्यादि के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन द्वारा यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया जायेगा कि कालक्रम के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारतीय परिवार के संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक परिवर्तनों का वास्तविक स्वरूप क्या है। वर्तमान अध्ययन पारिवारिक संगठन के कुछ प्रमुख क्षेत्रों में निम्नलिखित उपकल्पनाओं को जाँचने का कार्य करेगा–

1. क्या नगरीय परिवार केवल संरचनात्मक दृष्टि से परिवर्तित हो रहे हैं और प्रकार्यात्मक दृष्टि से अपनी परम्परागत विशिष्टताओं को बनाये हुए हैं?

2. क्या नगरीय आवास, व्यावसायिक गतिशीलता और शिक्षा ने नगरीय पारिवारिक जीवन की परम्परागत संयुक्तता को लुप्त कर दिया है या ये परिवार संयुक्त परिवार की परम्परागत जीवनशैली का और भी प्रतिनिधित्व करते हैं?
3. क्या परम्परागत धार्मिक संस्कार और पारस्परिक उत्तरदायित्व की भावना ने मूल परिवार से पृथक रहकर निवास करने वाले परिवार को एक सूत्र में बाँधने की भूमिका अभी भी निभा रहे हैं।
4. संयुक्त परिवार के सदस्यों के सम्बन्धों की पारस्परिकता और संस्कारों में सहभागिता की तुलनात्मक स्थिति क्या है?
5. क्या शिक्षा, नगरीय व्यवसाय और आवास ने विवाह के स्वरूप, वैवाहिक निर्णय की प्रक्रिया और वैवाहिक आकांक्षाओं को परिवर्तित करके उसे अधिक व्यक्तिनिष्ठ बना दिया है।
6. संयुक्त परिवार विवाह के परम्परागत और नवीन आदर्शों में क्या अन्तर उत्पन्न करते हैं।
7. क्या स्त्रियाँ परिवार में पुरुषों के समकक्ष स्थान प्राप्त कर रही हैं या उनकी स्थिति अभी शोषण और दासता की बनी हुई है।
8. परिवार की स्त्रियों का आर्थिक जीवन में प्रवेश किस मात्रा में और किन परिस्थितियों में हुआ है, क्या उनका आर्थिक जीवन में प्रवेश परिवार की सामाजिक स्थिति को उन्नत करने में सहायक रहा है।
9. नगरीय पृष्ठभूमि उच्च शिक्षा प्राप्त परिवार की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति कम शिक्षा प्राप्त ग्रामीण पृष्ठभूमि और संयुक्त परिवार की तुलना में अपेक्षाकृत उच्च है।
10. क्या परिवार के वयोवृद्ध पुरुष सदस्य की महत्ता, सत्ता और निर्णय के क्षेत्र में निरन्तर कमी होती जा रही है।
11. आवास, व्यवसाय, शिक्षा और परिवार के स्वरूप का अंतर किस मात्रा में सम्बन्धों की आन्तरिकता को प्रभावित करता है।

संदर्भ-सूची

1. रावत, हरिकृष्ण : उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली।
2. के.एम. कापड़िया, नातेदारी एवं विवाह
3. महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश : समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
4. आहूजा, राम : सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
5. गुप्ता एवं शर्मा, समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

*****

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 125-127
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

भारत में महिलाओं का शैक्षिक एवं सामाजिक विकास

*डॉ. राकेश प्रताप सिंह**

हमारे देश की नारी शिक्षा संसार के अन्य देशों की अपेक्षा अत्यंत प्राचीन एवं महत्वपूर्ण है। विकासशील देशों में स्त्रियों को पुरुषों के साथ पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक जिम्मेंदारियों का पालन करना पड़ता है। अतः उनकी शिक्षा की अवहेलना नहीं की जा सकती। स्त्री शिक्षा की अवहेलना करना समाज की भावी पीढ़ी के साथ अन्याय करना है स्त्री समाज का आधार है, उन्हें शिक्षित करना पूरे समाज को शिक्षित करना है। नैपोलियन ने कहा था ''मुझे सुशिक्षित माताएँ दो मैं एक सुशिक्षित राष्ट्र का निर्माण कर दूंगा। ''प्रौद्योगिक तथा वैज्ञानिक सभ्यता के द्वार तक स्त्रियों को न पहुँचाने वाला शिक्षा तंत्र विश्व की आधी मानवता को विश्व से पृथक कर देगा।'' यूनेस्को द्वारा प्रकाशित पुस्तक-''द एजुकेशन एण्ड एडवांसमेन्ट ऑफ वोमेन'' वैं लेखक जेक्वेलाइन के बाण्ड 1970''

महिलाओं की भागीदारी शिक्षा में पहले से बढ़ी है इसे नकारा नहीं जा सकता परन्तु जहाँ तक होनी चाहिए उतनी अभी तक नहीं मिल पायी है। खुशी इस बात है कि सरकार के मुख्य कार्यों के तहत महिलाओं का उत्थान भी है। सरकार का सजग होना इसके लिए यह स्पष्ट करता है कि सदियों पुरानी गलत परम्पराओं ने महिलाओं को समाज के जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने को रोका है। अतः स्त्रियों को सुशिक्षित करने के हमारे प्रत्यत्नों की असफलता अब निश्चित रूप से महिलाओं मानवता व समाज में घातक परिवर्तन लायेगी। यह जीवन की सतत आवश्यकता है। वह मानवता और मानव समुदाय की प्रगति का निर्धारक है। यदि परिवार व राष्ट्र के सामाजिक व आर्थिक स्तर को उठाना हो तो अब इस मानव संसाधन के अपव्यय को रोकना होगा। आर्थिक संसाधनों को जुटाने का कार्य प्राचीन समय में पुरुष ही किया करते थे जब कि नारी गृह-सीमा में कैद रहकर गृह प्रबन्ध व अन्य पारिवारिक कार्यों में व्यस्त रहा करती थीं। परन्तु अब इनके कार्य क्षेत्र विस्तृत होने लगे हैं, जिससे जिम्मेदारियाँ बढ़ी हैं और समस्याएँ कुसमायोजन और तनावग्रस्तता भी इन्हें अपनी परिधि में ले चुकी है।

नारी को शिक्षित व रोजगार बनाना जरूरी क्यों?

1. पुरुष वर्ग को बदलते परिवेश को समझाने के लिए,
2. अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों को जानकारी के लिए,
3. मताधिकार का स्वतंत्रता पूर्वक सोच-समझकर प्रयोग करने के लिए,
4. सामाजिक कुरीतियों और संक्रीर्णताओं के उन्मूलन के लिए,
5. पारिवारिक जीवन को अच्छा बनाने का ज्ञान देने के लिए,
6. बौद्धिक गुणों व उपयोगिता की क्षमता के विकास के लिए,
7. राष्ट्र की उन्नति हेतु सुनिश्चित भागीदारी के लिए।

राधाकृष्णन आयोग के प्रतिवेदन में ठीक ही लिखा गया है कि -''यदि स्त्रियों तथा पुरुषों में से केवल एक के लिए सामान्य शिक्षा उपलब्ध करानी हो तो अवसर स्त्रियों को देना चाहिए क्योंकि तब शिक्षा आवश्यक रूप से अगली पीढ़ी को मिल जायेगी।'' आज तो जीवन हम सभी पर परिवर्तनों का लादता जा रहा है ऐसे में समाज के दोनों घटकों (नर/नारी) के विचार में गतिशीलता नहीं होगी तो समायोजन का संकट बढ़ जायेगा जिससे हम नये विश्व के नागरिक बनने की योग्यता ही खो देंगे। ईशावास्योपनिषद में कहा गया है कि शिक्षा अमरत्व की ओर ले जाती है इसलिए शिक्षित बालिकाएँ और महिलाएँ अपने परिवार में सामंजस्य की भावना का प्रकाश लाती है।

* *विभागाध्यक्ष बी.एड., स.ब.पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

स्त्री शिक्षा का विकास क्रम-वैदिक काल में स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने का दर्जा पुरुषों के समान था जैसे- घोशा, लोपामुद्रा, गार्गी, अपाला, मैत्रीय विश्ववारा इत्यादि विदुशी स्त्रियाँ थी, जबकि कालान्तर में यह कम होने लगा और मुस्लिम शासन काल में लगभग समाप्त हो गया। केवल उच्च वर्ग के लोगों के घर के बालिकाओं को ही थोड़ी बहुत शिक्षा औपचारिक रूप से मिल जाती थी। विशेष ध्यान इस दिशा में ब्रिटिश शासन काल में दिया गया जिसके लिए 1849 में डी. डब्लू. बेथ्यून को श्रेय जाता है इतना ही नहीं डेदिहेयर ने पहला स्त्री विद्यालय कलकत्ता में खोला और इस प्रकार 1851तक हमारे देश में 86 सावासिक और 285 सामान्य स्त्री विद्यालय खुल चुके थे। 1854 में बुड घोषणा पत्र में भी स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने की घोषणा की गयी फिर भी 1882 तक तटस्थता ही बनी रही क्योंकि हण्टर आयोग ने ही कन्या नार्मल स्कूल खोलने, महिला निरीक्षिकाओं की नियुक्ति, बालिका शिक्षालयों को सरल शर्तों पर अनुदान देने आदि महत्वपूर्ण सुझाव दिये। 1901 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन में स्त्री शिक्षा विभाग स्थापित किये और आर्य समाज ने भी कन्या गुरुकुल खोले 1904 में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने बनारस में सेन्ट्रल हिन्दु बालिका विद्यालय की स्थापना की। सन 1913 में दिल्ली में लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज की स्थापना की गयी। 1916 में महर्षि कार्वे ने पूना में महिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। सन 1917 तक बालिकाओं के लिए 18121 प्राथमिक स्कूल, 389 माध्यमिक स्कूल,12 आर्ट कालेज तथा 4 व्यावसायिक कालेज थे। 1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने स्त्री शिक्षा विभाग स्थापित किया। 1929 में हर्टिंग समिति ने स्त्री शिक्षा सम्बन्धी सुझाव दिया कि बालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था अधिक संख्या में ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका विद्यालयों की स्थापना, बालकों से भिन्न हाई स्कूल का पाठ्यक्रम, बालिकाओं के लिए परिचर्चा, कला संगीत, स्वास्थ्य व गृह विज्ञान की शिक्षा, महिला विद्यालय निरीक्षिकाओं की नियुक्ति, बालक व बालिकाओं के लिए शिक्षा की समान व्यवस्था, ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षिकाओं को आकर्षक वेतन और सुविधाएँ देना। 1929 में शारदा अधिनियम बना जो कम आयु की बालिकाओं के लिए शिक्षा प्रदान करने का अवसर प्रदान करता था। 1935 में वनस्थलीय विद्यापीठ की स्थापना हुई जो बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा से लेकर पी-एच.डी. तक शिक्षा प्रदान करती है। 1937 में वर्धा शिक्षा द्वारा गृह शिल्प की व्यवस्था की जाती रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं की सामाजिक स्थित में सुधार होता रहा है और विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्री शिक्षा को महत्व दिये जाने का प्रयास किया जाता रहा है और आज बालिकाएँ शिक्षा और रोजगार के सभी क्षेत्रों में प्रयासरत हैं और सरकार व समाज भी इसे बढ़ावा देने के पक्ष में है जो शुभ लक्षण है।

भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए प्राविधान-संविधान के अनुच्छेद- 15 की व्यवस्थाओं के अनुसार लिंग अथवा धर्म, जाति, जन्म स्थान आदि के आधार पर किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जा सकता है। जबकि अनुच्छेद 16 में दी गयी व्यवस्थाओं के आधार पर लोक सेवा में स्त्री पुरुष को बिना भेद किये अवसर की समानता प्रदान की गयी है। इसी प्रकार अनुच्छेद 19 में नागरिक चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे अभिव्यक्ति की समान रूप से स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष अपने प्राण व दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार हमारे संविधान में भारत के सभी स्त्री और पुरुषों को बराबरी का, आजादी का, शोषण से बचाव का, धार्मिक आजादी का, संस्कृति एवं शिक्षा आदि सभी अधिकार समान रूप से प्रदत्त किये गये हैं। त्रिस्तरीय ग्राम पंचायतों और शहरी निकायों में सभी स्तरों पर महिलाओं को एक तिहाई पद आरक्षित करने हेतु संविधान में 73वाँ और 74वाँ संशोधन किया गया है इससे महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।

महिलाओं की सुरक्षा हेतु बनाये गये विशेश अधिनियम-1. वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम, 1956, **2.** दहेज निषेध अधिनियम, 1961, **3.** प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961, **4.** समान वेतन अधिनियम, 1976, **5.** स्त्री अशिस्ट निरूपण निशेध अधिनियम, 1986, **6.** सती निषेध अधिनियम, 1987, **7.** प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994।

इस क्रम में महिला हितों की सुरक्षा हेतु सरकार को परामर्श देने वाली राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन भी 1992 में हुआ और विभिन्न राज्यों में भी आयोग के गठन हुये जो अपना कार्य सुचारू रूप से करने में प्रयासरत हैं।

महिलाओं को आत्म निर्भर बनाने हेतु चलायी गयी विशेष योजनाएँ

1. **महिला समृद्धि योजना-** ग्रामीण महिलाओं में बचत की आदत डालना और उन्हें सशक्त बनाना।
2. **इन्दिरा महिला योजना-**ग्रामीण व शहरी गन्दी बस्ती की महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलम्बन प्रदान करना।
3. **किशोरी बालिका योजना-** गरीब परिवारों की बालिकाओं के समुचित स्वास्थ्य पोषण और शिक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित करना।

4. **महिला स्व-शक्ति योजना-** महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक सामाजिक रूप से सशक्त करने का प्रयास करना।

5. **स्वाधार योजना-**महिलाओं के आर्थिक विकास हेतु उन्हें आर्थिक गतिविधियाँ अपनाने पर बल देना।

इनके अतिरिक्त स्वंयसेवी संगठनों और स्वैच्छिक संस्थानों का भी इस दिशा में पर्याप्त सहयोग और योगदान प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

अन्य प्रयास

1. स्वतंत्रता बाद महिलाओं के लिए कल्याणकारी योजनाएँ संचालित की जाती रहीं। **2.** अत्याचार रोकने के लिए और सामाजिक चेतना के लिए प्रचार माध्यमों का प्रयोग किया जाता रहा है। **3.** महिला उत्पीड़न को रोकने हेतु भारतीय दण्ड संहिता की विभिन्न धाराएँ 304बी, 376, 494, 499, आदि के अन्तर्गत कठोर सजाएँ निर्धारित की गयी हैं। **4.** अटल बिहारी बाजपेयी की सरकार द्वारा वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाया गया था।

निष्कर्ष-इससे स्पष्ट है कि महिलाओं के प्रति जागृति इस देश में आयी है परन्तु गति धीमी है उसका कारण रूढ़िवादी परम्पराओं से जकड़ी हुयी उनकी माताएँ जिन्हें इनके पढ़ने-लिखने, चमक-दमक व पश्चिमी सभ्यता के प्रति आकर्षण, आत्म निर्भरता की ललक से खुश नहीं रहती हैं और वे इन्हें बुरा मानती हैं। आज भी प्रगतिशील विचारों वाले लोग लड़कियों को अधिक शिक्षा देकर उनकी शालीनता, लज्जा व विनम्रता का अंत नहीं करना चाहते हैं। कुछ माता-पिता ही लड़कियों को पराया धन मानकर उनके शिक्षा-दीक्षा पर अधिक खर्च करना फिजूल खर्ची समझते हैं सभी रूढिवादी परम्परायें ही विकास की गति को भेद किये हुये हैं फिर भी खुशी है कि भेद गति से भी विकास की तरफ ही अग्रसर है इस दिशा के प्रमुख बाधकों में से निर्धनता, सहः शिक्षा की समस्या, शैक्षिक कार्यक्रम सम्बन्धी समस्याएँ, दोषपूर्ण प्रशासन, निर्देशन व परामर्श सेवाओं की अपर्याप्त सुविधाएँ, अशिक्षित माता-पिता और कुशल अध्यापकों की कमी है। यदि इन दोषों को दूर कर लिया जाय तो हमें लक्ष्य आसानी से मिल सकता है।

सन्दर्भ-सूची

1. अग्निहोत्री; रवीन्द्र : भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ। दिल्ली रिसर्च पब्लिकेशन इन सोशल साइसेंज।
2. द्विवेदी; आयेन्दु : महिला सशक्तिकरण की उपादेयता, सम्पादकीय लेख, समाचार-पत्र, आज, 2 जुलाई, 2004
3. पाण्डे; रामशकल व करूणाशंकर मिश्र : भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
4. पाठक; कादम्बिरी : प्रगति के लिए आवश्यक नारी स्वतंत्रता, समाचार पत्र, हिन्दुस्तान, 27 जुलाई, 2004
5. राजपूत; जगमोहन : विश्वास नहीं जगाती शिक्षा, सम्पादकीय लेख, समाचार पत्र, दैनिक जागरण, 23 मई, 2004
6. सारस्तव; मालती एवं गौतम; एस.एल. : भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएँ, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।

*****

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 128-131
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

जनसंख्या शिक्षा के प्रति शासकीय तथा अशासकीय अभिकरणों का योगदान

*डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी**

वर्तमान समय की आधारभूत समस्याओं में जनसंख्या वृद्धि की समस्या प्रमुख समस्या है। आज का शिक्षित तथा बुद्धिजीवी वर्ग चिन्तनशील व्यक्ति जनसंख्या वृद्धि की समस्या से पूरी तरह जागरुक है। चार्ल्स डार्विन ने कहा कि जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप 70 के दशक में पैदा हुआ एक बच्चा पन्द्रह सौ करोड़ की दुनिया में जीवनयापन करेगा और प्रपौत्र छः हजार करोड़ लोगों के इस ग्रह (पृथ्वी) पर गुजारा करेंगे। अब से छः या साढ़े छः शताब्दी बाद पृथ्वी पर जीवन के प्रति फीट पर प्रति व्यक्ति खड़ा रहेगा, जब तक कि हम जन्मदर को कम करने के अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पायेंगे। आज मानव जाति के सामने अपने अस्तित्व के खतरे के रूप में जनसंख्या की एक दुःखदायी तस्वीर दिखायी दे रही है। संसार के विकासशील देश जन्मदर के राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम द्वारा कम करने में जुटे हुए हैं। लगभग दो विलियन लोग अर्थात् विकासशील क्षेत्रों में 79% जनसंख्या इन देशों में निवास करती है। जहाँ परिवार नियोजन को कुछ सरकारी सहयोग है, लेकिन उनके द्वारा प्राप्त सफलता का बहुत ही सूक्ष्म रूप है। भारत में अगले दस वर्षों के अन्दर जन्मदर को पच्चीस हजार से भी कम करना है और रोकी हुयी जन्मदर को आठ मिलियन से कम रखना पड़ेगा जोकि दस मिलियन होगी। ऐसा कहा जाता है कि यह परिवार नियोजन के कार्यक्रम द्वारा ही सही स्तर पर लायी जा सकती है। यह एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है, भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम को और अधिक उत्साह और गति के साथ निश्चित समुदायों की बढ़ी हुयी पहुँच के साथ जारी रखना है। लोगों के मस्तिष्क में छोटे परिवार के आदर्श को बैठाने के लिए चुने हुए परम्परागत मूल्यों को पहले से ही निश्चित करना होगा यह एक सरल कार्य नहीं है जहाँ भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में पड़े परिवार के आदर्श को प्रेरक के रूप में एक समझा जा सकता है। नियोजन कार्यक्रम को इस तथ्य के साथ बताना चाहिए कि भारत के परिवार नियोजन की प्रारम्भिक सफलताओं एवं उनके साधनों के आसानी से उपलब्ध होने के कारण जनसंख्या वृद्धि में कमी आयी है। यदि परिवार नियोजन कार्यक्रम में उत्तरोत्तर प्रगति की आवश्यकता हो तो इस कार्यक्रम को स्वीकार न करने वाले लोगों की समस्या एवं मुसीबतों को नियमित रूप से निदान किया जाय। इससे बड़े परिवार की विचारधारा पर विराम लगाया जा सकता है। प्रो. जयसूर्या ने स्पष्ट रूप से कहा है कि परिवार नियोजन कार्यक्रम को ठीक से न समझने तथा धर्म की चादर ओढ़े लोगों के द्वारा ही देश को गर्त में लाने का दृढ़ संकल्प के कारण ही जनसंख्या वृद्धि की समस्या ने निजात नहीं मिल सकी है। भारत में पिछले कई वर्षों में कार्य करने वाले लोगों द्वारा धन प्राप्त करने के बावजूद इसे स्वीकार न करने वाले लोगों की संख्या बढ़ी है अतः कहा जा सकता है कि बदली हुई परिस्थितियों में लोगों के द्वारा धारणाएँ और उनकी मनोवृत्ति, मूल्य और नई परिस्थितियों को समझने के लिए उनके व्यवहार परिवर्तन और उनके बीच एक निश्चित समयान्तराल है।

भारतवर्ष में परिवार नियोजन कार्यक्रम एक शैक्षिक एवं आधारभूत कार्यक्रम है। इसे प्रचार एवं प्रसार के माध्यम से सारे देश में एक निश्चित लक्ष्य प्राप्त करने हेतु चलाया जाना चाहिए परन्तु परिवार नियोजन के कार्यक्रम का प्रयास असन्तोषजनक प्रतीत होता दिखायी देता है लेकिन वर्तमान में इसकी सफलता के कुछ आसार दिखायी दे रहे हैं क्योंकि हमारा प्रथम लक्ष्य वैवाहिक युगल को शीघ्र जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रखने के साधनों की जानकारी परिवार नियोजन के मापदण्डों के आधार पर होनी चाहिए लेकिन हम उन युगलों या जो बालक-बालिकाएँ अगले एक दो दशक में युगल होने पर विशेष ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है क्योंकि वे ही आने वाले वर्षों में जनसंख्या वृद्धि को पूर्णतया प्रभावित करेंगे। जनसंख्या वृद्धि की समस्या के बारे में उनको पूर्णतया जागरुक करना होगा तथा नयी जनसंख्या विचारधारा के अन्तर्गत उनको लाना होगा जो बुद्धिमानीपूर्वक

* *ब्यावज इण्टर कालेज, इलाहाबाद*

अपने भविष्य के बारे में सोच रहे हैं और जनसंख्या के मामले में उचित निर्णय लेने में सक्षम हैं। इस तरह के निर्णय युगल उस समय लेगा जब वह हर तरह की समस्या से बचने के लिए महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सक्षम होगा। यह प्रशंसनीय है कि जनसंख्या समस्या भारत जैसे विकासशील देशों में नयी चुनौती के रूप में स्वीकार की गयी है। जनसंख्या विस्फोट से तेजी से बढ़ते जन्मदर और मृत्युदर के अन्तर के कारण हैं, लेकिन अमेरिका जैसे विकसित देश भी जनसंख्या के मामलों में बच्चों/युवाओं को शिक्षित करके इस गंभीर समस्या को नियंत्रण करने की कोशिश कर रहे हैं। अतः हम परिणामस्वरूप कह सकते हैं कि जनसंख्या नियोजन विधियों द्वारा जिसमें सन्तानोत्पत्ति के युगलों या वे बच्चे जो एक या दो दशक में युवा होकर जनसंख्या वृद्धि में सहयोग करने वाले हैं उनकी मनोवृत्ति में शैक्षिक रूप से परिवर्तन कराकर एवं जनसंख्या की समस्या के प्रति जागरुकता लाकर इस समस्या से बचने की पूरी कोशिश की जा सकती है।

देश में जनसंख्या परिदृश्य के आधार पर कोई भी इस बात को सहज ही स्वीकार कर लेगा कि जब तक देश का हर नागरिक इस तथ्य के बारे में जागरुक नहीं होगा तब तक जनसंख्या वृद्धि की गति को कम करना असंभव सा प्रतीत होगा। आज आवश्यकता यह है कि देश में सभी को इस बात का अनुभव हो कि हमारी समस्त समस्याओं की जननी जैसे बेरोजगारी की समस्या, रहने के स्थान की समस्या, प्रदूषण की समस्या, जीवन के गुणवत्ता की समस्या, अच्छे जीवन की समस्या, खाद्यान्न सामग्री की समस्या, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य की समस्या, बच्चों को अच्छे संस्कार देने की समस्या, राष्ट्र के प्रति वफादारी की समस्या, राष्ट्रीय विचारों को अन्तर्राष्ट्रीय बनाने की समस्या आदि का मूल कारण तेजी से बढ़ती जनसंख्या का होना है। अतः इन समस्याओं का अस्थायी हल निकालने के लिए यह अति आवश्यक हो कि इस जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी नियंत्रण किया जाय यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात् ही हमारे देश में परिवार नियोजन कार्यक्रम को आरम्भ किया गया जिसके अन्तर्गत अनेक चिकित्सीय उपायों का प्रचार-प्रसार किया गया। इन परिवार नियोजन के कार्यक्रमों पर सरकार द्वारा काफी धन भी खर्च किया जा रहा है। फिर भी इन सभी कार्यक्रमों को देश में एवं विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में पर्याप्त सफलता नहीं मिली है। भारत की जनगणना 2001 तथा भारत की जनगणना 2011 के आँकड़ों से भी स्पष्ट है। इसका प्रमुख कारण शैक्षिक आधार का विकसित न किया जाना है अर्थात् जनसामान्य में जागरुकता उत्पन्न करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया जिसके कारण जनसामान्य में स्वीकारोक्ति नहीं हो पायी। समाज के विशेष वर्ग का शिक्षा प्राप्त न करने का रुझान तथा अपनी आर्थिक स्थिति तथा बच्चों को सामाजिक प्रगति से दूर रखकर एक नयी दुनिया बनाने की विचारधारा जनसंख्या वृद्धि की मूल कारण है। जनसंख्या शिक्षा इस कमी को पूरा करती है। वास्तव में परिवार नियोजन या परिवार कल्याण कार्यक्रमों की सफलता एक प्रभावी जनसंख्या कार्यक्रमों पर ही निर्भर करती है।

जनसंख्या शिक्षा के सम्बन्ध में प्रायः कुछ लोगों का यह भ्रम है कि जनसंख्या में कमी लाने हेतु निर्मित कार्यक्रम ही जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। मानव जाति पर उसके दुष्परिणाम पड़ रहे हैं तब जनसंख्या वृद्धि के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि जनसंख्या को किस प्रकार नियंत्रित किया। इसके विपरीत यदि किसी देश की जनसंख्या घट रही है तथा मानव संसाधनों की कमी महसूस की जा रही है तथा जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत यह भी अध्ययन किया जाता है कि जनसंख्या को कैसे बढ़ाया जा सकता है कि जनसंख्या शिक्षा वातावरण के सापेक्ष में मानव जनसंख्या का अध्ययन है जिसका लक्ष्य पर्यावरण को बिना हानि पहुँचाये मानव जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाना है। प्रारम्भ में जनसंख्या शिक्षा से तात्पर्य लोगों में जनसंख्या वृद्धि के परिणामों के बारे में जागृति उत्पन्न करने से था, लेकिन अब यह केवल इस मुद्दे तक विकसित नहीं है। वर्तमान में जनसंख्या शिक्षा की संकल्पना निम्न प्रकार से की जाती है–जनसंख्या शिक्षा एक ऐसा शैक्षणिक कार्यक्रम है जो प्रतिभागियों को जनसंख्या की गतिशीलता एवं जीवन की गुणवत्ता के बीच सम्बन्ध को बनाता है। जिसमें वे जनसंख्या नियंत्रण के लिए कदम उठा सकें और वे अपने परिवार के, समाज के व राष्ट्र के जीवन की गुणवत्ता को सुधार सकें। इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जो जनसंख्या से अथवा मानव शक्ति या संसाधान से सम्बन्धित है, इसके द्वारा न केवल जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों का ही पता चलता है बल्कि जनसंख्या वृद्धि या ह्रास के कारणों तथा उनमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी भी प्राप्त की जाती है। जनसंख्या शिक्षा का स्वरूप या विषय क्षेत्र इतना विस्तृत है कि मानव जीवन की परिस्थितियों तथा समस्याओं से सम्बन्धित समस्त पहलू किसी न किसी रूप में जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं।

जनसंख्या शिक्षा मूल्य आधारित शिक्षा है। किसी भी देश की जनसंख्या में होने वाले परिवर्तन वहाँ के सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर करते हैं। ये मूल्य हजारों वर्षों से निर्मित हैं। इसमें एकाएक परिवर्तन कर देना आसान काम नहीं है। इसके द्वारा समस्या के समाधान के लिए उन मूल्यों को जो बड़े परिवार को प्रोत्साहित करते हैं तथा जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक हों, वांछित परिवर्तन करना आवश्यक है जैसे बड़े परिवार की सुरक्षा से सामाजिक सुरक्षा मिलती है अधिक हाथ अधिक काम, पुत्र वंश को चलाना है आदि। जनसंख्या शिक्षा इस प्रकार के मूल्यों को सार्थकता की कसौटी पर कसकर इनमें आवश्यक परिवर्तन पर बल देती है।

जनसंख्या शिक्षा जीवन के गुणात्मक उन्नयन से सम्बन्धित है। इसका प्रमुख उद्देश्य जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना है। इसका सीधा अर्थ है–सभी का जीवन दीर्घकाल तक अपने को या पर्यावरण को हानि पहुँचाये बिना सुखी और उत्तम बना रहे। जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से ऐसी सामाजिक व्यवस्था का विकास करना है जिसमें आने वाली पीढ़ी सुरक्षित रह सके। अतः जीवन की गुणवत्ता के लिए निम्न बातों को सम्मिलित किया जा सके। मानव की आधारभूत आवश्यकताएँ और उनकी गुणवत्ता जिसमें भोजन, शुद्ध वायु, शुद्ध जल, स्वास्थ्यप्रद मकान, मौसम के अनुकूल कपड़े आदि सम्मिलित हैं। मानव की सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताएँ और उनकी गुणवत्ता, शिक्षा एवं रोजगार के अवसर, स्वास्थ्य एवं चिकित्सीय सुविधाएँ, सुरक्षा व्यवस्था, सुखद कार्य स्थितियाँ, आवागमन के अच्छे साधन, सृजनात्मक विकास के अवसर, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा मनोरंजन आदि। यद्यपि जीवन में गुणात्मकता उत्पन्न करने वाली सुख-सुविधाओं का निर्धारण एक मुश्किल कार्य है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की पारिवारिक, सामाजिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि भिन्न हुआ करती है, फिर भी मूलभूत आवश्यकताएँ एवं सुविधाएँ जैसे रोटी, कपड़ा, आवास, स्वास्थ्य शिक्षा एवं मनोरंजन आदि जरूरतें प्रमुख हैं जो न केवल व्यक्ति विशेष की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं बल्कि सम्बन्धित समाज तथा राष्ट्र को प्रभावित करती हैं। जिन लोगों में जीवन की गुणवत्ता लाने की भावना जागृत हो जाती है वे अपने परिवार के आकार को स्वतः सीमित करते हैं। अतः जीवन की गुणवत्ता के महत्व तथा इसकी आवश्यकता के बारे में जागरुकता पैदा कर जनसंख्या वृद्धि की समस्या का समाधान किया जा सकता है। जनसंख्या शिक्षा के द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की प्रेरणा मिलती है। जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से सामाजिक कुरीतियाँ जैसे– कम उम्र में विवाह, दहेज प्रथा, अशिक्षा, भाग्यवाद, अधिक संतान होने से खेती में मदद मिलने की मान्यता आदि बुराइयों को दूर करने की प्रेरणा मिलती है। जनसंख्या शिक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न समस्याओं का समाधान करती है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिस पर जनसंख्या वृद्धि का तीव्र गति से प्रभाव न पड़ता हो। इसके प्रभावों के समाधान की दिशा में जनसंख्या शिक्षा एक प्रणाली मध्यम मार्ग प्रस्तुत करती है। अभी तक लोगों ने इस बात को अधिक महत्व दिया है। इसका कारण शायद यह है कि लोगों ने जनसंख्या शिक्षा को मात्र परिवार नियोजन एवं जनसंख्या वृद्धि को रोकने का एक विकल्प मात्र ही सीमित कर दिया है किन्तु अब हमारी शिक्षण संस्थाओं में इस नवाचार का समानीकरण हो रहा है जो अपने आप में एक सफलता है। इस दिशा में निरन्तर किये जा रहे प्रयास कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी बनाने में मददगार होंगे।

जनसंख्या शिक्षा में शासकीय तथा अशासकीय अभिकरणों का योगदान

राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसंधान परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.), नई दिल्ली जो कि पहले से ही जनसंख्या शिक्षा इकाई है यह देश में एक सर्वोत्तम शिक्षा संस्थान है जिसमें अकेले ही जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम को स्कूलों के बाहर आयोजित करने की मुख्य भूमिका है। कार्य वर्तमान समय में प्रत्यक्ष रूप से शासकीय तथा अशासकीय अभिकरणों पर है। यह पहले से ही कहा जाता रहा है कि राष्ट्रीय वयस्क शिक्षा के निदेशक इस आन्दोलन में आगे आयें जिससे जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम के साथ वयस्क शिक्षा को जोड़ा गया जिसमें दो राष्ट्रीय सेमिनार और आवश्यक सूचनाएँ प्रस्तुत की गईं। जनसंख्या शिक्षा में हमें उस कार्यक्रम का सन्दर्भ देना चाहिए जो उसी उद्देश्य को शासकीय तथा अशासकीय अभिकरणों के द्वारा क्रियान्वित किया गया जैसे कि मद्रास विश्वविद्यालय में जनसंख्या शिक्षा परियोजना साक्षरता भवन की पारिवारिक जीवन शिक्षा, शिक्षा की योजना, लखनऊ और इण्टीग्रेटेड चाइल्ड्स डेवलपमेंट्स सर्विसेस एण्ड स्कीम (भारतीय परिवार नियोजन संघ) (एफ.पी.ए.आई.) का विशेष सन्दर्भ करना पड़ेगा। जिसमें एक क्षेत्र में एक स्कूल के बाहर जनसंख्या शिक्षा में आनुसंधानिक सेवाओं को जन्म दिया है। एफ.पी.ए.आई. ने जनसंख्या शिक्षा को स्कूल के बाहर युवाओं के लिए विशेष कार्यक्रम है जिसकी भारत में अनेक शाखाएँ हैं जिन विधियों के द्वारा जनसंख्या शिक्षा को स्थापित करके अपनाया गया। उनमें जनसंख्या शिक्षा क्लब, पेन फोरम और एफ.पी.ए.आई. द्वारा आवश्यक पाठ्यक्रम का विकास करना तथा प्रेरक के रूप में उपयोग करना है। शैक्षिक रूप से अनेक प्रकार के संगठनों द्वारा जनसंख्या शिक्षा को स्कूल के बाहर युवाओं तक पहुँचाना इसमें फिल्म प्रदर्शन, प्रदर्शनी, प्रतियोगिताओं, पेंटिंगों, खेल स्लाइड प्रदर्शन, साक्षरता कक्षाएँ, निबन्ध प्रतियोगिताओं, कठपुतली कार्यक्रम आदि युवाओं और दूसरों को जनसंख्या शिक्षा के प्रति जागरुकता प्रदान करते हैं।

भारतीय ग्रामीण महिला संघ भी दूसरा संगठन है जो अनेक प्रकार के शैक्षिक पाठ्यक्रमों को चलाता है जैसे कि क्राफ्ट शिक्षण, चरणबद्ध साक्षरता, पोषाहार, बेकरी आदि पाठ्यक्रम साक्षरता भवन लखनऊ में युवा के स्तर को बढ़ाने और स्कूल के बाहर युवा शिक्षा को युवाओं के बीच में बढ़ाना। साक्षरता भवन दो प्रकार के कार्यक्रम सतही योजना, विशेष योजना जनसंख्या शिक्षा, पारिवारिक जीवन शिक्षा केन्द्र के द्वारा विशेष योजना के अन्तर्गत चलायी जाती है। जो जनसंख्या सूचनाओं को परिवार नियोजन कार्यक्रम को युवाओं और दूरस्थ ग्रामीण इलाकों में फैलाती है। नई दिल्ली के युवा और परिवार नियोजन परिषद् (यूथ एण्ड फेमिली प्लानिंग कौंसिल) जिसकी योजना युवा लोगों को शिक्षा और प्रेरणा से अनुसंधान और सर्वेक्षण आयोजित करना

और साहित्य को प्रकाशित करना इनका उद्देश्य है। यह हरियाणा और उड़ीसा में स्कूलों के बाहर युवाओं के लिए कार्यक्रम आयोजित करती है। नवीन जनगणना यह प्रकट करती है कि गाँवों में रहने वाली हमारी जनसंख्या लगभग 76.74% है। नगरीकरण की ओर चलने की प्रवृत्ति है लेकिन यह प्रक्रिया बहुत धीमी है। इसीलिए अधिकतर गाँवों में रहने वाले युवा कृषि और इससे सम्बन्धित सक्रियता को अपनी जीविका का साधन मान रहे हैं। कृषि क्षेत्र औद्योगिक शहरों और नगरों की तरह उन्नतिशील नहीं है। अतः किसी भी साधारण जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम से सम्बद्ध होना काफी कठिन है फिर भी यह भूतकाल की तरह अपेक्षित नहीं रह सकती है। इसीलिए अलग-अलग संगठन इन परिस्थितियों को चलाने के लिए आगे आये हैं। यह कहना असंगत नहीं होगा कि हम भारत के मजदूरों की शिक्षा केन्द्रीय परिषद् (सेण्ट्रल बोर्ड फार एजूकेशन) के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जैसे आई.एल.ओ. (अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन) सहायता प्राप्त करके कई प्रशंसनीय कार्य को इस स्तर तक पहुँचाया है। संगठन ने श्रम शिक्षा के लिए एक कला को उत्पन्न करने में सफल हुआ है। जोकि जनसंख्या के गहन शैक्षिक प्रयासों के लिए सहायता उपलब्ध कराने के लिए जिम्मेदार है। यह ट्रेड यूनियन के श्रमिकों की शैक्षिक सक्रियता से सम्बन्धित है। ट्रेड यूनियन और दूसरी संस्थाएँ श्रमिकों के शैक्षिक क्रियाकलापों से जुड़ी हैं।

जुलाई, 1982 में एक स्वयं सेवा संस्था प्लानिंग रूरल हाइफन अरबन इण्टीग्रेटेड डेवेलपमेण्ट थ्रू एजूकेशन (पी.आर.आई.डी.ई.) ने जनसंख्या शिक्षा के सुझावों के लिए स्कूल के बाहर आयोजित करने के लिए इस क्षेत्र में पदार्पण किया है जिसने महाराष्ट्र के रायगढ़ और माहदा तालुका में रूरल डेवेलपमेंट प्रोजेक्ट किया है। इस रूरल प्रोजेक्ट का मुख्य दृष्टिकोण तालुका के चुने हुए स्थानों, पूर्ण प्राथमिक शिक्षा केन्द्र, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र, स्कूल के बच्चों के लिए अध्ययन केन्द्र, खेलकूद और मनोरंजन केन्द्र, वयस्क शिक्षा केन्द्र, युवा क्लब, महिला और सखी मण्डल को खोला है। एक अन्य स्वयं सेवा संस्था जो मुम्बई के अँधेरी में स्पेशल कोर सेंटर के नाम से स्थित है जो मुम्बई के निचले समुदायों से आने वाले विभिन्न प्रकार के विकलांग बच्चों के लिये है। भारत में लिखी पुस्तक जो जनसंख्या को स्कूल के बाहर विकसित करने की देश को कम कोशिशें हुयी हैं। जनसंख्या में उपयुक्त शैक्षिक पुस्तकों की कमी इसका मुख्य कारण है जिसमें बहुत सी स्वयं सेवी संस्थाओं को ऐसे कार्यक्रम आयोजित करने के लिए दूर रखती हैं। जैसे कि इस क्षेत्र में अन्य प्रकार की संस्थाएँ इसी उद्देश्य के लिए हैं। यह स्वाभाविक है कि इनमें झूठे प्रयासों की लीपापोती की है जो निश्चित ही व्यर्थ है जिस पर हम विश्वास नहीं कर सके। इसलिए यह बताया जाता है कि कुछ उच्चकोटि की संस्थाएँ इन कार्यक्रमों को लोगों के लिए तैयार कर सकती हैं जो उचित मार्गदर्शन और लक्ष्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करती हैं। भारत में स्कूल के बाहर जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम और अन्य विकासशील देशों में एक विकसित प्रक्रिया आयी है। यह अपेक्षाकृत ज्यादा है कि अनुशासित एवं उपयोगी कार्यक्रम है। इन सभी देशों में परिवार नियोजन कार्यक्रम जनसंख्या शिक्षा शब्द के अस्तित्व में आने से पूर्व ही चल रहे हैं। जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम विकसित करने की योजना और परियोजना को कार्यरूप में परिणित करने के लिये संयुक्त राष्ट्र निधि और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में जनसंख्या कार्यक्रम के लिए भी कभी भी धन की कमी न होने दें तथा सदैव ही प्रोत्साहन का कार्य भी इन संस्थाओं ने किया।

भारत तथा विदेश में जनसंख्या शिक्षा के लिए कार्यरत शासकीय तथा अशासकीय अभिकरणों के नाम– औपचारिक शिक्षा केन्द्र मद्रास विश्वविद्यालय की जनसांख्यिकीय शिक्षा परियोजना, पारिवारिक जीवन शिक्षा परियोजना, साक्षरता भवन लखनऊ, समग्रित शिशु विकास सेवा और योजना, भारतीय परिवार नियोजन संघ, जनसंख्या शिक्षा क्लब, पेन फोरम, भारतीय ग्रामीण महिला संघ, स्त्री शिक्षा, साक्षरता भवन लखनऊ, युवा एवं परिवार नियोजन परिषद्, नई दिल्ली, भारतीय मजदूर शिक्षा का केन्द्रीय बोर्ड शिक्षा द्वारा समग्रित विकास, ग्रामीण नगरीय योजना, प्री. स्कूल केन्द्र, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र, युवा क्लब, महिला एवं सखी मंडल, विशेष देखभाल केन्द्र, अँधेरी, मुम्बई का जनसंख्या शिक्षा प्रकोष्ठ, स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन केन्द्र, राष्ट्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो, राष्ट्रीय विकास की शिक्षा, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्, संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ, शिक्षा पर एशिया क्षेत्र की कार्यशाला, बैंकाक, यूनेस्को परियोजना और जनसंख्या प्रकोष्ठ, न्यूयार्क, सिफ्सा हेल्थ इन इण्डिया, केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो आदि प्रमुख संस्थाएँ जनसंख्या शिक्षा में अपना अमूल्य योगदान दे रही हैं जिससे देश उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर चल सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अग्रवाल; एस. एन., इण्डियाज पापुलेशन, एसियन पब्लिकेशन हाउस
2. अहलुवालिया; हरजीत, महिला के सशक्तीकरण का आर्थिक विकास
3. चावला; एस.सी., जनसंख्या शिक्षा

*****

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 132-133
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

मानवाधिकार का वैधानिक एवं आध्यात्मिक संदर्शन

*साधना त्रिपाठी**

भारतीय आध्यात्म का प्रारम्भ ब्रह्म, आत्मा एवं स्व से होता है। अतः स्व ही बीज रूप में इस सम्पूर्ण भौतिक जगत में सर्वदा विद्यमान है। इसलिए आत्मा को अजर-अमर और को नित्य कहा गया है। भारतीय दर्शन में जड़ एवं जीव का संयोजन ही बन्धन कर्मफल एवं मोक्ष का आधार बनता है। मोक्षस्पृह-भारतीय संस्कृति में सदा ही सदकर्मों, शक्ति, आचरण, योग, ध्यान संयम और जप-तप पर बल दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर भोगवाद, परिगृह एवं असाध्य को अधर्म माना गया है।

जीव-आजीव बन्ध के परिणामस्वरूप सृजित प्राणी की विकास क्रम भी दृष्टि से संसार में कई स्तर या अवस्थाएं हैं। जीव विकास में ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रिय का विकास होना सामान्य बात है। किन्तु कुछ प्राणधारियों में सूक्ष्म मन विचार एवं कल्पना का विकास होता है। इसी कारण मन इन्द्रियों से मुक्त मानव में स्मृति, भ्रम, राग-द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि भाव की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार भी भावोत्पत्ति के क्रम में मानव से साधारण मानव को असुरक्षा का भय घेर-लेता है। इसी सुरक्षाभाव को नियन्त्रित करने के लिए मानव चल अचल सम्पत्ति का स्नेह कर लेता है। जीव को यह सुरक्षा उपाय नितान्त ही अस्थायी है।

अतः मानवाधिकारों का प्राकृतिक अधिकार सार्वभौमिक अधिकार अथवा संवैधानिक मूल अधिकार सर्वसमानार्थी शब्दों के भी व्यक्त किया जाता है। प्राकृतिक अधिकार जहाँ दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। सार्वभौमिक अधिकार एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य का सूचक है जब कि संवैधानिक मूलाधिकार को राजनैतिक अथवा संवैधानिक स्वीकारोक्ति को इंगित करता है। प्राकृतिक अधिकार वस्तुतः ईश्वरीय व्यवस्था के द्वारा जन्मजात के रूप से सभी मानव बिना किसी भेदभाव के उत्पन्न होने से सम्बन्धित है। वहीं दूसरी ओर सार्वभौतिक अधिकारों की उत्पत्ति सामाजिक जागरण व सुधार सम्बन्धित व आन्दोलनों के फलस्वरूप हुई। परिणामस्वरूप आज्ञा सम्पूर्ण विश्व प्रजातान्त्रिक-शासक व्यवस्था को अपना रहा है। संविधान में प्रदत्त नागरिक अधिकारों को इसी श्रेणी में रखा गया है। गीता, वेद, पुराण, बाइबिल, जैन धर्म ग्रन्थों में भी मानव कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का उल्लेख मिलता है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में प्राचीन इतिहास में ईरान के साइरस महान तथा भारत में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में अशोक महान ने अपने-अपने साम्राज्य में मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने की दिशा में एक सार्थक पहल भी थी। उधर 17वीं शताब्दी में व 18वीं शताब्दी में जॉन लॉक जैसे दार्शनिकों ने तथा संयुक्त राज्य की स्वतंत्रता के घोषणा पत्र में फ्रान्स के नागरिक अधिकार सम्बन्धित घोषणा पत्र में मानवाधिकारों के विषय में सरल उल्लेख मिलता है।

18वीं तथा 19वीं शताब्दी में थामस, पैने, जोहन, स्टुअर्ट मिल, हीगल जैसे महान दार्शनिक ने तथा 20वीं शताब्दी में महात्मा गाँधी जैसे नेताओं ने महान अधिकारों के प्रति सजगत व आग्रह का इजहार किया सामाजिक औद्योगिक व राजनैतिक क्रान्तिकारियों की माँग को प्रोत्साहित किया, उधर-विश्वयुद्ध की विभिषिका से आछत मानवाधिकारवादियों ने संयुक्त राष्ट्र की अगुवायी में सन् 1948 में जारी किये गये मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा में वैश्विक स्तर पर स्वतंत्रता, समानता, न्याय व शक्ति के रूप में मानवीय, नागरिक, आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों पर जोर देते हुए इनको सभी राष्ट्रों के द्वारा प्रोत्साहित किये जाने की माँग की गई। सन् 1976 में (ESLCR) प्रदान करने की दिशायें 155 देशों के द्वारा बचन बद्धता की गई। अपराध उत्पीड़न, प्रजाति, विवेकीकरण, यौन-इत्यादि को रोकने तथा बालधिकार, महिलाधिकार को सुनिश्चित करने, डोर्स रिमिन मुह पर शिखर मामला बर्ताओं को गोष्ठियों आदि में भी प्रकारान्तर में मानवाधिकार के सम्बन्ध में कम महत्वपूर्ण प्रावधान दिखायेगा।

उधर अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार घोषणा के सम्बन्ध में 1993 में मानवाधिकार विश्व सम्मेलन में वियना घोषणा व कार्यान्वयन कार्यक्रम स्वीकार किया गया। जिनमें अंतर्राष्ट्रीय नागरिक व राजनैतिक अधिकार समिति ने मानवाधिकार समिति के नाम से 1318 सदस्यीय समिति बनाई जो मानवाधिकार सम्बन्धी कानूनों पर दृष्टि रखेगा।

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड. विभाग, ने.ग्रा.भा. विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

मानवाधिकारों के प्रकार–मानवाधिकारों को सकारात्मक व नकारात्मक रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। नकारात्मक अधिकारों से तात्पर्य जिनका किसी भी हालात से हनन नहीं किया जा सकता।

(1) सुरक्षा सम्बन्धी अधिकार

(2) स्वतंत्रता

(3) राजनैतिक अधिकार

(4) समता का अधिकार

(5) कल्याण का अधिकार

मानवाधिकारों का संरक्षण आज पूर्व के विरुद्ध चुनौती है। मानवाधिकारों के संरक्षण की बात भारत में प्राचीनकाल से की जाती रही है। जो वैदिक काल में प्रमुख रूप से पायी जाती रही है। ''सर्वे भवन्तु सुखिना सर्वे सन्तु निरामया'' में भी मानवाधिकारों का उल्लेख प्राप्त होता है। आधुनिक काल में मोनाकार्टा के Bill of Rights तथा फ्रान्स में मानवाधिकार घोषणा पत्र में–6 मात्र कानूनी पत्र के मानवाधिकारों की घोषणा करने एवं इन्हें लागू करने की प्रक्रियापर विधिक निर्माण करने से ही मात्र इस समय निजात नहीं पाया जा सकता है।

वर्तमान समय में मानवाधिकारों को संरक्षित करने के लिए जिला व राज्य स्तर पर मानवाधिकार आयोगों का गठन किया जा रहा है। जो बाल श्रम मजदूरी, महिला उत्पीड़न को रोकने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। इसके साथ ही साथ प्राकृतिक अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए न्याय संगत तरीका अपनाया जाता है। यह सर्वविदित है कि चार प्रकार के कानून जिसमें प्राकृतिक कानून, दैवीय कानून, शाश्वत कानून, मानवीय कानून, मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए बने हैं।

इस प्रकार मानव जीवन के आध्यात्मिक व वैधानिक पक्षों की सुरक्षा होती है और वह समाज में उचित दर्जा दिलाती है।

संदर्भ–सूची

1. गुप्ता; एस.पी., गुप्ता; अलका, सामाजिक भारत और शिक्षा।
2. सुन्दरम्; के.पी. एम., भारतीय अर्थव्यवस्था।
3. समाचार पत्र : दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान।
4. कुरुक्षेत्र एवं योजना।
5. प्रतियोगिता दर्पण।
6. समसामयिक घटना चक्र।
7. डॉ. दुबे; मनीषा एवं दूबे; विभा, भारत में शैक्षिक पद्धति का विकास।
8. डॉ. गुप्ता; एस.पी. एवं अलका, समकालीन भारत और शिक्षा।
9. गुप्ता; एस.पी., भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्या।

*****

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 134-135
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

वर्तमान शैक्षिक परिवेश में योग का महत्व

*सन्त कुमार मिश्र**
*डॉ. अजय कुमार दुबे***

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के युज शब्द से हुई है जिसका अर्थ है जोड़ना अथवा एकत्र करना। योग का उद्‌गम भारत में लगभग 5000 वर्ष पूर्व हुआ। वेदों में योग के बारे में लिखित जानकारी मिलती है। ऋग्वेद के वृहदारण्यक उपनिषद्, शुक्ल यजुर्वेद, कठोपनिषद् के कृष्ण यजुर्वेद सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद् और अर्थववेद के माण्डूक्यू उपनिषद से योग के बारे में कुछ उद्धृत जानकारियाँ मिलती है। मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त योगीराज पशुपति को ध्यान मुद्रा में दिखायाा जाना भी योग की तरफ इंगित करता है। बुद्ध काल में बुद्ध का ध्यान मुद्रा में होना भी योग का प्रमाण देता है। जैन धर्म के तीर्थंकर भी योग के तरफ इंगित करते हैं। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में योग को सुव्यवस्थित ढंग से सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया। उन्होंने योग को आठ भागों-यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि में विभाजित किया। आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी परमहंस, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महर्षि अरविन्द, श्री श्री रविशंकर एवं बाबा रामदेव ने वैश्विक स्तर पर योग को पहचान दिलाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

वर्तमान शैक्षिक परिवेश में डिप्रेशन तनाव भग्नाशा आदि कारक तथा मानसिक अस्वस्थता जिसके कारण विद्यार्थी अपने प्रदर्शन को ठीक ढंग से नहीं कर पाता, समायोजन की समस्या, बेरोजगारी, जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण, नगरीकरण मानसिक तनाव, भग्नाशा, डर, आचरण की समस्यायें, असामाजिक व्यवहार, असंतुलन की भावना, प्रतियोगिता का दबाव, प्रवेश की समस्याएँ, दैनिक जीवन में छात्र-छात्रा सम्बन्ध एवं सामाजिक विघटन भी विद्यार्थी पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं जिस कारण से विद्यार्थी अनेकों मानसिक शारीरिक संवेगात्मक आदि समस्याओं से जूझता रहता है। योग के माध्यम से विद्यार्थियों में अनेक समस्याओं को दूर किया जा सकता है। विषय के प्रति ज्ञान न होने के कारण विषय के प्रति सोच, आत्महत्या का विचार, निराशावादिता, मानिसक असंतुलन, सिरदर्द एवं तनाव के कारण बढ़ जाता जिसे योग के माध्यम से दूर किया जा सकता है। ''योग तनाव, मोटापे, सिरदर्द एवं पीठ के दर्द छाती के दर्द आदि को दूर करने में सहायक है।'' विद्यार्थियों में ध्यानभंगता एक बहुत बड़ी समस्या है। ध्यान का मतलब है एक निश्चित बिन्दु पर लाना। बहुत से योगाभ्यास हमारे ध्यान को बढ़ाने में सहायका है जैसे मंत्रों के उच्चारण से, आन्तरिक स्वर, हठ योग, आसन क्रिया, प्राणायाम के द्वारा हम अपनी साँसों को नियन्त्रित करते जो हमें ध्यान एकाग्र करने में सहायक सिद्धा होती है। नासाग्र दृष्टि है इसमें एक पेन्सिल को लेकर उसके बिन्दु को हम धीरे-धीरे अपने पास लाते हैं उसके बाद हम धीरे-धीरे उसकी दूरी बढ़ाते हैं उसको नाक के सीध में रखते हैं जिससे हमें ध्यान बढ़ाने में सहायता मिलती है।

वर्तमान समय में विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में गिरावट देखी जा सकती है। शैक्षिक उपलब्धि एक प्रत्यय है जिससे विद्यार्थियों में सुनियोजित ढंग से किये गये या सीखे गये क्षमता से होता है Marriam Webster Dictionary के अनुसार शैक्षिक उपलब्धि का मतलब है–''The Quality and Quantity of Student work'' पतंजलि के अष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि के द्वारा शैक्षिक उपलब्धियों को बढ़ाने में मदद मिलती है।

विद्यार्थियों में ध्यान भंग यादाश्त की कमी के कारण बुद्धधिलब्धि में भी कमी स्पष्ट रूप से देखी जाती है। जिसे योग के विभिन्न तरीकों धनुर्रासन, ताड़ासन, सर्वांगसन एवं शलभासन के नियमित प्रयोग से दूर कर बुद्धधिलब्धि में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

**शोध छात्र, बी.एड. विभाग, टी.डी.पी.जी. कॉलेज जौनपुर*
***एसो. प्रोफेसर, बी.एड. विभाग, टी.डी.पी.जी. कॉलेज जौनपुर*

वर्तमान शैक्षिक परिवेश के साथ विद्यार्थियों का समायोजित न हो पाना एक समस्यात्मक पहलू है। समायोजन-पर्यावरण के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया व्यवहार व अनुभव को समायोजन कहते हैं। **शेफर के अनुसार–**''समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक जीवित प्राणी अपनी आवश्यकताओं एवं इसकी संतुष्टि को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के साथ संतुलन बनाये रखता है।'' इच्छाओं की पूर्ति न होने पर कुंठा, तनाव, भग्नाशा आदि के द्वारा व्यक्ति घिरा रहता है। विद्यायालयी वातावरण के साथ विद्यार्थी समायोजन करना करना पड़ता है। भौतिक स्तर, आध्यात्मिक स्तर तथा वैचारिक स्तर पर योग के माध्यम से जो समायोजन वह करता है उसे समग्र योग कहते हैं। सुख दुःख आदि के जीवन के सभी अनुकूल परिस्थितियों में समभाव रखना मान और अपमान, सिद्धी और असिद्धी में मन को विचलित न करना शत्रु और मित्र दोनों के प्रति समभाव ही समत्व-योग है। समत्व योग के माध्यम से मन को नियंत्रित करके जीवन को समायोजित किया जा सकता है।

शैक्षिक परिवेश में अत्यधिक तापमान, काम करने का अनुचित वातावरण तथा शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य भी मानसिक तनाव के कारण हैं। वर्ष 2012 की एक रिपोर्ट के अनुसार–''भारत में तकरीबन 57 फीसदी महिलाएँ मानसिक विकारों का शिकार बनी विश्व स्वास्थ्य संगठन के आँकड़ों पर गौर करें तो हम पाते हैं कि हर पाँच में से एक महिला एवं हर बारह में से एक पुरुष मानसिक व्याधि का शिकार है।'' भारत के अवसाद के मामलों में भी विश्व के अग्रणी देशों में शुमार है। आज जिस आयु के लोग अवसाद झेल रहे हैं वे परिवार एवं समाज के सिस्टम से दूरा ही रहे हैं विद्यार्थियों का अधिकतर समय घर से दूर पढ़ाई में बीतता है। कैरियर के उच्चतम शिखर पर पहुँचने की लालसा उन्हें जीवन के अन्त का राह चुनने को उत्प्रेरित करता है या फिर मानसिक विकृतियों का शिकार बनता है।

नियमित योगाभ्यास के माध्यम से वे अपने आपको शांत एवं निश्चिंत रहने तथा जीवन को पुनः सकारात्मक रूप से जीने की क्षमता पा सकते हैं। योगासन तनाव व नकारात्मकता को हमारे शरीर से निकाल कर मन को प्रसन्न एवं शरीर को स्वस्थ करता है। अरस्तू ने कहा कि-''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।'' योग में विभिन्न माध्यमों जैसे **योगासन में** सेतु बंधासन, मत्यासन, पश्चिमोपात्तान आसन, हस्तपादासन तथा शवासन से शरीर व मन के चित्त को शांत करने में मदद मिलती है। श्वास पर अपना ध्यान क्रेन्द्रित करने व्यर्थ के विचारों से मुक्ति मिलती है जो तनाव के मूल कारक है। कपाल भाँति, भस्त्रिका प्राणायाम, नाड़ी शोधन प्राणायाम और भ्रामरी प्राणायाम से विचलित मन को एकाग्र करने में मदद मिलती है। ध्यान भी योग की एक विधि है जिससे शांति की अनुभूति होती है। आड्रेनिल रस-संभावित खतरे की अधिक चिन्ता करने पर निकलने वाला रस जिससे माँसपेशियाँ तन जाती हैं, हृदय गति तेजा होती है तथा पसीना बाहर निकलने लगता है को नियमित ध्यान से दूर किया जा सकता है। योग से शरीर मजबूत और लचीला होता है योग मांसपेशियों को सुगठित और शरीर को संतुलित रखता है, सुगठित, संतुलित और लोचदार शरीर होने से कार्य क्षमता में भी वृद्धि होती है। कुछ योग मुद्राओं से शरीर की हड्डियाँ भी पुष्ट और मजबूत होती हैं, यह अस्थि सम्बन्धी रोग की संभावनाओं को भी कम करता है।

इतना ही नहीं विद्यार्थी जीवन में सकारात्मक विचारों का होना बहुत आवश्यक है, निराशात्मक विचार असफलता की ओर ले जाता है। योग से मन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। योग से आत्मिक बल प्राप्त होता है और मन से चिन्ता, विरोधाभास एवं निराशा की भावना दूर हो जाती है, मन को आत्मिक शान्ति एवं आराम मिलता है जिससे मन में प्रसन्नता एवं उत्साह का संचार होता है, इसका सीधा असर व्यक्तित्व एवं सेहत पर होता है स्मरण शक्ति एवं बौद्धिक क्षमता जीवन में प्रगति के लिए प्रमुख साधन माने जाते हैं, योग से मानसिक क्षमताओं का विकास होता है और स्मरण शक्ति पर भी गुणात्मक प्रभाव होता है। योग मुद्रा और ध्यान मन को एकाग्र करने में सहायक होता है। एकाग्र मन से स्मरण शक्ति का विकास होता है। प्रतियोगिता परीक्षाओं में तार्किक क्षमताओं पर आधारित प्रश्न पूछे जाते हैं, योग तर्क शक्ति का भी विकास करता है एवं कौशल को बढ़ाता है। योग की क्रियाओं द्वारा तार्किक शक्ति एवं कार्य कुशलता में गुणात्मक प्रभाव होने से आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

सन्दर्भ–सूची

1. पिठवे; सितापचन्द (2012) : आत्म प्रबोधन, कृष्णमूर्ति स्टडी सर्कल इन्दौर म.प्र.।
2. योग मंजरी के अंक (2004) : भारतीय योग संस्थान, शालीमार बाग, नई दिल्ली।
3. श्रीवास्तव; रामजी व अन्य (2008) : आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाला बनारसीदास पटना।
4. सिंह; अरुण कुमार (2016) : प्रतियोगिता मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसीदास, पटना।
5. The Art of Living : (2017'October, 10) Retrived form http//:WWW. artofliving. org/in-hi/yoga/health-and-wellness/yoga-for-anixty-disosrder

*****

Education
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 136-139
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

भारतीय शिक्षा और बौद्ध चिन्तन

*पवन कुमार**

इतिहास मनुष्य के अतीत के वास्तविकताओं का दर्पण है। अतीत में किसी भी राष्ट्र में क्या घटनायें घटी वहाँ की उन्नति किस प्रकार हुई उस राष्ट्र की राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक व औद्योगिक परिस्थितियाँ किस प्रकार की रही यह सभी बातें इतिहास के अध्ययन द्वारा जाना जा सकता है, क्योंकि जब हम अतीत को जान जायेंगे तो हम इसका उपयोग वर्तमान की ज्वलन्त समस्याओं को समझने में व सुलझाने में कर सकेंगे।

लगभग 600 ई.पू. से 1200ई. का समय बौद्धकाल कहा जाता है। छठी शताब्दी ई0पू0 के लगभग हिन्दू धर्म में अनेक दोष आ गये थे। धर्म के मूल सिद्धान्तों का लोप होकर कर्मकाण्डों का आडम्बर उत्पन्न हो गया था। वर्ण-व्यवस्था पूर्णरूपेण जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी थी। स्त्रियों की सामाजिक दशा में अवनति हो गयी थी। भारतीय समाज को नवीन प्रतिरोधों, चुनौतियों एवं परिवर्तनों का सामना करना पड़ रहा था। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में पोंगापंथी, धर्माचरण, वाह्यआडम्बर आदि की प्रक्रिया स्वरूप बौद्ध एवं जैन धर्म का उदय हुआ।

बौद्ध एवं जैन धर्म शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। बौद्ध एवं जैन शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का इस प्रकार विकास करना है जिसमें सम्यक् ज्ञान की प्रतीति हो, श्रद्धा हो, भावनाओं का उन्मेष हो तथा चरित्र का निर्माण हो। महात्मा बुद्ध ने अपनी शिक्षा में 'चार आर्य सत्य' का प्रतिपादन किया तथा निर्वाण को मानव का अन्तिम लक्ष्य माना। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव भारतीय शिक्षा पर भी पड़ा। परिणामस्वरूप एक नई शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ जिसे बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली की संज्ञा दी गयी।

बौद्ध शिक्षा का अर्थ—वैदिक शिक्षा की संकीर्णता की प्रतिक्रियास्वरूप बौद्ध शिक्षा का उदय हुआ। महात्मा बुद्ध ने जातिगत भेदभावों से अलग सभी वर्गों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। मोक्ष प्राप्ति के लिए वैदिक कर्मकाण्डों के स्थान पर ज्ञान प्राप्ति, अहिंसा, सदाचार एवं पवित्र जीवन आदि पर बल दिया था। धर्म प्रचार के लिए जन साधारण की भाषा 'पालि' का प्रयोग किया था। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव भारतीय शिक्षा पर भी पड़ा। परिणाम स्वरूप एक नई शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ था, जिसे बौद्ध शिक्षा प्रणाली की संज्ञा दी गयी। यह वैदिक शिक्षा प्रणाली से भिन्न होते हुए भी अनेक बातों में समानता रखती थी, जैसा कि डॉ. मुखर्जी ने लिखा है कि-

''बौद्ध शिक्षा, उचित रूप से विचार किये प्राचीन हिन्दू अथवा ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली का केवल एक रूप है।''

बौद्ध शिक्षा के उद्देश्य—व्यक्ति का विकास शिक्षा पर आधारित होता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को विद्या या ज्ञान के साथ-साथ नैतिक, मानसिक, शारीरिक सभी क्षेत्रों में विकास करके सदाचारी और स्वावलम्बी बनाना है। शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति द्वारा बुद्धि विकास अथवा विवेक जागृत करना है, जिससे मनुष्य प्रत्येक विषय पर स्वयं निर्णय ले सके और दृढ़ता से उसका पालन कर सके।

बौद्ध दर्शन का हमारे शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज भी यह हमारी सहायता कर सकता है। बौद्ध दर्शन लौकिक एवं परमार्थिक दोनों सत्यों में विश्वास करता है।

लौकिक दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य

1. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास
2. नैतिक और चारित्रिक विकास
3. सामाजिक एवं व्यवसायिक विकास

* *शोधछात्र (शिक्षाशास्त्र विभाग), नेहरू ग्राम भारती वि.वि., इलाहाबाद*

पारमार्थिक दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य

1. आर्य सत्यों का ज्ञान-बौद्ध दर्शन, महात्मा बुद्ध के चार आर्य सत्यों में निहित है। आध्यात्मिक शिक्षा का उद्देश्य इन चार आर्य सत्यों का ज्ञान कराना है जो इस प्रकार है-

1. सर्वदुःखम् अर्थात संसार दुखमय है।
2. दुःख समुदाय अर्थात दुःखों का कारण है।
3. दुःख निरोधः अर्थात दुःखों का नाश होता है।
4. दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा अर्थात दुःखों के नाश का उपाय है।

2. अष्टांग मार्ग का प्रशिक्षण-''महात्मा बुद्ध ने संसार को दुःखमय बताया है। उनका मानना है कि इस संसार में दुःख है और दुःख का कारण भी है। दुःख अर्थात अज्ञान की समाप्ति और निर्वाण की प्राप्ति में आठ सोपान हैं जिसे अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है। इन अष्टांगिक मार्गों का पालन कराना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।''[1] अष्टांगिक मार्ग निम्नवत हैं-

1. सम्यक् दृष्टि (सम्मा दिष्टि)
2. सम्यक् संकल्प (सम्मा संकल्प)
3. सम्यक् वाक् (सम्मा वाचा)
4. सम्यक् कर्मान्त (सम्मा कम्मा)
5. सम्यक् आजीविका (सम्मा आजीव)
6. सम्यक् व्यायाम (सम्मा व्यायाम)
7. सम्यक् स्मृति (सम्मा मति)
8. सम्यक् समाधि (सम्मा समाधि)

3. संस्कृति का संरक्षण-बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य संस्कृति का संरक्षण भी है। संस्कृति संरक्षण के अंतर्गत भारतीय धर्म, दर्शन का ज्ञान आवश्यक माना गया है। अतः बौद्ध शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बौद्ध संस्कृति का संरक्षण था। संस्कृतियों के हस्तान्तरण में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम–बौद्ध मठों एवं विहारों में प्रचलित पाठ्यक्रम दो प्रकार का था-

1. धार्मिक पाठ्यक्रम
2. लौकिक पाठ्यक्रम

1. धार्मिक पाठ्यक्रम-''धार्मिक पाठ्यक्रम भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के लिए था। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य उन्हें निर्वाण प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करना तथा योग्य प्रचारक तैयार करना होता था। इसमें निम्न विषयों का समावेश था-

1. चार आर्य सत्यों का पूर्ण ज्ञान
2. बौद्ध धर्म साहित्य त्रिपिटक : सुत्ता, विनय, धम्म आदि।
3. मठों तथा विहारों के निर्माण का व्यवहारिक ज्ञान।
4. विहारों के दिये गये ज्ञान हेतु दान की संपत्ति का आय-व्यय रखना व प्रबन्धन।
5. तुलनात्मक ज्ञान के लिए वैदिक साहित्य का अध्ययन

''बौद्ध तथा वैदिक अध्ययन परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं। वोधिसत्व ने भी वेदों का ज्ञान प्राप्त किया था।''[1]

पाँच विधाएँ[2] : बौद्ध मठों तथा विहारों में पाँच प्रकार की विद्याओं का अध्ययन किया जाता था-

1. शब्द विद्या
2. शिल्प विद्या
3. चिकित्सा विद्या
4. हेतु विद्या
5. आध्यात्मिक विद्या

2. लौकिक पाठ्यक्रम-लौकिक पाठ्यक्रम सामान्य नागरिक के लिए था। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य साधारण स्त्री-पुरुष को अच्छा नागरिक बनाना तथा उन्हें सामाजिक व धार्मिक जीवन के उपयुक्त बनाना था। इस पाठ्यक्रम में निम्न विषय सम्मिलित थे-

1. **सामान्य विषय :** लेखन, गणित और शास्त्रार्थ।
2. **कला कौशल :** शिल्पकलाएँ यथा-कताई, बुनाई, छपाई, रंगाई, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला एवं संगीत।
3. **व्यवसायिक विषय :** कृषि, पशु पालन, चिकित्सा।
4. **शारीरिक शिक्षा :** व्यायाम, खेलकूद आदि।

शिक्षा के उद्देश्य के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को पूर्ण मानव बनाना था अतः उसी के आधार पर बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारण किया गया था।

शिक्षण विधि-बौद्ध ग्रन्थों में कई प्रकार के शिक्षण विधियों के संकेत मिलते हैं। जिनके आधार पर शिक्षण विधियों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

1. व्याख्यान विधि
2. वाद-विवाद विधि
3. पर्यटन विधि
4. सूत्र विधि
5. स्वाध्याय विधि-बौद्ध शिक्षा प्रणाली में स्वाध्याय विधि का मुख्य स्थान है। स्वाध्याय चार सोपानों में किया जा सकता है-
   1. **आवृत्ति :** इसके अंतर्गत सूत्रों को बार-बार दोहराया जाता है।
   2. **संचय :** इसके अंतर्गत तथ्यों का स्मरण करना, उनका संचय करना आता है।
   3. **मनन :** पढ़ी समग्री पर पुनः-पुनः मनन करना।
   4. **धारण :** आत्मसात की गयी सामग्री को दृढ़ता से धारण करना।

बौद्ध शिक्षा में शिक्षक –बौद्ध शिक्षा में वही व्यक्ति शिक्षक हो सकता था जिसने चार आर्य सत्यों को जान लिया हो और जो अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करता हो। शिक्षा देने का अधिकार केवल भिक्षुओं को था और वह भी उन भिक्षुओं को जो कम से कम दस वर्ष भिक्षुक रह चुके हों और जो शुद्ध आचरण, पवित्र विचार, विनम्रता तथा मानसिक क्षमता से परिपूर्ण हों। बौद्धकाल में गुरु शिष्य सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसा होता था। बौद्ध दर्शन में शिक्षक में कुछ मुख्य गुणों की अपेक्षा की जाती थी। यथा-वह नैतिक क्रियाओं में प्रवीण हो, आत्म चिन्तक व ज्ञानी हो, उसमें दूसरे के पूर्णता तक सहायता करने की क्षमता होनी चाहिए, उसे सरल, पाप से डरने वाला, कुशाग्र बुद्धि, तीव्र स्मृतिवाला, शिक्षित व मेधावी होना चाहिए।

बौद्ध शिक्षा में शिक्षार्थी-''बौद्ध दर्शन के अनुसार छात्र का वर्तमान उसके पूर्व जन्म के कर्म तथा उसके जन्म से लेकर अब तक के संस्कारों का परिणाम होता है और उसका भविष्य उसके पूर्वजन्म के कर्म तथा जन्म से अब तक के कर्म के साथ-साथ वर्तमान में किये जाने वाले कर्मों पर निर्भर होता है। अतः सब बच्चे मठ तथा विहारों में शिक्षा पाने के अधिकारी हैं। परन्तु माता-पिता के आज्ञा के बिना उन्हें प्रवेश नहीं दिया जाता था। इसके अतिरिक्त संक्रामक रोग से पीड़ित, घोर नैतिक अपराधी, अविनम्र, दुराचारी, पलायनकर्ता आदि को भी प्रवेश नहीं दिया जाता था। राज्य कर्मचारियों, सैनिकों तथा दासों को भी प्रवेश नहीं दिया जाता था।

''8 वर्ष की आयु पर पवज्जा संस्कार होता था। उसमें बालक सिर मुडाकर पवित्रता धारण करता था और शरणत्रयी-

बुद्धं शरणं गच्छामी।
धम्मं शरणं गच्छामी।
संघं शरणं गच्छामी।[1]

से उनका संघ में प्रवेश होता था। इस अवसर पर छात्र को दस आदेश दिये जाते थे। वे दस आदेश **'दस सिख्खा पदानि'** कहलाते हैं। प्रत्येक छात्र को इनका पालन करना होता था। ये दस आदेश इस प्रकार हैं-

1. जीव हिंसा न करना।
2. किसी की वस्तु न लेना।
3. अशुद्ध आचरण से दूर रहना।

4. असत्य भाषण न करना।
5. मादक पदार्थों का सेवन न करना।
6. कुसमय भोजन न करना।
7. किसी की निन्दा न करना।
8. नृत्य गायन से दूर रहना।
9. सुगंधित व श्रृंगारिक वस्तुओं का उपयोग न करना।
10. सोना-चाँदी बहुमूल्य वस्तुओं का दान न लेना।

अनुशासन—बौद्धकालीन शिक्षा में अनुशासन पर अधिक बल दिया जाता था। मठ या विहार में प्रवेश के उपरान्त भिक्षु को प्रदत्त दस आदेशों का पालन करना होता था। उसे मठ के नियमों को कठोरता से पालन करना होता था। अनुशासन भंग करने का दोषी सिद्ध हो जाने पर उसे मठ या विहार से निष्कासित कर दिया जाता था। इस काल में गुरु और शिष्य दोनों ही सुसंगठित, मर्यादित एवं आदर्श जीवन व्यतीत करते थे। जिससे अनुशासन की समस्या उत्पन्न नहीं होती थी। अतः बौद्ध दर्शन नैतिक अनुशासन का दर्शन है। नैतिक अनुशासन वास्तव में बहुत ही प्रभावकारी अनुशासन हैं।

निष्कर्ष-बौद्ध शिक्षा का मुख्य उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना था। निर्वाण का अर्थ होता है 'मुक्ति' अर्थात् काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, आदि से परे रहना, इससे लिप्त न होना। आज की स्थिति बिल्कुल विपरीत है। आज शिक्षा प्राप्त कर मनुष्य भोग, विलास, सुख समृद्धि के जाल में फंस जाता है और शिक्षा का यही उद्देश्य माना जाता है। जिसके कारण समाज में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। यदि आज बौद्धकालीन शिक्षा के उद्देश्य निर्वाण (मोक्ष) प्राप्ति को व्यक्ति के जीवन के केन्द्र में रखा जाये तो समाज में स्थिरता एवं शान्ति स्थापित किया जा सकता है। बौद्धकालीन शिक्षा का उद्देश्य-निर्वाण वेदान्ती मोक्ष से भिन्न था। जहाँ एक ओर वेदान्ती मोक्ष आत्मा एवं प्रभु का साक्षात्कार है वहीं बौद्ध का निर्वाण या मोक्ष लालच, तृष्णा, धन संचय से परे रहना है।

सन्दर्भ-सूची

1. लाल; रमन बिहारी, शिक्षा सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मरेठ, पृ. 95
2. सक्सेना; नवरत्न स्वरूप (2007) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 338
3. वही; पृ. 339
4. लाल; रमन बिहारी (2009-10) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, पृ. 143

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. पचौरी; गिरीश (1997) : शिक्षा के दार्शनिक आधार. मेरठः आर0लाल बुक डिपो।
2. लाल; रमन बिहारी (2010) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मरेठ।
3. मिश्र; एच.एन. (1995) : धर्मदर्शन परिचय, इलाहाबाद, शेखर प्रकाशन।
4. सक्सेना; नवरत्न स्वरूप (2007) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।
5. सांस्कृत्यायन; राहुल, बुद्धचर्या (द्वितीय संस्करण) सत्यबोधि सभा, वाराणसी, सारनाथ।
6. त्रिपाठी; रामशंकर (1999) : पालि पाठावली, भवदीय प्रकाशन, आयोध्या, फैजाबाद।

*****

Political Science
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 140-142
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

न्याय की कसौटी पर आरक्षण

*डॉ. ब्रजेन्द्र सिंह**

यदि राजनीतिक सिद्धान्त का यह विशुद्ध मूल्यपरक परिप्रेक्ष्य में किया जाय तो यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि जो तत्व वास्तव में कानून, अधिकारों, स्वतन्त्रता और समानता के विषयों को जोड़ता है, वह तत्व है न्याय। न्याय राजनीतिक मूल्यों का संश्लेषक और सामंजस्यकर्ता है। यह एकीकृत और समायोजित रूप में उसका समुच्चय है।[1] न्याय एक निरन्तर एवं परिवर्तनशील अवधारणा है। न्याय शब्द के विभिन्न निहितार्थों को लेकर इसके कई सिद्धान्त बन गये हैं। दार्शनिक, व्यावहारिक, प्राकृतिक तथा वितरणात्मक आदि।

रॉल्स का आग्रह है कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता के प्रश्न पर ''वस्तुओं के क्षीण सिद्धान्त'' (थिन थियरी ऑफ गुड) के प्रकाश में विचार किया जाना चाहिए। चूँकि मूलभूत वस्तुएँ मात्रा में सीमित हैं अतएव प्रत्येक को इतना तो शायद ही मिल सके कि इस सन्दर्भ में सभी को समान दिया जाय, लेकिन वितरण का सिद्धान्त इस मानक पर आधारित होना चाहिए कि योग्य व्यक्ति को अयोग्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक प्राप्त हो।[2] लेकिन यह उदारवादी अवधारणा व्यक्तिवादी अवधारणा के नजदीक लाकर खड़ा कर देता है। अतएव इसके लिए समाजवादी अवधारणा सर्वाधिक उपयुक्त है, जो व्यक्ति और समाज में सामंजस्य स्थापित करता है।

इस प्रकार भारतीय संविधान निर्माताओं ने न्याय के इसी समाजवादी समता मूल न्याय की अवधारणा को अपनाने का प्रयास किया है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में संविधान का मूल उद्देश्य सामाजिक समानता और न्याय बताते हुए इसे राष्ट्र को समपर्ति किया है।

संविधान निर्माताओं ने अनु0 46 एवं अनु0 14 को दृष्टिगत रखते हुए समाज के कमजोर वर्गों अर्थात् पिछड़े वर्गों के लिए अनु0 340 के अन्तर्गत आयोग बैठाकर उसकी अनुशंसा के अनुसार उनके कल्याण के लिए कार्यवाही करने की व्यवस्था दी है। अनु0 341 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों, अनु0 342 अनुसूचित जनजातियों तथा अनु0 335 के अन्तर्गत सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था की है।

सामाजिक समानता का अधिकार सभी नागरिकों को अनु0 14 के अन्तर्गत देते हुए सामाजिक न्याय यानी कमजोर वर्गों को समाज के उन्नत वर्ग की श्रेणी में लाने एवं उनके शैक्षणिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अनु0 15(4) की व्यवस्था की गई है। अनु0 39 स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना की आवश्यकता पर बल देते समय संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क में क्या था?

पं. नेहरू के शब्दों में–''.....भारत की सेवा का अभिप्राय है, उन करोड़ों लोगों की सेवा, जो पीड़ित हैं। इसका अर्थ है गरीबी, अज्ञानता, बीमारी और अवसरों की समानता का उन्मूलन। हमारे पीढ़ी के हर व्यक्ति की अकांक्षा रही है, हर नेत्र से हर आँसू को पोंछ दना। यह हमारी क्षमता पर हो सकता है, परन्तु जब तक आँसू और पीड़ा है, हमारे कार्य की इतिश्री नहीं होगी।''[3]

पं. नेहरू का यह वक्तव्य भारतीय जनमानस के कमजोर तबकों के प्रति संविधान निर्माताओं की संवेदनशीलता का परिचायक है। यह उल्लेखनीय है कि मूल रूप में अनु0 16(4) के अन्तर्गत पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए राज्य सरकार के अधीन पदों के आरक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। संविधान के अनु0 355 के अनुसार केन्द्र तथा राज्य सरकारों के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों और जनजातियों को समुचित प्रतिनिधित्व दिये जाने का प्रावधान किया गया है। इन जातियों को शासकीय सेवाओं में प्रतिनिधित्व देने के लिए जो रियायतें दी गई हैं, वे इस प्रकार हैं–आयु सीमा में छूट, योग्यता स्तर में छूट, कार्यकुशलता का निम्नतर स्तर पूरा करने पर भी उनका चयन तथा पदोन्नति में भी आरक्षण।

* *एसोसिएट प्रोफेसर व अध्यक्ष (राजनीतिविज्ञान विभाग), सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

अखिल भारतीय सेवाओं में भी प्रतियोगिता के लिए 15 प्रतिशत तथा जनजातियों को 7.5 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था है। इस प्रकार अनुसूचित जातियों और जनजातियों के आरक्षण की व्यवस्था तो मूल संविधान के साथ ही कर दी गई थी, परन्तु अन्य पिछड़ी जातियों की सुनवाई सबसे पहले 1955 में काका कालेलकर की अध्यक्षता में पहले पिछड़े आयोग का गठन हुआ। आयोग द्वारा पिछड़ी जातियों के लिए प्रथम श्रेणी की नौकिरयों में 25 प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी में 33 प्रतिशत तथा तृतीय श्रेणी में 40 प्रतिशत की सिफारिश की, लेकिन दिलचस्प बात यह थी कि सात में से तीन सदस्यों ने यह नहीं माना कि जातीयता पिछड़ापन का कारण है। ऐसी स्थिति में परिणाम यह हुआ कि नीति ढुलमुल ही रही। कुछ राज्यों ने अपने तरीके से आरक्षण को लागू किया, जैसे–कर्नाटक 48 प्रतिशत, केरल 30 प्रतिशत, तमिलनाडु 50 प्रतिशत के कोटा निर्धारित किये। दूसरी तरफ कुछ ऐसे राज्य थे, जहाँ इसकी कोई व्यवस्था नहीं हुई। पंजाब में यह व्यवस्था 5 प्रतिशत तथा राजस्थान, उड़ीसा तथा दिल्ली जैसे राज्यों में बिल्कुल ही नहीं।

इन्हीं विसंगतियों को दूर करने के उद्देश्य से 20 सितम्बर, 1978 को मोरारजी देसाई की जनता सरकार ने बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री वी0 पी0 मण्डल की अध्यक्षता में दूसरे पिछड़े आयोग का गठन किया। 6 सदस्यीय मण्डल आयोग ने 31 दिसम्बर, 1980 को अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को दी।

मण्डल कमीशन की मुख्य सिफारिश थी कि पिछड़ी जातियों को सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण हो। अपनी इस सिफारिश के समर्थन में आयोग ने दलील दी कि यदि 22.5 प्रतिशत जनसंख्या वाले हरिजनों एवं जनजातियों के लिए उतनी ही आरक्षण व्यवस्था हो सकती है तो 52 प्रतिशत पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत क्यों नहीं की जा सकती?

आयोग ने 27 प्रतिशत आरक्षण की माँग करते हुए संविधान की धारा 15(4) व 16(4) व उच्चतम न्यायालय के उन तमाम फैसलों का भी अनुपालन किया है, जिसके अनुसार देश में कुल आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं किया जा सकता। आयोग का मानना था कि आरक्षण से हजारों वर्षों से दलित एवं शोषित जनता को मनोवैज्ञानिक सम्बल मिलेगा।

रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण की इस सिफारिश से कई लोगों के दिल की धड़कन बढ़ जायेगी, लेकिन क्या इसी एक तथ्य से एक बड़े सामाजिक हित के कार्य को रोक दिया जाय?

राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने अपने चुनाव घोषणापत्र में मण्डल आयोग की रिपोर्ट के क्रियान्वयन का तर्क देते हुए अगस्त, 1990 में लागू करने की घोषणा की थी। समूचे देश में मण्डल आयोग के रिपोर्ट के क्रियान्वयन का प्रचण्ड विरोध हुआ, लगभग 237 छात्रों ने असन्तोष व्यक्त करने के लिए आत्मदाह जैसा जघन्य कार्य किया।

पी0 वी0 नरसिंहराव की सरकार ने पिछड़े वर्गों के आरक्षण सम्बन्धी कांग्रेस आई के दृष्टिकोण के अनुरूप 25.9.1991 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा 13.8.1990 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा 13.8.1990 के ज्ञापन को निम्नलिखित ज्ञापन व्यवस्था हेतु संशोधित किया–

(क) भारत सरकार के अधीन सिविल पदों तथा सेवकों में सामाजिक शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत रिक्तियों में वरीयता उन उम्मीदवारों को दी जायेगी, जो सामाजिक, शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों में अपेक्षाकृत गरीब वर्गों से सम्बन्धित है। यदि ऐसे उम्मीदवार पर्याप्त संख्या में नहीं हैं तो पिछड़े वर्ग के अन्य उम्मीदवारों से भर दी जायेगी।

(ख) भारत सरकार के अधीन सिविल पदों तथा सेवाओं में 10 प्रतिशत रिक्तियाँ आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के अन्य लोगों के लिए निर्धारित होगी, जो आरक्षण की किसी भी वर्तमान योजना के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

13 अगस्त, 1990 के आदेश को विभिन्न उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालयों में अनेक रिट याचिकाओं के माध्यम से चुनौती दी गई।

15 अगस्त, 1992 को सर्वोच्च न्यायालय ने मण्डल रिपोर्ट के अनुसार प्रस्तावित आरक्षण के सम्बन्ध में ऐतिहासिक फैसला दिया। न्यायालय ने अपने फैसले में सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षम को उचित ठहराया है, किन्तु इसके लिये यह शर्त रखी गयी है कि इन वर्गों के समृद्ध वर्गों को आरक्षण का लाभ न दिया जाय। न्यायालय ने आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को 10 प्रतिशत आरक्षण देने के नरसिंह राव के 25 सितम्बर, 1991 के आदेश को असंवैधानिक घोषित करते हुए रद्द कर दिया। न्यायालय के अनुसार असाधारण स्थितियों को छोड़कर किसी भी स्थिति में सरकारी नौकरियों में आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। न्यायालय ने यह भी कहा कि पदोन्नति के मामले में आरक्षण का लाभ नहीं दिया जाय।

इस प्रकार से सरकार एवं न्यायपालिका ने आरक्षण के औचित्य को सही ठहराया, लेकिन आज के राजनीतिक परिवेश में यह भ्रम स्वाभाविक है कि आरक्षण सदा चलता रहेगा। अभी बिहार के विधानसभा चुनाव के समय बिहार राज्य में चल रहे विधानसभा चुनाव में भूचाल आ गया और सामाजिक न्याय की आड़ में न्याय कम, राजनीति की चर्चा अधिक हो गई। अतः जिनको आरक्षण का लाभ मिला, अब वे त्यागने के लिए किसी भी सूरत में तैयार नहीं हैं और किसी भी राजनीतिक दल में ऐसा साहस नहीं है कि आरक्षण के विरुद्ध बोल सकें।

लेकिन अब आरक्षण की व्यवस्था में अपेक्षित सुधार अनिवार्य प्रतीत होता है, वह यह है कि–मेडिकल, इंजीनियरिंग, पॉलिटेक्निक आदि में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के लिए किये गये वर्गगत आरक्षण के अतिरिक्त अन्य सभी आरक्षण समाप्त कर उन्हें प्राथमिकता का क्षेत्र घोषित कर दिया जाय। संवैधानिक रूप से केवल शारीरिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए अनु0 15(4) एवं अनु0 16(4) के अन्तर्गत शैक्षणिक संस्थान एवं सेवाओं में आरक्षण किया जा सकता है। शेष सभी श्रेणियों को प्राथमिकता ही दी जा सकती है, आरक्षण नहीं। सभी वर्गों का दायित्व है कि वे अपने-अपने वर्ग की सीटों में स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, सेवानिवृत्त तथा सेवारत सैनिकों के बच्चे, महिलाओं, विकलांगों, शिल्पकारों, कृषकों, तकनीकी व्यक्तियों आदि को निर्धारित प्रतिशत तक प्राथमिकता दें।

द्वितीय जनसंख्या वृद्धि से आरक्षण में वृद्धि न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि इसमें परिवार नियोजन के राष्ट्रीय नीति के विरुद्ध जनसंख्या बढ़ाने को बढ़ावा मिलेगा।

तृतीय क्षेत्रवाद जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण घटाने-बढ़ाने से भी भारी असन्तोष फैलता है, जैसा कि हाल ही में राजस्थान, पंजाब, हरियाणा में देखा गया है। अतएव इसके अनुसार किया गया आरक्षण रद्द कर पूरे देश में समान प्रतिशत में सभी संस्थानों में आरक्षण किया गया।

चतुर्थ सरकार द्वारा ऐसी समिति गठित की जानी चाहिए, जो आरक्षण सम्बन्ध सभी आयोगों की सिफारिशों पर आरक्षण विरोधी समर्थकों की भावनाओं की समीक्षा करें।

पंचम अन्य राज्यों में आन्दोलन न पनप सके, इसके लिए आवश्यक है कि अन्य राज्य आरक्षण की सीमा न बढ़ायें तथा केन्द्रीय सरकार भी आरक्षण की अवधि न बढ़ाने की घोषणा करे।

षष्ठ, पिछड़े एवं हरिजन वर्गों को पढ़ाई और आर्थिक सहायता में सुविधाएँ और अधिक कर दी जाएँ, लेकिन प्रतियोगिताएँ खुली रखी जाएँ, जिससे कोई वर्ग अपने को उपेक्षित न समझे।

सप्तम्, यदि आरक्षण में आर्थिक आधार मुद्दा बना दिया जाय तो समस्त आन्दोलन स्वतः समाप्त हो जायेगा। यह सुझाव कालेलकर आयोग के रिपोर्ट में भी था। पिछड़ापन जातिगत नहीं, आर्थिक आधार पर हो।

यह सच है कि आरक्षण की व्यवस्था सामाजिक विकलांगता का परिणाम है, क्योंकि अघोषित आरक्षण के चलते सामाजिक न्याय की स्थापना सम्भव नहीं हो पा रही थी, लेकिन आरक्षण सर्वदा जारी नहीं रखा जा सकता, किन्तु इसे एकाएक समाप्त नहीं किया जा सकता है, लेकिन धीरे-धीरे करके 25 वर्षों में बिना कठिनाई के समाप्त कर देना चाहिए। समाज एवं शासन से अपेक्षा की जाती है कि सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े तबकों को वह इस अवधियों में सामान्य स्तर पर ला सकने में सफल होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वार्कर; अर्नेस्ट (1967) : प्रिन्सिपल ऑफ सोशल एण्ड पालिटिकल थियरी, लन्दन, पृ. 102
2. रॉल्स; जॉन 1971) : ए थियरी ऑफ जस्टिस हावर्ड, पृ. 301
3. आस्टिन; ग्रेनाबल (1966) : इण्डियन कॉन्स्टीट्युशन–कार्नर स्टोन ऑफ ए नेशन, पृ. 51

*****

Political Science
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 143-145
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

महिला सशक्तिकरण : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

डॉ. ममता पाण्डेय*

नारी का जन्म नहीं होता, बल्कि उसे ऐसा बना दिया जाता है। कोई प्राणिशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक भाग्य उस प्रतीक का निर्धारण नहीं करती जिसका नारी अपने समाज में प्रतिनिधित्व करती है। यह तो समग्र सभ्यता है जो इस जीव को पैदा करती है और उसी को नारी कहते है। **–सिमोन दि बोअुआ**

भारतीय समाज में वैदिक काल में नारी का स्थान बहुत सम्मानजनक था और हमारा अखण्ड भारत विदुषी नारियों के लिए जाना जाता था लेकिन वर्तमान स्थिति में वो स्थिति नहीं रही। नारी के सम्मान में महात्मागाँधी ने भी कहा है कि ''स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं - सहधर्मिणी अर्धांगिनी और मित्र है। जिस समाज में नारी का स्थान सम्मानजनक होता है, वह उतना ही प्रगतिशील और विकसित होता है। परिवार और समाज के निर्माण में नारी का स्थान सदैव महत्वपूर्ण होता है तब राष्ट्र भी मजबूत होता है। माता के रूप में नारी प्रथम गुरु होती है। जार्ज हर्बट के अनुसार- ''एक अच्छी माता सौ शिक्षकों के बराबर होती है, इसलिए उसका हर हालत में सम्मान होना चाहिए।'' सभी महिलावादी विचारकों ने समझा कि ''पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अलाभावित्न रही हैं और यह हानि जीव वैज्ञानिक अन्तरों का प्राकृति व अपरिहार्य परिणाम नहीं बल्कि उसका परिणाम है जिसे चुनौती दी जा सकती है, दी जानी चाहिए ताकि परिवर्तन किया जा सके।''[1]

आजादी के बाद सोचा गया था कि भारतीय नारी एक नई हवा में सांस लेगी तथा शोषण और उत्पीड़न से मुक्त होगी, किन्तु ऐसा नही हुआ। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में- ''यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।'' सूत्र वाक्य द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। वर्तमान में भी 1980 की संयुक्त राष्ट्र की रिर्पोट महिलाएँ विश्व की आधी जनसंख्या बनाती हैं, कार्य घण्टों के लगभग दो-तिहाई अंश की हकदार है, विश्व की आय का दशांश प्राप्त करती हैं तथा विश्व की सम्पदा के शताशसे भी कम की स्वामिनी हैं। समाज में महिलाओं को सुरक्षित व सम्मानित स्थान प्राप्त हो ताकि वे सार्वजनिक क्षेत्र में अपनी सकारात्मक भूमिका निभा सके। अरस्तू, मैकियावेली, रूसो, प्रोधा, बेन्थम व गाडविन जैसे विचारकों की यह मान्यता तोड़ दी जाए कि सार्वजनिक क्षेत्र पुरुषों का है, तो महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर गृहस्थी तक सीमित हैं। ''यही कारण है कि महिलाओं को समाज में दूसरे स्तर पर रखा गया है, प्रायः उन्हें घरों के भीतर सीमित कर दिया जाता है जिससे वे शक्तिशाली सार्वजनिक स्थितियों तक नहीं पहुँच पाती।''[2] लैंगिक विषमता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यही कारण है कि महिलाओं के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना जाने वाला ''महिला आरक्षण विधेयक'' लागू नहीं हो पाया है। इसके तहत लोकसभा एवं राज्य विधान सभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने के लिए चक्रानुक्रम पद्धति का प्रावधान किया गया है। जब तक राजनीति में नारी की भागीदारी नहीं बढ़ेगी तब तक सी अर्थों में उसका सशक्तिकरण नही हो सकेगा।

ऐसा नहीं है कि भारत में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए प्रयास नहीं हुए। हमारे देश में नारी शक्ति को बल देकर महिलाओं के उन्नयन के प्रयास जारी हैं। वर्तमान स्थिति में हमारे संविधान के अनु. 14, 15, 15(3), 16(2), 23, 39(क), 39(घ), 39(50) एवं 42 के महिला अधिकारों को विभिन्न स्तरों पर संरक्षण प्रदान किया गया है, इसके अतिरिक्त 73वाँ और 74वें संशोधनों द्वारा स्थानीय निकायों में उनके लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया। अन्य पहले के तहद अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम, 1959 प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1962, समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976, सती निषेध अधिनियम 1987, तहेत निरोधक कानून 1961, घरेलु हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम, 2005, यौन उत्पीड़न कानून, 2012, अपराधिक कानून (संशोधन) आधिनियम, 2013, का प्रावधान किया गया है इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा नारी शक्ति

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, राजनीतिविज्ञान विभाग, डॉ. सविता अग्रवाल महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद*

को बल देने हेतु कार्ड योजनाओं जैसे अबला, जननी सुरक्षा योजना, सुकन्या समृद्धि योजना, लाडली, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ तेजस्वनी योजनाओं का सफल संचालन कर रही है।

यह सही है कि सरकार द्वारा अपने स्तर पर नारी सशक्तिकरण के सन्दर्भ में अनेक प्रयास किये गये हैं किन्तु सरकार के यह पहले तब तक सफल नही हो सकते जब तक धरातल पर पुरुष मानसिकता में या पुरुष प्रधान समाज देश में बदलाव नही आ जाता। आज भी घटता लिंगानुपात, बालिका भ्रूण हत्या, दहेज उत्पीड़न, बंधुआ मजदूरी, बाल तस्करी, जैसी कुरीतियाँ हमारे देश के सामने एक विकट समस्या बनी हुई है। महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन चलाए तथा कलांतर में उन्हें सफलता मिली। उदाहरण के लिए, उन्हें मताधिकार मिला जिससे उन्होंने अपने देश की व्यवस्थापिका में प्रवेश करके अपने अन्य लक्ष्यों को सही करने का प्रयास किया। धीरे-धीरे ऐसे कानून बन जिन्होंने लैंगिक आधार पर असमानता का निराकरण किया तथा लोक सेवाओं में भी महिलाओं को प्रवेश मिल सका।

1972 में एक अन्य फ्रेंच महिला मेरी बोल स्टोन क्राफ्ट ने अपनी रचना (A vindication of the Rights of Women) प्रस्तुत की उसने आग्रह किया की महिलाएं भी पुरुषों की तरह विवेकशील, शिक्षित व ज्ञानी हो सकती हैं, अतः उन्हें अपने विवेकानुसार अपनी जीवन शैली निर्धारत करने का अधिकार होना चाहिए। महिलाओं व पुरुषों को समान कार्य करने चाहिए तभी उन्हें अधिकारों, विशेषकर राजनीतिक अधिकारों की समानता प्राप्त हो सकती है। उसकी यह पुस्तक इतनी प्रसिद्ध हुई कि 'महिलावादी पाठ की मूल रचना' कहा गया। एक फ्रेंच लेखिका ने टिप्पणी की है कि-''आने वाले समय में लैंगिक आधार पर युद्ध के लिए यह पहला शंखनाद था। यह उस समस्या का पहला स्पष्ट वक्तव्य था जो यूनानी-रोमन प्राचीनता के अतीत के दिनों से पश्चिमी चेतना शक्ति पहले कभी नहीं आया।''[3]

उन्नीसंवी शताब्दी के मध्य यह आन्दोलन संयुक्त राज्य अमेरिका में महिलाओं ने 1848 में सेनेका फाल्स सम्मेलन में एक घोषणा अपनाई जिसमें यह कामना की गई कि थॉमस जैफर्सन द्वारा रचित 1776 की अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा में उल्लिखित स्वतन्त्रता व समानता का वरदान महिलाओं को भी प्राप्त होना चाहिए। महिलाओं को मताधिकार के अलावा महिलाओं को आर्थिक व शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराए जाएँ, अनुचित तलाक कानूनों को हटाया जाए तथा मौजूदा दोहरे मानदण्डों को हटाया जाए, इस घोषणा के प्रथम वाक्य में कहा गया कि- ''मानव जाति का इतिहास पुरुष के हांथों स्त्री पर बार-बार चोंटों व उसके अपहरणों से भरा पड़ा है जिनका एक मात्र प्रत्यक्ष ध्येय उसके ऊपर अपने अत्याचारी प्रभुत्व को बनाए रखना है।''

महिला सशक्तिकरण को बढ़ाने के लिए बहुत सी महिलाएं अपना योगदान महिला आन्दोलन के रूप में विकसित किया-

उदारवादी महिलावाद- फ्रांस में मेकी बोलस्टोनकाफ्ट, अमेरिका की केडी स्टैंटन तथा ब्रिटेन की हैरियत टेलर सभी ने महिला मताधिकार पर सारा बल दिया। एक अन्य महिलावादी विचारक जेनेट रैड क्लिफ रिचर्डस तथा बीटी फ्रायडन ने आग्रह किया कि महिलाओं को स्वतंन्त्रता व समानता के वरदान मिलने के बावजूद अपने परम्परागत मूल्यों व आचारों को नहीं छोड़ना चाहिए।[4]

उग्रमहिलावाद- उग्र महिलावादी महिलाओं ने यह मांग उठाई की जहाँ पुरुष प्रभुत्व है उसे मिटा देना चाहिए चाहे व परिवार हो या समाज या राजव्यवस्था **काटे मिलेट** अपनी रचना (Sexual Politics) में कहती हैं कि महिला के निजी व सार्वजनिक जीवन में कोई अन्तर नही किया जाना चाहिए महिलाओं ने अश्लील प्रदर्शनों की निन्दा करती हैं।

वास्तव में महिलावादी इस मान्यता को तोड़ना चाहती हैं कि बाहरी क्षेत्र पुरुषों के लिए है और घरेलू क्षेत्र महिलाओं के लिए है। महिला सशक्तिकरण को समझाते हुए एम.माइस तथा बन्दना शिवा ने पर्यावरण व महिलाओं का समागम स्थापित करके इस आन्दोलन को एक नया रूप दिया है। उनका आग्रह है कि माता बच्चों को जन्म देती है, प्रकृति माता उनका पालन-पोषण करती है। अतः दोनों का शोषण नही होना चाहिए उनका नारा है कि प्रकृति की ओर लौटो।' पर्यावरणीय व्यवस्था व जैव विविधता दोनों सुरक्षित रहनी चाहिए।

महात्माँ गाँधी का कहना है कि 'प्रकृति माता सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है वह किसी कि लालसा को तृप्त नही कर सकती। इस आन्दोलन के समर्थक यह खेद व्यक्त करते हैं कि पुरुष प्रकृति व नारी के मान को नहीं समझते बल्कि दोनों का शोषण करते हैं।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति एक सी कभी नहीं रही। कभी उसे देवी बनाकर उसकी पूजा की गई तो कभी डायन कहकर उसे पत्थरों से मारा गया। वैदिक काल से लेकर आज तक जैसे इन व्यवस्थाओं में परिवर्तन होता रहा स्त्रियों की स्थिति भी इसी के अनुसार बदलती रही है एम. एन. श्रीनिवास ने उचित लिखा है कि इसके अनेक स्वरूप हैं और सामान्यीकरण करना प्रायः असम्भव हैं क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में नगरों और ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न वर्गों में विभिन्न धर्मों और जाति समूहों में नारी

की सामाजिक प्रस्थिति और उससे जनित समस्याएँ बहुत भिन्नताएं रखती हैं। इतना ही नहीं, वरन् आदर्श और व्यवहार में भी बहुत अन्तर है। एक और यदि नारी को ''गृहस्वामिनी'', अर्द्धांगिनी या देवी कहा जाता है तो दूसरी ओर सदैव ही निर्भरता की स्थिति बताई जाती है। लिंग-भेदभाव सामाजिक फन्दे का अत्याचार भारतीय समाज में इसका रूप अत्यन्त कठोर है। नारी का जन्म ही अपने में अभिशाप है।[5] के. एम. पाणिक्कर ने स्पष्ट लिखा है कि - ''हिन्दू सामाजिक जीवन की सबसे प्रमुख समस्याओं में से एक हिन्दू संयुक्त परिवार में नारी को प्रदान की जाने वाली प्रस्थिति है। आधार मूल रूप से हिन्दू सामाजिक व्यवस्था यह मानकर चलती है कि पुत्री परिवार का भाग नहीं है वह तो एक आभूषण है जो गिरवी रखा है जब उसका कानूनी मालिक आयेगा उसकी मांग करेगा, तो उसे दे दिया जाएगा[6] 'यास्क के निरुक्त' में स्पष्ट घोषणा है कि लड़की तो अन्य को दी जाती है। देने के तीन तरीके हैं- दान, विक्रय तथा उत्सर्ग। दान विवाह के समय कन्यादान के रूप में की जाती है, विक्रय वधू-मूल्य लेकर कन्या बेचना है जबकि उत्सर्ग का आशय उसे त्याग देना है जैसे मन्दिर में देवदासी के रूप में देवी या देवता के चरणों में समर्पित कर देना।[7]

ऐसे पूर्वाग्रहों के माध्यम में पले नारी-पुरुष स्वस्थ जीवन नहीं बिता पाते। भारतीय समाज ने इस लिंग-भेदभाव की बहुत बड़ी कीमत चुकाई है। समाज लगभग पचास प्रतिशत इन नारियों के योगदान से वंचित रहा है। कहते हैं चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी के साथ सोलह हजार नारियों ने अलाउद्दीन के साथ युद्ध में पराजय के समय जलती चिताओं में कूदकर 'जौहर' किया था। शिक्षा की समस्या एक बहुत बड़ी विडम्बना है उन्हें शिक्षा से दूर किया जाता है।

नई दिल्ली स्थिति 'भारतीय समाज विज्ञान अनुसन्धान परिषद्' (I C S S R) द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि 1971ई. में साक्षर महिलाएं 18.4 प्रतिशत थी, 1981ई. में यह प्रतिशत 25 थी, 1991ई. की जनगणना के अनुसार 39.42 प्रतिशत, 2001 में 53.67 प्रतिशत तथा 2011ई. में 65.46 प्रतिशत हो गया। वास्तव में यह प्रगति नगरीय क्षेत्रों में उच्च और मध्यम वर्ग के बीच अधिक हुई है।

यदि रूसो कहता है कि किसी व्यक्ति की इच्छा का कोई अन्य व्यक्ति प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, तो उसी आधार पर फिलिप्स का तर्क है कि महिलाएं ही महिलाओं के हितों को समझकर उनकी सुरक्षा कर सकती हैं।

वर्तमान समय में यह जन-जन तक यह सन्देश पहुँचाने की आवश्यकता है कि महिला सशक्तिकरण देश के विकास की अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है आज महिलाओं को पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि निर्णय लेने को स्वायत्तता प्रदान करने की आवश्यकता है।

नारी को सशक्त बनाए बगैर हम मानवता को सशक्त नहीं बना सकते। संवेदना, करुणा, वात्सल्य, ममत्व, प्यार, स्नेह, सहनशीलता विनम्रता आदि नारी के वे गुण हैं, जिनसे वह मानवता को निखार और संवार कर उसे सम्पूर्ण एवं सशक्त बना सकती इसके लिए यह आवश्यकता है कि हर क्षेत्र में महिलाओं की सम्मान जनक एवं पर्याप्त हिस्सेदारी हो, उन्हें साक्षर बनाया जाए, हर क्षेत्र में उनकी नेतृत्वकारी भूमिका को प्रोत्साहन देते हुए उन्हें सुरक्षा दी जाए उन पर हो रही हिंसा का अन्त हो तथा उन्हें शान्ति के प्रत्येक पहलू एवं सुरक्षा और विकास की अनेकानेक प्रक्रियाओं में सम्मिलित किया जाए। हर देश या राष्ट्र को चाहिए कि आर्थिक सशक्तिकरण एवं राष्ट्रीय विकास की योजनाओं में महिलाओं को केन्द्र में रखा जाए राष्ट्रों को सलाना बजट में ''जेंडर बजलिंग'' का प्रावधान करना चाहिए। जिसकी पहल भारतवर्ष में की जा चुकी हैं

इन सब के साथ-साथ यह भी रेखांकित किया जाना चाहिए कि सभी पहले, कार्यक्रम या योजनाएँ तभी अपना रंग दिखा पाएँगी जब नारी खुद के अधिकार के सन्दर्भ में जागरुक हो तभी ये स्वयं को शशक्त बना सकेगी।

संदर्भ-सूची

1. Vallerie Bryson : Feminism' in Roger Eatwet and Anthony Wright (ed.) Contemporary Politics Ideologies.
2. Jane Freedman : Feminism, p. 10.
3. Amaury de Reincourt : Woman and Power in Mitory, p. 293.
4. Robert Leach : Political Ideology in British, pp. 145-146
5. M.N. Srinivas : The Changing Position of Indian Women.
6. K.M. Panikkar : Hindu Society at Coross Roads.
7. Yaska's Nirukta : p. 208.

*****

Philosophy
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 146-150
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

भारतीय दर्शन का उद्‌भव और विकास : एक दार्शनिक अवलोकन

*डॉ. दलसिंगार सिंह**

भारतीय दर्शन का उद्‌भव और विकास कोई एक-दो शताब्दी या कई सहस्त्र शताब्दियों के साधना का परिणाम है–ऐसा नहीं है। यह तो अगणित वर्षों की साधना का परिणाम है। अनेक अज्ञात विचार-प्रणालियाँ भारत-भूमि पर इकट्ठी होकर भारत की विचार-दिशा को प्रभावित किया है जिनका वर्णन कर पाना बहुत ही कठिन प्रतीत होता है।

'दर्शन' की उत्पत्ति भारत-भूमि में किस प्रकार हुई। मूलरूप में किन प्रवृत्तियों को लेकर हुई। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप में कुछ बता पाना आज अत्यन्त ही कठिन है। आज तक इसका उत्तर भी प्राप्त नहीं हो पाया और न सम्भव ही लगता है। आदि पुरुष की तरह आदि विचार भी कब जन्म लिया, कब पहली बार इस जगत् में प्रकट हुआ, इसे किसी ने नहीं देखा। सम्भवतः मानव भी तो इस जगत् में विचार के बाद ही आया।[1] संकल्प का परिणाम ही तो जीव-सृष्टि है। सम्पूर्ण सृष्टि एक संकल्प का ही तो परिणाम है, 'विज्ञप्ति मात्र' की सिद्धि है। सभी तो मनोमय है, बोधरूप हैं, बाह्य भौतिक पदार्थ भी तो अन्तःकरणस्थ वृत्तियों के प्रतिबिम्ब ही हैं, तो फिर मानव इस 'विचार' के आदि को क्या जाना सकेगा? सृष्टि के आदि में शब्द रूप ब्रह्म ही तो प्रथम अवस्थित था और शब्द, अर्थ या विचार के विवर्त को छोड़कर और क्या है? मनुष्य जो स्वयं विचार की एक प्रतिकृति है, उसके आदि को वह किस प्रकार जान सकेगा? ऐसा करते-करते अन्ततः अनावस्था दोष ही उत्पन्न होगा।[2] गहराई में उतरने की आवश्यकता नहीं है। केवल स्थूल रूप से, ऐतिहासिक रूप से भारतीय दर्शन के प्रारम्भ पर ही विचार केन्द्रित करना है जिससे कि विकास स्वरूप में उत्पन्न अनेक भारतीय दर्शन की विभिन्न प्रणालियों की संगति देखी जा सके। वास्तव में, भारत में सर्वप्रथम अध्यात्म चिन्तन में प्रर्वतन किस आदि युग में हुआ या दार्शनिक परम्परा का प्रवर्तन किन पुराण महर्षियों ने किया–यह बतला पाना सम्भव नहीं। मानवीय मस्तिष्क की संशयात्मिका या जिज्ञासात्मिका वृत्ति के रूप में दर्शन एक शाश्वतकालीन शास्त्र है और इसलिए आरम्भ की अपेक्षा से रहित है।[3] परन्तु विचार की एक विशेष पद्धति के रूप में, ज्ञान की एक विशेष शाखा के रूप में भारतीय दर्शन का आरम्भ अवश्य देखा जा सकता है। अत्यन्त सरल और प्रारम्भिक मानव-समाज में भी नाना प्रकार की समस्याएँ, जैसे–भूख, इच्छा, जरा, मृत्यु, वियोग के थपेड़े आदि रहे होंगे, किन्तु एक अज्ञात पूर्वकाल में ही आविर्भूत वैदिक प्रज्ञान को सर्वोच्च ज्ञान मानने का भारतीय परम्परा के पास कारण ही क्या है। भौतिक विज्ञान के विषय में तो कुछ सम्भव है लेकिन आध्यात्मिक चिन्तन में और विशेष रूप से भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन की परम्परा के सन्दर्भ में कुछ कह सकना कठिन नहीं होगा। आध्यात्मिक चिन्तन की काल-रेखा खींच पाना या उस परम्परा के उद्‌भव व विकास को समझ पाना दुष्कर व असम्भव सा प्रतीत होता है। जैसा कि न्याय भाष्यकार और वाचस्पति की दृष्टि से दार्शनिक गवेषणा तो 'संशय' या 'जिज्ञासा' को लेकर चलती है तो फिर किसी प्रयोजन की सिद्धि में ही उसका समापन होता है।[4] भारत के एक लम्बे इतिहास में ऐसा कोई काल या युग नहीं जिसमें रहने वाले मानवों के मन-मस्तिष्क या चित्त में प्रकृति, परमात्मा और जीवन के सन्दर्भ में समस्याओं ने जन्म न लिया हो और उन सब पर उन्होंने विचार न किया हो।' जीवन का चरम लक्ष्य क्या है? दुःख का कारण क्या है? दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति का साधन या मार्ग क्या है? यह जगत क्या है? इस जगत की रचना कहाँ से होती है? इसका अधिष्ठान क्या है? मैं कौन हूँ? मैं क्या हूँ? इत्यादि नाना प्रकार के प्रश्न या समस्याएँ हैं जिन पर भारत के ऋषि मुनियों ने बहुत ही प्राचीन काल में ही चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया था। इस सम्बन्ध में बहुतायत उद्धरण ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं। स्वयं सबसे प्राचीनतम ऋग्वेद में ही ऋषियों ने सृष्टि के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा उत्पन्न की है। ऋषियों ने इतने गम्भीर प्रश्नों या समस्याओं पर अपना चिन्तन व्यक्त किया है जिस पर आज भी दार्शनिक विकास के बाद भी हमारे लिए नूतन बना हुआ है। उनका चिन्तन आश्चर्यचकित कर देने वाला है कि कितनी गहराई में जाकर उन्होंने जगत-सृष्टि, जीवन, मानव के मूल, चरम लक्ष्य और मानव

* *अध्यक्ष (दर्शनशास्त्र विभाग), तिलकधारी कालेज, जौनपुर (उ.प्र.)*

का चरम तत्व से सम्बन्ध पर अपना चिन्तन खुले चित्त से किया है। ऋग्वेद काल में ही ऋषियों को जीवन की समस्याएँ उद्वेलित करने लगी थीं। बाह्य रूप से तो वे दोनों की उपासना में, विशेष रूप से, लगे हुए दिखलाई पड़ते हैं किन्तु प्राचीन काल में ही वे 'विश्वे देवासः' की कल्पना कर चुके थे। वे यह देख चुके थे कि जो भूत और भविष्य है वह सब पुरुष ही है और वही अमृतत्व का स्वामी भी है।[5] यह चिन्तन-मनन केवल ऋग्वेद में ही नहीं, वरन् यजुर्वेद व अथर्ववेद में ही विद्यमान है। दार्शनिक जिज्ञासाएँ सर्वत्र विद्यमान हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में संहिताओं के मन्त्रों की यज्ञात्मक और आध्यात्मिक व्याख्याएँ मिलती हैं। उपनिषदों में तो मानव-जिज्ञासा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो जाता है। स्थूल प्रकृति के सृष्टि, पालन, संहारण के विचार क्षेत्र से आगे बढ़ जाते हैं और सूक्ष्म दार्शनिक चिन्तन करते दिखलाई पड़ते हैं। जैसे, क्या ब्रह्म कारण है? मैं कहाँ से उत्पन्न हूँ? सब कहाँ से उत्पन्न हैं? सब किसके द्वारा जीवित रहते हैं? शब किसमें स्थित हैं? काल की क्या स्थिति है? नियति, स्वभाव क्या है? सबका कारण क्या है? किसके जान लेने पर सब जान लिया जाता है? इत्यादि। अनेक महत्वपूर्ण और सूक्ष्म जिज्ञासाएँ उपनिषद् काल में हुईं और उनके उत्तर भी नाना विधि प्राप्त हुए। ये सभी उत्तर अत्यन्त ही प्रभावशाली थे। ये सब भारत में भगवान बुद्ध के उत्पन्न होने के पहले की है। उपनिषदों के बाद भी भारतीय दर्शन की परम्परा निरन्तर रूप से आगे भी चलती रही। जैन और बौद्ध दर्शन की इस क्षेत्र में अत्यधिक भूमिका का दर्शन हम कर पाते हैं। दार्शनिक विकास में इनकी महती भूमिका दिखलाई पड़ती है। महाभारत काल की क्रान्तिकारी विचार-पद्धति कुछ-कुछ उन्हीं सन्देहशील प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया को प्रकट करती है जो भगवान बुद्ध के आविर्भाव के समय भारत में विद्यमान थीं। प्रायः सभी षड्दर्शनों में बौद्ध दर्शन सम्बन्धी समीक्षा और खण्डन, विशेषतः क्षणिकवाद आदि को लेकर, प्राप्त होते हैं। षड्दर्शनों का आविर्भाव सम्भवतः बुद्ध के काल से कुछ पहले ही हुआ और उनमें निहित परम्पराएँ सम्भवतः प्राग्बुद्धकालीन हैं।[6]

भारतीय मानव जाति के मस्तिष्क में एक बात निरन्तर चक्कर काटती रही है, वह है परलोक का आदर्श जो दृश्यमान साधारण जगत के पीछे विद्यमान है और वह कहीं इससे भी अधिक यथार्थ एवं अधिक दुर्बोध है। वही आत्मा का वास्तविक निवास स्थान है। यह एक चिन्तन दुर्बोध पहेली है। इसी पहेली को सुलझाने का मनुष्य के सतत् पुरुषार्थ का तथा अपने को पशुओं के स्तर से ऊँचा उठाकर नैतिक एवं आध्यात्मिक ऊँचाई तक पहुँचने के लिए निरन्तर प्रयास का–एक विलक्षण उदाहरण भारत देश में ही देखने को मिलता है। एक ही यथार्थ या वास्तविक सत्ता है वह है ब्रह्म या आत्मा। इसी के सब नाना रूप हैं। इसी को जानना ही शाश्वत जीवन है। मानव की अन्तस्थ आत्मा एक ही है। जैने और बौद्ध मत की नैतिक दर्शन पद्धतियाँ हैं। इनका आधारभूत सिद्धान्त यह है कि ईश्वर को मानें या न मानें, सभी प्रकार के पापों से दूर रहकर ही मानव मानसिक, वाचिक तथा कर्म सम्बन्धी दुष्कर्मों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता का उदार ईश्वरवाद है तो विश्वात्मा के अन्दर आध्यात्मिक पूर्णताओं के साथ-साथ नैतिक पूर्णताओं का भी आधान करता है। न्याय दर्शन की तर्क प्रधान योजना है जो ज्ञान के मुख्य-मुख्य विभागों को दर्शाती है। प्रकृति के सम्बन्ध में वैशेषिक दर्शन की व्याख्या, विज्ञान और मनोविज्ञान सम्बन्धी सांख्य के काल्पनिक विचार, योग दर्शन के मोक्ष मार्ग की योजना, मीमांसा दर्शन के नैतिक और सामाजिक नियम तथा सर्वोपरि यथार्थ सत्ता की धार्मिक व्याख्याएँ, जिनको एकत्र करके आचार्य शंकर, आचार्य मध्व, आचार्य रामानुज, आचार्य निम्बार्क, आचार्य बल्लभ और आचार्य जीव गोस्वामी ने क्रमशः अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और अचिन्त्य भेदाभेदवाद सिद्धान्त या दर्शन के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इन सभी ने मिलकर मानव जाति के इतिहास में दार्शनिक विकास के एक अद्भुत अभिलेख का निर्माण किया है।[7] आदर्श के बाद आदर्श, सम्प्रदाय के बाद सम्प्रदाय, तार्किक क्रम से हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। एक भारतीय का जीवन क्रम सदा ही गतिमान रहा, और ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, वह विशेष आकार को धारण करता चला गया, और समय-समय पर अपने भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों के अनुसार परिवर्तित होता गया।[8] प्ररम्भिक अवस्थाओं में प्राचीन भारतीय प्रत्येक कार्य पहले ही करते थे, क्योंकि उनके समक्ष भूतकाल का ज्ञान मार्ग-प्रदर्शन के लिए नहीं था। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी कठिनाइयाँ भी थीं, जिनका उन्हें सामना करना पड़ा जो आज तो नहीं रह गई हैं। इन सबके होते हुए भी विचार और व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र में उन्होंने जो कुछ प्राप्त कर लिया वह बहुत है। किन्तु यह चक्र अभी पूर्ण नहीं हुआ है। न तो सम्भाव्य आकृतियों की श्रृंखला ही समाप्त हुई है, क्योंकि आत्मा का वास्तविक निवास-स्थान साधारण जगत के पीछे विद्यमान एक परलोक का आदर्श जो अधिक यथार्थ और अधिक दुर्बोध है, और जो मानव-मस्तिष्क में बराबर चक्कर काट रहा है–यह पहले अभी भी हमारा उपहास कर रही है। दार्शनिक ज्ञान अभी भी अपनी शैशव अवस्था में है।[9] विचारकों, चिन्तकों की सुदीर्घ पंक्ति ने मानवीय ज्ञान के मन्दिर में कुछ न कुछ छोटा अंश जोड़ने के लिए घोर संघर्ष किया और यह हमेशा प्रयास किया है कि वे सदैव अपूर्ण मानवीय ज्ञान के समूह में कुछ न कुछ नया अंश जोड़ सकें। परन्तु मानवीय कल्पना उस आदर्श तक पहुँच नहीं पाती जिसे यह न तो छोड़ ही सकती है और न पा ही सकती है। दार्शनिकों के समस्त प्रयासों के बाद

आज भी हम अन्तिम समस्याओं के सम्बन्ध में वहीं विद्यमान हैं जहाँ युगों पूर्व भूतकाल में रहे और सम्भवतः हम वहीं रहेंगे जब तक मानव हैं क्योंकि हम अपने परिमित शक्ति वाले मन की शृंखलाओं से रहस्यमयी चट्टान के साथ प्रोमिथियस के समान जकड़े हुए हैं।[10] तो भी दार्शनिक ज्ञान की प्राप्ति का प्रयास निष्फल नहीं जाता। यह हमें उक्त शृंखलाओं की पकड़ और उनकी झंकार को अनुभव करने में सहायक सिद्ध होता है। यह मानव अपूर्णता की चेतना को तीक्ष्ण करता है और इस प्रकार हमारे अन्दर उस पूर्णता के भाव को गहरा करता है जो हमारे क्षणिक जीवन की अपूर्णता को प्रकट करती है। यह संसार हमारी बुद्धियों के लिए इतना सुबोधगम्य क्यों नहीं है जैसा कि हम चाहते हैं, क्योंकि एक दार्शनिक विद्वान केवल मात्र ज्ञान का प्रेमी है किन्तु ज्ञान का स्वामी नहीं है। हमें समुद्र यात्रा के अन्त से इतना प्रयोजन नहीं जितना कि स्वयं की यात्रा से है। यात्रा करते रहना पहुँच जाने से भी उत्तम है।[11]

एक बात ध्यान देने योग्य है कि अनुक्रम स्वेच्छाचारी और अर्थविहीन नहीं होता। भारत उन्नति में विश्वास करता है, क्योंकि चक्र परस्पर आक आधारभूत बन्धन से बँधे रहते हैं। निरन्तरता का आंतरिक सूत्र कभी टूटा नहीं। यहाँ तक कि ऐसी क्रान्तियों ने भी, जिन्होंने भूतकाल को ग्रसने का प्रयास किया, केवल मात्र फिर से उनकी स्थापना करने में सहायता ही की। अन्ततोगत्वा हमारा ऐतिहासिक अभिलेख उन्नतिपरक ही है। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं कि इस प्रक्रिया में बहुत कुछ नष्ट भी हो गया। अधिक महत्वपूर्ण है भविष्य। भूतकाल में उदारतापूर्वक जो नीवें जाली गयीं, उनसे ही सन्तुष्ट रहने की अपेक्षा हमें एक ऐसे वृहत्तर भवन खड़े करना चाहिए जिसमें प्राचीन प्रयासों और आधुनिक दृष्टिकोण में अनुकूलता हो।[12]

यह भी बात करने में कोई संकोच नहीं है कि भारतीय समीक्षकों की दृष्टि कभी व्यक्ति प्रधान न होकर विचार-प्रधान ही थी। भारतीय दर्शनों में षड्दर्शन के प्रत्येक दर्शन एक-न-एक विशेष जिज्ञासा को लेकर ही प्रवृत्त हुआ। यह प्रवृत्ति भारतीय विचार-मंडल में कभी लुप्त नहीं हुई। भारतीय दर्शन की एक अविच्छिन्न धारा हमें प्राप्त होती है। यह धारा-प्रवाह कभी पूर्णतया समाप्त नहीं होता, भले ही कभी-कभी मन्द चाहे कितना भी हो गया हो। भारतीय दर्शन का ऐतिहासिक विकास एक पूर्णतया अज्ञात युग से लेकर आज तक फैला हुआ है। उसमें नाना संस्कृतियों और नाना युगों की साधनाओं और विचारधाराओं का समावेश हुआ है। भारतीय दर्शन के ऐतिहासिक विकास को हम प्रायः छः क्रमिक युगों में बाँट सकते हैं।

प्रथम वैदिक युग। इस युग में मंत्र, ब्राह्मण और उपनिषदों में निहित दर्शन परम्पराएँ सम्मिलित हैं। यह भारतीय दर्शन का प्राचीनतम काल है, वेद और उपनिषद् जैसे महत्वपूर्ण दर्शनों के विकास का काल है। भारत का सम्पूर्ण दर्शन और वेद और उपनिषद् की विचारधाराओं से प्रभावित हुआ है। **द्वितीय युग** पुराण-इतिहास अथवा महाकाव्यों का है। इसमें उत्तर-वैदिक कालीन दर्शन का विकास सन्निहित है। चार्वाक, जैन, बौद्ध और गीता-दर्शन इसी के अन्तर्गत आते हैं। रामायण और महाभारत जैसे धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों की रचना के कारण इस काल का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। साथ ही साथ जैन और बौद्ध धर्म इसी काल में होने के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। **तृतीय काल** सूत्र काल या षड्दर्शन युग है। इस युग में सूत्र-संहिता का निर्माण हुआ है। इसी युग में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांशा और वेदान्त जैसे महत्वपूर्ण दर्शनों का निर्माण हुआ। षड्दर्शनों का युग होने के कारण इस युग का भारतीय दर्शन में अत्यधिक महत्व है। **चतुर्थ युग** वृत्ति अथवा भाष्य एवं टीकाओं का है। इस युग में षड्दर्शन-परम्परा का वृत्तियों, भाष्यों एवं टीकाओं के द्वारा विवेचन और विवरण प्रस्तुत किया गया है। जैसे षड्दर्शनों के बाद भारतीय दर्शन की प्रगति मन्द पड़ती दिखती है। इसके मूल कारण दो ही हैं। एक तो गुलामी के जंजीर से जकड़ी भारतीय संस्कृति और दर्शन पनपने में कठिनाई का अनुभव करने लगे। मुगलों ने भारतीय दर्शन और संस्कृति को अकिंचन बनाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। अंग्रेज भी भारतीय विचार के प्रगतिशील होने में बाधक सिद्ध हुए। व्यक्ति यूरोपीय दर्शन का अध्ययन कर अपनी दासता का परिचय देने लगा। भारतीय दर्शन की प्रगति के मंद होने का दूसरा कारण आचार्य शंकर के अद्वैतवाद दर्शन की चरमता प्राप्त करना कहा जा सकता है। अद्वैत वेदान्त की चरम परिणति के बाद दर्शन की प्रगति का मन्द होना स्वाभाविक था, क्योंकि परिणति के बाद पतन ही होता है।[13] भारतीय दर्शनों का **पाँचवाँ युग** मध्ययुगीन दर्शन अथवा भक्ति परम्परा का है। इस युग में दक्षिणापथ में वेदान्त-भक्ति वैष्णव धर्म, उत्तरी भारत में सन्तमत और सगुण मतवाद तथा बंग देश में प्रेमोल्लासमयी रसनिष्यन्दिनी वैष्णवधारा (गौड़ीय वैष्णव धर्म) का प्रसार हुआ। इसके बाद भारतीय विचार में एक विषम परिस्थिति आयी और उसके बाद आधुनिक भारतीय विचार की परिस्थिति है, जिसे हम परीक्षण-युग प्रयोगवादी युग, वैज्ञानकि युग, सन्देहवादी युग, क्रान्तिकारी युग, संक्रान्ति युग, मानवतावाद युग, अनिश्चिततावादी युग आदि जिस किसी नाम से पुकार सकते हैं।[14] इस युग का प्रारम्भ राजाराम मोहन राय के समय से होता है। इस काल के मुख्य दार्शनिकों में महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डॉ0 राधाकृष्णन, के. सी. भट्टाचार्य, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, मुहम्मद इकबाल आदि प्रमुख

हैं। मुहम्मद इकबाल को छोड़कर इन सभी दार्शनिकों ने वेद और उपनिषद् की परम्परा को ही पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। आधुनिक युग पश्चिमी जातियों के, विशेषतः अंग्रेजों के, भारत में पदार्पण से प्रारम्भ होता है। आध्यात्मिकता और भौतिकता का संघर्ष इस युग की एक विशेषता है। महाभारत काल की क्रान्तिमयता का एक अद्‌भुत प्रत्यावर्तन भारत में आधुनिक युग में हुआ है। यहाँ के पुराने विश्वास इस युग में ढहने लगे और नवीन जीवन दर्शन का अभी उदय नहीं। इसीलिए यह संक्रान्ति का युग है। इस युग में अनेक चिन्तकों ने परिस्थितियों के अनुकूल पथ-प्रदर्शन किया। परन्तु अध्यात्म-चिन्तन का स्थान अधिकाधिक सामाजिकता लेती गयी। आज का सर्वोत्तम विचार सामाजिक या राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त है। अठारहवीं सदी भारतीय इतिहास के लिए सबसे अधिक विषम और संकटग्रस्त युग था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जातीय जीवन के पुनरुत्थान के लक्षण उत्पन्न हो गये।[15]

यह समय स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं राजाराम मोहन राय के आविर्भाव का था। उसके बाद रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानन्द आए। रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं महर्षि योगी अरविन्द ने पूर्व तथा पश्चिम के मिलन की भूमिका तैयार की। महात्मा गाँधी ने अपनी विचारधारा से विश्व को प्रभावित किया तथा भारत के नैतिक चैतन्य को जाग्रत कर उसे राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयुक्त किया। उन्होंने यन्त्रवादी सभ्यता के स्थान पर मानवता के नये आदर्श विश्व को दिया। विद्वान चिन्तकों में डॉ0 भगवानदास, डॉ0 राधाकृष्णन, डॉ0 दासगुप्ता आदि ने भारतीय ज्ञान को विदेशों में प्रसारित किया जो प्रशंसा के योग्य है और अन्य अनेक विद्वान चिन्तक भी कर रहे हैं। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति होने के बाद तो अनेक विद्वान चिन्तक अपने प्रसारगामी विचारों को बहुत उत्साह से व्यक्त करने में लगे हैं। भारतीय विचार को, विशेष रूप से, भौतिक तथा सामाजिक स्तर पर, सन्तोषजनक प्रगति देखने को प्राप्त हो रही है।[16]

भारत वर्तमान समय में एशिया के देशों में उच्च श्रेणी के ज्ञान के क्षेत्र में जो उसका सबसे आगे बढ़कर ऐतिहासिक महान कार्य कर रहा है, उसे नहीं निभा रहा है।[17] चीन के भारत के ऋणी होने के सम्बन्ध में प्रो0 लियांग ची चो का कहना है,[18] भारत ने हमें निरपेक्ष मोक्ष के विचार को अपनाने की शिक्षा दी। यह मस्तिष्क की वह भौतिक स्वतन्त्रता है जो इसे प्राचीन परम्परा के अभ्यास और किसी काल-विशेष के रीति-रिवाजों के समस्त बन्धनों को तोड़ डालने के योग्य बनाती है, ऐसी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता, जो भौतिक जीवन की दासता की ओर ले जाने वाली शक्तियों को भी उच्छेद कर देती है।.....भारत ने ही हमें परमार्थ प्रेम सिखाया, प्राणिमात्र के प्रति ऐसा निर्दोष प्रेम जो ईर्ष्या, क्रोध, अधीरता, घृणा तथा प्रतिस्पर्धा के समस्त उद्वेगों को निकाल फेंकता है, और जिसकी अभिव्यक्ति, मूर्खों, दुष्टों तथा पापिष्ट पुरुषों के प्रति अगाध करुणा तथा सहानुभूति के रूप में देखी जा सकती है। यह ऐसा निरपेक्ष प्रेम है जो समस्त प्राणियों के भीतर अभेद को मान लेता है।'' आगे चलकर प्रो0 लियांग ची चो के साहित्य, कला, संगीत, स्थापत्य कला, चित्रकारी, तक्षण कला, नाट्य शास्त्र, काव्य, पुराण, ज्योतिष विद्या एवं चिकित्सा, शासन, शिक्षा पद्धति तथा सामाजिक संघटनों के क्षेत्रों में जो भारत की देन है उसका विवरण देते हैं। बर्मा, लंका, जापान तथा कोरिया पर भारत का प्रभाव सुप्रसिद्ध है।

आज विश्व के महत्वपूर्ण धर्मों तथा विभिन्न विचारधाराओं का संगम भारत की भूमि पर हुआ है। पश्चिम की जीवन्त विचारधारा के साथ जो सम्पर्क हुआ उसे आधुनिक काल के प्रशान्त तथा सन्तोषमय वातावरण में क्षोभ उत्पन्न कर दिया है। एक भिन्न संस्कृति को आत्मसात् कर लेने का असर यह हुआ कि अन्तिम समस्याओं का कोई सम्प्रमाणित उत्तर नहीं है, ऐसा माना जाने लगा है। इसने परम्परागत समाधानों के भीतर उत्पन्न होने वाले विश्वास को हिला दिया और किसी अंश में एक विस्तृत स्वातन्त्र्य तथा विचार की नमनशीलता को सहायता पहुँचाई है। परम्परा ने फिर से प्रगतिशील रूप धारण कर लिया है जबकि कुछ चिन्तक अभी भी भवन का निर्माण प्राचीन नीवों के आधार पर ही करने में प्रयत्नशील हैं।[19] दूसरी ओर अन्य चिन्तक उन नीवों को एकदम उखाड़ फेंकना चाहते हैं। यह संक्रमण का वर्तमान काल हितकारक तो है परन्तु चिन्ता का कारण भी हो सकता है।

आज स्वतन्त्र भारत में जो समस्या विद्यमान है कि क्या यह एक सम्प्रदाय के रूप में परिणत हो जायेगा, जिसका क्षेत्र सीमित होगा। वर्तमान समय के तथ्यों में इसका कोई प्रयोग नहीं हो सकेगा अथवा मानवीय प्रगति के निर्माण करने वाले तत्वों में से यह अन्यतम हो जाये और यह तभी सम्भव है जब यह आधुनिक विज्ञान के प्रचुर रूप में बढ़े हुए ज्ञान का मिश्रण भारतीय दार्शनिकों के प्राचीन आदर्शों के साथ कर सके। लक्षण तो यही इशारा करते हैं कि भारतीय दर्शन मानव प्रगति के निर्माणकारी अवयवों में से ही अन्यतम सिद्ध होगा। पूर्व की विचार-पद्धतियों के प्रति और दर्शनशास्त्र के उद्देश्य की यह माँग है कि हम अपने दृष्टिकोण को सदैव उदार ही बनायें। वर्तमान समय के लिए भारतीय दर्शन के अस्तित्व का कुछ अर्थ और न्यायोचितता तभी सिद्ध हो सकेगी जबकि यह आगे बढ़ती जाये और हमारे जीवन को उत्तम बनाये। भारतीय दर्शन के विकास की भूतकाल की प्रगति हमें अपनी आशा के प्रति प्रोत्साहन देती है। महान् चिन्तक, याज्ञवल्क्य और गार्गी, बुद्ध और महावीर, गौतम और कपिल, शंकर

और रामानुज, मध्व और बल्लभ तथा अन्य अनेक विद्वान भारत के अस्तित्व की महत्त्वपूर्ण क्षमता के द्योतक हैं और यह भारत के एक जीवित राष्ट्र के पद पर विराजमान होने का स्पष्ट प्रमाण है। यह इस बात का भी प्रमाण है कि भारत आगे भी अपने स्वार्थ से हटकर, ऊपर उठकर अपनी सर्वोपरि श्रेष्ठता के प्रेमोपहार को स्थिर रखने में समर्थ होगा।[20]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ''को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः
   अवग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत् आवभूव।''–ऋग्वेद 10/129/6;
   डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृ. 158
2. डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृ. 159
3. वेणीमाधव वाडुआ : प्री बुद्धिष्टिक इण्डियन फिलासाफी, पृ. 2 मिलाइये। डॉ. राधाकृष्णन : इण्डियन फिलोसॉफी, जिल्द, द्वितीय, पृ. 22; और द्रष्टव्य, डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृ. 160
4. द्रष्टव्य, डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृ. 161
5. वही; पृ. 163-64
6. वही; पृ. 166
7. डॉ. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन, हिन्दी अनुवाद, अंक द्वितीय, पृ. 671
8. वही; पृ. 672
9. वही;
10. गाम्पर्ज : 'ग्रीक थिंकर्स', खण्ड-1, पृ0 164; द्रष्टव्य, डॉ. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन, हिन्दी अनुवाद, अंक द्वितीय, पृ. 672
11. डॉ. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन, हिन्दी अनुवाद, अंक द्वितीय, पृ. 672
12. वही; पृ0 673.
13. डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ. 6
14. डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृ0 167
15. वही; पृ. 175
16. वही;
17. विश्वभारती क्वार्टर्ली, अक्टूबर, 1924; डॉ. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन, हिन्दी अनुवाद, अंक द्वितीय, पृ. 675 और उस पर सन्दर्भ।
18. वही; पृष्ठ पर सन्दर्भ द्रष्टव्य।
19. डॉ. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन, हिन्दी अनुवाद, अंक द्वितीय, पृ. 677
20. वही; पृ. 684

*****

Psychology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 151-155
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

भारतीय मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन मूल्य

*डॉ. कल्पना पाण्डेय**

आज भारत में जीवन मूल्यों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और उसके विवेचन के लिए मनोविज्ञान की प्रायः सभी शाखाएँ अपने-अपने सम्प्रत्ययों, विधियों और तकनीकों द्वारा यथार्थ के विभिन्न पहलुओं पर सक्रिय हैं। आज इन मूल्यों का विघटन तीव्र रूप से समाज में महसूस किया जा रहा है। ये दबाव दो प्रकार के हैं- जहाँ एक ओर मानवीय प्रतिबद्धता एवं सामाजिक दायित्व और प्रासंगिकता की चुनौतियों को लेकर उठ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर अभी तक स्वीकृत समाजविज्ञानों की सार्वभौमिक सत्ता के बारे में संयम और उससे उठने वाली सैद्धान्तिक तथा विधिगत उलझनों के कारण भी दबाव पैदा हो रहे हैं। चूँकि समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन की विभिन्न संस्थाएँ समाज में उपस्थित होती हैं और उन्हें समाज के लिए कुछ करना चाहिए, इस तरह की सोच अब भारतीय मनोवैज्ञानिकों के बीच प्रबल ढंग से मुखर हो रही है। ''शुद्ध वैज्ञानिक'' और ''केवल ज्ञान के प्रति प्रतिबद्ध ज्ञार्नाजन'' करने का निरपेक्ष प्रयास अब सामाजिक दबाव के कारण सम्भव नहीं रहा।

अनेक मनोवैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि, सामाजिक समस्याओं के समाधान कि दिशा में मनोविज्ञान के प्रयास दुर्लभ, अपर्याप्त और एक सीमा तक अप्रभावी रहे हैं। यह स्थिति मनोविज्ञान विषय के विकास, विस्तार तथा उपयोग के लिए चिन्ताजनक होती जा रही है। भारत में मनोविज्ञान विषय की वर्तमान अवस्था को समझने और उसमें वांछित परिर्वतन लाने के लिए इसके ऐतिहासिक विकासक्रम पर दृष्टिपात करना लाभदायक होगा। जैसा कि सबको ज्ञात है एक आधुनिक विषय के रूप में ``Psychology'' का भारत में अवतरण शुद्ध पाश्चात्य ज्ञान की परंपरा के अंग के रूप में भारतीय लोक से अलग या अलौकिक रूप में स्वीकार किया गया है। इसलिए उसको ज्यों का त्यों बनाये रखने का अथक प्रयास किया गया और उसे विज्ञान बनाए रखने के लिए मनोविज्ञान कह दिया गया। ज्ञातव्य है कि अंग्रेजी में साइंस आफ साइकोलॉजी कहा जा सकता है, पर हिन्दी में ''वैज्ञानिक मनोविज्ञान'' कहना ठीक नहीं लगेगा क्योंकि मनोविज्ञान में विज्ञान सम्मिलित है। इस परम्परा को विज्ञान की सत्ता के आर्थिक समर्थन की ओर विज्ञापन की वैशाखी भी मिली हुई थी। हमारी अंग्रेजी को इंग्लैण्ड, अमेरिका अथवा कनाडा आदि देशों में इस परम्परा में प्रशिक्षण तथा दीक्षा भी मिली। भौतिक विज्ञान के तर्ज पर मनोवैज्ञानिक को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार करने में किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं थी।

मनावैज्ञानिक घटनाओं या प्रक्रियाओं का यथार्थ भौतिक पदार्थ जैसा है, और उनके साथ वे सारी प्रक्रियाएँ हो सकती हैं जो भौतिक पदार्थों के साथ हो सकती हैं। गोचरों की स्थायी सुनिश्चितन वस्तुनिष्ठता और प्रेक्षक या प्रेक्षित से निरपेक्ष या स्वतंत्र सत्ता है और यदि ऐसा नहीं है तो प्रेक्षण की तकनीकों को सुधार कर ऐसा बनाया जा सकता है। इस तरह बुद्धि अभिप्रेरणा, प्रत्यक्षीकरण, व्यक्तित्व, अधिगम इत्यादि (मनोवैज्ञानिक) वस्तु जैसा है, जो है या छिपी हुई है। इन्हें हमें खोजना है तथा खोज कर मापन करना है ज्ञान प्राप्त करने वाले से स्वतंत्र है। अतः ये सारी मनोवैज्ञानिक वस्तुएं निरपेक्ष रूप से स्वयं में हैं। यह विश्वास इतना प्रबल है कि हम भेदों और विरोधों को भी बिना किसी उहापोह के स्वीकार करते हैं, उदाहरण के लिये जैसे-बुद्धि और व्यक्तित्व के परस्पर विभिन्न सिद्धातों के बारे में हम बिना किसी परेशानी को बताते हैं। बुद्धि के दो तत्वों से लेकर 120 तत्व और अब नाना प्रकार की बुद्धियों का विवरण देते हैं। सबको वस्तुतः विद्यमान माना जाता है, ठीक भौतिक पदार्थ की भांति और इनकी उपस्थिति का प्रमाण विधियों या तकनीकों के द्वारा प्रदान किया जाता है। यदि ये पदार्थ रहते तो इनके स्वस्थ्य ज्ञान में इतनी भिन्नता न होती गौर से देखा जाये तो इन तत्वों का निर्माण कुछ सिद्धान्तविदों के कुछ विधिगत उपक्रमों से किया है। ऐसा करने में उनकी कल्पना, निजी अनुभव, संस्कृति और तकनीकों का महत्व चाह कर भी झुठलाया नहीं जा सकता है। परन्तु मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्ययों के निर्माण की पूरी प्रक्रिया को भुलाकर हम इसे रचना न मानकर ''निरपेक्ष'' सत्य बताते है।

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (मनोविज्ञान विभाग), अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)*

एक दूसरा उदाहरण लें, अधिगम, स्मृति व अवधान का। इन प्रक्रमों के आपसी सम्बन्ध बदलते रहे हैं, इनका स्वस्थ्य विश्लेषण अभी भी किसी सर्वस्वीकृत प्रारूप में उपलब्ध नहीं हो सका है। मनोवज्ञान के विचारों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि समय-समय पर इनमें से हर एक शेष दूसरों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थापित किया जाता है। इन सबके सैद्धान्तिक प्रतिमान भी नाना प्रकार के हैं और अभी इनकी विविधता को सुलझाया नहीं जा सका है।

वस्तुतः मनोवैज्ञानिक सोच में व्यापक, दूरस्थ पर्यावरण को अमनोवैज्ञानिक मानकर उस पर ध्यान नहीं दिया जाता है। या फिर उसे नियंत्रित किया जाता है। जब कभी उसे अध्ययन में शामिल किया जाता है तो उसे प्रत्यक्षित रूप से अभिवृत्ति के रूप में लेकर वास्तविकता से दूर कर दिया जाता है जो व्यक्ति को व्यक्ति के आधार पर संदर्भहीन रूप में निरूपित करता है। व्यापक सम्प्रत्यय जैसे- जातिवर्ग आर्थिक ढांचा अमनोवैज्ञानिक प्रतीत होते हैं और व्याख्या करने में भी हम उसका उपयोग नहीं करना चाहते या हिचकिचाते हैं। सम्भवतः मनोविज्ञान का सीमित मुहावरा व्यापक सामाजिक समस्याओं पर पूर्णरूपेण साहसी नहीं बैठता है। सामाजिक समस्याओं का व्याकरण, मनोविज्ञान के व्याकरण से अलग होने के कारण हमारी समझ उस व्यक्ति जैसी ही हो जाती है, जो खोई हुई वस्तु को, जहाँ प्रकाश है, वहाँ ढूँढता है न की वहाँ जहाँ वस्तु वस्तुतः खोई थी। ऐसे हालात में हमारे अध्ययन निरूद्देश्य हो जाते हैं।

आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, चोरी, डकैती, लूट-पाट, युवा तनाव, नशा, जनसंख्या वृद्धि, मँहगाई पद और धन लिप्सा हेतु नैतिक और अनैतिक साधनों का प्रयोग, दुरूपयोग, भाई-भतीजावाद, अस्पृश्यता, दलित, शोषित, पतितों के प्रति शोषण, अन्याय की भावना, नारी यौन शोषण, दंगे-फशाद, हत्याएँ भ्रूण हत्याएँ बाल-विवाह, युवा और वृद्ध पीढी में विसंवाद-विवाद प्रकृति से छेड़-छाड़ आदि समस्याएँ भारत व्यापी नहीं अपितु विश्व व्यापी बनी हुई हैं। ये समस्याएँ न सिर्फ नाक की मक्खी बनी हैं, वरन् तमाम विसंगतियों, अराजकताओं की जननी भी बनी हुई हैं।

इन समस्याओं के समाधान हेतु समय-समय पर समूचे विश्व में तरह-तरह के प्रयोग होते आ रहे हैं। लेकिन एक समस्या के समाधान की खोज तक पहुँचते और अन्य कई समस्याएँ आ खड़ी होती हैं।

विश्व अध्यात्म गुरु भारत ने तमाम समस्याओं के मूल में जीवन मूल्यों के विपरीत जाना-माना है। महाकवि ंतुलसी ने कहा है कि- ''जब जब होइ धरम की हानी। बाढ़ै असुर अधम अभिमानी।।'' ज्ञान, शिक्षा और क्रिया के भिन्न होने पर भी अनेकानेक विपरीत परिस्थितियाँ पैदा होती हैं जो मानव समाज को समस्याग्रस्त करती है। भारतीय मनोविज्ञान में सदा से ही निर्माणपरक जीवन जीने हेतु व्यवस्थाएँ दी हैं। भारतीय दर्शन में जैसे- शास्त्रों, पुराणों, उपनिषदों, वेदों में उच्च स्तरीय जीवन मूल्यों की चर्चायें बिखरी पड़ी हैं। भारतीय मनोविज्ञान ने सदा से ही निर्माणपरक जीवन जीने हेतु व्यवस्थाएँ दी हैं। जो मनुष्य के लिये संजीवनी है। योग मनोविज्ञान में सत्य, अहिंसा के बलबूते एक नवीन विज्ञान का रूप धारण कर लिया। पतंजलि योग जो भारतीय मनोविज्ञान का भारतीय जीवन मूल्यों की शैली से विश्व में गौरव का बिगुल बजाया था। शान्ति और आत्मा के आनन्द को प्राप्त करने विदेशी शैलानी भी भारत जीवन आदर्शों की शरण में आते हैं। संयम, मर्यादा, प्रेम, दया, करुणा, क्षमा जीवन के मूल्यों के श्रृंगार हैं। जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र को संस्कारित करके अनेक व्यवधानों से बचाते हैं। ''तमसो मा ज्योतिर्गमय'' की यथा इन्हीं जीवन मूल्यों के साथ पूरी होती है।

भारतीय मनोविज्ञान साहित्य में धर्म शब्द बहुत अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। किन्तु मूल्य के रूप में इसका आशय मुख्यतः नैतिक मूल्यों से है। नैतिक और नैतिकता द्वारा मनुष्य के समस्त सद्गुणों का बोध होता है। न्याय, संयम, सहनशीलता, परोपकार, उदारता, ईमानदारी, जीव-मात्र के प्रति करुणा, दूसरों के लिए अपने हित का परित्याग करने की इच्छा कर्तव्यनिष्ठा आदि समस्त सद्गुण नैतिकता के अन्दर आ जाते हैं। जब हम कहते हैं कि अमुक कर्म नैतिक है, तब इसका अभिप्राय यही होता है कि उस कर्म में मनुष्य के किसी सद्गुण की अभिव्यक्ति हुई है, अधिकतर सद्गुणों की मुख्य विशेषता यह है कि उनके द्वारा प्रेरित कर्म किसी ना किसी रूप में व्यक्ति की स्वार्थ सिद्धि की अपेक्षा दूसरों के कल्याण में अधिक सहायक होते हैं।

अर्थ को भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि ''यतः सर्व प्रयोजन, सिद्धिः स अर्थः'' अर्थात जिसमें सभी प्रयोजनों की सिद्धि होती है वही अर्थ है, पुरुषार्थ और मूल्य के परिप्रेक्ष्य में उत्पादन, वितरण और उपयोग की आर्थिक क्रियाएं अर्थ की अवधारणा में निहित हैं। अर्थ साधन मूल्य है क्योंकि अर्थ का अर्जन कोई अर्थ के लिए नहीं करता। बल्कि अपने सुख तथा कामनाओं की तुष्टि के लिए करता है। अर्थ की महत्ता को प्रायः समस्त विचारकों ने स्वीकार किया है। चाणक्य ने तो यहाँ तक कह दिया कि निर्धन व्यक्ति का जीवन मृत्यु के समान है- ''दारिद्य खलु पुरुषस्य मरणम्'' इसलिए अर्थ का उपार्जन मनुष्य को करना चाहिए। किन्तु यदि अर्थ स्वेच्छाचारी हो जाय और उस पर से सभी बंधनकारी नियम जो उसे धर्म प्रदान करता है, हटा लिया जाए तो अर्थ उच्चतर मूल्यों के सभी संदर्भ में अनर्थ सिद्ध हो सकता है।

मनोवैज्ञानिक मूल्यों में काम शब्द के तीन अर्थ हैं- सुख, सुख का साधन तथा सुख की कामना। काम स्वयं सुख रूप है। यह सुख का प्रधान साधन भी माना गया है तथा इसी को सुख का इच्छित पदार्थ भी माना गया है। कामसूत्र के अनुसार अभिमान सहित रस से ओत-प्रोत सभी इन्द्रियों का आनन्द जिससे उत्पन्न हो वही काम है। ''अभिमानिक रसानुविद्धी यतः सर्वेद्रिय प्रीति सा कामः।'' इसी प्रकार महाभारत के वन पर्व के अनुसार पाँच ज्ञानेन्द्रियों - मन और बुद्धि का जो विषयों के साथ संपर्क होता है और उससे जो सुख उत्पन्न होता है, वही काम है ''इन्द्रियाणां च पन्यातं मनसौ हृदयस्च च। विषयों वर्तमानानं या पीति रूप जायते। स काम इति में बुद्धिः कर्मणा फलमुत्तामम्।।''

पुरुषार्थ मूल्य व्यवस्था में जहाँ धर्म, अर्थ, काम क्रमशः नैतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वहीं मोक्ष एक आध्यात्मिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित है। भारतीय मनोवैज्ञानिकों के अनुसार- मोक्ष शब्द का अर्थ है ''छुटकारा पाना'' इसे प्राप्त कर मनुष्य सभी प्रकार के दुःखों आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखों से मुक्त हो जाता है, और अपने परम आनन्द स्वरूप की स्थिति में प्रतिष्ठित हो जाता है। प्रायः सभी भारतीय मनोवैज्ञानिकों, ने इस संसार की दुःखरूपता को स्वीकार किया है और इससे मुक्त होने के लिऐ उपाय भी बताया है। वस्तुतः मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य उसी मुक्ति को प्राप्त करना है। अतः पुरुषार्थ में मोक्ष परम पुरुषार्थ है। यह पुरुष का परम प्रयोजन है, इस प्रकार मोक्ष का मूल्यगत चरित्र स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। भारतीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा संसार की दुःखरूपता को रेखांकित कर उससे मुक्त होने का उपाय बताना, अर्थात अभद्र से भद्र की ओर प्रस्थान स्पष्ट ही एक मूल्यगत प्रस्थान है, जिसके द्वारा विमूल्यों से युक्त संसार में से होकर मूल्यों के आलोक में पहुँचना उसका अभीष्ट है।

भारतीय मनोवैज्ञानिक वैदिक प्रार्थना- ''असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतम् गमय'' का सार विमूल्य से मूल्य की ओर अग्रसर होता है। वर्तमान काल की मानवीय स्थिति को देखकर यह कहना कि जीवन में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का महत्व बिल्कुल ही नगण्य हो गया है, अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारतीय मनोवैज्ञानिक भोग और योग तथा प्रेयस् और श्रेयस् दोनों के समन्वय में विश्वास करते हुए चारो पुरुषार्थों को मानवीय जीवन का प्रयोजन बताते हैं। यद्यपि भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साथ को भी मूल्यवत्ता प्रदान कर भौतिक व आध्यात्मिक पक्ष में एक उत्कृष्ट समन्वय स्थापित किया है, तथापि केवल अर्थ और काम ही प्रयोजन मान लेने पर जो असंतुलन की संभावना हो सकती है, उसका दर्शन तो हमें सर्वत्र हो ही रहा है। अपनी भौतिक संपत्तियों और बौद्धिक उपलब्धियों के बावजूद आज हमारा जीवन सुखी नहीं है। यदि आज हम लोगों के अर्न्तमन के विचारों को जान पाते तो हमे पता चलता कि लोग खुद अपने से और उन व्यापारों से जिनमें उनकी शक्तियाँ खप रही हैं, असंतुष्ट हैं। उनका जीवन कांतिहीन और निरानन्द हो गया है, आज हम अपने जीवन की रिक्तता और अशुद्धता से परिचित तो हैं, परन्तु उससे बच निकलने का मार्ग हमें नही सूझता। यह एक तथ्य है कि भौतिक वस्तुओं की प्रचुरता हो जाने मात्र से ही जीवन सरस नहीं हो जायेगा। क्योंकि संसार के धनी लोगों का जीवन प्रायः नीरस और स्फूर्तिहीन दिखाई पड़ता है। निशिचित रूप से भौतिक आधार जीवन के लिए अनिवार्य है फिर भी वास्तविक जीवन यापन के लिए बहुत ही संकुचित प्रतीत होता है। वस्तुतः मानव मात्र के जीवन का लक्ष्य है दुःख- निवृत्ति और सुख की प्राप्ति। इसलिए प्रत्येक मानव जीवन भर सुख ढूँढ़ता रहता है, बचपन में तो उसे सुख अनायास मिलता रहता है, लेकिन युवा होने पर सुख की खोज प्रारंभ हो जाती है, जो सुख बचपन में अनायास ही मिल रहा था, अब वह प्रयास की भाग-दौड़ में खो जाता है, वयस्कता आने पर खोज में बुद्धि का प्रयोग अधिक किया जाने लगता है, फिर बुढ़ापा आने लगता है, और तब बुद्धि सुख पाने में अपनी असफलता को जानकर व्यथित होने लगती है, इस प्रकार बुढ़ापा कष्ट देने लगता है।

भारतीय मनोवैज्ञानिकों के अनुसार- इस कष्ट से नैतिकता और आध्यात्मिकता ही केवल हमें बचा सकते हैं। परन्तु आज के पढे-लिखे लोग जो अपने को प्रबुद्ध एवं सुसंस्कृत मानते हैं, अपने मन में ऐसी धारणा बना लिए हैं कि नैतिकता और अध्यात्म तो सिर्फ अंधविश्वासों के लिए है, अथवा आध्यात्मिक व्यक्ति कट्टरपंथी होता है, इस प्रकार बहुत सावधानी से भद्र लोग अपने को नैतिकता और आध्यात्मिकता से बचाकर अपना सामाजिक सम्मान सुरक्षित रखने के प्रयास में रहते हैं। परन्तु उनके अन्तःकरण में क्या होता है, इसका स्पष्ट संकेत उच्च रक्तचाप, मधुमेह आदि अनेक प्रकार की बीमारियों से मिलता है। हजारों तृष्णाओं को मन में पालकर बाहर सौम्यता वा शिष्टता बनाये रखने का कठिन नाटक निर्मित करता है, और तनाव के कारण अनेक बीमारियाँ होने लगती हैं। अध्यात्म और नैतिकता हमें उसी स्थिति से बचाते हैं। अर्थात हमें ये सुखी जीवन जीने की कला बताते हैं।

भारतीय मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि सुख के स्त्रोत क्या हैं? क्योंकि सुख स्त्रोत के ज्ञान से ही खोज में सार्थकता आ सकती है, हर मनुष्य में तीन प्रकार की मौलिक इच्छाएँ सदैव बनी रहती हैं, ये हैं- धन प्राप्ति, पुत्र प्राप्ति और यश प्राप्ति। इन्हीं इच्छाओं की पूर्ति में मानव आजीवन लगा रहता है, परन्तु यह कभी भी पूर्ण रूप से नहीं पूरी हो पाती है, क्योंकि इनमें संसार की वस्तु व्यक्ति और परिस्थितियों की उपलब्धता एवं अनुकूलता का होना आवश्यक होता है, लेकिन यह उपलब्धता और अनुकूलता कभी भी स्थिर नहीं रहती फलस्वरूप मात्र भौतिक मूल्यों के आधार पर जीवन भर प्रयास करने के बाद भी स्थिर सुख नहीं मिल पाता। सुख आता तो है, किन्तु आने के साथ ही एक नई इच्छा को जन्म देकर विलीन भी हो जाता है।

भारतीय मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि सुख प्राप्ति के सिर्फ यही तीन स्त्रोत नहीं हैं, वरन कुछ और भी स्त्रोत हैं, लेकिन आज का मानव अपनी हठधर्मिता के कारण उन स्त्रोतों को व्यर्थ समझकर उनकी अनदेखी करता जा रहा है। विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त सुखों के लिए भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं, जो सुख के स्तर को बताता है, धन से जो प्राप्त होता है, उसे सुख कहते हैं, परिवार से जो सुख प्राप्त होता है उसे मोह कहते हैं, समाज से जो सुख प्राप्त होता है उसे प्रमोद कहते हैं। इसके अलावा दो स्त्रोत और हैं, एक तो नैतिकता जिसमें संतोष मिलता है और दूसरा आध्यात्मिकता है, जिसमें आनंद मिलता है, वस्तुतः सुख के ये तकनीकी नाम केवल स्तर बताने के लिए हैं।

नैतिकता के पालन से व्यक्ति को संतोष की प्राप्ति होती है, नैतिकता का अर्थ है, दूसरों के भलाई के लिए अपने हित को त्यागने की तत्परता। इसी को भगवान कृष्ण ने गीता में यश कहा है, अभी तक हमारी मान्यता थी कि धन, परिवार और समाज की अनुकूलता और उपलब्धता से ही सुख मिल सकता है, किन्तु यहाँ तो गणित विपरीत है। जब हमने दूसरे के हित के लिए बिना किसी अपेक्षा के अपना कुछ त्याग किया तो हमें एक उच्च कोटि का सुख मिलता है। यही सुख संतोष है, यहाँ लेने की बजाय देने से सुख संतोष प्राप्त होता है, तथा प्रमोद बाहरी वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति पर निर्भर है, वहीं संतोष पूरी तरह से स्वतंत्र है। अतः वह कब तक रहेगा यह बात भी अपने अधिकार क्षेत्र की हो जाती है। जब कोई व्यक्ति दूसरे के लिए अथवा समाज के हित के लिए अपना समय, शक्ति, धन और प्रेम का त्याग करता है, तो प्रसाद में अनायास ही उसे संतोष की प्राप्ति होती है।

संतोष की पात्रता पाने वाले व्यक्ति को धीरे-धीरे यह अनुभव होने लगता है, सुख औपचारिक नहीं है, वरन् यह तो अनौपचारिक है। इस प्रकार वह आध्यात्मिक हो जाता है अर्थात उसे यह ज्ञात हो जाता है कि सुख का स्त्रोत कहीं बाहर नहीं है। वरन यह तो हमारे भीतर ही है। क्योंकि उसे अनुभव हो जाता है कि बाहर के स्त्रोत तो अंतःस्थिति सुख को केवल उद्‌भूत कर देता है, क्योंकि एक ही वस्तु किसी के लिये सुखकर होती है तो किसी के लिए दुःखरूप होती है, अभिप्राय है कि सुख उन बाहरी वस्तुओं में नहीं वरन् वह तो हमारे अंदर ही है और तब वह अपने आत्मस्वरूप आनन्द स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर उस परम आनन्द की अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जो मानव जीवन का सर्वोच्च लक्षण है। जब एक बार इस स्त्रोत का पता चल जाता है तब व्यक्ति भिखारियों की तरह सुख नहीं ढूँढ़ता बल्कि सम्राटों की तरह सुख-आनन्द बांटने लगता है। भारतीय मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि उचित जीवन जीने कि कला तो वही है, जिससे हमें वह प्राप्त हो जाय जो हमारी आकांक्षा हो हम सुख के भिखारी नहीं वरन सुख बांटने वाला सम्राट बन जाने की है, लेकिन किश्तों में सुख मिलने और विलीन हो जाने से हमारी व्याकुलता बढ़ती जाती है। भारतीय मनोवैज्ञानिक का मानना है कि यदि जीवन को सार्थक बनाना है तो हमें भौतिक मूल्यों के साथ-साथ नैतिक वा आध्यात्मिक मूल्यों को भी महत्त्वपूर्ण बनाना होगा, तभी हमारे भीतर की माँग अर्थात स्थिर सुख की माँग पूरी हो सकती है।

प्रायः हम सबको ज्ञात है कि नैतिक वा आध्यात्मिक मूल्यों के ह्रास से ही हम सबका जीवन दुःखमय बनता जा रहा है। इसके बावजूद भी हम अपने जीवन शैली में बदलाहट लाने को तैयार नहीं है। इसलिए आज हमारे सामने प्रश्न यह है कि इन जीवन मूल्यों की स्थापना कैसे हो।

हम लोग मानों आत्म प्रवंचन में जीने के आदी हो चुके हैं, हम सभी को तथ्यों का अज्ञान हो ऐसी बात नहीं है, लेकिन यह मार्ग अपेक्षाकृत कठिन होने के कारण नैतिकता और अध्यात्म केवल बात-चीत के विषय मात्र बन गये हैं। हम प्रवचन सुन लेते हैं। सत्संग करते हैं, अच्छी पुस्तकें पढ़ लेते हैं और मंच पर नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों की वकालत भी कर लेते हैं फिर भी जब कार्य व्यवहार का प्रश्न आता है तो अपने स्वार्थ को सामने रखकर ही कार्य करने को एक प्रकार से विवश होते हैं, आखिर इस प्रकार दोहरेपन के साथ अपने को सुखी करना चाहेगें तो यह कैसे संभव हो सकता है, जब तक कथनी और करनी में समानता नहीं आएगी तब तक हम जीवन में रूपान्तरण की आशा कैसे कर सकते हैं। वस्तुतः समाज में जो चरित्र का ह्रास हुआ है उसी का परिणाम है। यद्यपि सारे संसार में चारित्रिक मान्यताएँ शिथिल होती जा रही हैं, तथापि भारत में इसका ह्रास विशेष खलता है। कारण भारत वह देश है जिसमें चारित्रिक उत्तरदायित्व का उल्लेख मनु ने इन शब्दों में किया है- ''एतद्देशप्रसूतस्य एकाशादग्रजन्मनः स्व स्व चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यं सर्वमानवः।।'' अर्थात भारतवर्ष से अखिल विश्व को चारित्रिक शिक्षा ग्रहण करनी

चाहिए। यह विचारणीय है कि जो उचित है, उसको समझते हुए भी यदि हमारा सम्पूर्ण समाज उसको तिलांजलि देते रहें तो उचित जीवन पद्धति की स्थापना कैसे संभव हो सकती है। हमें पहल तो करनी ही पड़ेगी और कथनी तथा करनी में समानता प्रदर्शित करनी ही पड़ेगी। इसलिये यह आवश्यक है कि यदि अध्यात्म और नैतिकता की महत्ताा हमारे मन में है तो उसका पालन भी हमें करना चाहिए। दूसरा तरीका यह होना चाहिए की हमारे शिक्षा जगत में इन जीवन मूल्यों को पाठ्यक्रम में शामिल कर विद्यार्थियों को उनके महत्ता से परिचित कराया जाय। यहाँ इसका उल्लेख करना आवश्यक होगा कि मैकाले ने जो शिक्षा पद्धति हमारे देश में विकसित की थी उसका एक मात्र उद्देश्य यह था कि पढ़-लिख कर अधिकाधिक धनार्जन कैसे किया जाये। यही कारण है कि आज हम शिक्षा पद्धति से राष्ट्र निर्माता के स्थान पर येन-केन प्रकारेण धनार्जन करने वालों की जमात का निर्माण कर रहे हैं। लेकिन इससे ना तो व्यक्ति विशेष का भला हो रहा है ना समाज का और न ही राष्ट्र का। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षण पद्धति में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश कर उसकी गुणवत्ता से विद्यार्थियों को परिचित कराया जाय ताकि हम एक ऐसा राष्ट्र निर्माता तैयार कर सकें जो समाज से जितना लेता हो उससे अधिक देने का भाव उसमें विद्यमान हो।

इस कार्य के अड़चन यह है कि यदि केवल विद्यार्थियों और बच्चों के ऊपर यह जिम्मेदारी सौंपकर हम बड़े वही करते रहेंगे जो अब तक करते रहे थे, तो फिर यह शिक्षा भी पाठ्यक्रम में एक विस्तार मात्र बनकर रह जायेगा। यदि विद्यार्थी पढ़कर आता है कि सत्य बोलना चाहिए और घर में पिताजी से मिलने आने वाले के लिए पिता के आदेश पर उसे कहना पड़ता है कि पिताजी घर पर नहीं हैं विद्यार्थी में जो संस्कार हम डालना चाहते हैं, उसका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। क्योंकि बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही छोटे भी आचरण करते हैं ''महाजनो येन गतः स पन्थाः।'' इसलिए यदि हम इस ज्वलन्त समस्या का कुछ निदान चाहते हैं तो निशिचित रूप से हम बड़ों को भी इसमें सक्रिय भूमिका का निर्वाह करना पड़ेगा।

इसके अलावा हम समाज के सामने यह दिखाने का प्रयास करें कि वर्तमान में जो हमारी जीने कि कला है, उसका भविष्य क्या है, यदि हमारे जीवन मूल्य सिर्फ आर्थिक मूल्य हैं, और हम हजारों काम या इच्छाओं को अपने मन में पाल रखे हैं, तो दिखाना पडेग़ा कि आर्थिक रूप से अत्यधिक समृद्ध व्यक्ति भी अपने को सुखी नहीं मानता यदि उसके जीवन में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश ना हो और यदि प्रणाली को विकसित किया जाय तो व्यक्ति के जीवन जीने की कला में रूपान्तरण सम्भव हो सकता है और वह व्यक्ति सभी मूल्यों का सामंजस्य स्थापित कर अपने जीवन में आनंदित रहते हुए एक समाज को विकसित करने में सहायक हो सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्याओं, बदलते जीवन मूल्यों के समाधान करने कि दिशा में सार्थक प्रयास करने के लिए यह आवश्यक है कि मनोविज्ञान अपने विधि और सम्प्रत्यय के औजारों को पुनः जाँचें-परखें और संस्कृति, समाज के व्यापक और स्थानीय दोनों ही पक्षों का आदर करें। व्यक्ति के लिए शोध से समाज की समझ पैदा करना दुराशा है। स्वीकृत वैज्ञानिक परिपाटी में बदलते सामाजिक मूल्यों का जिस तरह मनोवैज्ञानिकीकरण होता है उसमें समस्याओं से पलायन की गुंजाइस ही अधिक रहती है। परन्तु मनोविज्ञान के साथ हमारी प्रतिबद्धता तथा अनालोचित आस्था हमें सांत्वना देती है।

अब तक विधियों और मापकों ने मनोवैज्ञानिक शोध को सर्वाधिक प्रभावित किया है। साथ ही वैज्ञानिक लगने तथा दिखने की चिंता विषय के ज्ञान पर हावी रही है। अब शायद समस्याओं को अधिक वरीयता देनी होंगी। उनके अनुरूप विधियाँ अपनानी होगी। ऐसा करना अब शायद सम्भव होगा क्योंकि अब मनोविज्ञान को समाज और संस्कृति से परे कोई अलौकिक या अपार्थिव पदार्थ नहीं वरन् उसी की एक रचना स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। चूँकि मनेवैज्ञानिक सत्य निरपेक्ष सत्ता न होकर सापेक्ष सत्य है जिसकी रचना हम अपने निकट स्थित सम्प्रत्ययों और उपायों से करते हैं।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. सत्यपाल : योग विशेषज्ञ एवं प्राकृतिक चिकित्सक, फैमिली बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज नई दिल्ली।
2. डॉ. एच.के. कपिल : आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान, हर प्रसाद भार्गव, आगरा
3. डॉ. अरूण कुमार सिंह : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
4. पातंजलि योगदर्शन- योग विज्ञान एवं भारतीय मनोविज्ञान
5. चाणक्य सूत्र, 4/58
6. विष्णु पुराण, 1/18
7. अथर्व वेद, 3/24/5
8. कामसूत्र, 27
9. मनुस्मृति, 2/2

*****

Psychology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 156-160
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

IMPACT OF SOCIAL MEDIA ON INDIAN WOMEN

*MITHILESH SINGH**

INTRODUCTION:

Now a day's social media has been the important part of one's life from shopping to electronic mails, education and business tool. Social media plays a vital role in transforming people's life style. Social media includes social networking sites and blogs where people can easily connect with each other. Since the emergence of these social networking sites like Twitter and Facebook as key tools for news, journalists and their organizations have performed a high-wire act. These sites have become a day to day routine for the people. Social media has been mainly defined to refer to "the many relatively in expensive and widely accessible electronic tools that facilitate anyone to publish and access information, collaborate on a common effort, or build relationship".

Media plays a vital role in the dissemination of information. It is called the fourth pillar of democratic polity. The role of media is not only limited as information providers, but by gradually shaping public opinion, personal beliefs and even people's self-perception, media influences the process of socialization and shapes ideology and thinking also.

Over the years and especially during the last decade, India has developed a fairly extensive communication infrastructure. The subject of portrayal of women in Indian media has drawn the attention of media critiques in the present times. Women have been portrayed as men would like to see them beautiful creatures, submissive mothers of their children, efficient housekeepers etc. Women's image has gone through several unjust projections at the hands of media.

The Indian television programmes on women are based on the lives and cultures of urban society. In quantity there have been very few, in quality very poor. No programme is concerned with the problems of women in rural areas. The main reason behind this is the commercial nature of Doordarshan or any other private channels. Commercial sponsors and advertisers do not prefer women issue programmes, which they think are not very popular and or not liked by majority audience (Dhar, pattanik, 1996). Indian magazines contain primarily and predominantly volumes of advertisements and sexist writings. According to Guru (1996), vast majority of Indian magazines are known for the portrayal of women as sex objects, consumers and slaves. In today's media women are looked upon as a tool that can help to sell a product. Women and sex are often a great combination when to get a product to come off the shelves. There are many different companies that stretch far and wide to include women and sex in their advertisements.

* *Associate Professor, Department of Psychology, Saltanat Bahadur Post Graduate College, Badlapur, Jaunpur*

Women health is the basis of any society. There can be development in any sphere, politics, economics, and science and so on.., but nothing can be achieved when the core of the society, women's health is neglected. The health of the future generation depends on the health of present women. So this is not a feminine problem, it's a social problem. And media should take the responsibility and real concern over women by looking into their health rather than their skin and beauty.

The internet is one of the greatest inventions in the arena of communication. With the advent of internet, the whole world has become a global village. It has created a virtual world with no boundaries, which gives people ample opportunities to ameliorate both personal and professional relationships across borders. Internet has connected people around the globe. The desire to know what is unknown is indispensable of human nature. It is the desire to know about the people, who inhabit the earth, has aggravated the urge of discovering the untraded path. This has led to the unearthing of the cyber world. One of the benefits which internet has provided to every section of the society is empowerment, including women (Halder & Jaishankar, 2009).

The social networking websites (SNWs) have developed a new arena for socializing. Irrespective of any distinction, women in the society are exulting with this liberation to the fullest. From online shopping to net banking, from e-ticketing to e-tax filling, it has made the life of Indian women easy (Halder & Jaishankar, 2009). It has enabled women to fight for equality even within the confines of their society. They can now share their experiences to the whole world, and this advantage of being able to share their success stories as well as their problems have given them a platform in the global world. In this context, Halder and Jaishankar (2009) have opined: "Most women users avail this new way of socialization as a stress-reliever. Cyber socializing through SNWs help women users to share with like minded friends, their emotional needs, personal problems…" (p. 6)

Along with providing them with a platform to voice their struggles and success in life, it inscribes new spaces of power, which is accompanied with knowledge. Ironically, on the one side, the internet is serving as boon, but on the other side, it has made the life of women insecure due to rising cyber crime in the virtual world. Women of all ages and milieu are in jeopardy with the coming up of internet (Halder & Jaishankar, 2009). While many women are victimized online, what makes Indian women unique? India is predominantly patriarchal and orthodox country and women who are victimized are mostly blamed and online victims are no exception (Halder & Jaishankar, 2011a).

There are instances where marriages of women victims were stopped due to their online victimization. Also, there is less legal protection to them compared to their western counterparts and the Indian women victims do not get adequate solutions for their victimization from the ISPs governed predominantly from a western cultural perspective (Halder & Jaishankar, 2011).

A Conceptual Model of Reasons of Victimization

The Figure 1 represents a conceptual model of reasons of Indian women victimization, online. It could be concluded from the model that various drivers in the form psychological, sociological, computer knowledge, and technological gap are triggering cyber crime through women victimization. It is interesting to find out that due to the following reasons, women are being victimized, and that is leading to cyber crime in many different ways. Another triggering factor which results in cyber crime is through miscreant`s outlook. Thus, it could be traced out that various reasons are making women victimized, which in turn is leading to cyber crime. Similarly a vice versa relationship could be found between cyber crime and miscreants outlook. The conceptual model is explained in detail below.

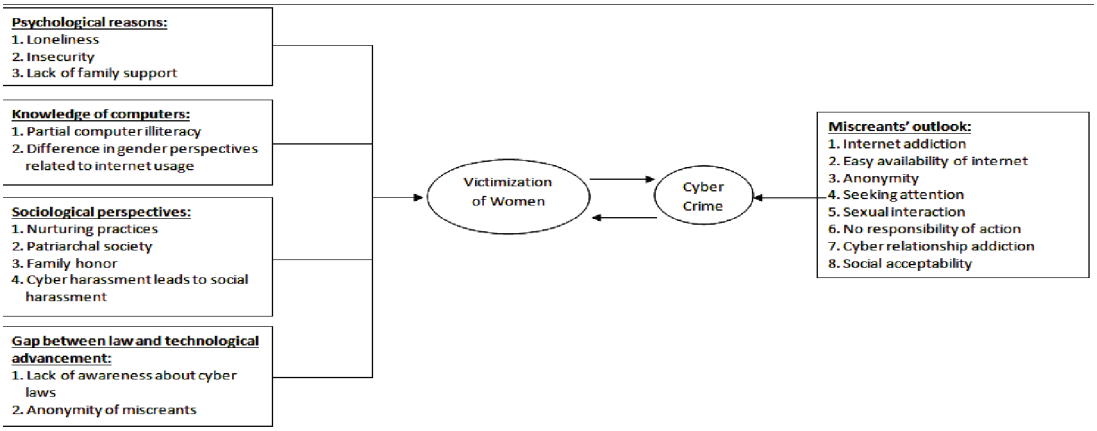

Figure 1: ***Conceptual Model of Reasons of Victimization***

With the rise of urbanization and globalization process, the Indian family structure has changed. Traditionally, joint family system existed in India. Joint family served as the basis of existence for Indian people. However, migration from village to city in search of job has changed the whole scenario. This has led to the nuclear system of family. With the coming up of nuclear family, individual privacy became the prime focus of families. Family members are concerned for their own privacy and the practice of sharing and caring went into background.

Hence, women often face the existential crises. Unable to find answers to their own crisis of life they very often regress in their past, and as a result they encounter feelings of loneliness and depression.

To overcome depression and loneliness women, especially, home makers, tend to find a support outside their family circle. It is because of this reason that they tend to rely on strangers and make them their confidante. With technology, they easily get the chance to interact with them through chat rooms, video chat, instant messages etc., while sitting at home (Halder & Jaishankar, 2011b). In order to come out of the loneliness, they indulge in chatting. Mostly conversation takes place among friends or family members, but sometimes unable to find any close friend, women indulge in chatting with strangers (Halder & Jaishankar, 2011b). Chatting with strangers becomes a source of catharsis.

Parkins (2012) in his study about gender and emotional expressiveness concluded that women are more emotionally expressive than men are. For this reason, it becomes easy for the culprit to win over the confidence of lonely women. In an emotional state, females tend to reveal a lot about their personal information. This is not only restricted to personal information; they even tend to reveal bank details, property details, details about family members, exchange photos, mobile numbers etc. After receiving this type of information, the miscreant can use this information against the woman for causing harm, and it is one of the prime reasons for causing some of heinous cyber crimes. Sometimes it becomes so intense that it may lead to rape, murder, kidnapping etc (Halder & Jaishankar, 2011b). In majority of the cases, these crimes are intentional, but sometimes it may occur due to priming. Finn and Banach (2000) have referred to these kinds of risks in their study. These types of risks develop because of cyber socializing (Halder & Jaishankar, 2009), which sometimes leads to the development of emotional relationship between opposite genders, and women become easy victims of these relations because of their emotional weakness (Whitty, 2005).

Partial computer illiteracy refers to the incomplete or fractional knowledge in handling or operating computer system and its application. Computer literacy does not only include browsing the internet through Google or the use of social networking websites like Facebook, Twitter, or Orkut. Computer literacy should include privacy protection, protection from spy ware, internet viruses like Trojans,

tracking cookies etc. Although there is abundance increase in the number of computer users, sadly a large segment of people are still unaware of the safe and secured usage of computers (Halder & Jaishankar, 2010).

Indian society is predominantly patriarchal in nature, and this is a major reason for women becoming victims of cyber crime (Halder & Jaishankar, 2011b). The cause behind it is that men attach respectability of a family on the honor of the women members, which makes women vulnerable. In India, gender differences cast a tremendous effect on nurturing practices. Where a male child is taught to be tough and robust, a female child is expected to be shy and submissive. Females are taught to shun their voice for the fear of being stigmatized. Because of this type of nurturing practice, they become accustomed of ignoring imperative matters, by saying nothing had happened. Society decides the role of men and women. Men have to be serious, dignified, responsible, rational, unemotional, bold and dynamic, whereas women must be coy, understanding, patient, compassionate, emotional, and must accept sacrifice for her family (Geetha, 2002).

The Centre for Cyber Victim Counseling (CCVC), an NGO, has presented a report on Cyber Victimization in India, in which the centre has taken 73 respondents of which 60 were females and the rest 13 males (Halder & Jaishankar, 2010). These respondents are from different parts of India, who have some knowledge about computer, are techno savvy, and even use social networking sites for hanging out in the virtual world. They have faced different types of victimization such as receiving abusive mails with sexual images, getting threatening mails, profile being hacked etc. However, even among the 60 female respondents not everybody has reported. From the survey, it has been found that only 35% of the women have reported about their victimization, 46.7% has not reported and 18.3% has been unaware of the fact that they have been victimized. This report proves that women prefer not to report about their victimization owing to social issues (Halder & Jaishankar, 2010).

The internet being a virtual world, sexual harassment is prevalent to a large extent. There are several ways, in which online harassment takes place. Sometimes it is verbal and sometimes it is also graphical but in both ways (Halder, 2013), it can be active or passive form of online deliverance. The active verbal form of sexual harassment prevailing in the cyberspace is primarily based on erotic messages sent via e-mail, chat rooms etc. These disgusting messages include mortifying remarks related to gender and sexuality, which are focused in the direction of the victim by the harasser. The comments associated with gender and sexuality is considered offensive only when these remarks are not provoked or approved by the addressee.

Other than the verbal form, the graphical form of sexual harassment can also be both active and passive. The former includes sending pornographic pictures, videos etc. to a particular individual while the latter comprises of online pornography sites where such kind of videos, pictures or movies are published. These forms of harassment can be illustrated to be the basic ways in which individuals are victimized in the virtual world of cyberspace (Barak, 2005).

Society puts the blame mainly on woman, which makes her life more awful. For this reason, a woman abstains from complaining even if she is victimized because once the crime is reported it is flashed through media or internet, and then it becomes more difficult for the woman to live in the society (Halder & Jaishankar, 2011a). She is considered a social stigma by the people (Halder & Jaishankar, 2011b), who inhabit the society.

One of the main reasons behind the increase of cyber crimes against women in India is the less legal protection (Halder & Jaishankar, 2011b). Halder and Jaishankar, in their book "Cyber Crime and the Victimization of Women: Laws, Rights and Regulations", have said that, "The issues of women's rights in cyber space could be contributed largely to the sluggish modes of the governments in executing the gender equality and gender justice promises made by the States in the form of fundamental rights"

(Halder & Jaishankar, 2011b, p. 56). They have also reported in India cyber gender harassment is often seen as ठते ग्स्र्दूंहू ैर्ल्ति ैंसहूठ (ज. 10).

According to Foucault (1980), technologies use the power in a sophisticated and institutionalized way. It allows us to take a full grip of the knowledge of victimization of women. Foucault has pointed out how the power of technology has influenced relationships on the ground of gender and has also lead to the persecution of women. Such abuse of the power of technology and other reasons behind online victimization of women has been delineated in this article. In order to find the relationship among the various aspects of cyber crime a conceptual model has been proposed. Future work could be carried out by empirically testing and validating the model.

REFERENCES

1. Aveseh Asough, SOCIAL MEDIA AND ETHICS - The Impact Media Ethics of Social Media on Journalism Ethics, Center for International (CIME),December 2012
2. Barak, A. (2005): Sexual harassment on the internet. *Social Science Computer Review, 23(1)*, 77-92. doi:10.1177/0894439304271540. Emotional-Expressiveness, final pdf.
3. Finn, J., & Banach, M. (2000). Victimisation online: The downside of seeking human services for women on the internet. *CyberPsychology & ehavior, 3(5)*, 785-796. doi: 10.1089/10949310050191764.
4. Foucault, M. (1980): *Power/knowledge: Selected Interviews and Other Writings, 1972-1977*. New York, NY: Pantheon Books.
5. Geetha, V. (2002): *Gender-Theorising Feminism*. Calcutta: Stree.
6. Halder, D. (2013): Examining the scope of Indecent representation of Women(Prevention) Act, 1986, in the light of Cyber Victimization of Women in India. and-pedagogical-studies-in-stme/halder-choudhuri-v2
7. Halder, D., & Jaishankar, K. (2008): Cyber crimes against women in India: Problems, perspectives and solutions. *TMC Academic Journal, 3(1)*, 48-62.
8. Halder, D., & Jaishankar, K. (2009): Cyber socializing and victimization of women
9. Halder, D., & Jaishankar, K. (2010):*Cyber victimization in India: a baseline survey report*. Tirunelveli, India: Centre for Cyber Victim Counselling.
10. Halder, D., & Jaishankar, K. (2011a): Cyber Gender Harassment and Secondary
11. Halder, D., & Jaishankar, K. (2011b): *Cyber crime and the Victimization of Women: Laws, Rights, and Regulations*. Hershey, USA: IGI Global.
12. Halder, S., & Choudhuri, S. (2011): Computer Self Efficacy and Computer Anxiety of Trainee Teachers: Issue of Concern. *Proceedings of epiSTEME, 4, India*. Retrieved on7th September, 2013, from http:// episteme4.hbcse.tifr.res.in/proceedings/strand-iiicurriculum-

    itc.griffith.edu.au/__data/assets/pdf_file/0006/456459/Paper-6-Parkins-Genderand-

    https://en.wikipedia.org/wiki.Social_media#References
13. Jaishankar, K. (2008): Space Transition Theory of Cyber Crimes. In F. Schmallager, & M. Pittaro. (Eds.), *Crimes of the Internet* (pp.283-301), Upper Saddle River, NJ: Prentice Hall.

    National Law School Journal, 11, 188-218.
14. Parkins, R. (2012): Gender and emotional expressiveness: an analysis of prosodic features in emotional expression. *Griffith Working Papers in Pragmatics and Intercultural Communication, 5(1)*, 46-54. Retrieved from http://cmsuat.

    Representations of Unfaithful Internet Relationships, *Social Science Computer Review, 23(1)*, 57-67. doi: 10.1177/0894439304271536.

    Temida, 12(3), 5-26. doi: 10.2298/TEM0903005H.
15. Whitty, M. T. (2005): The Realness of Cyber cheating: Men's and Women's Victimization: A Comparative Analysis of US, UK and India. *Victims and Offenders, 6(4)*, 386-398. doi: 10.1080/15564886.2011.607402.

*****

Psychology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 161-162
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

A STUDY OF BURNOUT OF SECONDARY SCHOOL TEACHERS IN RELATION TO THEIR JOB SATISFACTION

*Dr. Kamlesh Kumar Pandey**

Burnout has been defined as both a psychological and physical response to workplace stress (Maslach, 1982). Burnount as a syndrome includes three dimensions; emotional exhaustion, depersonalization and reduced feelings of personal accomplishment (Maslach, 1982, 1993). Cherniss (1980) identified that, in the process of burnout, both attitudes and behaviours change in an unconstructive manner in response tow work stress. Cedoline (1982) depicted the physical and behavioural symptoms of burnout as the reluctance to go to work, disappointment with performance, an extension of work problems into the person's home life, and un ultimate feeling of worthlessness.

Burnout occurs at an individual level, burnout is an internal psychological experience involving feelings, attitudes, motives, and expetations; and, it is a negative experience for the individual, in that it concerns problems, distress, discomfort, dysfunction, and/or negative consequences.

Burnout was first defined by Freudenberger (1974) and involves feelings of failure and exhaustion resulting from excessive demands on a person's energy with insufficient reward for the effort. Other researchers have defined burnout as psychological distancing from work (Maslach, 1976). Burnout has been defined as "a syndrome of Emotional Exhaustion, Depersonalization, and Reduced Accomplishment which is a special risk for individuals who work with other people in some capacity" (Leiter & Maslach, 1998). Block (1978). Freudenberger (1983) have identified many of the symptoms associated with burnout, which can be categorized into three groups: physical, psychological and behavioural.

Job satisfaction has been given a lot of attention in literature as it is a subject that affects both the employee as well as the organization. Job burnout has a negative impact on job satisfaction of teachers. teachers job satisfaction and job burnout directly affect the quality of education . Burned out educators are unable to deal successfully with the overwhelming emotional stress of teaching (Brouwers and Tomic, 2000). Lee and Ashforth (1996) found that job satisfaction correlates comparatively highly with all the three burnout dimensions but most highly with depersonalization (27% shared variance), followed by exhaustion and reduced personal accomplishment (20% and 16% shared variance).The aforementioned findings and discussions highlight that burnout and job satisfaction are prominent in to-day s educators and that these two constructs have been linked to each other.

Objective –

The Study aims to investigate the influence of job satisfaction on burnout of higher secondary teachers.

Method

Sample - A sample of 60 male and female teachers were – selected from higher secondary schools Jaunpur district using incidental cum purposive sampling technique. The respondents were in the age

* *Assistant Professor, Department of Psychology, Gramyanchal Mahila Vidyapeeth, Gangapur (Mangari) Varanasi*

range of 35 to 45 years of age. They were matched on SES and inhabitation variables.

Tools –

1. Job Satisfaction – Dr. Pramod Kumar & D.N. Mutha
2. Burnout Inventory – Tript Hatwal

Result and Interpretation

Table-01

Showing Mean, SD and t-values obtained on Burnout Scale

Job Satisfaction	N	Mean	SD	t-Value	Level
High	50	71.00	3.59	4.8	0.01
Low	50	75.30	3.46		

The results displayed by Table-01 clearly revealed the significant influence of job satisfactionon burnout tendency of higher secondary teachers. It is clear from the table that the respondents belonging to low job involved group were found to be more burnout than the High Job satisfaction Group. Meaning thereby that teachers belonging to low Job satisfaction Group were found comparatively more burned out (t=4.8>0.01).

REFERENCES

1. Annepurva & Goankar (1998) : A Study of job satisfaction and life satisfaction among early and middle aged adults, Journal of Community Guidance and Research 15(1), 49-53.
2. Bhatia, B.D. (1982) : Job satisfaction as related to personal variables, Indian Journal of Behaviour 16(5), 21-34.
3. Maslach, C. & Schaufeli, W.B. (1993); Historical and conceptual development of Burnout. In Professional Burnout: Recent Developments in Theory and Research, W.B. Schaufeli, C. Maslach and T. Marek (Eds.) pp. 1-16, Washington, D.C. : Taylor and Francis.
4. Lopez, J.M.O. et.al. (2008) : An integrative approach to burnount in secondary school teachers. International Journal of Psychology and Psychological therapy, 8, 2, 259-270.
5. Brown, J.Y., (1983). A Study of relationship between job stress and Burnout in teachers. Dissertation Abstracts International, 46(3).
6. Dwivedi (1988) : A study of life satisfaction and biographical factors affecting aged persons. Perspectives in psychological researchers 21(1&2), 38-41.

*****

Psychology
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 163-167
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

MATERNAL PARENTING AND ADOLESCENT'S CREATIVITY

*Nilima Srivastava**

The present study is concerned with the role of maternal parenting style in creativity among ninth-tenth class students Parenting refer generally to all the interactions between the parents and their children. Creativity is an ability to produce new and unusual ideas which are goal directed and useful. Pathak (1962) defined creativity as the process of forming ideas, testing these ideas and interpreting the results to others. It is a production of something new, something that never existed before at least for the individual creator. A number of investigators have highlighted the effect of child rearing pattern or parental attiude on cognitive emotional and social development of the child.When a child starts his/ her independent life at certain age, it is an obvious reflection as to how he or she was reared by the parents. The study looked at four key dimension of parenting behaviours : comfort and encouragement, acceptance and protection, fostering autonomy, antipunitive attitude.

There are few studies which have demonstrated that parent child relationship correlate with child's creativity or cognitive development. Syeda(1978) revealed that children of submissive parents were disobedient and irresponsible. They have shown lack of interest or capacity for sustained attention. Stevenson and Baker (1987) found that children of parents who are involved in school activities do better in school than children of parents who are less involved. Similarly, Doxey and Wright (1990) have reported significant positive correlation between child's musical aptitude, cognitive and creative abilities and parental encouragement. Kumar and Sharma (1993) observed that reward and presence of biological mother were powerful determinates of creativity. A healthy familial environment was a significant factor for normal and handicapped, but not for problem children. Lee (2002) found that parents exerted a significant effect on creative thinking of college student.

The foregoing review suggests that parental care and support significantly contribute to the development of creative potential. In another study observed that parental warmth and non- restrictiveness were not reliabley associated with creativity. (Koestner, et. al. 1999) Goble, Moran and Bomba (1991) reported a positive relationship between children's divergent thinking and mother's use of verbal negative feedback.

Thus, finding were quite controversial there is now little doubt that the type of parenting received by a child becomes an important predicator of creative behaviour. Hence the present study has been undertaken. The present study aimed at exploring the difference in using specific dimension of maternal parenting towards high and low creative boys and girls. The moderating effect (Or interaction effect) of gender on parenting- creativity relationship has also been examined.

METHODOLOGY

The Sample : In the present study six hundred student (300 boys and 300 girls) were incidentally sampled from six different schools of Varanasi city. Their educational qualification ranged from grade IX to X. Verbal Test of Creative Thinking (Baquer Mehdi, 1985) was administered on the initial sample of six hundred students. On the basis of their highest and lowest creativity scores, two extreme groups of low and high creative students were selected from the sample of 600 students. Each group consisted

* *Researcher, Department of Psychology, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi, India.*

100 students out of which 50 were male and the remaining 50 were female. The Child Rearing Practices Scale (Mother From) by Pal and Karim (1985) was administered to the mothers of respondents of extreme groups. Thus, two sub sample of 100 high and 100 low creative students and their mothers were drawn for the study.

The Tools: In the present study, the following tests were used:

a. Verbal Test of Creative Thinking (Baqer Mehdi, 1985) was used to measure creativity. It included the four subtests consist of ten questions.
b. Child Rearing Practices Scale (Pal and Karim, 1985) was used in the present study to assess the type of maternal parenting. This Scale has two forms mother form and father form . Each form consist of 30 items related to different types of child rearing practices. Only mother form was used in the study.

RESULTS

In the present study four types of child rearing practices i.e. comfort and encouragement, acceptance and protection, fostering autonomy and antipunitive attitude adopted by mothers of high and low creative children were studied. The dimension of child rearing practices were compared for two creativity groups respectively. The obtained data were analysed in a 2 (groups) x 2 (gender) factorial ANOVA design.

1. Mother's comfort and encouragement, and creativity of their wards : The scores obtained by mothers on comfort and encouragement dimension of parenting ware analyzed for two creativity groups (high and low). The statistics which were used for the analysis of scores are mean, SD and 2 (Gender : boys and girls) x 2 (Creativity groups : high and low) analysis of variance. The obtained results have been displayed in Table 1.1.

Table 1.1 :2 (creativity groups) x 2 (gender) ANOVA summary table with maternal comfort and encouragement as dependent measure.

Source of Variation	df.	S.S.	M.S.	F
Creativity	1	151.38	151.38	30.32**
Gender	1	.08	.08	.02
Gender x Creativity	1	.18	.18	.04
Error	196	978.44	4.99	

**P<.01

From the above table, it is clear that there is a significant difference between mothers of low creative and high creative children in terms of providing comfort and encouragement. But the mothers of boys and girls do not differ significantly on this dimension. The interaction of gender x creativity was found to be non- significant. The mean scores (on this dimension) of the mothers of high and low creative children have been given in table 1.2.

Table 1.2 : Mean comfort and encouragement scores of mothers of high and low creative bys and girls.

Group	Low	High	Total
Boys	12.76 (SD=2.78)	14.56 (SD=.99)	13.66 (SD=2.26)
Girls	12.78 (SD=3.18)	14.46 (SD=1.07)	13.62 (SD=2.51)
Total	12.77 (SD=2.97)	14.51 (SD=1.03)	

An observation of the mean scores reveals that comfort and encouragement by mothers is shown significantly more towards high crative children (mean 14.51) than low creative children (mean 12.77). The mean score (13.66) of mothers of boys and mean socre (13.62) of mothers of girls did not differ significantly. The findings suggest that maternal comfort and encouragement towards the child increases development of creativity in children.

2. Mothers's acceptance and protection, and creativity of their wards : The scores obtained by mothers of low and high creative children on acceptance and protection were analysed in a 2(Gender : boyes & girls) x 2 (Creativity groups : high & low) ANOVA design. The obtained results have been give in table 2.1

Table 2.1 : 2 (creativity groups) x 2 (gender) ANOVA summary table with mothers acceptance and protection as dependent measure.

Source of Variation	df.	S.S.	M.S.	F
Creativity	1	78.13	78.13.	26.87**
Gender	1	.25	.25	.08
Gender x Creativity	1	2.65	2.65	.91
Error	196	569.94	2.91	

** P<.01

The above table shows that there is significant difference between mothers of low creative and high creative children, but mothers of boys and girls did not differ significantly on the aforesaid dimension of parenting. The interaction gender x creativity was found to be non- significant which indicate that the maternal acceptance and protection influences the creativity of the boys and girls in the same way.

The next table (2.2) gives the mean scores on acceptance and protection factors of mothers of low and high creative children.

Table 2.2 : Mean maternal acceptance and protection scores of high and low creative boys and girls.

Group	Low	High	Total
Boys	12.96 (SD=2.36)	14.44 (SD=.95)	13.70 (SD=1.93)
Girls	13.26 (SD=2.06)	14.28 (SD=.94)	13.77 (SD=1.68)
Total	13.11 (SD=2.21)	14.36 (SD=.94)	

Examination of the mean score reveals that acceptance and protection by mothers is shown significantly more towards high creative children (mean = 14.36) than low creative children (mean = 13.11). The mean score (13.70) of mothers of boys and mean score (13.77) of mothers of girls does not differ significantly. The mean scores of mothers (Table-2.2) shows that this type of parenting style is more frequently adopted by mothers of high creative children (mean = 14.36) as compared to the mother of low creative children (mean = 13.11) This pattern of findings suggest that children who receive mother's protection and accepting attitude during their childhood are more likely to develop creativity in later developmental stages.

3. Mother's Fostering Autonomy and creativity of their wards : The mean score (on forstering autonomy) of mothers of high and low creative boys and girls have been displayed in table 3.1.

Table 3.1 : Mean scores obtained by mothers of high and low creative boys and girls on the ' fostering autonomy' dimension of CRPS.

Group	Low	High	Total
Boys	7.48 (SD=1.69)	8.42 (SD=.97)	7.95 (SD=1.45)
Girls	7.12 (SD=1.64)	7.94 (SD=1.25)	7.53 (SD=1.51)
Total	7.30 (SD=1.67)	8.18 (SD=1.14)	

It is clear from table 3.1 that the mean score (7.30) of the mothers of low creative children is less than mean score (8.18) of the mothers of high creative children on fostering autonomy dimension of parenting. In the same way, the mean score (7.53) of the mothers of girls is less than mean scores (7.95) of the mothers of boys on this dimension. To examine whether or not the observed mean differences are statistically reliable, a 2 (creativity group : high & low) x 2 (Gender : boys & girls) ANOVA was done . Results have been presented in table 3.2.

Table 3.2 : 2 (creative groups) x 2 (gender) ANOVA summary table with mother's tendency to foster autonomy as dependent measure.

Group	Low	High	Total
Boys	7.48 (SD=1.69)	8.42 (SD=.97)	7.95 (SD=1.45)
Girls	7.12 (SD=1.64)	7.94 (SD=1.25)	7.53 (SD=1.51)
Total	7.30 (SD=1.67)	8.18 (SD=1.14)	

* p<.05 **P<.01

Perusal of the table 3.2 reveals that the main effect of creativity group is significant at .01 level of significance and gender is significant at .05 level of significance. It is clear from significant result that there is difference between mothers of high creative children and low creative children as well as boys and girls on the aforesaid dimension of child rearing. But there is no interaction between gender and creativity on this dimension of mother's child rearing. The findings suggest that fostering autonomy by mother during the childhood of the child increases the creativity of the children.

4. Mother's antipunitive attitude and creativity of their wards : The scores obtained by mothers of low and high creative boys and girls on antipunitve attitude dimension of parenting were analysed in a 2 (Gender : boys & girls) x 2 (creativity groups: high & low) ANOVA design. The obtained results have been displayed in table 4.1.

Table 4.1 : 2 (creativity groups) x 2 (gender) ANOVA summary table with maternal antipunitive attitude as dependent measure.

Source of Variation	df.	S.S.	M.S.	F
Creativity	1	28.88	28.88	18.88**
Gender	1	5.78	5.78	3.78*
Gender x Creativity	1	1.28	1.28	.83
Error	196	299.88	1.53	

*P<.05 **P<.01

From the above table it is evident that mothers of low creative children and high creative children are significantly different from each other in terms of antipunitive attitude. Similarly the mothers of boys and girls significantly differ from each other on this dimension of child rearing. But the interaction of gender and creativity is not significant on this dimension of mother's child rearing. The mean scores (on antipunitive attitude) of the mothers of high and low creative boys and girls have been shown in table 4.2.

Table 4.2 : Mean maternal antipunitve attitude scores of high and low creative boys and girls .

Group	Low	High	Total
Boys	4.90 (SD=1.23)	5.50 (SD=.79)	5.20 (SD=1.07)
Girls	4.40 (SD=1.49)	5.32 (SD=1.31)	4.86 (SD=1.48)
Total	4.65 (SD=1.38)	5.41 (SD=1.08)	

Examination of the mean scores reveals that the mean score (5.41) on antipuntive attitude of mothers of high creative children is significantly more than mean socre (4..65) on antipunitive attitude of mothers of low creative children. Similarly, the mean score (5.20) of mothers of boys is greater than mean score (4.86) of mothers of girls on this dimension of parenting. Findings suggest that mother's antipuntive attitudes towards the child enhances the creativity of the child.

DISCUSSION AND CONCLUSION

Findings of this study suggested that the specific dimension of maternal parenting have significant effect on the creativity of the adolescents . An observation of the mean scores, it is concluded that those mothers who prefer to provide comfort and encouragement, acceptance and protection to their wrards, and foster autonomy as well as tend to show antipunitive attitude towards their wards are likely to have a more creative child. Such results were also reported by Amabile(1983), Bloon (1985), Doxey and wright (1990) and Lee (2002). This study has also showed that as compared to girls, boys were less punished by mothers and they also got more freedom.

REFERENCES:

1. Amabile, T.M. (1983). The social psychology of creativity. N.Y. Springer-Verlag.
2. Doxey cynthia and Wright, Cheryl. (1990). An exploratory study of children's music ability.

a. Early Childhood Research Quarterly, 5(3), 425-440.

3. Dixon, W.J. and Masssey, F.E. (1957) . Introduction to statistical analysis. New York, Mc Graw Hill.
4. Goble Carla B, Moran, James D. and Bomba Anne K. (1991) Maternal teaching techniques and preschool children's ideational fluency. Creativity Research Journal, 4(3), 273- 279.
5. Koestner, Richard ; walker, Marie and Fichman, Laura. (1999). Childhood Parenting experiences and adult creativity. Journal of Research In Personality, 33(1), 92-107
6. Kumar, Arun and Sharma, Awadh Kishore. (1993). A Study of Creativity among normal, problem and handicapped children in relation to some familial background factorrs. Indian Journal of Behaviour, 17(3), 27-34
7. Lee, Kyung-Hye(2002). Creative Thinking in real world situations in relation to gender and education of late adolescents. Korean Journal of Thinking & Problem Solving, 12(1), 59-70.
8. Mehdi, b.(1985). Manual of verbal test of creative thinking. Sir Sayed Nagar, Aligarh.
9. Pal and Karim (1985). Manual of child Rearing Practices scale Psychological Research cell, Agra.
10. Stevenson, DL and Baker, D.P. (1987). The family school relation and the child's performance, special issue school and development, child Development, 58,5. 1348-1357
11. Syeda A. (1978). The child in the family and its repercussions. Journal of child psychiatry, 11(1), 14-15

*****

Geography
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 168-173
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

बदलापुर विकासखण्ड में ग्रामीण विकास के सामाजिक-आर्थिक स्वरूप

*डॉ. हरिश्चन्द्र सिंह**
*डॉ. पवन कुमार सिंह***

स्थिति एवं विस्तार

अध्ययनित क्षेत्र विकासखण्ड बदलापुर, पूर्वी उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद का पश्चिमी भाग है, जो जनपद मुख्यालय से 28 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। यह क्षेत्र गंगा की सहायक नदी, गोमती एवं पीली नदी के बांगर खादर क्षेत्र में विस्तारित कृषि प्रधान ग्रामीण क्षेत्र में पूरित भारतीय ग्रामीण परिवेश की झलक प्रस्तुत करता है। इस विकासखण्ड दृष्टि से जौनपुर जनपद के बदलापुर तहसील में पड़ता है। इसका भौगोलिक अक्षांशीय विस्तार 25^0 51' 3' उत्तर तथा देशान्तरीय विस्तार 80^0 20' 45' से 82^0 34' 41'' पूर्व है।

इस विकासखण्ड की पूर्व से पश्चिम की दूरी 18 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण की दूरी 14 किलोमीटर है, जो 212.15 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तारित है। अध्ययनित विकासखण्ड बदलापुर का उत्तरी एवं पूर्वी क्षेत्र की सीमा का निर्धारण गोमती नदी द्वारा किया गया है तथा पश्चिमी तरफ जनपद सुल्तानपुर की सीमा तथा दक्षिण की तरफ विकासखण्ड महराजगंज स्थित है। सागर तल से इसकी ऊँचाई 80 से 85 मीटर के मध्य है। इस विकासखण्ड में 82 ग्रामसभाएँ तथा 12 न्यायपंचायत हैं।

वर्तमान सामाजिक-आर्थिक आयामों का ग्रामीण विकास में महत्व

किसी क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में अवस्थापनात्मक सुविधाओं का महत्वपूर्ण स्थान है, यदि समकालिक क्षेत्रीय विकास को विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के आर्थिक और सामाजिक विकास समग्र नियोजन के रूप में परिभाषित करें तो संगत आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों को बल देने वाले स्थानीय मूलभूत ढाँचे का सर्वोत्तम वितरण प्रथम ध्येय हो जाता है। क्षेत्र विशेष में अवस्थापनात्मक सुविधाओं की उपस्थिति विकास स्तर एवं निश्चित उपलब्धता पर उस क्षेत्र का विकास एवं स्वरूप निर्भर है। अतः इस माध्यम से किसी भी क्षेत्र में प्राकृतिक एवं आर्थिक पद्धतियों के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन लाकर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। मानव प्राकृतिक एवं जैविक संसाधनों के अनुकूलतम उपयोगी हेतु अपनी ऐतिहासिक उपलब्धियों एवं परम्पराओं के अनुरूप सदियों से अवस्थाएँ सुविधाओं का विकास करता रहा है। विकसित अधिवासों एवं भूमि उपयोग प्रारूप अधिवासों की पदानुक्रमिक व्यवस्था तथा उसके अनुरूप सेवाओं और सुविधाओं के वितरण का अध्ययन ग्रामीण विकास एवं नियोजन की मूलभूत आवश्यकता है, क्योंकि सामाजिक-आर्थिक अवस्थापनात्मक सुविधाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में यथेष्ठ रूप से विकेन्द्रित करके अर्थतंत्र के विकास एवं उत्थान हेतु एक निश्चित दिशा प्रदान किया जा रहा है। सामाजिक एवं आर्थिक अवस्थापनात्मक सुविधाओं के अन्तर्गत उन स्थानिक तत्वों को सम्मिलित किया जाता है, जो मानव समुदाय के लिए आवश्यक है।

जिसमें मुख्यतः शैक्षणिक एवं पुस्तकालय सुविधाएँ, स्वास्थ्य सुविधाएँ, यातायात संचार एवं मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाएँ कृषि प्रसार एवं विपणन की सुविधाएँ, बीज वितरण, उर्वरक आदि प्रशासनिक सुविधाएँ, विद्युतीकरण एवं पेयजल आपूर्ति सुविधाएँ,

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (भूगोल विभाग), सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर*
** *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (भूगोल विभाग), सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर*

आवास एवं आवासीय लोगों का रहन-सहन का स्तर, जिस क्षेत्र या भाग में इन आधारभूत सुविधाओं का वितरण सन्तुलित होता है। वह क्षेत्र विकास की दृष्टि से उतना ही उन्नत माना जाता है। किसी स्थल का विभेद गुण वहाँ चल रहा कोई काम नहीं, अपितु वह केन्द्रीय फलन होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार द्वारा उपलब्ध सेवाएँ एवं पारम्परिक सेवाएँ, दोनों ही महत्वपूर्ण होती हैं। पारम्परिक सेवाओं के सामाजिक एवं आर्थिक समीकरण व्यवस्थित होता है। जबकि राजकीय सेवाओं (सरकारी) से सामाजिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय अन्तर्सम्बद्धता बढ़ती है, जो ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक तत्व है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्याय में अवस्थापनात्मक सुविधाओं का क्षेत्रीय वितरण एवं तज्जनित अर्थतंत्र से अन्तर्सम्बन्द्ध दर्शाते हुए आर्थिक तन्त्र के स्वरूप निर्धारण में मूलभूत भूमिका का विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् इन चरों के स्तर को एक-दूसरे पर अध्यारोपित करके समग्र विकास स्तर को ज्ञान किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण विकास में सामाजिक तथा आर्थिक आयामों को प्राप्त आँकड़ों एवं व्यक्तिगत सर्वेक्षण तथा अनुभवों के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

शैक्षणिक एवं पुस्तकालय सुविधाएँ

मानव प्रतिभा किसी भी देश का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है, क्योंकि अन्य संसाधनों की संसाधनता भी इसी पर निर्भर है। यदि अन्य संसाधनों की भाँति मानव प्रतिभा को राष्ट्र की प्रगति में हाथ बँटाना है, तो उसका विकास होना चाहिए। मानव की विभिन्न गुणात्मक विशेषताओं में शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा के द्वारा ही मानव अपनी मानसिक क्षमताओं को विकसित करने में सफल हो पाता है। किसी देश के आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सामाजिक एवं आर्थिक विकास के सन्दर्भ में प्रो0 गालब्रेथ ने लिखा है, ''आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए कोई भी वस्तु इतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी सार्वजनिक शिक्षा एवं जनसंख्या ज्ञानवृद्धि, सार्वजनिक शिक्षा नयी विधियों द्वारा ही समाज में प्रचलित रूढ़ियों एवं अवमूल्यों को दूर किया जा सकता है, साथ-ही-साथ इसके द्वारा मानव के दृष्टिकोण में विस्तार नयी तकनीकों का ज्ञान तथा मानव की चिन्तन शैली में भी परिवर्तन होता है।'' शिक्षा के स्तर से ही व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र के जीवन स्तर का पता चलता है। यह भी सत्य है कि कोई भी आर्थिक प्रणाली शैक्षिक शून्यता के वातावरण में स्वयं के भरोसे नहीं टिक सकती है। शिक्षा के सामाजिक परिवर्तन होते हैं, जो आर्थिक विकास का अपरिहार्य अंग है। शिक्षा तथा आर्थिक विकास का धनात्मक सह-सम्बन्ध है। शिक्षा राष्ट्रीय पूँजी निर्माण में सहायक होकर देश के आर्थिक विकास को प्रगति प्रदान करती है। शिक्षा के विकास को ध्यान में रखकर ही नौवीं पंचवर्षीय योजना में 1997-98 के 4716 करोड़ रुपये की तुलना में वर्ष 1998-99 में 7047 करोड़ रुपये का प्राविधान किया गया।

अध्ययन क्षेत्र में 72 प्राथमिक विद्यालय, 14 जूनियर हाईस्कूल तथा 3 हाईकूल तथा इण्टर कालेज हैं, जिसमें सम्बन्धित ग्रामों एवं समीपवर्ती क्षेत्रों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं। न्याय पंचायत स्तर पर शैक्षणिक सुविधाओं की स्थापना में कुछ विषमताएँ हैं। केवटली और सिंगरामऊ न्याय पंचायतों के 4 प्राथमिक, 1 जूनियर हाईस्कूल एवं 1 इण्टर कालेज तथा सिंगरामऊ में 14 प्राथमिक, 5 जूनियर एवं 1 इण्टर कालेज की संख्या लगभग पर्याप्त है और 1 डिग्री कालेज है। न्याय पंचायत अर्जुनपुर एवं जोखापुर में 8 प्राथमिक विद्यालय, 2 जूनियर हाईस्कूल तथा 1 इण्टरमीडिएट कालेज है। न्याय पंचायत गोपालपुर में 7 प्राथमिक विद्यालय, 1 जूनियर हाईस्कूल है। न्याय पंचायत घनश्यामपुर में 5 प्राथमिक विद्यालय, 2 जूनियर हाईस्कूल, 1 इण्टर कालेज और 1 डिग्री कालेज है। न्याय पंचायत शाहपुर में 6 प्राथमिक विद्यालय, 3 जूनियर हाईस्कूल, 1 इण्टर कालेज तथा 1 डिग्री कालेज निर्माणाधीन है, जिसका कार्य तीव्र गति से चल रहा है। न्याय पंचायत तियरा में 6 प्राथमिक विद्यालय, 2 जूनियर हाईस्कूल तथा 1 हाईस्कूल है। न्याय पंचायत फत्तपुर और भलुआही में 6 प्राथमिक विद्यालय, 2 जूनियर हाईस्कूल तथा न्याय पंचायत सरोखन में 7 प्राथमिक विद्यालय, 2 जूनियर हाईस्कूल, 2 इण्टर कालेज तथा 1 डिग्री कालेज है। पूरे विकासखण्ड में 3 डिग्री कालेज कार्यरत हैं तथा 2 का निर्माण कार्य तीव्र गति से चल रहा है।

कार्यरत डिग्री कालेज–सिंगरामऊ, बदलापुर तथा घनश्यामपुर।

निर्माणाधीन–महिला डिग्री कालेज, वरौली एवं डिग्री कालेज, बटाउवीर।

न्याय पंचायत बदलापुर में 6 प्राथमिक विद्यालय, 2 जूनियर शिक्षण संस्थाएँ उपलब्ध हैं।

सारणी क्रमांक- 1

क्र. सं.	न्याय पंचायत	प्राथमिक विद्यालय	जूनियर हाईस्कूल	हाईस्कूल	इण्टर कालेज	डिग्री कालेज
1.	केवटली कला	4	1	–	–	–
2.	सिंगरामऊ	14	5	2	1	1
3.	अर्जुनपुर	8	2	–	–	–
4.	जोखापुर	8	2	1	1	–
5.	गोपालापुर	7	1	–	–	1
6.	घनश्यामपुर	5	2	1	1	1
7.	शाहपुर	6	3	1	1	1 (निर्माणाधीन)
8.	तियरा	6	3	1	–	–
9.	फत्तूपुर	3	2	–	–	–
10.	भलुआही	3	2	1	–	–
11.	सरोखनपुर	7	2	1	3	1.1 (निर्माणाधीन)
12.	बदलापुर खुर्द	6	2	–	–	–
		77				

स्रोत–सांख्यिकीय पत्रिका एवं व्यक्तिगत सर्वेक्षण द्वारा

प्राथमिक शिक्षण संस्थाएँ

जूनियर बेसिक स्कूल–कक्षा 1 से 5 तक के बच्चे जहाँ शिक्षा ग्रहण करते हैं उन विद्यालयों को इस श्रेणी में रखा जाता है। वर्ष 2002-03 में अध्ययन क्षेत्र में जूनियर बेसिक विद्यालय (प्राथमिक) की कुल संख्या 77 थी।

न्याय पंचायत स्तर पर इसकी सर्वाधिक संख्या सिंगरामऊ न्याय पंचायत में 14 है। न्याय पंचायत जोखापुर में 8 है, अर्जुनपुर न्याय पंचायत में भी 8 जूनियर बेसिक विद्यालय तथा गोपालापुर और सरोखनपुर न्याय पंचायत में इनकी संख्या 7 है। न्याय पंचायत शाहपुर, तियरा, बदलापुर खुर्द में इनकी संख्या 6-6 है तथा घनश्यामपुर न्याय पंचायत में 5 तथा केवटली कला में इसकी संख्या 4 है।

सीनियर बेसिक विद्यालय

जहाँ पर कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों को शिक्षा दी जाती है उस विद्यालय को इस श्रेणी में रखा जाता है। 2002-03 में अध्ययन क्षेत्र में सीनियर बेसिक विद्यालयों की कुल संख्या 26 थी, जिसमें सम्मिलित रूप से छात्र-छात्रा अध्ययन करते थे। न्याय पंचायत स्तर पर सिंगरामऊ में सर्वाधिक 5 सीनियर बेसिक विद्यालय हैं तथा न्याय पंचायत शाहपुर तथा तियरा में 3-3 हैं तथा केवटली तथा गोपालापुर न्याय पंचायत में 1-1 सीनियर बेसिक विद्यालय हैं तथा अन्य न्याय पंचायतों में 2-2 सीनियर बेसिक विद्यालय स्थापित हैं।

माध्यमिक शिक्षण संस्थाएँ

कक्षा 9 से 12 तक के बच्चे जहाँ शिक्षा ग्रहण करते हैं, उन विद्यालयों के अन्तर्गत रखा गया है। वर्ष 2002-03 में अध्ययन क्षेत्र में हाईस्कूल की संख्या 8 है। सिंगरामऊ में 2 हाईस्कूल तथा जोखापुर, घनश्यामपुर, शाहपुर, तियरा, भलुआही, सरोखनपुर न्याय पंचायतों में 1-1 हाईस्कूल है।

अध्ययन क्षेत्र में इण्टरमीडिएट कालेजों की कुल संख्या 7 है। न्याय पंचायत स्तर पर सरोखनपुर न्याय पंचायत में सर्वाधिक तीन इण्टर कालेज हैं, जिसमें एक बालिका इण्टर कालेज भी है और न्याय पंचायत सिंगरामऊ, शाहपुर, जोखापुर, घनश्यामपुर में 1-1 इण्टर कालेज हैं।

उच्च शिक्षा (डिग्री कालेज)

बदलापुर विकासखण्ड में कुल उच्च शिक्षा केन्द्र 5 हैं। न्याय पंचायत सिंगरामऊ में उच्च शिक्षा केन्द्र एक है एवं न्याय पंचायत सरोखनपुर में एक उच्च शिक्षा केन्द्र स्थापित है तथा न्याय पंचायत घनश्यामपुर में एक उच्च शिक्षा केन्द्र है और उच्च शिक्षा के दो केन्द्रों का निर्माण कार्य जोरों से चल रहा है, जिसमें एक न्याय पंचायत सरोखनपुर में (बरौली गाँव में) महिला डिग्री कालेज स्थापित है, जिसमें पठन-पाठन का कार्य चल रहा है तथा न्याय पंचायत शाहपुर (बटाऊवीर) में डिग्री कालेज के भवन का निर्माण कार्य तीव्र गति से चल रहा है।

शैक्षणिक विकास के मन्द गति के कारण शिक्षण संस्थाओं की अपर्याप्तता है, साथ-ही-साथ अनेक ऐसे गाँव हैं, जहां पर शिक्षण संस्थाएँ बहुत दूर है, साथ ही परिवहन की सुविधा भी कम है। प्राथमिक स्तर पर छात्रों की संख्या अधिक रहती है, पर हर अगली कक्षा में छात्रों की संख्या घटती जा रही है, जिसका कारण शिक्षण संस्थाओं का दूर होना आदि। अध्ययन क्षेत्र में जो भी शिक्षण संस्थाएँ हैं, उनका स्तर गिरता जा रहा है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता का दिनोंदिन लोप होता जा रहा है। अतः शिक्षा नीति देशकाल और परिस्थितियों के अनुरूप सन्तुलित, नियंत्रित और कठोर होनी चाहिए, साथ ही शिक्षा के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाना सबसे आवश्यक है, तभी आर्थिक विकास को गति मिल सकती है।

स्वास्थ्य सुविधाएँ

स्वास्थ्य जीवन की एक अत्यन्त मूलभूत आवश्यकता है, क्योंकि स्वास्थ्य के बिना सुखी और समृद्धशाली राष्ट्र का निर्माण असम्भव है। उत्तम स्वास्थ्य व्यक्ति विशेष को नहीं, राष्ट्र का धन है। ग्रामीण जीवन कृषि पर आधारित है। रोजी और रोटी का आधार कठोर श्रम होता है। कठोर श्रम के कारण यदि ग्रामीणों का स्वास्थ्य ठीक न रहे तो ग्रामीण विकास की धारा रुक जायेगी, क्योंकि स्वस्थ शरीर से स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है और स्वस्थ मस्तिष्क से सभ्य समाज के निर्माण में अहम् भूमिका निभाता है।

ग्रामीण चिकित्सा सुविधाओं का मुख्य आधार मातृ एवं शिशु के स्वास्थ्य के स्तर को ऊँचा उठाकर समाज में छोटे परिवार की भावनाओं को स्थापित करना है, जिसमें पारिवारिक आय में सभी सदस्यों की आवश्यकता की पूर्ति हो सके। जिसके परिणामस्वरूप सभी लोग स्वस्थ, सुखी एवं प्रसन्न होकर स्वस्थ समाज और शक्तिशाली राष्ट्र की रचना में सक्रिय हो सके।

अध्ययन क्षेत्र में स्वास्थ्य सुविधा की बहुत कमी है। ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का प्रसार अति आवश्यक है। अध्ययन क्षेत्र में पिछले दो दशक में व्यापक प्रसार के बाद भी स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी है। वर्तमान समय में बदलापुर विकासखण्ड में मात्र दो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं–(1) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बदलापुर, (2) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिंगरामऊ एवं प्राथमिक उपकेन्द्रों की संख्या 4 है। इस प्रकार अध्ययनित क्षेत्र में कुल मिलाकर प्राथमिक केन्द्र तथा प्रारम्भिक उपकेन्द्रों की संख्या 6 है, जो कि आवश्यकता से कम है।

सारणी क्रमांक- 2
बदलापुर विकासखण्ड में स्वास्थ्य सुविधाएँ 2001

क्र. सं.	स्वास्थ्य सुविधाएँ	स्वास्थ्य सुविधाओं की संख्या		
		वर्तमान	प्रस्तावित	योग
1.	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	2	4	6
2.	प्राथमिक स्वास्थ्य उपकेन्द्र	4	7	11
3.	प्रसूति गृह	2	3	5
4.	परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्र	6	12	18
5.	आयुर्वेदिक चिकित्सालय	1	1	2
6.	पशु चिकित्सालय	6	16	22
7.	कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र	15	5	20
8.	औषधालय	6	16	22
9.	नर्सिंग होम	1	1	2
10	चिकित्सालय	1	1	2

स्रोत–व्यक्तिगत सर्वेक्षण से प्राप्त।

अध्ययन क्षेत्र में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की संख्या 2 तथा प्रस्तावित स्वास्थ्य केन्द्र 4 हैं तथा प्रस्तावित 7 हैं। अर्जुनपुर, घनश्यामपुर न्याय पंचायत विकासखण्ड के सभी भागों में स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त जिस न्याय पंचायत में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र नहीं है। वहाँ पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, उपकेन्द्र, पशु चिकित्सालय, कृत्रिम सुविधाओं की व्यवस्था की प्रत्येक न्याय पंचायत में होनी चाहिए, आपूर्ति की समस्या को देखते हुए 7 के स्थान से इसे बढ़ाया जाय।

आयुर्वेदिक चिकित्सालय की संख्या बढ़ाकर दो एवं नर्सिंग होम की संख्या बढ़ाकर 2 तथा विकास खण्ड में दो चिकित्सालय की स्थापना का प्रस्ताव रखा गया है, जो सारणी में दर्शाया गया है।

यातायात संचार एवं मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाएँ

परिवहन एवं संचार वाहन के साधन न केवल धरातल के भौतिक स्वरूप में परिवर्तन लाते हैं वरन् वे मानव जनसंख्या की मात्रा, गुण एवं उनकी प्रवृत्ति को भी बदल देते हैं। वास्तव में परिवहन (यातायात) का इतिहास मानव सभ्यता का इतिहास है, क्योंकि ज्यों-ज्यों परिवहन के साधनों एवं विधियों के विकास में प्रगति एवं परिवर्तन होता गया, त्यों-त्यों मानव सभ्यता की सीढ़ियों पर चढ़ता गया। परिवहन के साधन यान्त्रिक साधनों एवं संगठनों का योग होता है, जो व्यक्ति वस्तुओं तथा समाचार को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।

यदि कृषि और उद्योग धन्धे किसी देश के आर्थिक जीवन के शरीर और हड्डियाँ मानी जायें तो परिवहन के आर्थिक ढाँचे की स्नायु प्रणाली मानना चाहिए। परिवहन का इतिहास सभ्यता का इतिहास है। मानव के विचारों को एक-दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य साधन का उपयोग किया जाता है। वह संचार के साधन हैं। आधुनिक युग में यह साधन टेलीफोन, टेलीविजन आदि के रूप में उपलब्ध है।

अध्ययन क्षेत्र में यातायात और संचार के साधनों का अलग-अलग अध्ययन किया जा रहा है। विश्व की वर्तमान विनियम पर आधारित आर्थिक व्यवस्था में परिवहन एवं संचार के साधनों का सर्वाधिक महत्व है। वस्तुओं एवं व्यक्तियों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन को परिवहन कहते हैं, जबकि संदेश विचार आदि के प्रादेशिक आदान-प्रदान को संचार कहते हैं। परिवहन प्रादेशिक कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध का द्योतक है। विशिष्ट आर्थिक तंत्र, परिसंचरण, ट्राफिक तथा परिवहन व्यवस्था ये सभी परस्पर अन्तर्सम्बन्ध होते हैं। परिसंचरण माँग तथा पूर्ति के क्षेत्रों के व्यापार के माध्यम से सम्बन्धित होने से उत्पन्न होता है। ट्राफिक माँग तथा पूर्ति के स्वरूप तथा परिवहन के उपलब्ध साधनों की विशेषताओं पर निर्भर करता है। परिवहन के प्रत्येक साधन की अपनी विशेषताओं तथा क्षेत्रीय विस्तार के स्वरूप होते हैं, जिसे परिवहन जाल कहते हैं। परिवहन उत्पादन का एक महत्वपूर्ण अंग है। परिवहन एक विशेष प्रकार की सेवा अथवा सुविधा प्रदान करता है।

यातायात

किसी भी क्षेत्र में परिवहन की व्यवस्था का सुदृढ़ एवं पर्याप्त होना उसके विकास का सूचक है। आज जहाँ परिवहन की सुविधा अधिक है, वहाँ पर आर्थिक तन्त्र का स्तर भी ऊँचा है, क्योंकि आर्थिक क्रियाकलाप में परिवहन के साधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थतंत्र की गति एवं प्रेरक शक्ति के रूप में परिवहन उत्पादन में सहयोग प्रदान करता है तथा धन का विनिमय, वितरण तथा उपभोग में भी सहयोग देता है। व्यवसाय एवं सभी तरह के विशेषीकरण के लिए परिवहन परम आवश्यक है, क्योंकि किसी क्षेत्र के सम्यक् आर्थिक विकास हेतु उद्योगों का संसाधन उपलब्धता के अनुरूप समुचित वितरण तभी सम्भव है, जब परिवहन तन्त्रों का सुव्यवस्थित जाल बिछा हो।

परिवहन के साधनों के अभाव में अनुकूल प्राकृतिक दशाओं के होने के बावजूद कृषि मात्र 'प्रारम्भिक जीवन पद्धति' हो सकती है, क्योंकि व्यापारिक कृषि हेतु परिवहन आवश्यक है। विश्व को एक सूत्र में बाँधने के लिए व्यापार एवं वाणिज्य की उन्नति हुई। वास्तव में मानव की प्रगति परिवहन के साथ अनुक्रमिक होती है। यही नहीं, परिवहन के द्वारा न केवल सामान एक-दूसरे स्थान को ले जाया जाता है, प्रत्युत् देश की संस्कृति सामाजिक और नैतिक वृद्धि भी प्रत्यक्षतः इसी पर निर्भर करती है। अध्ययन क्षेत्र में परिवहन की दृष्टि से एकमात्र परिवहन स्तम्भ सड़क परिवहन है।

अध्ययन क्षेत्र में सड़क यातायात द्वारा यात्री आवागमन व मालवाहक का कार्य सम्पन्न होता है। विकास खण्ड की अधिकांश सड़क परिवहन निगम की बसें चलती हैं। क्षेत्र में जनसंख्या का बसाव अत्यन्त सघन है। इसलिए राजकीय बसों के अतिरिक्त लगभग सभी भागों पर व्यक्तिगत बसों, जीपों आदि साधनों द्वारा परिवहन कार्य सम्पन्न होता है।

सारणी क्रमांक- 3

बदलापुर विकासखण्ड में विभिन्न मार्गों पर चलने वाली राजकीय बस

क्रमांक	मार्ग का नाम	बसों की संख्या
1.	बदलापुर-सुल्तानपुर-लखनऊ	12
2.	बदलापुर-जौनपुर-वाराणसी	14
3.	बदलापुर-इलाहाबद	7
4.	बदलापुर-शाहगंज	6
5.	बदलापुर-अकबरपुर-टांडा	2

स्रोत : जौनपुर राजकीय रोजवेज कार्यालय के अभिलेख से।

जनपद के अन्तर्गत गोरखपुर, वाराणसी, लखनऊ, इलाहाबाद, फैजाबाद को जाने वाली बसों का आवागमन इसी रास्ते से होकर जाती है।

विकासखण्ड से होकर महत्त्वपूर्ण केन्द्रों को जाने वाली बसों में जौनपुर-शाहगंज, सुल्तानपुर, इलाहाबाद बसों में जौनपुर, शाहगंज, सुल्तानपुर, इलाहाबाद है। बदलापुर मार्ग पर व्यक्तिगत बसों और जीपों का भी आवागमन होता है। राजकीय मार्ग पर राजकीय बसों की संख्या अधिक है।

संचार

सभी दृष्टि से आर्थिक, राजनैतिक एवं बौद्धिक तीव्रगामी परिवहन एवं संवादवाहन के साधनों ने विभिन्न देशों के मानव समूह एवं क्षेत्र की दूरी की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्रान्ति ला दी है। एक प्रकार से व्यवहार में इससे विश्व के देशों को एक नयी दिशा, एक नयी रूपरेखा, एक नया जीवन-दर्शन मिला है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Whyte; R. O. (1982) : The Spatial Geography of Rural Economica, Oxford University Press, Delhi
2. Wateration; A. (1974) : 'A Viable Model for Rural Development' Finance and Development, Dec., pp. 22-25
3. Sen; L. K. (1971) : Et al, Planning Rural Growth Centress for Integrated Rural Development–A Study in Mirvalguda Taluka, NICD, Hyderabad, p. 20
4. Hajim Omar; A. B. (1979) : 'Implementation of Rural Development Institute Building in the Muda Region', in Mokhzami; B.A.R. (ed.), Rural Development in South East Asia, New Delhi
5. Rodinell D.A. and Ruddle, K. (1976) : Urban Function in Rural Development, V.B.A.I.D., Washington, p. 19
6. Safilion, Rotholieed, C. (1980) : The Role of Family in Development, Financve and Development, Vol. 17 (4)
7. Thaha, A. L. and Thaha, M. (1979) : A Manual on Integrated Rural Development for Village, Block and District Planning, Sahada Manziliviyaccil Quilon, Kerala p. 158.
8. सक्सेना; चन्द्र कुमार (1983) : विज्ञान की देन–जनसंख्या विस्फोट, योजना–26, अंक 23-24, जनवरी, पृ0 38
9. Thaha, A. L. and Thaha, M. (1979) : A Manual on Integrated Rural Development for Village, Block and District Planning, Sahada Manziliviyaccil Quilon, Kerala, p. 161.

*****

Economics
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 174-175
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

उत्तर प्रदेश में कृषि विकास की सम्भावनाएँ

*डॉ. नीता सिंह**

प्रदेश में बहुत से किसान कर्ज के बोझ से तले दबे हुए हैं। यह दुःख का विषय है कि खाद्यान्न के माध्यम से दूसरों को भोजन प्रदान करने वाला किसान स्वयं ऋणग्रस्तता तथा भारी ब्याज के बोझ के कारण आत्महत्या के दलदल में धँसता जा रहा है।

- किसानों को कृषि सब्सिडी से सम्बन्धित वस्तुएँ उचित मूल्य व समय पर नहीं मिल पाती हैं। अधिकांश किसानों को कृषि सब्सिडी का लाभ नहीं मिल पाता।
- खाद्य प्रसंस्करण के तकनीकी ज्ञान और दक्षता की कमी। उ.प्र. अन्य प्रदेशों में फल-सब्जियों का सबसे बड़ा उत्पादक है। लेकिन हम मात्र 2% प्रसंस्करण कर पाते हैं। दुनिया के प्रसंस्करण खाद्य बाजार में हमारी हिस्सेदारी मात्र एक से 1.5% है। कारण यह है कि हमारे प्रदेश में फल-सब्जियों का औद्योगीकरण आज तक नहीं हुआ है। हमारे प्रदेश में हर वर्ष लाखों रुपये की फल-सब्जियाँ नष्ट हो जाती हैं क्योंकि उपयुक्त सुविधाओं के अभाव में हम उन्हें सुरक्षित नहीं रख पाते इससे छोटे व सीमान्त किसान अधिक प्रभावित होते हैं।

इसी तरह दूध का सर्वाधिक उत्पादन भारत में होता है। परन्तु प्रसंस्करण मात्र 15% ही हो पाता है। औद्योगिक एवं विकसित प्रदेशों की करतूतों से वैश्विक तापमान बढ़ रहा है जिसका फसलोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

मृदा के अनुचित और अत्यधिक दोहन के कारण मुख्य गौण और सूक्ष्म तत्वों का स्तर दिनोंदिन गिर रहा है। दोहन के मुकाबले आपूर्ति के अभाव में पोषक तत्वों की जमीन में कमी होती जा रही है। आगामी दिनों में भयावह स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। जमीन में सल्फर जिंक व आयरन आदि सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है।

दोषपूर्ण सिंचाई प्रणाली व बढ़ते कृषि रसायनों के प्रयोग से भूमि की उपजाऊपन एवं फसल उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, मौसम की विशेषताएँ और उत्पादकता में कमी जैसी समस्याएँ सामने आ रही हैं।

- पिछले तीन दशकों में गाँवों की खेती योग्य लगभग 20 लाख हेक्टेयर जमीन औद्योगिकीकरण व शहरीकरण की चपेट में आ गयी है जिसका सीधा प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ रहा है।
- खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल कम हो जाने से राष्ट्रीय खाद्य सम्प्रभुता को आयातित खाद्य पदार्थों पर निर्भर करने से सामाजिक संकट उत्पन्न हो सकता है। खेती योग्य जमीन का क्षेत्रफल सीमित है। भविष्य में इसके बढ़ने की सम्भावना नगण्य है। विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना का खाद्यान्न आत्मनिर्भरता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।[1]

कृषि क्षेत्रों में सुधारों के बीज

आने वाले दिनों में सुधारों के कई कदम क्षेत्र में जान फूँकने की तैयारी में हैं। इसके लिए नियम, शर्तों को आसान बनाया जा सकता है या कुछ पाबन्दियों को हटाया जा सकता है। इसके अलावा कृषि कमोडिटी की क्यूबर ट्रेनिंग पर लगे प्रतिबंध को हटाया जा सकता है। गेहूँ और बासमती चावल, दाल और तेल बीज वगैरह पर लगे निर्यात प्रतिबन्ध से कृषि क्षेत्र पर बहुत बुरा असर पड़ता है। कारोबार को बढ़ावा देने के लिए पाबंदियों को हटाने का फैसला लिया गया है।[2]

अधिकारिक आँकड़ों के अनुसार मौजूदा सीजन में केन्द्र सरकार 287.5 लाख टन चावल और 229.54 लाख टन गेहूँ खरीद चुकी है। नतीजन भारतीय खाद्य निगम (एफ. सी. आई.) की खरीद मूल्य में अच्छा खासा इजाफा हो चुका है। मल्टीकमाडिटी एक्सचेंज (एम.सी.एम्स.) के सीईओ जोसेफ मैसी ने बताया कि सरकार चावल, तुअर और उड़द की फ्यूचर ट्रेनिंग

* *प्रवक्ता (अर्थशास्त्र विभाग), मोहम्मद हसन पी.जी. कालेज, जौनपुर, (उ.प्र.)*

की इजाजत दे सकती है। योजना आयोग की एक समिति ने अपनी रिपोर्ट में बताया था कि हाजिर भाव और मूल्य ट्रेनिंग के मूल्य में सीधा सम्बन्ध नहीं होता। शुरुआत में कमोडिटी बाजार नियामक फारवर्ड मार्केट कमीशन (एफएमसी) ने गेहूँ की फ्यूचर ट्रेनिंग को अनुमति दे दी थी। साल 2007 में सरकार ने गेहूँ, चावल और दालों की फ्यूचर ट्रेनिंग पर रोक लगा दी थी ऐसा दबाव में किया गया था। बाद में स्थिति नियंत्रण में आने और कीमतों में गिरावट शुरू होने के बाद केन्द्र सरकार ने कई कमोडिटी के वायदा कारोबार को शुरू करने की अनुमति दे दी थी।[3]

मानसून की शुरुआत के साथ 10 जून, 2009 को भारतीय मौसम विभाग ने संकेत दिये कि इस मौसम के दौरान बारिश अपने दीर्घाबोध औसत (एक फीट) के मुकाबले में देरी के कारण 54% की कमी आ गयी है। इस समय उद्योग पर नजर बनाने वालों की चिन्ता गहरा गयी थी। मार्गन स्टैनली ने अर्थशास्त्री चेतन आह्या का मानसून के बारे में कहना है कि पिछले रुझान को देखते हुए ऐसा लगता है कि अगर वास्तविक बारिश में सामान्य से 7% की कमी आती है जैसा कि मानसून विभाग ने पूर्वानुमान लगाया है तो खरीफ खाद्यान्न के उत्पादन में साल दर साल के आधार पर गिरावट देखने को मिल सकती है।

डन एंड ब्रैडस्ट्रीट की अर्थशास्त्री याशिका सिंह का कहना है कि निश्चित तौर पर मानसून सचमुच में देरी की वजह से कुछ चिन्ताएँ तो हैं जैसा कि हम देख रहे हैं कि तिलहन की फसलों को कुछ नुकसान हो रहा है और अगर मानसूम सचमुच में आता ही नहीं तो कृषि उत्पादन मंद पड़ सकता है और ग्रामीण माँग और भोजन की कीमतों पर इसका बहुत बड़ा असर हो सकता है। विशेषज्ञों को चिन्ता इस बात की है कि यह कमी काफी बड़ी है जिसे शायद बाद में भी पूरा नहीं किया जा सकेगा। एंजेल ब्रोकिंग के मुद्रा एवं जिंस विभाग के सहायक निदेशक नवीन माथुर का कहना है कि निश्चित रूप में हम पीछे होते जा रहे हैं। कुछ क्षेत्रों में हल्की बूँदा-बाँदी ने हमारे पूर्वानुमानों में हल्के बहुत सुधार जरूर किये हैं लेकिन इससे बहुत ज्यादा कोई अन्तर नहीं पड़ रहा है और भारतीय मौसम विभाग के ताजातरीन आँकड़ों ने यह पहले ही साबित कर दिया है कि इस साल इस दिशा में नुकसान हो सकता है और उसका असर फसलों पर भी देखा जा सकेगा। इन सभी बातों का खाद्यान्न की उपलब्धता पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। हालांकि प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने आश्वासन दिया है।

उत्तर प्रदेश एक विलक्षण प्रदेश माना जा सकता है। यहाँ अनेक प्रकार की जलवायु की भाँति उत्पत्ति भी अनेक प्रकार की होती है। अत्यन्त शीत में होने वाले गेहूँ तथा जौ से लेकर अत्यन्त गरमी एवं वर्षा में उत्पन्न होने वाले गन्ना भी यहाँ होता है। कृषि की विभिन्न उपजों की दृष्टि से प्रदेश अजायबघर के समान है जहाँ गेहूँ, चावल, चना, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, मूँग, उर्द, तिल, मूँगफली जैसी खाद्य फसलें गन्ना जैसी व्यापारिक फसलें एवं अन्य प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। प्रदेश में दो मौसम की फसलें होती हैं–रबी की फसल और खरीफ की फसल आदि।[4]

देश में कृषि उपज का सूचकांक जो वर्ष 2007 में (सूचकांक-100) 107.0 था मामूली बढ़कर वर्ष 2014-15 में 123.9 तक पहुँच गया जो 2000-01 में 1968 लाख टन था। 2014-15 में उतार-चढ़ावों के साथ बढ़कर 2527 लाख टन हो गया। विभिन्न योजना काल में कृषि विकास दर निम्नवत् रहा–1950-51 : 3.2, 1956-61 : 3.6, 1961-66 : (-)07 अर्थात् ऋणात्मक स्थिति आँकी गयी। 1969-74 : 3.0, 1974-79 : 4.0, 1980-85 : 6.3, 1985-90 : 3.1, 1992-97 : 4.9, 1997-02 : 2.5, 2002-07 में 2.5 और 2007-12 : 3.8 आँकी गयी। इन आँकड़ों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न नियोजन काल के उतार-चढ़ाव की स्थिति के बावजूद भी कृषि क्षेत्र में हरित क्रान्ति अपनाए जाने से कृषि में पर्याप्त विस्तार की स्थिति पायी गयी है। अन्ततः यह कह सकते हैं कि जनसंख्या की दृष्टि से कृषि क्षेत्र का विस्तार नाममात्र ही नहीं अतः विभिन्न इनपुट के विस्तार की आवश्यकताएँ हैं जैसे–सिंचाई साधनों का विस्तार, उर्वरक, यन्त्रीकरण, भूमि सुधार कार्यक्रम आदि।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाएँ

1. कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
2. Yojana
3. Kurukshetra
4. कुरुक्षेत्र, खाद्य सुरक्षा, सितम्बर, 2015, पृ. 16,17
5. दि गिन्सवी, क्षेत्रीय आर्थिक विकास, केन्द्रीय बुक डिपो, इलाहाबाद, 1966
6. बैनर्जी; स्मृति (1986) : उत्तर प्रदेश के कृषि विकास में क्षेत्रीय असंतुलन, साधु प्रकाशन, वाराणसी।

*****

Economics

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 176-180
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

जैविक कृषि तकनीक की समस्यायें और संभावनायें

*डॉ. गीता सिंह**

हरित क्रान्ति की होड़ में किसान रासायनिक उर्वरकों कीटनाशकों और खरपतवार नाशियों का प्रयोग बहुतायत से कर रहे हैं। फलस्वरूप मृदा की उर्वरता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। उर्वरकों के पर्याय के रूप में जैविक खादों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद आदि का प्रयोग कर सकते हैं। इसमें सबसे सरल और टिकाऊ जैविक खाद का उपयोग है। जैविक खाद के उपयोग से खेती की लागत तो कम होती ही है, साथ ही मृदा की उर्वरा शक्ति को भी अगली फसल के लिये बढ़ाती है।

पृथ्वी मानव व पर्यावरण के बीच मधुर, परस्पर लाभदायी तथा दीर्घायु सम्बन्धों की अवधारणा को आधार बना कर आज की जैविक खेती की परिकल्पना की गयी। समय के बदलते स्वरूप के साथ जैविक खेती अपने प्रारम्भिक काल के मुकाबले अब और अधिक जटिल हो गयी है और अनेक नये आयाम इसके अंग हैं। जैविक खेती का नीति निर्धारण प्रक्रिया में प्रवेश तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उत्कृष्ट उत्पाद के रूप में पहचान इसकी बढ़ती महत्ता का प्रतीक है। विगत दो दशकों में विश्व समुदाय में खाद्य गुणवत्ता सुनिश्चित करने के साथ-साथ पर्यावरण को स्वस्थ रखने हेतु भी जागरुकता बढ़ी है। अनेक किसानों व संस्थाओं ने इस विधा को भी समान रूप से उत्पादन कम पाया है। जैविक खेती प्रणेताओं का तो पूरा विश्वास है कि इस विधा से न केवल स्वस्थ्य वातावरण, उपयुक्त उत्पादकता तथा प्रदूषण मुक्त खाद्य पदार्थ होगा बल्कि इसके द्वारा सम्पूर्ण ग्रामीण विकास की नई स्वपोषित स्वावलम्बी प्रक्रिया शुरू होगी।

जैविक कृषि की अवधारणा—विश्व को जैविक खेती भारत देश की देन है। जब भी जैविक खेती का इतिहास टटोला जायेगा भारत व चीन इसके मूल में होंगे। इन दोनों देशों की कृषि परम्परागत 4000 वर्ष पुरानी है। तथा यहाँ के किसान चार सहस्त्राब्दि के ज्ञान से परिपूर्ण किसान हैं और जैविक खेती ही उन्हें इतने वर्षों से पालती-पोषती रही है। जैविक खेती प्रमुखतया निम्न सिद्धान्तों पर आधारित है।

1. जैविक खेती चूंकि अधिकाधिक बाह्य उपादानों के प्रयोग पर आश्रित नहीं है और इसके पोषण के लिये जल की अनावश्यक मात्रा भी वांछित नहीं है। इस कारण यह प्रकृति के सबसे नजदीक है।
2. पूरी विधा प्राकृतिक क्रियाओं के सामंजस्य व उनके एक-दूसरे पर प्रभाव की जानकारी पर आधारित होने के कारण इससे न तो मृदा जनित तत्वों का दोहन होता है और न ही मृदा की उर्वरता का ह्रास होता है।
3. पूरी प्रक्रिया में मिट्टी एक जीवित अंश है।
3. मृदा में रहने वाले सभी जीव रूप इसकी उर्वरता के प्रमुख अंग हैं।
4. पूरी प्रक्रिया में मृदा पर्यावरण संरक्षण महत्वपूर्ण है।

आज की परिभाषा में जैविक खेती कृषि की वह विधा है जिसमें मृदा को स्वस्थ व जीवित रखते हुए केवल जैव अपशिष्ट जैविक तथा जीवाणु खाद के प्रयोग से प्रकृति के साथ समन्वय रख कर टिकाऊ फसल उत्पादन किया जाता है।

वर्ष 2011 के अनुसार भारत की जनसंख्या 1 अरब 21 करोड़ से भी अधिक है। इतनी अधिक जनसंख्या वाले देश में कृषि प्रणाली में बदलाव एक सुविचारित प्रक्रिया द्वारा होनी चाहिये। जिसके लिये काफी सावधानी और सतर्कता बरतने की जरूरत है। खाद्य, रेशा, ईंधन, चारा और बढ़ती जनसंख्या के लिये अन्य जरूरतों की पूर्ति के लिए कृषि भूमि की उत्पादकता और मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाना जरूरी है।

* *सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा*

स्वतंत्रता पश्चात् खाद्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के लिये हरित क्रान्ति ने विकासशील देशों को रास्ता दिखाया है। किन्तु सीमित प्राकृतिक संसाधनों के बल पर कृषि पैदावार कायम रखने के लिये रासायनिक कृषि के स्थान पर जैविक खेती पर जोर दिया जा रहा है। क्योंकि रासायनिक कृषि से जहाँ हमारे संसाधनों की गुणवत्ता घटती है वहीं जैविक कृषि से हमारे संसाधनों का संरक्षण होता है।

जैविक कृषि से होने वाले लाभ–

- भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है।
- सिंचाई अन्तराल में वृद्धि होती है।
- रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से खेती लागत में कमी आती है।
- फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।
- जैविक खाद का उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार होता है।
- भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ती है।
- भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होता है।
- भूमि के जलस्तर में वृद्धि होती है।
- मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।

तालिका

जैविक प्रबन्धन के अंतर्गत उत्पादन क्षेत्र

क्रम	वर्ष	जैविक प्रबंधन के अन्तर्गत क्षेत्र हेक्टेयर में
1.	**2003-04**	**42,000**
2.	**2004-05**	**76,000**
3.	**2005-06**	**1,73,000**
4.	**2006-07**	**5,38,000**
5.	**2007-08**	**8,65,000**
6.	**2009-10**	**12,07,000**
7.	**2010-11**	**10,85,648**

तालिका

जैविक उत्पादन परियोजनाओं, प्रसंस्करणकर्ता, उत्पादन मात्रा, निर्यात मात्रा एवं निर्यात मूल्य की सम्पूर्ण प्रविधि

क्रम	**अवयव**	**मात्रा/मूल्य**
1.	जैविक प्रमापीकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत स्रोत	757978.71
	पूर्णतः जैविक	327669.74
	परिवर्तन आधीन कुल	1085648.4
2.	जैविक प्रमापीकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत किसानों की संख्या	351297
	पूर्णतः जैविक	246576
	परिवर्तन आधीन कुल	597873
3.	संचालकों की संख्या	2099
4.	प्रसंस्करण कर्ता की संख्या	427
5.	उत्पादक समूहों की संख्या	919
6.	निर्यातकों की संख्या	253
7.	कुल उत्पादन करोड़ में	6.0
8.	निर्यात का मूल्य यूएस मिलियन डालर में	112.0
9.	निर्यात का मूल्य करोड़ रु. में	537.6

तालिका

जैविक प्रमाणीकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत कुल क्षेत्र एवं पंजीकृत किसानों की संख्या

क्र.	राज्य	कुल क्षेत्रफल हेक्टेयर में			किसानों की कुल संख्या		
		जैविक	परिवर्तन आधीन	कुल	जैविक	परिवर्तन आधीन	कुल
1.	आंध्र प्रदेश	10129.11	20838.12	30967.23	9046	22458	31504
2.	अरुणाचल प्रदेश	523.17	1374.33	1897.5	116	590	706
3.	आसाम	1598.18	3510.74	5708.92	479	2768	3247
4.	बिहार	0	1096.3	1096.3	0	2111	2111
5.	छत्तीसगढ़	332.06	112.241	444.301	3	116	119
6.	दिल्ली	77.3	190.4	267.7	4	66	70
7.	गोवा	5947.1	1443.67	7390.77	620	203	823
8.	गुजरात	53596.95	16941.91	70538.88	19352	10213	29566
9.	हरियाणा	3585.16	5387.59	8972.75	1794	3473	5267
10.	हिमाचल प्रदेश	487.09	139.01	576.1	346	833	1179
11.	जम्मू कश्मीर	430.63	182.44	613.77	132	68	200
12.	झारखण्ड	0	0	0	0	0	0
13.	कर्नाटक	16099.06	35369.328	51468.488	6061	26163	3224
14.	केरल	7352.67	7516.67	14869.34	6215	8857	15072
15.	मणिपुर	1247.16	1924.15	3171.31	2066	2901	4967
16.	महाराष्ट्र	105772.62	45295.12	150467	45551	21098	65449
17.	मध्य प्रदेश	378572.26	61952.12	440525	151953	25072	177025
18.	मिजोरम	118002.27	9857.55	27959	14177	13878	28055
19.	मेघालय	1366.01	16771.1	3043.11	823	2685	3508
20.	नागालैण्ड	3091.3	4883.77	52636	3459	15639	19098
21.	उड़ीसा	79086.99	16653.92	41127.92	49523	12605	62128
22.	पंजाब	379.84	4883.77	5263.6	85	2992	3077
23.	राजस्थान	29969.93	11157.99	41127.92	10204	7603	17807
24.	सिक्किम	2872.73	4521.49	7394.22	3130	4697	7827
25.	त्रिपुरा	203.56	77.5	281.06	0000	295	298
26.	तमिलनाडु	3199.44	3543.44	6742.88	206	3465	3671
27.	उत्तर प्रदेश	8665.35	44879.86	53546.2	5518	26458	31976
28.	उत्तराखण्ड	16158.86	14906.75	31065.61	20695	26484	47179
29.	पश्चिम बंगाल	9881.91	5681.14	15563.05			
30.	अन्य	0	0	0	737	2785	3522
	कुल	**757978.71**					

तालिका

जैविक व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न फसल उत्पादों की उत्पादन मात्रा

क्रम	पदार्थ	मीट्रिक टन में उत्पाद मात्रा		
		जैविक	परिवर्तन अपील	कुल
1.	चावल	44335	32354	76690
2.	गेहूँ	6892	15364	22560
3.	अन्य धान बाजरा	67333	63985	131318
4.	दालें	17560	16785	34345
5.	तेल बीज (सोयाबीन)	163185	59647	2228232
6.	कपास	284832	86906	371740
7.	मसाले	17419	20086	37504
8.	चाय/कॉफी	16506	10836	27344
9.	फल सब्जियाँ	194505	538073	732579
10.	औषधीय	129543	58767	188310
11.	अन्य विविध फसलें	8001	25235	33236

तालिका क्रमांक 3, क्रमांक 4, द्वारा जैविक खेती की सफलता स्पष्ट दिखाई देती है।

भारत में जैविक खेती के समक्ष अनेक समस्याएँ हैं–कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए हरित क्रांति को लाया गया लेकिन हरित क्रान्ति के बाद से ही उत्पादन के असन्तुलन, मिश्रित रासायनिक उर्वरकों की निर्भरता, द्वितीयक और सूक्ष्म पोषकों की कमियों में वृद्धि, कीटनाशक के इस्तेमाल में वृद्धि, अवैज्ञानिक जल प्रबन्धन और वितरण, उत्पादकता में कमी के साथ ही उत्पाद की गुणवत्ता में ह्रास, जीन पूल के विनाश, पर्यावरण और प्रदूषण, सामाजिक आर्थिक स्थिति में असन्तुलन की समस्या का सामना किया है। इस समस्या से उबरने और फसल उत्पादन को निरन्तर कायम रखने के लिये जैविक कृषि एक अच्छी पहल है। किन्तु भारत में कम्पोस्ट की कमी, जैविक सामग्री में पोषक तत्वों का अन्तर, कचरे के संग्रह करने और प्रसंस्करण करने में जटिलता, विभिन्न फसलों के लागत लाभदायकता अनुपात के साथ जैविक कृषि के व्यवहारों को शामिल करने में पैकेज का अभाव और वित्तीय सहायता के बिना किसानों को इसे अपनाने में कठिनाई हो रही है।

जैविक कृषि की समस्यायें– जैविक खेती की प्रगति में कई बाधायें हैं–

- खेती की तकनीकों के बारे में जागरुकता का अभाव होना।
- किसानों के पास कम्पोस्ट तैयार करने के लिये आधुनिक तकनीकों के इस्तेमाल की जानकारी के साथ ही उसके प्रयोगों की जानकारी का अभाव है।
- जैविक कम्पोस्ट तैयार करने के बारे में किसानों को समुचित प्रशिक्षण देने की जरूरत है।
- ऐसा प्रमाण मिलता है कि राजस्थान में जैविक गेहूँ के किसानों को गेहूँ के पारम्परिक किसानों की तुलना में कम कीमतें मिलीं। दोनों प्रकार के उत्पादों की विपणन लागतें भी समान थीं और गेहूँ के खरीददार जैविक किस्म के लिये अधिक कीमतें देने को तैयार नहीं थे।
- जैविक पदार्थों का अभाव, उपलब्ध जैविक पदार्थ जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।
- देश में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के खुदरा विक्रेताओं को अधिक लाभ होने और उत्पादकों द्वारा भारी भरकम विज्ञापन अभियान चलाने के कारण भी जैविक सामग्रियों के बाजारों के लिये समस्यायें हैं।

- जागरुकता की कमी।
- अपर्याप्त सुविधाओं का होना।
- वित्तीय साधनों की कमी।
- निर्यात की माँग पूरा न कर पाना।

जैविक कृषि में सम्भावनायें–जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिये भारत में सांस्कृतिक सामाजिक पर्यावरण अनुकूल हैं। भारतीय किसान हरित क्रान्ति के पहले पर्यावरण हितैशी पारम्परिक प्रणाली का अनुसरण कर रहे हैं।

भारत जैसा देश जैविक कृषि उत्पादों के लाभकारी मूल्य, मिट्टी की उर्वरता ओर जल की मात्रा के रूप में प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, मृदा छरण की रोकथाम, प्राकृतिक एवं कृषि जैव विविधता का संरक्षण आदि कर सकता है। भारत में जैविक खेती की संभावनाओं के लिये मध्य प्रदेश एक अच्छी जगह हो सकती है।

भारत के प्रत्येक राज्य व केन्द्रशासित प्रदेश को जारी किये गये मार्ग निर्देशकों और तकनीकी पुस्तिकाओं के आधार पर जैविक खेती पर आधारित कार्यक्रमों को लागू करना चाहिये।

जैविक कृषि स्वास्थ्य और पोषण की दृष्टि से लोकप्रिय है। अधिकांशतः किसानों को जैविक कृषि को अपनाना चाहिये। साथ ही ऐसे किसानों को पर्याप्त प्रोत्साहन की भी आवश्यकता है ताकि उत्पाद की मात्रा एवं गुणवत्ता में वृद्धि की जा सके और कीमतों में कमी लाई जा सके।

भारतीय कृषि ने इकोफॉर्मिंग, जैविक खेती, प्राकृतिक खेती, जैव गति विज्ञान खेती आदि जैसी खेती की अभिनव धारणाओं को जन्म दिया। इन परम्पराओं के कारण हम प्रकृति के निकट पहुँचते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Dhyani, V.C., Mishra, R.D. : (2007) : Dynamic of Weeds and other Management Through Agricultural Science, 77 (5) 314-316.
2. Chaturvedi Sumit, Kaushal Rajesh : An Journal of Functional and Environmental Botany (1) rt-48
3. Bharadwaj, A.K., Bakshi Arun and Mahapatra B.S. (2007) Rural and Agriculture.
4. Sanjay Gandhi Jaivik Udyam, https.//eu.m.wikipedia.org.
5. Crish Pandey, book.add.com.
6. योजना पत्रिका, जनवरी, 2011
7. कुरुक्षेत्र पत्रिका, जुलाई, 2011
8. कुरुक्षेत्र पत्रिका, जून 2014
9. कुरुक्षेत्र पत्रिका सितम्बर, 2015

*****

Economics

Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 181-182
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

ग्रामीण विकास एवं कृष्येत्तर क्षेत्र

डॉ. ओ.पी. दूबे *

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अन्तर्गत रोजगार के अवसर निरन्तर कम होते जा रहे हैं। जबकि कुल जनसंख्या बढ़ने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या का अधिक दबाव बना हुआ है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये रोजगार के लाभप्रद अवसर कृष्येत्तर क्षेत्र के सर्वागीण विकास द्वारा ही उपलब्ध किये जा सकते हैं। बेरोजगारों की बढ़ती हुई संस्था को मुख्यतः नगरों में आधारित उद्योंगों के संगठित क्षेत्र में आत्मसात करने की क्षमता भी सीमित है। कृषि यन्त्रीकरण के कारण प्रतिवर्ष लगभग 10 लाख व्यक्ति कृषि से विस्थापित हो जाते हैं। कृषि जोतों का औसत आकार लगातार गिरता जा रहा है। परिणाम स्वरूप देश के लगभग तीन चौथाई से भी अधिक काश्तकार अपनी आय के स्रोतों को बढ़ाने की आवश्यकता का अनुभव कर रहे हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं से ही हमारी योजनाओं का मुख्य ध्येय ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित करना रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिकाधिक अवसर कृषि के अतिरिक्त ग्रामीण उद्योगों द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण हेतु अपनायी जाने वाली किसी भी व्यूह रचना में सबसे अधिक महत्व अति लघु क्षेत्र को ही दिया जा सकता है। लघु औद्योगिक इकाइयों में 10 प्रतिषत इकाइयां ऐसी है जिनके निवेश की राशि 5 लाख रूपये से भी कम है। लघु उद्योगों द्वारा किये जाने वाले सम्पूर्ण उत्पादन में 70 प्रतिशत उत्पादन इन्ही इकाइयों द्वारा किया जाता है। अतः असमें लगे हुये शिल्पियों के कौशल को विकसित करके ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धन वर्ग का जीवन स्तर ऊपर उठाया जा सकता है।

प्राचीन समय से ही भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्पन्नता का मुख्य कारण ग्रामीण उद्योग एवं शिल्प रहा है। पराधीनता के समय ब्रिटिश हुकूमत द्वारा ऐसी नीतियां बनायी गयी थी जिससे हमारे देष में ग्रामीण उद्योगों और शिल्पों को अत्यधिक आघात लगा था। परिणाम स्व–प ब्रिटिश शासन में ग्रामीण निर्धनता में बढ़ी तेजी से वृद्धि हुयी। भारतीय निर्धनता की प्रवृत्ति का अध्ययन करने के बाद दादा भाई नौरोजी ने यह निष्कर्ष निकाला कि ग्रामीण निर्धनता का मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों का नष्ट होना था। नौरोजी द्वारा निकाले गये निष्कर्षो को ध्यान में रखते हुये राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने गांवों में बढ़ती हुई बेकारी एवं ग्रामीण निर्धनता की समस्या को समाधान हेतु चरखों से एक क्रान्तिशाली माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनरोद्धार के लिये विकास कार्यक्रमों में ग्रामीण शिल्पों एवं उद्योगों को प्रमुखता दी। परिणाम स्वरूप 1956 की औद्योगिक क्रान्ति में यह घोंषणा की गयी कि राष्ट्रीय अर्थव्यस्था के विकास में कुटीर एवं ग्रामीण तथा लघु उद्योगों की भूमिका को भारत सरकार सुदृढ़ करेगी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में बेरोजगारी को भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्या माना गया। इस योजना में इस बात को भी स्वीकार किया गया कि भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में जहां पूंजी की कमी एवं श्रम शक्ति आधिक्य है। वही बेरोजगारी की समस्या का समाधान उत्पादन के ग्रामोन्मुख प्रौद्योगिकी की विकसित ही किया सकता है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुये विशिष्ट अभिकरणों जैसे खादी ग्रामोद्योग बोर्ड, खादी एवं ग्रामीण उद्योग कमीशन, हथकरघा और हस्तशिल्प बोर्ड, रेशम बोर्ड और लघु उद्योग विकास संगठन आदि की स्थापना की गयी। ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक गतिविधियों का विकास करने के लिय ग्रामीण उद्योग परियोजना चलाई गई

* अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, स.ब.पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर

और ग्रामीण विपणन केन्द्रों की स्थापना की गई। इसी को ध्यान में रखते हुये 1970 के दशक में जिला स्तर पर जिला उद्योग केन्द्रो की स्थापना की गई।

भारत में लगभग 6,05,224 गांव हैं जहां पर कृष्येत्तर गतिविधियों के क्षेत्र में अनेक विविधतायें हैं। इसके अतिरिक्त कच्चे माल के अधिग्रहण, उत्पादन की प्रौद्योगिकी और विपरण में भी विविधता है। ग्रामीण उद्योगों और शिल्पियों का पूंजीगत आधार इतना दुर्बल है कि वह आज की उत्पादन की परम्परागत तकनीक अपनाये हुये है। उन्हे कच्चे माल की आपूर्ति के लिये स्थानीय स्रोतों एवं विचौलियों पर निर्भर होना पड़ता है। परिणाम स्वरूप उत्पादन प्रक्रिया अनिश्चित हो जाती है और कच्चे माल की कीमत बढ़ जाने के कारण उत्पादन लागत बढ़ जाती है। परिणाम स्वरूप शिल्पी अपने तैयार माल को लाभप्रद कीमत पर नही बेच पाता। यद्यपि आज सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा अनेक अभिकरण ग्रामीण शिल्पियों एवं उद्योगों से तैयाार माल खरीदने में लगे है परन्तु फिर भी यही देखा जाता है कि ग्रामीण शिल्पी विपणन के लिये विचौलियों पर निर्भर रहते हैं। परिणाम स्वरूप विचौलियों द्वारा आसानी से अवशोषण कर लिया जाता है।

ग्रामीण उद्योगो धन्धों के विकास में संस्थागत वित्त की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में लगे हुये उद्यमियों एवं शिल्पियों की समय-समय पर पर्याप्त वित्तीय सहायता बैंकों के माध्यम से ही उपलब्ध हो। इसके अतिरिक्त बैंको को अपने ऋण देने की प्रक्रिया को सरल बनाना होगा ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में लगे उद्यमी सुगमता से संस्थागत ऋण सुविधा का लाभ ले सके।

प्रायः यह भी देखा जाता है कि बाजार की जानकारी के अभाव में ग्रामीण उद्यमी एवं शिल्पी उपभोक्ताओं की बदलती हुई रूचियों एवं विभिन्न उत्पादों की परिवर्तित मांगों का पूर्वानुमान नही लगा पाते है। परिणाम स्व—प उत्पादित वस्तुओं को बेचने में असमर्थ रहते हैं। इस समस्या के समाधान में ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने वाली बैंक शाखायें महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकती है। यदि इन शाखाओं के माध्यम से ग्रामीण उद्योगों एवं शिल्पियों के बाजार के बारे में निरन्तर जानकारी मिलती रहे तो उपभोक्ताओं की बदलती मांगों के अनुरूप वस्तुओं के उत्पादन में अपेक्षित संशोधन करने में समर्थ हो सकते हैं।

ग्रामीण शिल्पियों के कौशल को और अधिक विकसित करने के लिये जिला उद्योग केन्द्रों द्वारा जो भी प्रयास हुयें है। उन्हे और भी सुदृढ़ और व्यापक बनाने की आवश्यकता है। ग्रामीण उद्योग धन्धों में लगे लोग एक तरफ असंगठित और निर्धन तो है ही दूसरी तरफ उनकी पहुंच भी विकास हेतु आवश्यक स्रेतों तक नहीं है।

उपरोक्त समस्याओं के परिपेक्ष्य में कृष्येत्तर क्रियाकलापों को बढ़ाने हेतु अपनायी जाने वाली किसी भी रणनीति में ऐसे अनुभवी मध्यवर्ती अंभिकरणों की उपादेयता स्वतः स्पष्ट है। जिनको स्थानीय परिस्थितियों की सम्पूर्ण जानकारी है। स्वयं सेवी संस्थायें भी इस भूमिका का निर्वहन करने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में महतवपूर्ण योगदान दे रही है। इसके अतिरिक्त ये स्वयं सेवी अभिकरण ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों को बैंक ऋण उपलबध कराने में सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर रहेगी।

ग्रामीण औद्यीगीकरण की प्रक्रिया को गति देने के लिये उत्पादन के तरीकों में सुधार लाने की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि अधिक से अधिक रोजगार का सृजन करना ग्रामीण औद्योगीकरण की रणनीति का प्रमुख लक्ष्य है। अतः बिना विचार किये हुये आधुनिक उच्च प्रौद्योगिकी को अपनाना उचित नही होगा। क्योंकि उच्च प्रौद्योगिकी पर्यावरण को प्रदूषित करती है तथा श्रमिकों को उत्पादन प्रक्रिया से विमुख कर देती है। यह प्रौद्योगिकी ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाने में सहायक नही होगी क्योंकि यह श्रम की बजाय पूंजी पर आधारित होती है।

अतः ग्रामीण औद्योगीकरण हेतु मध्यवर्ती प्रौद्योगिकी ही उचित हो सकती है। जो लघु उद्योगों के माध्यम से विकेन्द्रीकृत उत्पादन द्वारा रोजगार के अवसरों को बढ़ा सके। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि ग्रामीण औद्योगीकरण हेतु कोई घटिया प्रौद्योगिकी अपनायी जाय। क्योंकि ग्रामोंन्मुख प्रौद्योगिकी का अभिप्राय एक ऐसी प्रौद्योगिकी से है जो ग्रामीण औद्योगीकरण के लिये अपनायी गयी रणनीति के लक्ष्यों के अनुरूप हों।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाएँ

1. Yojana
2. कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
3. Kurukshetra
4. कुरुक्षेत्र, खाद्य सुरक्षा, सितम्बर, 2015, पृ. 16,17

*****

Commerce
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 183-189
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

A STUDY ON CHILDREN'S DEMOGRAPHIC VARIABLES IN FAMILY DECISION MAKING FOR ELECTRONIC GOODS.

*Dr. Sheshpal Namdeo**

Introduction : Children are emerging as the most powerful influencers in the household buying decisions in India, with the proliferation of the media and increased awareness. Those days are gone; when children had a meager say in the household buying decisions, even related to them. Now a day's things have rapidly changed their likes and dislikes are duly taken care of and they are being considered as major participants in household buying decisions. Children are involved in purchase of various products; some directly related to them while others are consumed by members of the family. Parents also seek their advice while buying various household products.

Children have a noteworthy influence in the early stages of the decision making process (Tinson, Nancarrow, & Brace, 2008) (Ahuja, 1993) (Norgaard, Bruns, Haudrup Christensen, & Mikkelsen, 2007). Children nowadays have a significant influence in family decision making, even though most parents do not admit the level of importance they give to their children's opinions in purchase decisions. Children perceive their influence to be greater than what their parents believe; Children overestimate their influence in family decision making while parents underestimate it (Norgaard, Bruns, Haudrup Christensen, & Mikkelsen, 2007).

Literature Review : Relevant studies have been conducted in the area of children's influence on family buying behaviour so that the important variables for the study could be identified and analyzed. Almost all studies on children decision making conclude that children have a noteworthy influence in the early stages of the decision making process (Tinson, Nancarrow, & Brace, 2008) (Ahuja, 1993) (Norgaard, Bruns, Haudrup Christensen, & Mikkelsen, 2007), so the pre-purchase stage, but not necessarily the purchase itself (Ahuja, 1993). This may be because the parent is the actual purchasing agent (considering children have no disposable income) and consequently has the ultimate buying power (Ahuja & Stinson, 1993). Nevertheless, some studies have observed that children have an influence in all three stages in the decision making process (Lee & Beatty, 2002).

Research Methodology : The descriptive as well as analytical research design is adopted for the research. The extensive literature survey was conducted involving a collection of literatures related with the area of research i.e. role of children in buying decision, parent's perception towards children's influence, etc. and it was critically examined and compared for better understanding for setting objectives and formulating hypothesis. The descriptive research is carried out with the specific objectives that have been formed after the exploratory research. The descriptive research includes surveys of the children and their parents of selected towns of Madhya Pradesh.

Sampling : In the present study the description of the sample design is as follows :

* *Faculty, Department of Business Administration, Awadhesh Pratap Singh University, Rewa (M.P.)*

Type of Universe: Finite universe, the number of items is the population of children and their parents in India.

Sampling Unit: Children between the age of 5-19 years and their respective parents have been taken as sampling unit..

Sample Size: Sample size is 400 respondents for the consumer survey which includes 200 children and 200 parents.

Sampling procedure: Two stage sampling has been used to collect data for the study. In first stage from different states of the country have been selected on the basis of convenience. The states of Delhi, Maharastra, Uttar Pradesh, and Madhya Pradesh have been selected and accordingly New Delhi, Nagpur, Allahabad and Bhopal Cities have been identified for survey on the basis of personal acquaintances on access to the respondents and cost of survey were the constraints in other cities. In the second stage 50 children and their parents from each city were surveyed. The stratified sampling has been employed to the respondents, age wise, thus 10 children from five different age groups between 05-19 years from each city were taken. In all 400 respondents 200 children and 200 corresponding parents have been taken.

Sources of Data Collection : While collecting the data every care was taken to maintain its objectivity and accuracy. In this study, both primary data and secondary data sources were used, but the overall dominance remains with the primary data. Hence, for the purpose of gaining maximum possible knowledge related to the study, both the data sources have been duly and optimally used. Thus the data required for the study were collected from both primary and secondary sources.

The study is based mainly on Primary data. The primary data for this research study was collected through two well structured questionnaires. Separate set of questions were prepared for parents and children. All the questions were arranged logically and ambiguous questions were avoided. Copies of both the Questionnaires are enclosed (Appendix I, & Appendix II). The secondary sources of data collection are published reports on consumer survey, articles by columnists in the various magazines, newspapers and research papers published in reputed journals. Research journals like Vikalp, Impact, Advances in Management, Indian Journal of Marketing, Journal of Advertising Research, etc. have been scanned to have an insight into latest developments in the subject in the India.

Tools of Data Analysis : For hypothesis testing, statistical tools are used such as Correlation, ANOVA, and Chi square test, to test the significance relationship between the variables under study.

Objectives :

1. To determine the children's role in family decision making for electronic goods in India.

Data Analysis : To study the role of children, they were asked about their view that do their parents consider their opinion while purchasing consumer electronic products and following responses were recorded :

Table : Children's Influence on family buying decision.

Do your parents consider your opinion in buying electronic items ?		
Response	Frequency	Percent
Never	12	6.0
Rarely	25	12.5
Sometimes	116	58.0
Often	32	16.0
Always	15	7.5
Total	200	100.0

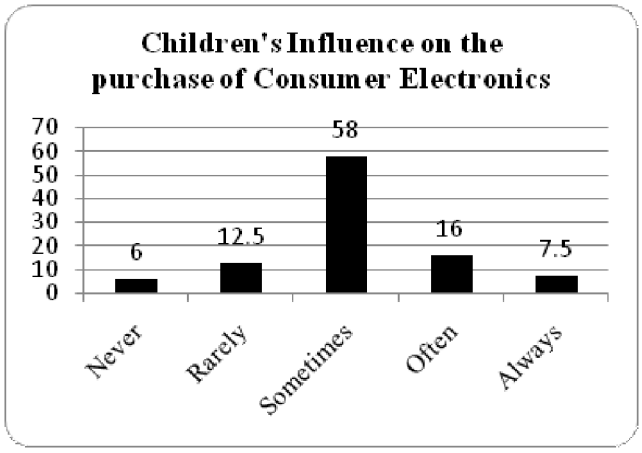

Graph 4.1 : Children's Influence on family buying decision.

It can be interpreted from **Table 4.1** and **Graph 4.1** that according to children their opinion is considered by their parents as 116 (58%) children said that their opinion is sometimes considered by their parents while they purchase consumer electronic products. Nearly 24% (16% Often + 7.5% Always) of children admitted that their influence level is high in purchase decision. Only 18.5% (12.5 Rarely + 6 % Never) of children said that their opinion is not considered by their parents while they purchase consumer electronics. Further it can be noticed that the overall influence of children on the purchase decision is nearly 82%. Though, their level of influence varies. It can be said that children these days are seeking much more attention in purchase decision than what they are getting actually.

Children's role in family decision making for electronic goods with respect to their age.

Further an attempt has been made to analyse the level of influence in purchase decision with respect to children's age and following figures were noticed:

Table 4.2 Children's influence on family buying decision with respect to their age.

Age of the Child Respondent	Do your parents consider your opinion in buy electronic items ?						Total
		Never	Rarely	Sometimes	Often	Always	
5 Yrs to 7 Yrs	Frequency	3	5	27	5	0	40
	%	1.5%	2.5%	13.5%	2.5%	0.0%	20.0%
8 Yrs to 10 Yrs	Frequency	4	7	23	4	2	40
	%	2.0%	3.5%	11.5%	2.0%	1.0%	20.0%
11 Yrs to 13 Yrs	Frequency	0	5	28	6	1	40
	%	0.0%	2.5%	14.0%	3.0%	0.5%	20.0%
14 Yrs to 16 Yrs	Frequency	1	6	21	6	6	40
	%	0.5%	3.0%	10.5%	3.0%	3.0%	20.0%
17 Yrs to 19 Yrs	Frequency	4	2	17	11	6	40
	%	2.0%	1.0%	8.5%	5.5%	3.0%	20.0%
Total	Total	12	25	116	32	15	200
	%1	6.0%	12.5%	58.0%	16.0%	7.5%	100.0%

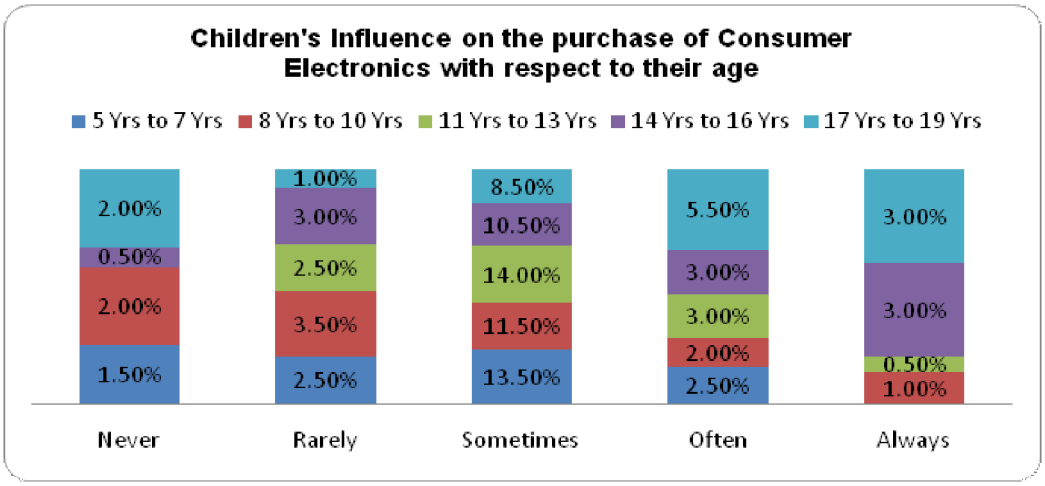

Graph 4.2: Children's influence on family buying decision with respect to their age.

From **Table No 4.2** and **Graph No 4.2**, it can be concluded that higher age group that is 14 – 19 years is getting more attention and their opinion is considered more as compared to other age groups. It is evident that out of 7.5% children whose opinion is always considered in purchasing of consumer electronics highest percentage is of 14 - 16 years and 17 – 19 years i.e. 3% each. It can also be noticed that in this category the 5 – 7 age group is not present at all. Out of 16% of children whose opinion is considered quite often, the highest age group, i.e. 17 – 19 years get highest attention i.e. 5.50%. Among 58% respondents whose opinion is considered sometimes 14% belong to the age group of 11 – 13 years, 13.50% belong to 5 – 7 years age group, 11.50% belong to 8 – 10 years, 10.5% belong to 14 – 16 years, and 8.50% belong to 17 – 19 years respectively.

Children's role in family decision making for electronic goods w.r.t. Gender.

Table 4.3: Influence of Children's on family buying decision of consumer electronics with respect to their gender.

		Do your parents consider your opinion in buy electronic items ?					Total
		Never	Rarely	Sometimes	Often	Always	
Male	**Count**	5	15	66	13	6	105
	%	2.5%	7.5%	33.0%	6.5%	3.0%	52.5%
Female	**Count**	7	10	50	19	9	95
	%	3.5%	5.0%	25.0%	9.5%	4.5%	47.5%
Total	**Count**	12	25	116	32	15	200
	%	6.0%	12.5%	58.0%	16.0%	7.5%	100.0%

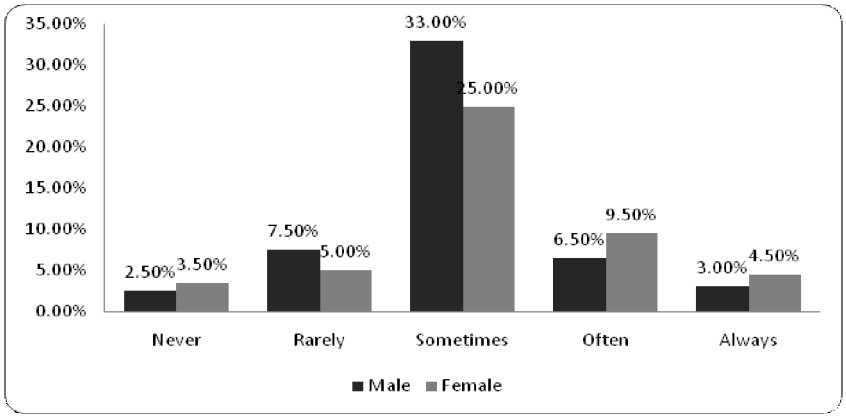

Graph 4.3: influence of Children's on family buying decision with respect to their gender.

From **Table No. 4.3** and **Graph No. 4.3**, its pictorial representation it can be inferred that male children are more influential as compared to female children as among 58% of overall children who responded that their opinion is considered sometimes by their parents while they purchase consumer electronics, 33% are male children and 25% are female children. The same kind of response goes for the category who responded rarely (among 12.5%, 7.50% male children and 5% female children). While in case of the children who responded that their opinion is often and always considered, girl child is the majority. Among 16% children whose opinion is considered very often 9.50% are girl while 6.50% are boys. While in case of 7.5% children whose opinion is always considered 4.5% are girls while are 3% boys. Thus we can say that female child is influencing the decision at higher side of the scale more than male child.

4.1.3. Children's role in family decision making for electronic goods w.r.t. Family Type.

Table No. 4.4 and **Graph No. 4.4** shows the distribution of children response on their opinion on their influence in the purchase decision of consumer electronics with respect family type i.e. joint and nuclear:

Table 4.4: influence of Children's on family buying decision with respect to their family type.

Do your parents consider your opinion in buy electronic items ?

		Do your parents consider your opinion in buy electronic items ?					Total
		Never	Rarely	Sometimes	Often	Always	
Nuclear Family	Count	5	12	63	19	9	98
	%	2.5%	6.0%	31.5%	9.5%	4.5%	49.0%
Joint Family	Count	7	13	53	13	6	102
	%	3.5%	6.5%	26.5%	6.5%	3.0%	51.0%
Total	Count	12	25	116	32	15	200
	%	6.0%	12.5%	58.0%	16.0%	7.5%	100.0%

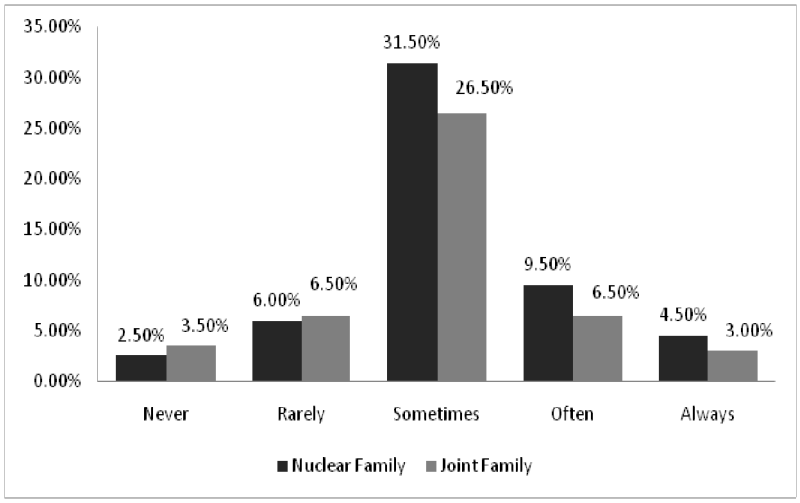

Graph 4.4: influence of Children's on family buying decision with respect to their family type.

From **Table 4.4** and **Graph 4.4** it can be said that there are marginal differences in the opinion of children. Among 58% children who responded that their opinion is considered sometimes 31% children belong to nuclear family while 27% children belong to joint family. On an average we can say that in both types of families children are influencing family decision making on purchase though in higher side of the scale the children who belong to nuclear family are influencing more than the children who are living in joint family.

Findings : To study about the role of children in family decision making children were asked about their view that whether their parents consider their opinion while purchasing consumer electronic products has been found in the study that the overall influence of children on the purchase decision is nearly 82%, though their level of significance varies as per their age and gender.

This high figure of influence of children in family buying decision towards electronic goods may be result of their high involvement in family decision making. Further the involvement of children is measured in this study on the basis of their types of buying preference that whether they select, suggest or have no role on the basis of brand, model and price of the product.

Thus it can be said that children these days are seeking much more attention in purchase decision than what they are getting actually. And for verifying more about this higher influence in family decision making, the role of gender, age of children and their family type is also included. When the data is analysed on the basis of age of children, it has been inferred out that 14-19 years age groups of children are getting more attention and their opinions are considered more as compare to other age group while when it is further analyzed on the basis of gender of children, it has been found that in some occasions the opinion of male child is considered more than that of female child while buying of electronic goods.

Further analysis is done on the basis of family type of children. On this basis it is inferred that, on an average both type of families that is joint or nuclear type, influences the family decision making and purchase of electronic products. While the children who belong to nuclear family influence the family decision making towards electronic products more than that of children also belongs to joint families.

Some important findings of the study are as follows:

1. The overall influence of children on the purchase decision is nearly 82%. Though, their level of influence varies. It can be said that children these days are seeking much more attention in purchase decision than what they are getting actually.

2. It can be concluded that higher age group that is 14 – 19 years is getting more attention and their opinion is considered more as compared to other age groups.
3. Female child is influencing the decision at higher side of the scale more than male child.
4. On an average we can say that in both types of families children are influencing family decision making on purchase though in higher side of the scale the children who belong to nuclear family are influencing more than the children who are living in joint family.
5. In case of electronic items of children, the highest preferences is found in selecting the brand for Video games and Laptops however they are not able to select the products generally used by their own on the basis of its model and price. While in case of household electronic goods, the preference of children is only found in selecting the brand and model of Televisions and Smart Phones.

Conclusion : The study examines the influence of Indian children in the family buying decision buying towards electronic products. As children are increasingly becoming influencers of consumption, the question arises, whether or not the parent succumbs to their requesting through their various influencing techniques.

This research has arrived at the conclusion that there is an important role of children in purchasing decision of electronic product in family and they influence the purchasing decision, as the overall influence of children on the purchase decision is found high in the study. Moreover, the children of higher age group give attention in decision making and their opinion is considered more as compare to other age groups. While as far as gender of the children is concerned the opinion of male child is considered more than that of female child while buying of electronic goods.

Secondly, In context to involvement of children in family decision making towards electronic products, Children are involved in giving their preferences of various products.

REFERENCES

1. Tinson, J., Nancarrow, C., and Brace, I. (2008). Purchase decision making and the increasing significance of family types. Journal of Consumer Marketing, 25, 45–56.
2. Ahuja, R. D., and Stinson, K. M. (1993). Female-Headed Single Parent Families: An Exploratory Study of Children's Influence in Family Decision Making. Advances in Consumer Research, 20, 469-474.
3. Maria Kümpel Nørgaard, Karen Bruns, Pia Haudrup Christensen, Miguel Romero Mikkelsen, (2007) "Children's influence on and participation in the family decision process during food buying", Young Consumers, Vol. 8 Issue: 3, pp.197-216, https://doi.org/10.1108/17473610710780945
4. Christina K.C. Lee, Sharon E. Beatty, (2002) "Family structure and influence in family decision making", Journal of Consumer Marketing, Vol. 19 Issue: 1, pp.24-41, https://doi.org/10.1108/07363760210414934

*****

Commerce
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 190-195
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

A Study on Consumer Attitude Towards Ethics in Advertising Media in Vindhya Region

*Dr. Deepa Saxena**

Introduction

As Vance Packard, The concerns about the advertising ethics has emerged in late 1950s. In his book of 1957, 'The Hidden Persuaders', he passionately condemned the increasing social and psychological control of advertising (Spence and Heckeren, 2005).

Advertisers increasingly try to immerse their commercial messages in other forms of communication (Spence, Van, 2005). The most common criticism of advertising concerns is its effect on consumer beliefs. Because advertising is form of communication. Most criticisms of advertising focus on the deceptive aspects of modern advertising (Velasquez, 2002).

Most advertising nowadays is more truthful than the public realizes. A long ethical tradition has consistently condemned that it violates consumer's rights to choose for themselves (Velasquez, 2002). Many of the advertisers do not behave favourably when ethics is brought into the business. This research was designed to find out the relationship between advertising ethics and individual attitude. The objective was to determine if exposure to different advertisements could cause variation in the attitude of the respondents.

Literature Review :

According to Salomon and Hanson, ethics is all about thinking in terms of the larger picture that ignoring and neglecting one's own interest and well being but overemphasizing one's own interests either. Ethics in any profession is governed by two parameters–the professional code of ethics and the personal grooming and value system of practitioners (Jethwaney, 1999). Ethics demands that one agency should not handle competitive brands, looking at the scope it provides, many agencies are acquiring a corporate character, having a number of independent units and subsidiaries, which do handle competitive brands (Jethwaney, 1999). Gray et al. also described about Social accounting, a concept which describes social and environmental effects of company's economic actions to particular interests groups within society and to society at large, is thus an important element of corporate social responsibility (Gray et.al, 1987).

A proactive consideration of advertising ethics is essential in building consumer trust which will drive consumers to the company's products and services. Marketing which is expected to play the key role, historically focuses on the 4P's: product, price, place and promotion. Advertising ethics is not given much attention in this mix and not until the company must make a reactive response when its advertising offends consumers (Snyder, Wallace S. 2008).

Some advertisers have imposed the ethical guidelines that assure them that the messages they are putting forward are morally sound. Non-governmental organizations are also taking an increasing role.

* *Guest faculty, Department of Business Administration, Awadhesh Pratap Singh University, Rewa (M.P.)*

They have increased their scrutiny around corporate behavior. Through Education and dialogue the development of community in holding business responsible for their actions is growing (Roux, M.)

Much can be done in the area of taste and decency. Although hard and fast standards are not possible, advertisers should themselves be self-restraint and show respect for everyone who view their advertisements (Snyder & Wallace, 2008).

Many studies have shown that consumer's mind is not a blank sheet waiting for advertising but it already engulfs in itself unconscious memories of product purchasing and usage. It can affect the way that in which the credibility of the advertisement can be observed **"personality"** is stable and enduring phenomenon and is also an important variable in this regard. Although it is a subjective matter. What seems one unethical seems ethical to somebody else (Agnes, Berthon, 2003).

Research Methodology :

Research is essential to collect data. Descriptive survey and analytical research methods are used to conduct this study. Information, data, facts and figures are collected, analyzed and presented in a systematic and chronological order. Unclear and ambiguous information is removed from collected information. Only relevant information is taken into consideration for conclusion. Chi-square test was used to analyze the hypotheses.

Sampling :

The working class or considerably high income group i.e. businessmen and service-class people were taken into consideration. They all were literate people. All of the subjects were at least graduate and were working in Rewa (MP). This study utilized field study in demographically small town Rewa. The use of field study has provided good response rates and, although having some flaws, it proved to be a good source of representative data. For convenience the sample has been divided into two broad groups.

First group included the working class involving service class and businessmen and the other group included non-working group consisting of students and women who are either working or whose income are considerably low. A description of the sample is as follows –

S.No.	**Group 1**		**Group 2**	
01	Businessmen	100	Housewives	100
02	Service-class	100	Students	100
Total Respondents		400		

The working class also included the women whose income was less than those of men. Students were also included to rate their belief on a five point scale. About 24 questions were asked from them that were based on Graphic Rating Scale**.**

Measures – All measures were assessed using five gradations. The respondents have to show the degree of their agreement with a statement or disagreement with a statement. These five gradations are as follows -

Strongly Disagree	Disagree	Indifferent (Neutral)	Agree	Strongly Agree

Statements are selected from a large list. Non discriminating statements are dropped. The instructions were printed on the questionnaire. The instructions were read before the respondents and subjects were told to rate their beliefs on their own. Sufficient time was provided to the subjects so that every subject completed all the questions being asked.

After they had finished filling the form, the forms were collected and they were thanked for giving their co-operation. At the end of the session the investigator scrutinized the answer sheets of the subjects. The data obtained from these 400 subjects was scored for the different tests using appropriate procedure.

Types of Data

Data Collection – To insure the representative sample, data were collected randomly during all working hours. Subjects were asked to complete a questionnaire designed to assess attitudes and beliefs about the advertisement seen and were told that their responses were anonymous and confidential, and would only be used for academic research.

Primary Data – The data which is collected for the first time by the respondent himself is termed as primary data, for which questionnaire and schedule are administered.

Secondary Data – The data which is collected by someone else and is used by someone else is termed as secondary data. The sources of secondary data are as, internet, magazine and course books. This source has been frequently used to help the Project Work.

Objectives of the Study

In every country there exists a cut-throat competition among the different companies. This competition is growing day by day. The Indian advertising agencies are also subject to tremendous changes with the opening up of the domestic market to imports. In order to meet the challenges advertisers will have to improve the effectiveness of advertising, increase market orientation and successfully create a good moral environment. Rewa is industrial as well as agricultural area. This study is undertaken with special reference to Rewa City.

1. To analyze whether responsibilities of advertising are beyond job creation with respect to occupation of the respondents.
2. To analyze whether the business can be both ethical and profitable with respect to Occupation of the respondents"
3. To analyze whether advertising shows an accurate view of reality".
4. To analyze whether ethicality of an advertisement affects the credibility of the advertisement."

Hypothesis –As there are two groups of respondents working and non-working. Their perceptions, attitudes, personality and consumption pattern differ to a large extent from each other. What working people say is important for the work culture, may be totally discarded by the non-working group. There may be similarity in the responses or may not be so.On the basis of reviewed literature and logical reasoning, the following hypothesis were formulated for the present study. All the hypothesis are null.

H_1 - ***There is no significant difference between the responses of working class and non-working class regarding the statement, "***Responsibilities of advertising are beyond job creation as they do not are too much concerned with making money."

H_2 - ***There is no significant difference between the responses of working class and non-working class regarding the statement, "***The business can be both ethical and profitable.*"*

H_3 - ***There is no significant difference between the responses of the two groups regarding the statement,* "Advertising shows an accurate view of reality".**

H_4 - ***There is no significant difference between the responses of the two groups regarding the statement,* "**Ethicality of an advertisement affects the credibility of the advertisement."

HYPOTHESIS : 1

H0: "Advertising has responsibilities beyond job creation"

Table-1

	Mean	median	Standard Deviation	X^2 Value
Group 1	40	41	14.440	7.18
Group 2	40	38	5.431	

Source: Personal survey

Total value of x^2 for 4 degrees of freedom at 5 percent level of significance is 9.488. Calculated value = 7.18 is less than the table value. Hence the hypothesis is accepted. We can conclude that there is no significant difference between the opinions between working and non working group regarding the first statement, "Business has responsibilities that go beyond job creation."

HYPOTHESIS: 2

H0: "It is possible for a business to be both ethical and profitable."

Table-2

	Mean	Median	Std. Dev	Chi Square test
Group 1	40	36	12.083	12.13
Group 2	40	39	6.7823	

Source: Personal survey

Total value of x^2 for 4 degrees of freedom at 5 percent level of significance is 9.488. Calculated value= 12.13 is greater than the table value. Hence the hypothesis is rejected. We can conclude that there is significant difference between the opinions between working and non working group regarding the second statement, "It is possible for a business to be both ethical and profitable." Hence the result does not support the hypothesis and we can say that it is possible for a business to be both ethical and profitable.

HYPOTHESIS: 3

H0: "Advertising shows an accurate view of reality."

Table-3

	Mean	Median	Std. Dev	Chi Square test
Group 1	40	45	14.422	4.76
Group 2	40	39	13.171	

Source: Personal Survey

Total value of x^2 for 4 degrees of freedom at 5 percent level of significance is 9.488. Calculated value = 4.76 is less than the table value. Hence the Hypothesis is accepted. We can conclude that there is significant difference between the opinions between working and non - working group regarding the third statement, "Advertising shows an accurate view of reality." Hence the result does not support the hypothesis. It is unreasonable to separate the economic and social impact of advertising and while influencing both these factors it is somewhat difficult to remain fixed on ethical issues.

HYPOTHESIS: 4

H0: "Ethicality of advertisement has any effect on the credibility of the advertising."

Table-4

	Mean	Median	Std. Dev	Chi Square test
Group 1	40	45	15.858	20.67
Group 2	40	39	9.975	

Source : Personal Survey

Total value of x^2 for 4 degrees of freedom at 5 percent level of significance is 9.488. Calculated value= 20.67 is greater than the table value. Calculated value of x^2 is much higher than this table value which means that the calculated value cannot be said to have arisen just because of chance. It is significant. Hence the hypothesis does not hold good. We can conclude that there is significant difference between the opinions between working and non-working group regarding the statement, "Ethicality of an advertisement has any effect on the credibility of the advertising." Hence the result does not support the hypothesis.

Findings :

1. Upon asking the very first question that was, whether "Advertising has responsibilities beyond job creation" both working and non-working group both perceived that advertising creation does not carry the responsibility to give employment to them. But it is responsible to many other areas like protecting the interests of the consumers, healthy portrayal of women, not targeting children and vulnerable groups for making the sale of the product shoot higher which are not made for them.
2. When second question was put forward to them which was "if it is possible for a business to be both ethical and profitable." This statement required respondents to rate their beliefs about the statement. The chi-square value for this statement is equal to 12.13. The respondents answered that the business that sidetracks the well being of the society can't be successful. Short-term success can be got from evil practices of the advertising.
3. For the statement whether "Advertising shows an accurate view of reality" the respondents answered that some of the advertisements portray the real life needs and motivations and the respondents were able to name a few of them. Like some years ago, there was no facility like that of core banking, money transfer etc. When the respondents were able to see the advertisements of the financial services like that of UTI, ICICI or Visa Debit card they feel that they have something to do with their many financial problems. Therefore most of the respondents were agreeing that advertising shows an accurate view of reality.
4. For next question, there was no significant relationship between ethicality and credibility of the advertisement. Most of the respondents agreed that it is wise to make judicious use of ethics in their advertisement.

Conclusion :

Advertising must be persuasive and credible, and as this study believes and urges ethics to build brand loyalty and trust. Ethics is generally adoption of morally right method or process or means towards the achievement of the right ends. It includes techniques of judging and decision making as well as implements social control and personal development. It is a tool, an instrument. It can be used well, and it can be used badly. Ethics guides the consumers to make their purchases when they are in

moral dilemma. Consumers have been faced with ethical dilemmas and many a times it affects the purchase behavior of the consumers and the purchase of a particular brand.

The findings of the research indicate a strong effect of ethical judgment of an advertisement on the key consumer response variables like purchase intention, attitude towards the brand, and the attitude towards the advertisement. The use of potentially unethical advertisements may have negative ramifications for advertisers.

Following are the some broad remedies to assist in the paradigm shift for the advertising industry. First, some broad recommendations are as follows :

1. Advertising agencies should give employment to the people who are familiar with the ethical issues of advertising to provide input on advertisements which may be viewed as potentially offensive to the moral values of the society.
2. Advertising agencies can transform negative images to ones that can boost up its credibility.
3. When there is so much corruption everywhere, what advertisers can do is to try to create a friendly environment so that their reputation can be maintained in a positive manner as well as their credibility among the people.

Limitations –

1. A lot of problem was faced in gathering the responses from housewives. They were least interested in responding to the questionnaires.
2. There was a large time lag between the handling over of the questionnaire to the respondents and the receiving of the same.
3. Very small number of the respondents was not authentic.
4. Since the respondent's feedback is the main source of primary data, their misrepresentation and concealing of facts may be the source of limitation.

REFERENCES

1. Jethwaney, Jaishri N. (1999). Advertising Management, New Delhi: phoenix Publication, p. 213, 1999.
2. Gray, R.H., Owen D.L. and Maunders K.T. (1987). Corporate Social Reporting: Accounting and Accountability. Hemel Hempstead: Prentice Hall, p. 180.
3. Snyder, Wallace S. (2008). "The Ethical consequences of your Advertisement matter", Journal of Advertising Research, Vol.48, No.1, pp.8-9.
4. Roux, M. "Climate Conducive to Corporate Action: 1 All round Country edition." The Australian, Canberra, A.C.T., p.14
5. Snyder, Wallace S. (2003). "Ethics in Advertising: The Players, the urles and the scorecard." Business & Professional Ethics Journal, 22, (1), p. 37-47.
6. Agnes Nairn, Pierre Berthon. (2003). Creating the Customer: The influence of Advertising on Consumer market Segments-evidence and Ethics, Journal of Business Ethics, 42 (1), p. 83-99.

*****

Commerce
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017 : 196-201
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

A Study on the Role of Labeling on Packaging upon Consumer Preferences Towards Confectionary Products": An Analytical Study

*Puneet Awasthi**

Abstract :

The packaging is the most important factor as the consumer buying behavior is dependent on the packaging and on its features. Packaging is the silent sales man; packaging is defined as containers for a product encompassing the physical appearance of the container including the design, color, shape, labeling and materials used. Packaging has a multidimensional role it provides information of the product and company, a method to communicate with consumers and protection to the quality of products. Packaging is the part of product whereas labeling is the part of packaging which actually provides information about the ingredients of the products, warning and safety, date of manufacturing, date of expiry, price, sales tax, customer care number, e-mail and company profile. Labeling is the main source of information this study is focused on the role of labeling on packaging upon the consumer preferences towards confectionary products. Consumers are becoming increasingly health conscious, so it is essential to display contents of the product especially in the case of food products as most people prefer to avoid calorie products.

The aim of this article is to study the role of labeling on packaging upon consumer buying behaviour. The basic purpose of this study is to find out how such factors are behind the success of packaging. The research is based in four districts of Madhya Pradesh (India).

Key words: *Packaging, labeling, Consumer Preference, Confectionary products.*

INTRODUCTION :

Packaging can be defined quite simply as an extrinsic element of the product (Olson and Jacoby (1972)) an attribute that is related to the product but does not form part of the physical product itself. Labeling is a tool of communication which tells the product features.

Role of labeling on consumer buying behavior is dependent (consumer buying behavior) and independent variable (color, image, material, front size) those factors are predictors to promote the sale volume and gradually increase impulse buying. To evaluate the response of the consumer they used the random research as questionnaire (Arens, 1996). In recent years the marketing environment has become increasingly complex and competitive.

A product's packaging is something which all buyers experience and which has strong potential to engage the majority of the target market. This makes it an extremely powerful and unique tool in the modern marketing environment. In addition to its benefits in terms of reach, some marketers believe that packaging is actually more influential than advertising in influencing consumers, as it has a more

* *Research Scholar,Department of Business Administration, Awadhesh Pratap Singh University, Rewa (M.P.)*

direct impact on how they perceive and experience the product. Nowadays, the role of packaging has changed due to increasing self-service and changing consumers' lifestyle. Firms' interest in package as a tool of sales promotion is growing increasingly.

Package becomes an ultimate selling proposition which has the function as stimulating impulsive buying behavior, increasing market share and reducing promotional costs. A unique packaging approach can be a powerful advantage in drawing consumer's attention and drive impulse purchases especially with the move to self-service retail format; packaging enhances its primary characteristic as "salesman on the shelf" at the point of sale. Furthermore, packaging is the second-highest cost factor in food marketing (after labor), according to the United States Department of Agriculture. The reason many companies invest massive amount of money on packaging because they are well aware that a stunning packaging will draw consumer's attention and is capable of turning the buyer on or off. Therefore, it could be surprising to learn how much packaging is adding to a product's value.

Over recent years, consumers are getting more health-conscious; a greater awareness of healthy eating lifestyle is changing the shopping habits of consumers and they are now paying more attention to read the nutrition labels and seeking out products with health benefits. The conclusion of an online study conducted by National Starch was that adding one or more health claims on health products could boost up the sales by 20 percent. Therefore, to ensure success, marketers must not only optimize the visibility of the packaging but also ensure that the packaging is able to communicate the specific benefits of the product and facilitate the consumers in product selection within a variety of brands available in the market.

LITERATURE REVIEW :

According to Parmar (1998) pointed out the factors which attract the consumer towards purchase. He says labeling is a tool of communication which tells the product features. Role of labeling on consumer buying behavior is dependent on the factors which are predictors to promote the sales volume and gradually increase impulse buying. To evaluate the response of the consumer they used the random research as questionnaire. They perceive that consumers look at the product first and then used. They also mentioned that consumer perceive labeling as a separate part then product. Especially consumer is likely to prefer the goods on the basis of labeling factor.

Singh (2006) says about the packaging that it is an integral part of brand communication and a promotional tool and provides the brand attributes & value to the consumer and he developed a framework for it and divided it into four sub parts as packaging design which attract the consumer, communicate, convenience in handling. Sale ability of product depend upon the how much comfortable the product in use. Labeling is a connection which builds up between the customer and the product features as product form. They mentioned that label is a cause of consumer attraction rather than environment factors.

According to Agata (2008) the study shows the consumer buying behavior in case of different elements which directly affects it. Actually the buying decision is related to the social, demographic classes in a society. Label itself is a part of the product which adds up the value of the product. Marketing mix and the cultural difference put impact on purchasing decision. To measure the responsiveness of the assumptions data is analyzed by the questionnaire and results are highly in favor of those factors.

According to Rita Kuvykaite (2009) the study reveals the self-service and changing consumers' lifestyle having the ultimate effect on consumer choice. Today market is closed so the pack is necessity to gain a competitive edge. Visual and verbal both are the important part of the consideration as involvement level, time pressure and most important is individual characteristics as per the study.

RESEARCH METHODOLOGY

Research design specifies the methods and procedures for collection of requisite information and its measurements and analysis to arrive at certain meaningful conclusion at the end of the proposed study. This research was conducted with the help of questionnaire . the study is descriptive as well as exploratory.

OBJECTIVES OF THE STUDY

- To determine the role of labeling on the packaging and consumer preferences towards confectionery products with respect to demographic factors such as age, gender, and income.

RESEARCH DESIGN

In this research study, the description of the sample design is as follows:

1. **Type of Universe:** For the study 4 cities have been selected, the number of respondents is population of 4 district (Rewa, Singrauli, Bhopal, Indore) of Madhya Pradesh.
2. **Sampling Unit:** The respondents for research have been selected through 2 stage sampling Unit. First stage sampling unit constitute stratified convenience sampling of the municipal areas of 4 district of Madhya Pradesh i.e. Rewa, Singrauli, Bhopal, Indore. The second stage sampling unit constitutes the stratified sampling using age group strata of the consumers of the areas selected at the first stage.
3. **Sample source:** The population of the municipal areas 4 district (Rewa, Singrauli, Bhopal, Indore) of Madhya Pradesh has been selected through stratified convenient sampling using age group strata.
4. **Sample size:** The sample size of 400 respondents has been taken and sample size of retailers was 40 from each municipal area of districts.
5. **Parameters of interest:** In determining the sample design, one must consider the question of specific population parameters which are of interest. For instance, effort was made to explore consumer buying behavior towards packaging of the confectioneries products and proper examination of various factors concerned.
6. **Sampling procedure:** The research needs to decide the type of sample which will be used i.e. techniques to be used in selecting the respondents for the sample. This study, has 2 stages sampling. First stage sampling constitutes stratified convenient sampling of the municipal areas of 4 district of Madhya Pradesh i.e. Rewa, Singrauli, Bhopal, Indore. The second stage sampling constitutes the stratified sampling using age group strata of the consumers of the areas selected at the first stage. It is geographical area from where sample have been collected for the study. The population of the municipal areas 4 district (Rewa, Singrauli, Bhopal, and Indore) of Madhya Pradesh has been selected through stratified convenient sampling using age group strata. The 10 retailers from each sample area (Rewa, Singrauli, Bhopal, and Indore) have been selected on the basis of convenient sampling. The respondents were carefully selected so that there is an equal representation of responses from each stratum. The sample size of 100 consumers has been taken from each sample area.
7. **Collection of Primary data:** The primary data are those which are collected afresh and for the first time, and thus happen to be original in character. In this research study, primary data is collected through structured questionnaire.
8. **Collection of secondary data:** Relevant secondary data have been used for the purpose of the extensive study and for point of references as per the requirement. Secondary data was obtained from different sources like published reports like; the market for confectioneries products in India by The National Confectioners Association (N.C.A.), relevant articles of

various newspapers like; Economic Times, Times of India, Business standard, The Hindu etc. Various research journals/magazines published from reputed institutes/publishers have also been as source of secondary data for the study (Indian Journal of Marketing, Advances in Management, Pitch, 4P'S of marketing etc.) .

9. **Scaled questions:** Responses are graded on a continuum (example: rate the appearance of the product on a scale from 1 to 5, with 5 being the most preferred appearance). Example of type of scale includes the Likert scale.

Statistical Tools Used: ANOVA – test is used as a test to verify the different objectives.

Hypotheses:

The Hypotheses of the entire study were designed as follows:

H1:- There is no significant difference in the preference of the respondents towards labeling of packaging with respect to their age.

H2:- There is no significant difference in the preference of the respondents towards labeling of packaging with respect to their income.

H3:- There is no significant difference in the preference of the respondents towards labeling of packaging with respect to their gender.

Findings : 68.8% of respondents are agreed that ***labeling*** makes their decision easy as it informs about the content and ingredients of the products. Thus, labeling on packaging influences buying behavior. When it comes to retailer's majority of them i.e. 70.0% respondents give importance to the ***labeling on packaging***. Thus, labeling on packaging has a very important role as it gives important information in the sales of confectioneries.

There is no significant difference in the preference of the respondents towards labeling of packaging with respect to their age. To test this ANOVA test was used, where P value was 0.154. Since P>.05 null hypothesis was accepted. However, it is noticed that respondents of 20-25 years age group gave higher preference to the labeling on the packaging of the confectionery products as 55% of the respondents have agreed or strongly agreed with the statement which is more than any other age group. **Sushil Kumar and Jabir Ali (2011)** have found in their study that customer does look for information before buying any product but majority price and expire date. More consumer awareness need to be spread regarding checking other type of information such as ingredients of products etc., this will not just help consumers but also companies to differentiate their products from competitors.

There is no significant difference in the preferences of the respondents towards labeling of packaging with respect to their income. To test this ANOVA test was used, where P value was 0.051. Since P>.05 null hypothesis was accepted. Thus it can be inferred that there is no significant difference in the preference of the respondents.

There is no significant difference in the preferences of the respondents towards labeling of packaging with respect to their gender. To test this t test was used, where P value was .311. Since P>.05 thus null hypothesis we accepted and it can be said that on the basis of gender there is no significant difference in consumer preference towards labeling on packaging.

Conclusion : As per the research carried out by Dhar (2010), Consumer first eats with his eyes, then with his/her nose and with his/her mouth, a saying which aptly describes packaging. This research deals to understand how labeling elements can affect sales and consumer buying behavior toward the confectionery products. The importance of packaging design as a vehicle for communication and branding is growing in competitive markets for packaged FMCG products. Packaging of confectionery products is very important as the result shows that they influence consumer buying behavior and enhance the sales in many ways. Following are concluding observation of the research study:-

1. Labeling on packaging of confectionery item is equally relevant and instrumental in the buying decision of customers of difference income group and gender. Further, it was found that youngsters have a higher preference towards labeling as compared to elders.
2. The preferences of the consumers of different income group towards labeling are similar, signifying that demographic factors do not affect customers' preferences in this category.
3. The preferences of the consumers of different age group towards labeling are similar, signifying that demographic factors do not affect customers' preferences in this category

Overall the findings of the present research show that labeling is the important element which affects the sales of confectionery products as well as consumer buying behaviour. The conclusion of this study can be represented in concrete term in the world of Pildith- (2012), "labeling as the silent salesman in the store and it was the only communication between a product and the final consumer at the point of sales".

Recommendation : The marketers need to give emphasis on different packaging elements such as designing, material, color, images, graphics, information on packs, environment friendly packs etc. The marketers must keep them updated with the expectations of the customers with the help of labeling. The availability of products such as chocolates, candies, biscuits, mixtures etc. in the right size, shape, color and design is crucial in gaining the differential benefits over competitor. In cutthroat competition regular review of marketing strategy is required as a must activity of any successful brand organization. Younger generation and middle age is highly conscious about packaging issues in case of confectioneries.

Following specific recommendations are made on the basis of the conclusion of the study:

- Packaging helps to protect product labeling gives information. It should associate with all the needed information of the product to assist customer in their buying process.
- Youngsters prefer labeling on packaging so that marketers need to give more emphasis on it.
- Visual components should be comforting for the eyes.
- Labeling should be accurate as per food act and consumers would like it, if simplified.
- More emphasis should on simple language not technical words while labeling.

REFERENCES

- Aaker, D., Kumar, V. and Day, G. (1998), Marketing Research, John Wiley & Sons, Inc., United States of America, pp 186-216.
- Ampuero, O. and Vila, N. (2006), Consumer Perceptions of Product Packaging, Journal of Consumer Marketing, 23/2, 2006, pp. 100-112.
- Arens, W. (1996), Contemporary Advertising, Irwin, United States of America, G-12.
- Barber, N., Almanza, B.A., & Donovan, J.R. (2006). Motivational factors of gender, income and age on selecting a bottle of wine. International Journal of Wine Marketing, 18 (3), 218-232.
- Bloch, P. H. (1995). Seeking the ideal form: product design and consumer response. Journal of Marketing, 59 (July), 16-29.
- Butkeviciene, V., J. Stravinskiene and A. Rutelione (2008). 'Impact of consumer package communication on consumer decision making process', InzinerineEkonomika-Engineering Economics(1), pp. 57-65.
- Cateora, P. and Graham, J. (2002), International Marketing, McGraw-Hill, New York, pg 358-360.
- Cramphorn, S. (2001), Packaging to the Rescue, Admap Magazine, December 2001, Issue 423.
- Gelperowic, R. and Beharrell, B. (1994), Healthy Food Products for Children: Packaging and Mothers' Purchase Decisions, British Food Journal, Vol. 96 No 11, 1994, pp. 4-8.

- Gladwell, M. (2005), Blink, Penguin Books, London.
- Godin, S. (2004) ,Free Prize Inside, Portfolio Hardcover, pp. 154 Journals
- Gonzalez M. P., Thorhsbury S., &Twede D. (2007). Packaging as a tool for product development: Communicating value to consumers. Journal of Food Distribution Research, 38 (1), 61-66.
- Grossman, R. P., &Wisenblit, J. Z. (1999). What we know about consumers' color choices. Journal of Marketing Practice: Applied Marketing Science, 5 (3), 78-88.
- Keller, K. L. (2003). Strategic brand management: Building, measuring and managing brand equity, 2nd ed., Englewood Cliffs, NJ: Prentice-Hall.
- Kotler, Ph. (2003) Marketing management, 9th ed. UpperSaddleRiver: Prentice-Hall.
- Kuvykaite, R. (2001). Gaminiomarketingas. Kaunas: Technologija.
- Madden, T. J., Hewett, K., & Roth, M. S. (2000). Managing images in different cultures: A cross-national study of color meanings and preferences. Journal of International Marketing, 8(4), 90-107.
- Maiksteniene, K. and V. Auruskeviciene (2008). 'Manufacturer and retailer brand acceptance under different levels of purchase involvement', InzinerineEkonomika-Engineering Economics(1), pp. 90-96.
- Prendergast, G.; Pitt, L. (1996). Packaging, marketing, logistics and the environment: are there trade-offs? International Journal of Physical Distribution & Logistics Management, 26 (6), 60-72.

Website :

- Bubley packaging research, http://www.bubley. com/t-scopes/research.html
- Miriam Webster dictionary,
- http://www.m-w.com/dictionary/gestalt
- Wikipedia Online Encyclopedia,
- http://en.wikipedia.org/wiki/Tachistoscope
- http://psychology.about.com/od/index/g/hypothesis

Books :

- Keller, K. L. (2003). Strategic brand management: Building, measuring and managing brand equity, 2nd ed., Englewood Cliffs, NJ: Prentice-Hall.
- Kotler, Ph. (2003) Marketing management, 9th ed. Upper Saddle River: Prentice-Hall.
- Rama Shwami (2007) Marketing Management.
- Sontaki Marketing management
- Rajiv Dhar, director, Indian Institute of Packaging (2010).

*****

Music
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017 : 202-203
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

मैहर वृन्द वादन

*अयना बोस**

भारतवर्ष में 'Orchestra' शब्द का रूपान्तरण वृन्द वादन अथवा 'वाद्य-वृन्द' के नाम से किया गया है। आर्केस्ट्रा शब्द विदेशी होते हुए भी हम सब उससे भलीभाँति परिचित हैं। भारतवर्ष में इसके स्वरूप का अर्थ विभिन्न वाद्यों अथवा ध्वनियों के सुमधुर संयुक्त प्रदर्शन से लिया जाता है। भारत में वृन्द वादन का इतिहास काफी प्राचीन रहा है। इसका उल्लेख भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है, परन्तु नाट्य शास्त्र के अतिरिक्त कहीं पर किसी संगीत ग्रन्थ में आर्केस्ट्रा सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं मिलता परन्तु हिन्दुस्तान में भरत से पूर्व भी वृन्द वादन की प्रणाली अवश्य ही रही होगी। भरत के नाट्यशास्त्र में नाट्य सम्बन्धी समस्त विषय की चर्चा में संगीत सम्बन्धी केवल उन्हीं तत्वों की चर्चा की गयी है जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में नाटक से रहा है, नाटकों के नेपथ्य में इन वृन्दवादन की अत्यन्त आवश्यकता रहती थी। अतएव सर्वप्रथम भारत में वृन्दवादन के सम्बन्ध में प्रकाश डाला, अर्थात् संगीत की रचना केवल नाटकों के लिए की गयी है। किन्तु संगीत के किसी अन्य ग्रन्थ में इसकी चर्चा नहीं की गयी अर्थात् भारत में वृन्द वादन की प्रथा केवल नाटकों तक ही सीमित थी। दसवीं शताब्दी के पश्चात् विदेशियों के आक्रमण तथा आपसी फूट के कारण देश का सामाजिक वातावरण दूषित हो गया। ऐसे में नाटकों का आयोजन, जो प्रायः राजाओं के संरक्षण में होता था धीरे-धीरे लुप्त होने लगा। भारत में मुगलों तथा पठानों के साम्राज्य के साथ भारतीय संस्कृति भी विनष्ट होती गयी। किन्तु इन मुगलों तथा पठानों में कुछ कला प्रेमी भी थे। जिन्होंने भारतीय ललित कलाओं को आश्रय दिया। इन्हीं दिनों कुछ देशी राजा तथा नवाबों के विदेशों की यात्रा से वहाँ कला और संस्कृति को परखा। उनमें से कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपने देश लौटकर विदेशी नृत्य तथा आर्केस्ट्रा का प्रचार करने के हेतु भारतीय गुणियों को बुलाकर भारतीय वृन्दवादन तैयार करने को कहा। वृन्द वादन की स्वतंत्र प्रणाली की नींव डालने वालों में रामपुर, महाराज मैहर और महाराज बड़ौदा का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।

इतिहास के पन्ने साक्ष्य हैं कि मुगलकाल के पतन के पश्चात् बहुत से छोटे-छोटे राज्य अपनी शक्ति को प्रमाणित करने लगे थे। अंग्रेजों ने अपने अधीनस्थ रखकर उनको पनपने का अवसर दिया। इन्हीं राज्यों में एक मध्य प्रदेश का मैहर प्रदेश भी था जो कि सतना जिले के अंतर्गत आता है। कलकत्ता शहर में नाटकों को मंचित करने के दो प्रसिद्ध मंच थे, जिनका नाम 'स्टार' (Star) और मिर्नभा (Minarbha) नाम से प्रसिद्ध था, वहाँ पर Drama Hall जो कि Charkhari State बुन्देलखण्ड का था वहाँ उनकी अपनी Orchestra Party हुआ करती थी। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ और फिल्म ऐक्टर सोहराब मोदी (बम्बई जाने से पूर्व) यही नौकरी किया करते थे। सन् 1917 में महाराज बृजनाथ सिंह के शासन काल में मैहर में शुरू हुआ और बाबा उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ ने मैहर महाराज के आग्रह पर मैहर राज्य के कलाकार के रूप में नियुक्त हुए। महाराज के आग्रह पर बाबा ने सन् 1918 ई. में वृन्द वादन का एक समूह तैयार किया जो मैहर वाद्य (Maihar Band) के रूप में लोकप्रिय हुआ।

मैहर मध्य प्रदेश के सतना जिले का एक छोटा–सा शहर है, मैहर में विश्व प्रसिद्ध शारदा देवी का मन्दिर है। जो मैहर के त्रिकुटा पहाड़ों में स्थित है। कहा जाता है कि सती के मृत शरीर को लेकर शिव तांडव करने लगे थे तब विष्णु भगवान ने मानव जाति के कल्याण के लिए अपने चक्र से सती के देह के टुकड़े कर दिये जिससे उनके टुकड़े पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर गिरे और उन स्थानों को शक्ति पीठ का नाम दिया गया। ऐसे 52 शक्ति पीठों में मैहर का नाम आता है। कहा जाता है कि सती के शरीर से उनकी गले में बड़ी हार इस त्रिकुटा पहाड़ी पर गिरी इसी कारण इसका नाम 'माई हार' से 'मैहर' हुआ, आज वहाँ शारदा देवी का मन्दिर है। स्थानीय परम्पराओं से पता चलता है कि योद्धा आल्हा और 'ऊदल' जो पृथ्वीराज चौहान से युद्ध किया था। वे भी इसी जगह के शूरबीर थे। वे दोनों भी शारदा देवी के भक्त थे। मन्दिर के पहाड़ी के नीचे एक तालाब

* *अतिथि प्रवक्ता (गायन), इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद*

है जिसे आल्हा तालाब के रूप में जाना जाता है। इसी तालाब के 2 किलोमीटर की दूरी पर आल्हा और ऊदल जहाँ कुश्ती करते थे वो अखाड़ा आज भी स्थित है। शास्त्रीय संगीत का सुप्रसिद्ध मैहर घराना (सोनिया) में इसी स्थान से जुड़ा है।

कहा जाता है कि जब राजा बृजराज सिंह गद्दी आसीन हुए तब उनके आदेशानुसार एक बैंड पार्टी तैयार की गयी जिसमें राज्य के सारे अनाथ बच्चों तथा खाली बैठे लोगों को शामिल किया गया। डौडी पिटवाकर सौ-डेढ़ सौ लड़कों को इकट्ठा किया गया। जिन्हें बाबा ने अपने अनुशासन में रखकर इस मैहर बैंड की स्थापना की। ये सारे लड़के बाबा के घर पर खाते-पीते और सुबह 8 से 12 बजे तक रोज रियाज करते। राजा का आदेश था ''मैं कहीं भी बाहर निकलूँ मुझे संगीत सुनाई देना चाहिए। कहीं कोई बेसुरा न रहे।'' सन् 1918 में स्थापित इस बैंड का विकास एवं प्रतिष्ठा जोर पकड़ने लगी। आज ये बैंड अपने सौ वर्ष पूरे करने जा रहा है। सन् 1949 में आजादी के बाद विंध्य प्रदेश बनने पर बैंड को खत्म करने की बात आ गयी थी तब केन्द्रीय सरकार के प्रयासों से इसे सहायता मिली और इसे बचा पाने में बैण्ड के कलाकार समर्थ हुए। सन् 1955 में ''मैहर राजकीय संगीत विद्यालय'' की स्थापना कर मैहर बैंड को इससे जोड़ दिया गया। कालेज के प्रधानाचार्य को मैहर बैंड का प्रमुख बनाया गया। इस आर्थिक सुविधा से बाबा द्वारा स्थापित मैहर बैंड फलने-फूलने लगा। परन्तु सन् 1972 ई. में बाबा अल्लाउद्दीन खाँ के प्रयाण के पश्चात् इस बैंड का ह्रास होने लगा। बाबा द्वारा प्रशिक्षित मैहर बैंड के आखिरी सदस्य 'श्री गिरधारी लाल' की भी मृत्यु सन् 1997 में हो गयी। आज मैहर बैंड को नयी स्फूर्ति की आवश्यकता है। इस सदी के सांस्कृतिक विरासत को बचाने के लिए प्रयास की आवश्यकता है। वर्तमान समय में राजकीय संगीत विद्यालय मैहर की अवस्था देखकर कष्ट होता है। कालेज के कुछ हिस्सों की तो वर्षों से सफाई तक नहीं हुई। मैहर (जिला सतना) की दूरी मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से लगभग 450 किमी. है जिसने सरकारों के सांस्कृतिक सतही मदद को दूरी को कई गुना कर दिया है। आज भी सारे कलाकार बाबा उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ की स्मृति में होने वाले **'मैहर संगीत महोत्सव'** के अगाध में पहली प्रस्तुति इसी बैंड द्वारा की जाती है।

सन्दर्भ-सूची

1. प्रोफेसर श्रीवास्तव, हरीशचन्द्र, संगीत निबन्ध संग्रह
2. शर्मा, स्वतंत्र; संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण।
3. डॉ. द्विवेदी, पी.डी., बाबा उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ साहेब के शिष्यों का संगीत में योगदान।
4. प्रज्जनानन्द स्वामी, हिस्टोरिकल डेवलपमेंट ऑफ म्यूजिक।
5. पत्रिका/संगीत/आर्केस्ट्रा अंक–जनवरी-फरवरी, 2002

******

English Literature
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 204-208
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

Refugees' Quandary in Amitav Ghosh's 'The Hungary Tide'

*Dr. Shalini Dube**
*Dr. Alakananda Tripathi***
*Abhinav Tripathi****

English literature has been augmented by so many diasporic writers with their illuminating thoughts, philosophy and works for more than a century. Among these, Amitav Ghosh is one of the Anglo-Indian paramount contributors, who has not only enriched Indian-English literature but also amplified the realm of world literature with his fantastic literary creations which present a mesmerizing intermingling of fact with fiction, past with present, culture with psychology. Giving an impression of magical realism, Ghosh has dealt with a number of themes which are not only matter of national importance but of universal concern too. The Hungry Tide, is one among the series of the marvelous novels given by Amitav Ghosh. It, not only narrates an adventurous story of search for rare dolphins at superficial level, but also replete with thematic abundance and cultural diversity. The thrill of the water and Sunderbans has been captivatingly enlightened by Amitav Ghosh into the folios of his novel.

The novel, "The Hungary Tide" starts with light air of travels undergone by the frontline characters. Gradually Ghosh deals with intense themes of political filth, up rootedness, plight of refugees and their continuous struggle with government and surroundings, merely for their survival. The novel, depicting the plight and concerns at deeper level, delineates the panoramic beauty and ferocity of Sudarbans along with the cultural traits of its inhabitants, superficially, is very well liked and extoled by its readers as:

> "The Hungry Tide" is a certifiable page-turner. Blending fact and fiction, history, and imagination, Ghosh tells the gripping story of two strangers who come together in the remote town of Lusibari. Piya, who lives in Seattle, has come to study the marine life of the Sundarbans. Kanai has been summoned to Lusibari by his elderly aunt, Nilima, who wants to bequeath to her nephew her dead husband Nirmal's newly discovered diaries."1

Being an anthropologist, Amitav Ghosh has travelled many places and witnessed not only variegated cultures, but also, has developed an understanding of the psychological swings of humans, which is a result a result of interface with various cultures and people. He understands and describes adeptly, the pain of loss of home. The modern dilemma of up rootedness, and an endless search for 'home', gives an in-depth meaning to Ghosh's novels.

In current scenario when individuals and governments have become so conscious of the basic needs and rights of humans, and on violation of the basic rights, a person is provided with the right to seek justice from the apex body of Judiciary, isn't it entirely inhuman to leave a cluster of people; the refugees, totally unattended, deprived of even basic of the basic needs of life? The division of mother earth into different nations is a game of human mind and not that of nature or eternity. Just because a handful of people belong to some other nation or locality, who have not left their place of birth or

* *Associate Professor (English Deptt.), Govt. TRS College, Rewa, MP* ** *Scholar* *** *Scholar*

residence out of choice, but have been forced to take shelter with broken heart and shattered hap, why should be made to suffer? Ghosh poses this question metaphorically as what are the faults of those refugees and the little children who are not even been left with the minimum rights of living? Why studies, medicine, hygiene, food, cloth, shelter etc which constitutes the basic standards of living for others are not provided to refugees even in dreams?

Amitav Ghosh describes the isolated island Morichjhapi, in his novel "The Hungary Tide". As directed by government, the island was to be used for the preservation of flora and fauna. However, refugees from the nearby localities are forced to occupy the island, as they had no place to go to. They made their own arrangements to make Morichjhapi worthy of being lived by humans. One of the inhabitants of the island is Kusum (mother of Fokir), one of the three main characters in the novel. Uncle of Kanai, Mr. Nirmal had immense sympathy towards Kusum and other refugee inhabitants. Observing the miserable life of the inhabitants with meagre resources, Nirmal is shown to be baffled with their future perspectives. Ghosh has, very adeptly, described that government and high officials were making all their efforts to evacuate the island, instead of helping them out in their efforts of making survival of humans possible on this island, as Morichjhapi is an island which is reserved by government for tiger preservation and there tigers are found roaming and living in wild. They were determined to shift the refugees to a settlement camp which was nothing more than a hellish establishment. The setup was densely populated, extremely messy and filthy, without minimum requirement of medical aid and hygiene, there was no provision of earning food and cloth to keep their soul and body together. The settlement could provide no future to its inhabitants but an ailing end. Making Nirmal his mouthpiece here, Ghosh had disclosed the tormenting plight of these refugees and the pain of being up rootedness. Even after repeated objections of his wife, Nirmal ended his life for the cause of these people, that too, against the decisions of the government and his own wife.

The novel very evidently pose a question that the habitat of humans are being destroyed for the sake of creating habitat for animals. Though, the concern of giving protection to animas and endangered species is quite correct for sustainable, coherent co-existent and for having a healthy balanced ecosystem. But all this at the cost of human life? The same government, who is concerned about the conservation of tigers, has equal ethical and social responsibility towards refugee-turned humans too.

From the arguments and descriptions Ghosh has delineated in his novels, the least hope of life appears to be strangulated in these settlement camp. This theme of refugee's miserable condition is one of the recurrent themes of Ghosh's novels. Be it 'Circle of Reason', or 'The Shadow Lines', 'The Glass Palace' or 'Sea of Poppies', the glimpses of Ghosh's concern for refugees can be viewed. In fact, this is a matter of concern not only for a specific nation in particular, but for humanity in general. A person becomes a refugee not as a result of his choice or fancy, but because of the filthy game of politics. Nations mutual struggle, their thirst for acquiring a throne or a piece of land results into snatching of the basic right of humanity from these refugees. A handful of beurocrats, due to their ego or allurement of petty profits, play with the lives of so many humans.

The pain of up rootedness and the question of identity (which is integral part of these refugees) appears to be tormenting humans in general and citizens in specific throughout the literature of the countries which have emerged (in their state of bewilderment) as a consequence of political snares and games; be it colonial rule or any other filthy game, thus, dividing land and human heart. The issue of discrimination is evident in the novels of so many like Sussaine Moodie, Carol Shields, Lawrence Hill, Margret Atwood, to name a few.

Ghosh has quite picturesquely weaved the historical evidence of partition in 'The Shadow Lines' and ' The Hungry Tides' too, thus resulting into a number of people getting converted into refugees. How-so –ever educated and ingenuous the refugees are they are accommodated in the filthy settlements which are usually located at the suburban of cities. They are hardly provided with the

facility of toilets, medical and so on. The inhabitants are made to live at the verge of starvation without any cloth to wear, schools to go, or hospitals to refer. This instance is delineated ironically by Ghosh citing the reasons behind people's immigration in clusters as:

> "Despite its small size, the island of Lusibari supported a population of several thousand. Some of its people were descended from the first settlers, who had arrived in the 1920s. Others had come in successive waves, some after the partition of the subcontinent in 1947 and some after the Bangladesh war of 1971. Many had come even more recently, when other nearby islands were forcibly depopulated in order to make room for wildlife conservation projects. As a result, the pressure of population in Lusibari was such that no patch of land was allowed to lie fallow. The green fields that quilted the island were dotted with clusters of mud huts and crossed by many well-trodden pathways" (The Hungry Tide, 39)

Ghosh has brought to our notice the dirty politics which is being played at every level. The condition of refugees is not at all heeded by anybody, and all the decisions are taken and orders are passed keeping in view the vote-bank policy. Corruption, as a matter of fact, has trapped every step of society. The idiom of 'power corrupts' is quite evident. It takes even worse shape when it is bestowed upon with power; be it little or immense. The whole system seems to be paralyzed with it. This behavior of theirs reflects metaphorically the dirt and money mindedness that has engulfed the whole human society.

Ghosh, a keen observer of humans and their society has delineated the conflict between government organizations or various non-government activists. These have at their base the reason and cause for tiger protection contrasted with refugee inhabitants shelter safeguarding on the island Morichjhapi. As the Bay of Bengal is one of the only habitats where Bengal Tigers are found living in the wild. They are ardently protected by various national and international environmental groups which exert economic pressure on local government. But in the name of tiger preservation human lives are brought into stake most of the time. In the Sunderbans, Ghosh argues, human lives are valued to a big extent lower than that of Tigers.

Nirmal's revolutionary fervor got agitated when he happens to watch the sufferings of these refugee inhabitants, and he was troubled to such a degree that he sacrificed his life for their cause. He was so possessed and moved with the thought of betterment and upheavelment of these that he decided to work against the wishes and powers of government. He was startled with the arrangements the refugees had made, the way they had established their colonies, made various constructions, the way they had distributed the lands and homes, and the way they had managed all these system was really fascinatingly shocking. Thus, through Nirmal's eye Ghosh has described the ingenuity of these refugees, that first of all these are humans replete with various administrative, executive and related skills. Nirmal epitomizes the responsibility of government. The government should take initiative and action for the continuation of survival of these humans. They should take initiative for providing them better habitat and shelter and should employ their skills for betterment of human society, thus, providing employment avenues to the dislocated, uprooted humans and better products to humanity. Ghosh suggests that modern techniques are to be devised to conserve these animals and environment simultaneously and if the evacuation is needed that should be in correct direction, with proper rehabilitation of inhabitants. The clever and murky politics should not be played with these hapless people who have lost their place, home, and family members or precisely to say everything. The trauma and panic of these inhabitants made Nirmal mad, or to say he is over possessed with the determination to assist them in their fight with the government for their rights, to defend their ways, to alert them against the trap of government and it is this madness which claimed one more life in Morichjhapi and that was of Nirmal, the headmaster, the revolutionary.

This Morichjhapi has been used as a metaphor to denote a perpetual struggle between government or higher rationales and that of innocent islanders. Quite ironically the success goes with one who is in power not with those who are needy indeed. This is irony of fate and that of rulers too that most of the time the downtrodden suffer at the cost of their life and home.

Morichjhapi is a site of bloodshed, and the blood is of human and humanity; sometimes by tiger while at other times, it is the illogical government decisions. Conservation of tigers, which are becoming rare and nearly extinct species is, though, vindicated but not at the cost of human life. Threat to life in those areas is in extreme, which is regularly increasing. The count of human death due to tiger is alarming. The metaphor Morichjhapi delineates the struggles for life, reverberating the pain and agonies of the refugees. The refugees who are made to suffer the loss of everything they had. And that too, instead of attracting sympathies and assistance of other people, they are left with contempt, hatred, brutalities and moreover, no place to go to. And when they search one of their own without trespassing other person's privacy they are not given due recognition. The resettlement camps, Ghosh talks about, are nothing more than a cluster of shades provided for these refugees within a very limited and narrow area, with no drinking water, no safety, no cleanliness, and no means of employment. That they are at the verge of starvation, and epidemic waits at every nook and corner to devour the inhabitants eagerly. They are made to feel guilty of being human. The resettlement camp and plight of refugees is not a new malady Ghosh talks about in this novel. But, it is one of the most recurring themes. The narrow and filthy streets, cloth less children running here and there, nasty environment, horrible surrounding and a detestable and repugnant place where nobody liked to go. Infact it is nothing else than a prison which government provides in the form of resettlement camps, as Nilima describes:

> "They called it resettlement," said Nilima, "but people say it was more like a concentration camp or a prison. The refugees were surrounded by security forces and forbidden to leave. Those who tried to get away were hunted down. The soil was rocky and the environment was nothing like they had ever known. They could not speak the languages of that area and the local people treated them as intruders, attacking them with bows, arrows and other weapons. For many years they put up with these conditions. Then in 1978 some of them organized themselves and broke out of the camp. By train and on foot they moved eastward in the hope of settling in the Sundarbans. Morichjhãpi was the place they decided on."(Hungry...73)

Different governments are elected, political parties win and lose, but the condition and problems of these refugees remain unattended and unheeded. They look with hope and optimism towards every change but what comes in their share with these changing powers and reign is the same; the never ending sufferings. Refugees were and are detested everywhere. This inhuman fact is time and again discussed by Ghosh, though every time he uses different metaphor, different symbol. So is the story of the islanders of Morichjhapi. Though they have made their own arrangements and they have devised their own tools and means of leading a life worthy of being lived. And what they want from the natives of the country and government was nothing but due recognition to their efforts, that they were not intruders who have come to the very place to harm the peace and balance. They wanted the support of public and government and wanted to prove that all their plans and construction on the said island was just to make the place livable for them. But all their dreams and notions are shattered to the ground with this or that government:

Whatever are the circumstances refugees had to face the contempt and ill treatment. They are taken for granted by all government and every political party. Most of the time, not even NGOs come to their rescue. In the novel refugees are made to evacuate the place by hook or crook. The government took various strict actions against them and about these developments they are not even aware of. This incident is metaphor of the irony of the faith of people in government. It is irony of the accountability

of government towards people and that of oath political leaders take on coming in power of being accountable towards people and to do good to them with the power vested on them.

This partition, whether in Bangladesh or any other nation, results in migration and scattering of people from one place to another, from one state to another and from one country to another, resulting into utter chaos and cry. The agony it leaves is in the heart of humanity is unfathomable especially in Refugees. The political, economical and administrative losses can be replenished but the distress it leaves in the hearts of humanity can never be healed. The blot of refugee-ness, not only haunts the victims throughout their life but also is gifted as inheritage to their future progenies. The question is posed not in front of a specific country or a political party but, is raised in front of suffering humanity and human values, which in current arena is found to be limited to the four walled chambers of politicians and few others. Amithav Ghosh, an anthropologist has poignantly elucidated the aspect of humanity that encourages us to think about the human life and values for their restoration.

REFERENCES

1. Umrigar Thirty, "Search for rare dolphins an unlikely thriller" published in 'The Boston Globe'on 31 july 2005 http://www. boston. com/ae/books/articles/2005/07/31/search_for_ rare_dolphins_an_unlikely_thriller/
2. Ghosh Amitav, *The Hungry Tide*. Penguin Books (Canada).2004.

*****

Chemistry
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 209-222
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

EVALUATION OF THE PHYSICO-CHEMICAL CHARACTERISTICS OF GANGES WATER NEAR GHATS AT VARANASI, INDIA

Dr. Sachin Bhatt Dr. N.P. Singh** Ravi Kumar Mishra****

1. GENERAL INTRODUCTION

Water is the most important natural resource not only of a state or a country, but of the entire humanity. The prosperity of a nation depends primarily upon the judicious exploitation of this resource. Thus, it can be stated that the primary wealth of a nation is water, which flows in rivers and streams and maintained the water label in ponds. This itself establishes the importance of rivers and Ponds, and no other explanation is required to stress their importance. River basin and Ponds, as a domain for planning and management has been accepted the world over, as water does not recognize political boundaries. Among the most distinctive features of India are its rivers and ponds which hold high religious importance among its people. Covering the vast geographical area of 329 million hectares, Indian rivers have been an important reason for the rural prosperity of India. Being of wider importance in cultural, economical, geographical as well as religious development, its numerous rivers are of great value to India. The rivers in India are considered as Gods and Goddesses, and are even worshiped by the Hindus. They provide tourists a wonderful insight into the historical, cultural and traditional aspects of India. Among various types of inland fresh water bodies, the riverine system is a unique type of ecosystem. The size of the drainage basin, the amount of water moving through the system, the proportion of natural versus settled areas, and man's direct impacts are all key factors determining the quality and characteristics of each watershed. India with declining freshwater resources has an acute shortage of potable water of acceptable quality. The socio-economic growth of a region is severely constrained by non-availability of safe drinking water; keeping this in view, Government of India had constituted a Water Technology Mission for drinking water in 1987. The task of planning and management of water resources can be very effectively carried out on a basin and ponds wise structure for all infra, intra and interstate as well as international rivers using scientific techniques. A world water development report by United Nations had India as one among the worst countries with poor quality of water, as well as its ability and commitment to improve the situation. Belgium is considered the worst basically because of the low quantity and quality of its groundwater combined with heavy industrial pollution and poor treatment of wastewater. It is followed by Morocco, India, Jordan, Sudan, Niger, Burkinafso, Burundl, Central African Republic and Rwanda. Attributing this to "inertia at leadership level" the report entitled "Water for people, Water for life" observes that "the global water crisis will reach unprecedented levels in future with growing per capita scarcity of water in many parts of the developing world." The report compiled on the eve of the Third World Water Forum held at Kyoto, Japan, March 16, 2003, by 23 UN partners constituting the World Water Assessment programme (WWAP) under UNESCO (The Hindu, May 21, 2003). The surface and groundwater resources are steadily declining because of

* Guide, ** Co-Supeviser, *** Rresearch Scholar

increase in population, industrial growth, pollution by various human, agricultural and industrial wastes and unexpected climate change.

2. MATERIALS AND METHODS

METHODOLOGY FOR THE MEASUREMENT OF TEMPERATURE PROCEDURE

- Temperature was measured with the thermometer immersed directly in the water body, after a period of time sufficient to permit constant reading.
- Make measurement of the temperature of a water body at a particular depth with the thermometer immersed directly in the water body. After sufficient time has elapsed to allow the thermometer to come to the exact temperature of the water, take a reading.

3. SAMPLING SITE

The city also has several shallow river /Ghats, some of which are of religious significance. But most of these Ghats are in a state of poor maintenance and face the threat of drying up or reclamation due to upcoming settlements in the periphery. Solid waste and wastewater discharge into water bodies. Lack of maintenance of Ghats, which face the threat of extinction and encroachments. The five Ghats were selected for the comparative study, these pond are as follows:

- AssiGhat
- PrabhuGhat
- SamneGhat
- Rajendra Prasad Ghat

4. RESULTS AND DISCUSSION

The variation in the quality of Ghats water sampled and tested are clear indication of deteriorating condition of water quality and impact of contamination and untreated effluent recklessly being discharged through drains. These variations were mainly due to degree of discharge of untreated domestic and activities of neighboring population like bathing, washing of clothes, dumping of wastes on the bank of river. The result obtained from the univariate data analysis is shown Table 1a for all the location in terms of mean and standard deviation.

4.1 Temperature: Water Temperature is an important water quality parameter, which regulates the biogeochemical activities in the aquatic environment and relatively easy to measure in water bodies which naturally show change in temperature seasonally. The temperature of Ghats ranges between 25.8 to 28.6 ^{0}C (Figure 1). The maximum temperature was observed at S4 whereas, minimum25.8 ^{0}C was recorded at S1. High quantum discharge of sewage and leachate from heap of municipal solid waste along the river bank of Ganges may be a significant cause of change of river water temperature. Temperature show a high significant +ve correlation with Alkalinity and a high significant –ve correlation with DO.

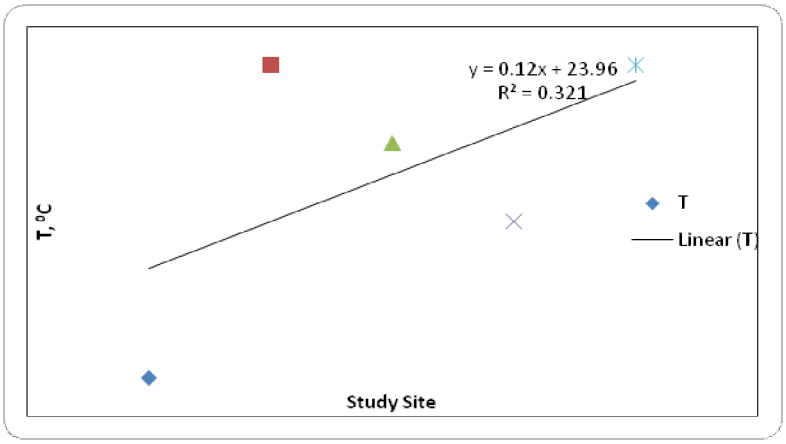

Figure 1: Variation in Temperature of different study site

4.2 pH value : pH of a water body is veryimportant in determination of water quality since itaffects other chemical reactions such as solubilityand metal toxicity. The fluctuation in optimum pH ranges may lead to an increase or decrease the toxicity of poisons in water bodies (Ali, 1991) The pH value recorded ranges between 6.8 to 7.49 (Figure 2). The maximum pH was recorded at S3 and the minimum pH was recorded at S2. Washing station, discharge of industrial and domestic waste and leachate from heap of municipal solid waste along the Ghats bank may be a significant cause of change in Ghats water ph. ph show a significant +ve correlation with Alkalinity and a significant –ve correlation with Acidity.

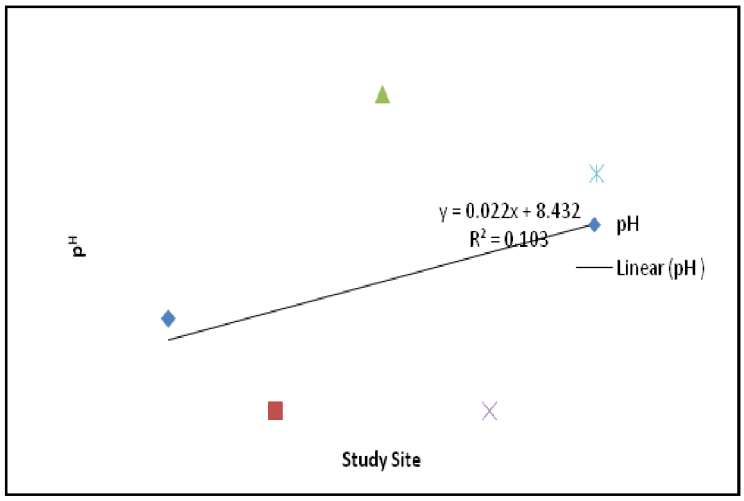

Figure 2: Variation in pH of different study site

4.3 Turbidity : Turbidity of water is the expression of optical property in which the light is scattered by the particles present in the water (Pradeep Verma et al.,2012).High turbidity shows presence of large amount of suspended solids. Turbidity is the condition resulting from suspended solids in the water, including silts, clays, industrial wastes, sewage and plankton. Turbidity in Ghatas recorded ranges between 36 NTU to 44 NTU (Figure-3). The maximum turbidity in water was recorded at S2 whereas minimum turbidity was recorded at S4. Soil erosion, discharges, and Stirred bottom sediment may be cause of significant changes in Ghats water turbidity. Turbidity show a high significant +ve correlation with BOD and a high significant –ve correlation with DO.

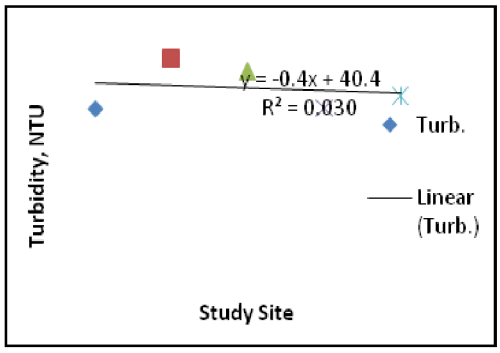

Figure 3: Variation in Turbidity of different study site

4.4 Conductivity : EC is a measure of water capability to transmit electric current and also it is a tool to assess the purity of water (Murugesan et al., 2006). Electrical conductivity recorded in Ghats ranges between 366 µS/cm to 806 µS/cm (Figure 4). The high value of conductivity was recorded at S2 were as low value was recorded at S4. A number of ions enter in to the Ghats through point and nonpoint sources in the form of dissolved salt and inorganic material such as alkalis, chloride, sulfides and carbonate compound may be a significant cause in changing EC of Ghats water**.** Conductivity show a high significant +ve correlation with TDS and a high significant –ve correlation with DO.

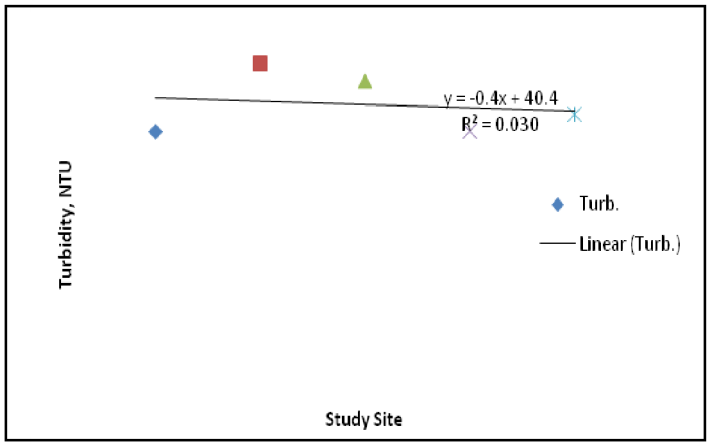

Figure 4: Variation in Conductivity of different study site

4.5 TDS Water with a high TDS indicates more ionic concentration, which is of inferior palatability and induce an unfavorable physicochemical reaction in the consumers. Kataria et al., (1996) reported that increase in value of TDS indicate pollution by extraneous Sources. The amount of TDS recorded in the water of Ghats ranges between 247 mg/l to 564 mg/l (Figure-5). The minimum amount of TDS in the water of Ghats was recorded at S1 whereas the maximum amount of TDS in water was recorded at S2. A number of dissociate electrolyte as well as dissolved organic matter enter into the Ghats water through a number point and non point sources may be a cause to increasing TDS in a Ghats water. TDS show a high significant +ve correlation with TS and a high significant –ve correlation with DO.

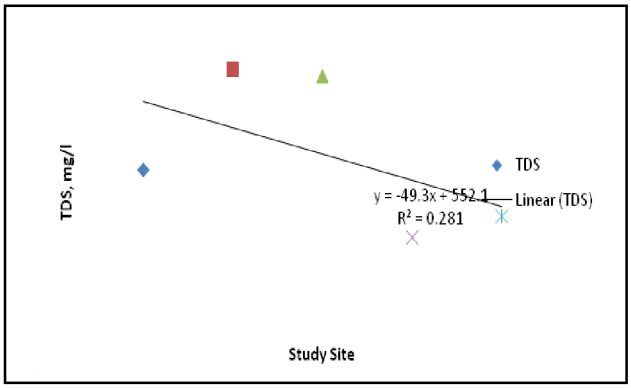

Figure 5: Variation in TDS of different study site

4.6 TS The amount of TS recorded in the water of Ghats ranges between 492 mg/l to 880 mg/l (Figure-6). The minimum amount of TS in the water of Ghats was recorded at S5, whereas the maximum amount of TS in water was recorded at S2. Soil erosion, discharges, and Stirred bottom sediment may be cause of significant changes in TS of Ghats water. TS show a high significant +ve correlation with BOD and a high significant –ve correlation with DO.

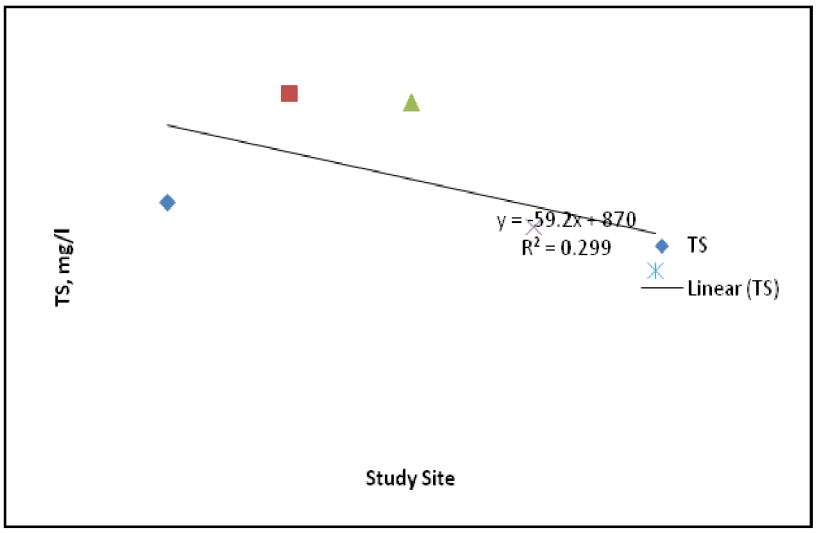

Figure 6: Variation in TS of different study site

4.7 TSS The amount of TSS recorded in the water of Ghats ranges between 206 mg/l to 341 mg/l (Figure-7). The minimum amount of TSS in the water of Ghats was recorded at S5, whereas the maximum amount of TSS in water was recorded at S4. Degrading organic waste increase the water temperature and Organic particles from decomposing materials may contribute in changing the TSS in Ghats water. TSS show a high significant +ve correlation with phosphate and a significant –ve correlation with acidity.

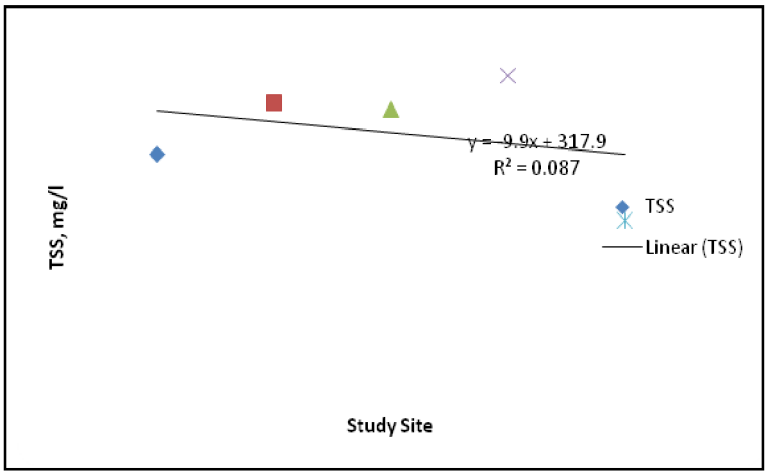

Figure 7: Variation in TSS of different study site

4.8 DO Dissolve Oxygen is one of the important parameter in water quality assessment. Its presence is essential to maintain variety of forms of life in the water and the effect of waste discharge in a water body are largely determined by the oxygen balance of system. It can be rapidly depleted from waste water by discharge of oxygen demanding waste. Inorganic reducing agent such as H_2S, Ammonia, Nitrite, ferrous iron and certain oxidizable substance also tend to decrease DO in Water (Avnish k. Verma et al., 2010). The amount of dissolve oxygen recorded in the water of Ghats ranges between3.1 mg/l to 4.6 mg/l (Figure-8). The minimum amount of DO in the water of Ghats was recorded at S2, whereas the maximum amount of DO in water was recorded at S4. Increasing dissolved solids especially organic material from the sewage effluent and degrading organic matter that increase the water temperature may a significant cause of current trend of depleting unacceptable level of DO in Ghats water. DO show a no significant +ve correlation with any parameter and a high significant –ve correlation with Nitrate.

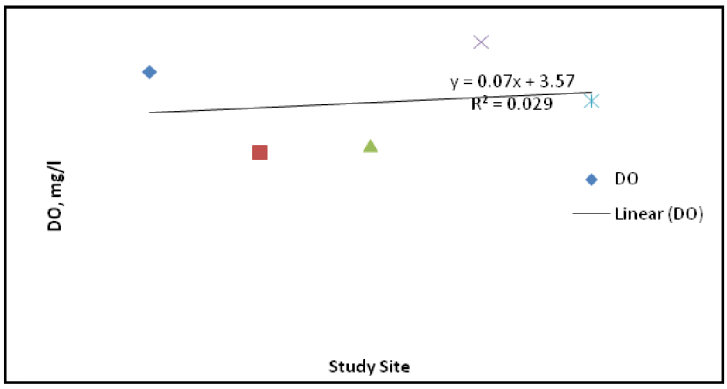

Figure 8: Variation in DO of different study site

4.9 BODBOD determination is still the best available single test for assessing organic pollution (Avnish k. Verma et al., 2010). Singh and Rai observed BOD of water samples value was indication for entry of organic waste in the river Ganga at Varanasi and showed that high value are indication of organic pollution. The amount of BOD recorded in the water of Ghats ranges between 26 mg/l to 46 mg/l (Figure-9). The minimum amount of BOD in the water of Ghats was recorded at S5, whereas the maximum amount of BOD in water was recorded at S2. Depleting DO, increasing the TDS, high quantum discharge and lack of adequate water flow may a significant cause to increasing BOD in Ghat water bodies. BOD show a high significant +ve correlation with COD and a no significant –ve correlation with any parameter.

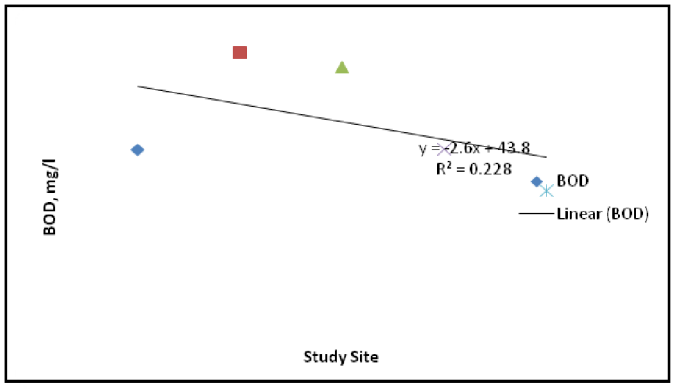

Figure 9: Variation in BOD of different study site

4.10 Hardness Hardness is the parameter of water quality used to describe the effect of dissolved minerals (mostly Ca and Mg), determining suitability of water for domestic, industrial, and drinking purpose attributed to presence of bicarbonates, Sulphate, chlorides and Nitrates of calcium and Magnesium.(Taylor, E.W, 1949). The amount of Hardness recorded in the water of Ghats ranges between 146 mg/l to 268 mg/l (Figure-10). The minimum amount of Hardness in the water of Ghats was recorded S1, whereas the maximum amount of Hardness in water was recorded at S3. Urban discharge, Clothe washing station through open drains in water bodies may be a significant cause for increasing the value of ह्रो ग्ह उर्ँ ्ी. Hardness show a high significant +ve correlation with Alkalinity and no significant –ve correlation with any parameter.

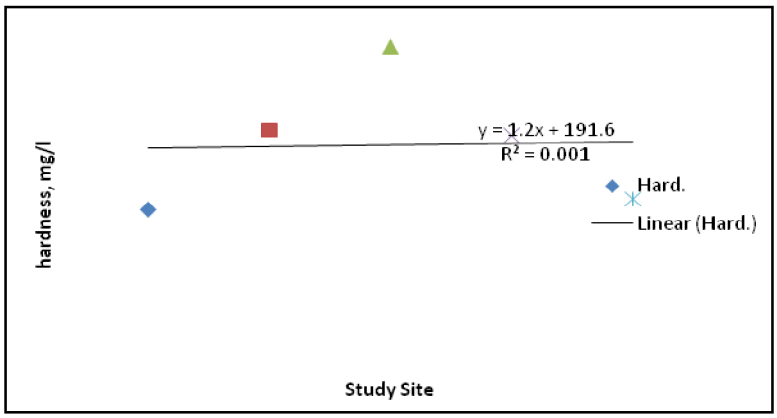

Figure 10: Variation in Hardness of different study site

4.11 Alkalinity: Alkalinity of Water is its capacity to neutralize a strong acid and it is normally due to the presence of bicarbonate, carbonate and hydroxide compound of calcium, sodium, and potassium. (MurhekarGopalkrushna H., 2011). The amount of Alkalinity recorded in the water of Ghats ranges between 210 mg/l to 294 Mg/l (Figure-11). The minimum amount of Alkalinity in the water of Ghats was recorded at S1, whereas the maximum amount of Alkalinity in water was recorded at S2. Disposal of dead bodies of animals, Clothe washing station and urban discharge through open drains in water bodies may be a significant cause for increasing the value of ज्यहदत्ज्पर्ँतग्ह ँत्र्ँन्हग्ू.Alkalinity show a high significant +ve correlation with Nitrate and no significant –ve correlation with any parameter.

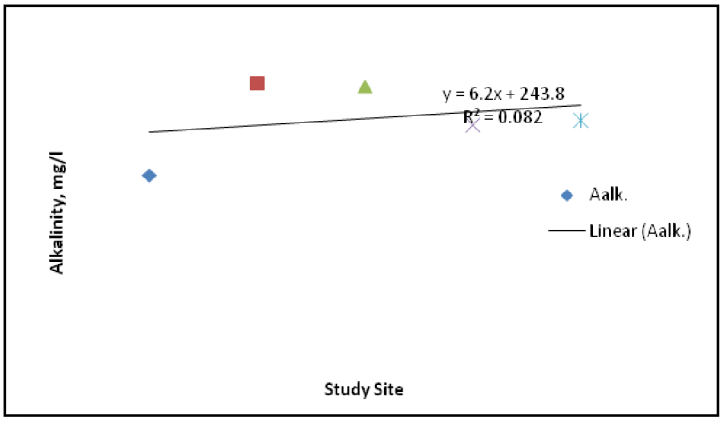

Figure 11: Variation in Alkalinity of different study site

4.12 Acidity The amount of Acidity recorded in the water of Ghats ranges between 6 mg/l to 12 Mg/l (Figure-12). The minimum amount of Acidity in the water of river Varuna was recorded at S4, whereas the maximum amount of Acidity in water was recorded at S2. human-induced air pollution, ग्र rain and industrial discharge may be a significant cause in fluctuation in acidity Ghat water. Acidity show a high significant +ve correlation with nitrate and no significant –ve correlation with any parameter.

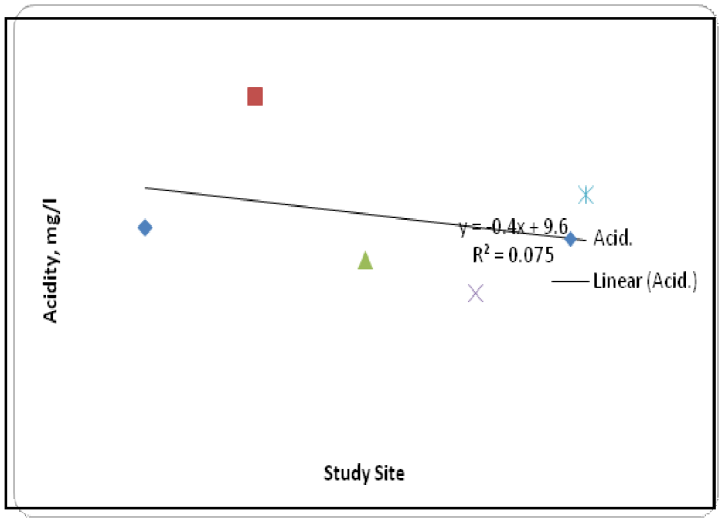

Figure 12: Variation in Acidity of different study site

4.13 Nitrate : Nitrates are contributed to freshwater through discharge of sewage and industrial wastes and run off from agricultural fields (Pradeep Verma*et.al*. 2012) .The amount of nitrate recorded in the water of Ghats ranges between 35 mg/l to52 mg/l (Figure-13). The minimum amount of nitrate in the water of Ghats was recorded at S4, whereas the maximum amount of nitrate in water was recorded at S2. Increasing trend of Nitrate in Ghat water may be due to increasing loadings of organic waste disposal from point and nonpoint sources. Nitrate show a high significant +ve correlation with turbidity and a high significant –ve correlation with DO.

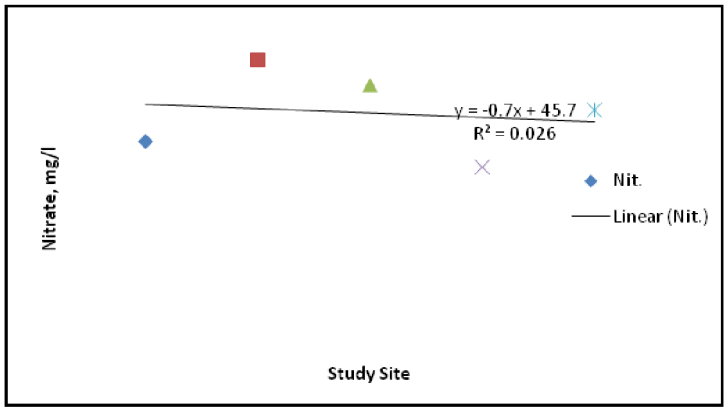

Figure 13: Variation in Nitrate of different study site

4.14 Phosphate Phosphate is one of the limiting factor for phytoplankton productivity because of geochemical shortage of phosphate in drainage basin. The amount of nitrate recorded in the water of River Varuna ranges between 5 mg/l to7 mg/l (Figure-14). The minimum amount of phosphate in the water of Ghats was recorded at S1, whereas the maximum amount of phosphate in water was recorded at S2 and S4. The washing of large amount of clothes by dhobis and laundry worker, as well as continuous entry of domestic sewage in some area responsible for increase in amount of phosphate. Phosphate show a high significant +ve correlation with TSS and a high significant –ve correlation withpH.

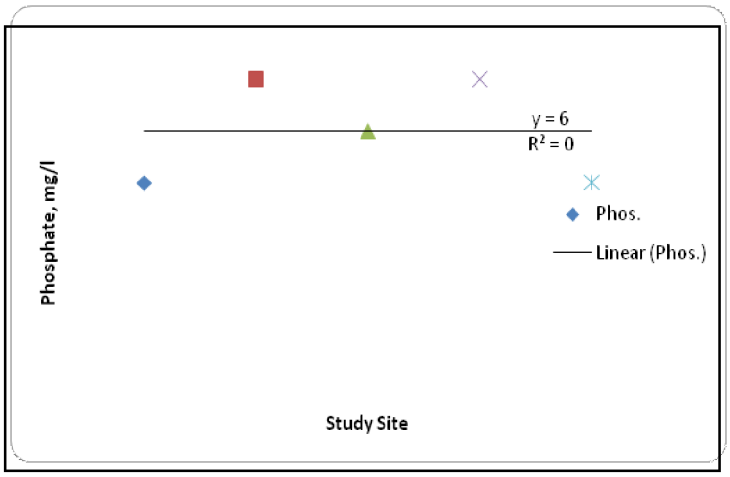

Figure 14: Variation in Phosphate of different study site

4.15 Chloride The chlorides concentration serves as an indicator of pollution by sewage. People accustomed to higher chloride in water are subjected to laxative effects. The amount of chloride recorded in the water of Ghats ranges between 53.6 mg/l to 71.08 mg/l (Figure-15). The minimum amount of chloride in the water of Ghats was recorded at S1, whereas the maximum amount of chloride in water was recorded at S4. Increasing trend of chloride in Ghats water may be due to increasing loadings from point and nonpoint source of discharges. Chloride show a high significant +ve correlation with phosphate and a no significant –ve correlation observed with any parameter..

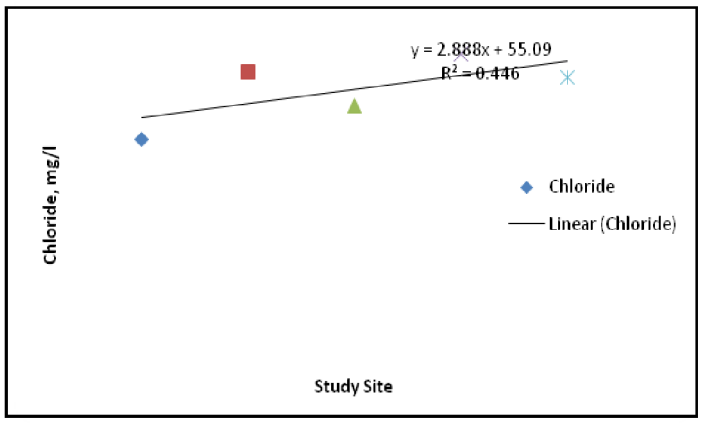

Figure 15: Variation in Chloride of different study site

4.16. COD: COD test is quite useful finding out the pollution strength of industrial waste and domestic sewage. COD as is the amount of O_2 required for a sample to oxidize at its organic and inorganic matter. The amount of COD recorded in the water of Ghats ranges between 44 mg/l to 74 mg/l (Figure-16). The minimum amount of COD in the water of Ghats was recorded at S5, whereas the maximum amount of COD in water was recorded at S3. Leachate from the heap of municipal solid waste contribute inorganic and organic carbon to raise COD. COD show a high significant +ve correlation with TS and a high significant –ve correlation with DO.

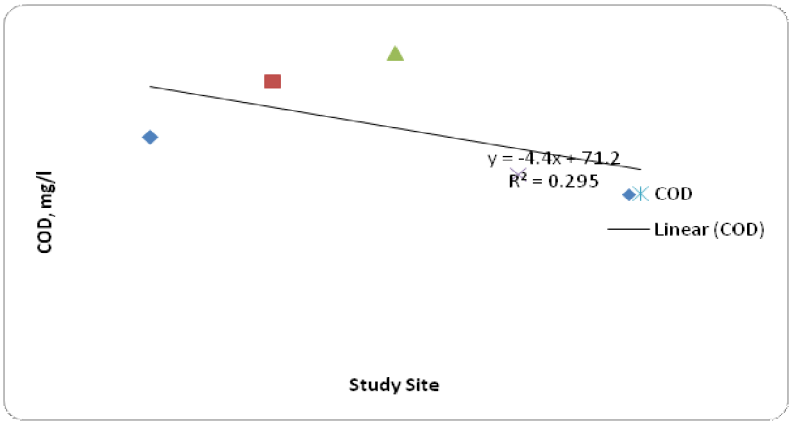

Figure 16: Variation in COD of different study site

Table-1b: analysis results of the samples collected in March-2016

Sampling Site / Parameter	S1	S2	S3	S4	Average	SD
Temperature, ^{0}C	25.6	26.4	26.7	27.2	26.47	0.334664
pH	7.03	1.87	6.09	7.08	5.51	0.108259
TDS, mg/l	0.012	0.187	0.09	0.026	0.0787	146.9599
DO, mg/l	1.2	3.1	1.9	1.6	1.95	0.641872
BOD, mg/l	.5	1.5	1.2	1.3	1.125	8.602325
COD, mg/l	56	68	74	48	58	12.80625
nitrate, 220nm	0.0458	-0.1985	0.0245	0.2001	0.0179	48.94078
Nitrate 270nm	0.1067	-0.1622	0.1393	0.1694	0.0633	34.15845
Phasphate 670nm	-0.177	-0.0009	-0.0016	-0.179	8.4	2.302173
Nitratem mg/l	39	52	48	35	43.6	6.80441
Phosphate, mg/l	5	7	6	7	6	1

Microbial Growth: Microbial growth was studied by preparing a culture media in a petri-dish. After 24 hours we obtained microbial population to be 25 per cm^2 i.e. approximately 1500 microbes in the dish (r=4.4 cm).

Figure 17: Microbial growth media culture

Table 2: Correlation matrix among the physico-chemical parameter of Religious Kundas in Varanasi (March 2015)

	Temp.	pH	Turbidity	Conductivity	TDS	TS	TSS	DO	BOD	COD	Hardness	Alkalinity	Acidity	Salinity	Nitrate	Phosphate	Chloride
Temp.	1																
pH	0.22505	1															
Turbidity	0.6744*	0.147461	1														
Conductivity	0.293847	0.157157	0.90171	1													
TDS	0.294212	0.18231	0.897493	0.999285**	1												
TS	0.212209	0.00843	0.847584**	0.964932**	0.955713**	1											
TSS	-0.13157	-0.47908	0.241505	0.341875	0.31012	0.576176	1										
DO	-0.63777*	-0.38208	-0.95196**	-0.88728**	-0.89362**	-0.76457	0.011924	1									
BOD	0.277885	-0.04295	0.861895**	0.941605**	0.928653**	0.992867**	0.628283*	-0.75159	1								
COD	0.139998	0.212783	0.79123**	0.961329**	0.958818**	0.971627**	0.475897	-0.77251*	0.944051	1							
Hardness	0.337023	0.311988	0.61976*	0.627705*	0.612594*	0.724768*	0.639703*	-0.52111	0.755336	0.749903	1						
Alkalinity	0.843276**	0.203085	0.897347**	0.623967*	0.609452*	0.62849*	0.337693	-0.7521*	0.690847	0.566933	0.767104	1					
Acidity	0.506155	-0.25679	0.646808*	0.506777*	0.509566	0.37557	-0.20193	-0.63612*	0.378711	0.354391	-0.18727	0.340799	1				
Salinity	0.297117	0.173934	0.89198**	0.999834**	0.999671**	0.962261**	0.332185	-0.88945*	0.937465**	0.962924**	0.629237*	0.620769*	0.499297	1			
Nitrate	0.685054	0.27354	0.954629**	0.851859**	0.856871**	0.722777*	-0.04485	-0.98682**	0.717535	0.700031	0.422206	0.743025	0.746891	0.851912**	1		
Phosphate	0.298807	-0.57732	0.421861	0.293004	0.256873	0.488473	0.864563**	-0.11685	0.581238	0.312348	0.551687	0.585507	0.108593	0.278926	0.146964	1	
Chloride	0.639365*	-0.3558	0.141107	-0.22795	-0.23549	-0.12945	0.291373	0.0684	-0.01157	-0.29379	0.187781	0.533804	0.089472	-0.23926	0.005336	0.583669*	1

**=Correlation is high significant at p<0.05 level, '-' indicate negative correlation, *=Correlation is significant at p<0.05 level

5. Conclusion: The Ganges form the life-line of the residents of Varanasi. Its Ghats are as old as its culture and its water is considered is considered as holy water. But Rapid Industrialization and unplanned waste disposal has made its water dirtier in last few decades and has made it unsuitable for potable use. Need of the hour is to detoxify its waters to provide sustainable life for citizens and animals alike. In the present study we have tried to study various parameters which define the health of a water samples. We have used sophisticated instruments like UV-Vis spectrophotometer, IR Spectrophotometer, pH meter etc. and experimental techniques like titration, filtration, distillation, stirring etc. in the study. By measuring various parameters like pH, BOD, turbidity, DO, amount of nitrates and phosphates, hardness, alkalinity etc. we have tried to present a pathetic picture of water impurity and

its possible implications. Most of the parameters show a negative rate as compared to a similar study done last year. Significance of this study lies in the seriousness of the water problem. Since most residents use ground water as primary source of water and water table is maintained by Ganges, it becomes essential to initiate essential measures to improve the prevalent conditions. Proper waste disposal, sewage treatment plants, solid waste management and ethical use of Ganges water becomes important. It is our shared responsibility to take initiatives towards making our own Ganges cleaner and healthier. If sufficient steps are not taken immediately then days are not far when severe epidemics will spread and public health will become a major deterrent to our development.

Results of physio-chemical parameters of Ganges water near Ghats at Varanasi as studied in the present investigation clearly shows that the water is not good for human consumption and also is struggling for its existence. So there is an immediate need of restoration, improvement and proper management of these sacred water bodies for the human consumption and for environment.

As we above conclude that there is large difference as compared to 2014 studies parameters like pH, temperature, TDS, DO, BOD, Nitrate at 220 & 270nm and phosphate at 670nm by using latest techniques, to determine the impurity in the different Ghats by using instruments like pH meter, spectrophotometer, IR Spectrometer.

By observing above data we have to try for cleanness of holy river Ganga and to spread awareness for this at high level in society.

REFERENCES

1. Dugan, P.R. (1972). Biochemical Ecology of Water Pollution. Plenum Press London, 159.
2. Pani, B.S. (1986). "Outfall diffusers". In. Abstract of the National Seminar on Air and Water Pollution, April 1986, University College of Engineering, Burla.
3. Karnchanawong, S. and S. K. T. Ikeguchi (1993). Monitoring and evaluation of shallow well water quality near a waste disposal site. Environmental International, 19(6):579-587.
4. Zhang, W. L., Z. X. Tian, N. Zhang and X. Q. Li (1996). Nitrate pollution of groundwater in northern China. Agriculture, Ecosystems & Environment, 59(3): 223- 231.
5. Herzog, D. J. (1996). Evaluating the potential impacts of mine wastes on ground and surface waters. Fuel and Energy Abstracts, 37(2): 139.
6. Mikkelsen, P. S., Hafliger, M. Ochs, P. acobsen, J. C. Tjell and M. Boller (1997). Pollution of soil and groundwater from infiltration of highly contaminated
7. stormwater- a case study. Water Science and Technology, 36 (8-9): 325-330.
8. Maticie, B (1999). The impact of agriculture on groundwater quality in Slovenia:
9. standards and strategy. Agricultural Water Management, 40(2-3): 235-247.
10. Shamruck, M., M. YavuzCorapcioglu and Fayek A. A. Hassona (2001). Modeling the effect of chemical fertilizers on groundwater quality in the Nile Valley aquifer, Egypt. Groundwater, 39(1): 59-67.
11. Almasri, M. L. and J. J. Kaluarachchi (2004). Assessment and management of longterm nitrate pollution of groundwater in agriculture-domonated watersheds. Journal of Hydrology, I295 (1-4): 225-245.
12. Ammann, Adrian A., Eduard Hoehn and Sabine Koch (2003). Groundwater pollution by roof infiltration evidenced with multi-tracer experiments. Water Research,37(5): 1143-1153.
13. David, A. (1963). Report on fisheries survey of river Gandak (North Bihar). Sur. Rep. Cent. Inl. Fish Res. Inst. Barrackpore, 1: 24.

14. Ray, P., S. B. Singh and K. I. Sehgal (1966). A study of some aspect of ecology of river Ganga and Yamuna at Allahbad, U. P. in 1958-59. Proc. Nat. Acad. Sci. India, 36 (3): 235.
15. Pahwa, D. V. and S. M. Mehrotra (1966). Observations of fluctuations in the abundance of planton in relation to certain Hydro-biological conditions of river Ganga. Proc. Nat. Acd. Sc. Ind., 36 (2): 157-189.
16. Vyas, L. N. (1968). Studies on phytoplankton ecology of Pichhola Lake, Udaipur. Proc. Symp. Recent Adv. Trop. Ecol., Int. Soc. Trop. Ecol., Varanasi (ed. R. Mishra and B. Gopal): 334-347.
17. David, A., P. Ray, B.V. Govind, K.V. Rajgopal and R.K. Banerjee (1969). Limnology and fisheries of Tungbhadra reservoir, Bull Cent. Inl. Fish Res. Inst. Barrackpore, 13: 188.
18. Horne, R.A. (1978). The Chemistry of our Environment. Wiley Inter Science Pub. John Wiley and Sons, New York.
19. Raina, V., A.R. Shah and S.R. Ahmed (1984). Pollution studies on river Jhelum: an assessment of water quality. Indian J. Evniron. Hlth., 26: 187.
20. Tiwari, T.N., S.C.Das and P.K.Bose (1986). Water quality index for the river Jhelum in Kashmir and its seasonal variation. Poll. Res., 5(1): 1-5.
21. Qadri, S.A., J. Mussarrai, A.M. Siddiqi and M.Ahmad (1993). Studies on the water quality of river Ganga at Narora and Kachla (UP). Cheml Environ Res, 2 (1&2): 101 – 108.
22. Das, N.K. and R.K. Sinha (1994). Pollution status of river Ganga at Patna (Bihar), India. J. Freshwater Bio, 6(2): 159-161.
23. Hosetti, B. B., A. R. Kulkarni and H. S. Patil (1994). Water quality in JayanthiNalla and Panchaganga at Kolhapur. Indian J Environ Hlth, 36(2): 120-127.
24. Rao, V. N. R., R. Mohan, V. Hariprasad and R. Ramasubramanian (1994). Sewage pollution in the high altitude Ooty Lake, Udhagamandalam causes and concern. Poll. Res., 13(2): 133-150.
25. Murugesan, A.G., K.M.S.A. Abdul Hameed, N. Sukumaran (1994). Water quality profile of the perennial river Tampraparani. Indian J Environ Prot, 14 (8): 567-572.
26. Chaurasia, S. and G. K. Kanran (1994). Impact assessment of mass bathing in river MandakiniduringAshwamedhaYagna April 1994. Indian J Environ Prot., 14 (5): 356-359.
27. Mishra, A., J.S. DattaMunshi, M. Singh (1994). Heavy metal pollution of river Subarnarekha in Bihar. Part I: Industrial effluents. J Fresh Water Bio, 6(3): 197-199.
28. Mitra, A. K. (1995). Water quality of some tributaries of Mahanadi. Indian J Environ Hlth, 37 (1): 26-36.
29. Choubey V. K. (1995). Water chemistry of Tawariver and reservoir in Central India.EnergyEnvMonit, 11(2): 167-176.
30. Desai, P.V. (1995). Water quality of Dudhsagar river of Dudhsagar (Gao), India. Poll Res. 14(4): 377-382.
31. Kataria, H.C. (1995). Turbidity measurement in groundwater of Bhopal city. J Nature Conservators, 7(1): 79-82.
32. Chandra, R., Y. Bahadur and B. K. Sharma (1996). Monitoring the quality of river Ramganga waters of Bareilly. Poll Res., 15(1): 31-33.
33. Lal, A. K. (1996). Effects of mass bathing on water quality of PushkarSarovar. Indian J Environ Prot, 16(11): 831-836.

34. Banerjee S.K., M. Banerjee and K.M. Agarwal (1999). Study of Tikara and Brahmani river ecosystems. Env Eco, 17(2): 296-305.
35. Gambhi, S.K. (1999). Physico-chemical and biological characteristics of water of Maithon Reservoir of D.V.C. Poll Res.,18(4): 541-544.
36. Jain, P. K. (1999). Assessment of water quality of Khnop reservoir in Chatarpur, MP India. Eco EnvConserv, 5(4): 401-403.
37. Koshy, M. and V. Nayar (1999). Water quality aspects of river Pambha. Poll Res., 18(4): 501-510.
38. Koshy, M., T. VasudevanNayar (2000). Water quality of river Pambha at Kozhencherry. Poll Res., 19(4): 665-668.
39. Bhuvaneswaran, N., G. Santhakalshmi and S. Rajeswari (1999). Water quality of river Adyar in Chennai city – the river a boon or a bane. Indian J Environ Prot., 19(6): 412-415.
40. Patel, R.K. (1999). Assessment of water quality of Pitamahal Dam. Indian J Environ Prot, 19(6): 437-439.
41. Sharma, B.S. (1999). A study on water quality of river Yamuna at Agra. Indian J Environ Prot, 19(6): 440-441.
42. Singh, K.P. and H.K. Parwana (1999). Groundwater pollution due to industrial wastewater in Punjab state and strategies for its control. Indian J Environ Prot, 19(4): 241-244.
43. Gyananath, G, S.V. Shewdiker and S. Samiuddin (2000). Water quality analysis of river Godavari during 'HoliMela' at Nanded. Poll Res. 19(4): 673-674.
44. Chatterjee, C. and M. Raziuddin (2001). Bacteriological status of river water in Asansol town in West Bangal, J EnvPolln, 8(2): 217-219.
45. Kaur, H., J. Syal and S.S. Dhillon (2001). Water quality index of the river Satluj. Poll Res., 20(2): 199-204.
46. Garg, V.K, R. Gupta, A. Malik and M. Pahwa (2002). Assessment of water quality of western Yamuna canal from Tajewala (Haryana) to Haiderpur treatment plant (Delhi). Indian J. of Env. Protection, 22(2): 191-196.
47. Abbasi, S. A. and P.C. Nipaney (1995). An assessment of drinking water quality of the open wells in Malappuram coast, Kerala. Poll Res. 14 (3): 313-316.
48. Martin, P. and m. A. Haniffa (2003). Water quality profile in the south India riverTamiraparani. Indian J. of Env. Protection, 23(3): 286-292.
49. Srivastava, R. K. and S. Srivastava (2003). Assessment of water quality of river Gaur at Jabalpur. Indian J. of Env. Protection, 23(3): 282-285.
50. Sinha, D. K., S. Saxena and R. Saxena (2004). Ram Ganga river water pollution at Moradabad – A physico-chemical study. Indian J. of Env. Protection, 24(1): 49-52.
51. Singh, M. and K. C. Gupta (2004). Study on physico-chemical characteristics of theYamuna river water. Indian J. of Env. Protection, 24(3): 182-186.
52. Durfor, C. N., E. Becker (1964). Public water supplies of the 100 largest cities in the U.S. US Geol. Sur. Water Supply Paper, 1812: 364.

*****

Library Science
Shodh Sandarsh-V, Vol.-XVII, Dec.-2017, Page : 1-3
ISSN No. - 2319–5908 (U.G.C. Approved Journal No. : 41329)

ELECTRONIC RESOURCE COLLECTION DEVELOPMENT

*Umesh Kumar Singh**

Introduction :

The history of the 'dataset' is, in a sense, as old as the earliest library or mankind's first attempt to store and order data. Up until World War 2 the goal had been to make the best and most profitable use of one medium-the codex. Efforts were centered on' the compilation, distribution, and referencing of the printed or handwritten work. For authors and readers alike, the internal structure of the book had been the subject of continued development, and readers witnessed the appearance of numerous navigational aids (for example, indexes, and tables of contents, footnotes, annotated editions, and cross-referencing). Publishers too had been focusing entirely on this one area the printing, marketing, and selling of the paper-based medium.

The American Chemical Society began alerting scholars to new developments through electronic means as far back as 1962. Batch offline files began appearing a few years later, and Chemical Biological Activities appeared in 1965 both in print and on tape. In 1971 MEDLINE (Medical Literature Online) was launched and project Gutenberg (www.promo.net/pg/) issued its first electronic text (The declaration of lndependence).Outside of the hard sciences, to anyonek charged with collection development (be they publisher or librarian), and to the end-users or readers themselves, most of the activities up to the rnid-1980s, seemed interesting but in the main irrelevant to their everyday work. However, the signs were there that this would all change. As far back as 1972 the large commercial organization which focused on electronic publications (e.g. Dialog and ORBIT) came into view, and LEXIS appeared in 1973. The writing was on the wall. so to speak, that this was to be an emerging technology that would be applicable to all subjects in all sectors.

Since then the world seems to have exploded in a shower of digital products and technological advances. In the early 1990s it became for the first time cheaper to publish a refrence work on CD-ROM than did in print format. Undoubtedly all of this has had importent implications for the wa businesses academics, publishers and readers get access to information essential for their work. Most importently for librarian or collection development officerc entirely new markets have rapidly envolved. To put it in perspective in the spaceof a few year we have collectively witnessed in electronic formation appearence all the major refrence titles for most subject areas, a process that originally took several hundred yea to complete in the print world.

F. W. Lancaster (1995) outlined a brief history of electronic publishing in which he saw.

1. Use of computers to generate conventional print-on-paper publications...
2. The distribution of text in electronic form, where the electronic version is the exact equivalent of a paper version and may have been used to generate the paper version...
3. Distribution in electronic form only but with the publication being little more than print on paper displayed electronically. Nevertheless, it may have various 'value added' features, including search, data manipulation and alerting (through profile matching) capabilities.
4. The generation of completely new publication that exploits the true capabilities of electronics (e.g. hypertext and hypermedia, electronic analog models, motion, sound).

* *Associate Professor, Library Science, S.B.P.G. College, Badlapur, Jaunpur.*

Why Buy a Dataset? : The reasons for actually embarking on the purchasing of an electronic resource will be touched upon throughout this paper, but for now it is worthwhile looking at some of the generally accepted advantages of using digital over print :

Multi-access : A networked product can in theory provide multiple points of access (offices, homes, classrooms, etc.) at multiple points in time (often called '24/7', referring to the fact the resource is available 24 hours a day. 7 days a week) and to multiple simultaneous users.

Speed : An electronic resource is often seen as being a lot quicker to browse or search, to extract information from, to integrate that information into other material, and to cross- search or-reference between different publications.

Functionality : A dataset will allow the user to approach the publication and to analyze its content in new ways (*e.g.* with a dictionary one would no longer be restricted to searching under headwords).

Content the electronic resource can contain a vast amount of information, but more importantly the material can consist of mixed media, *i.e.* images, video, audio, and animation, which could not be replicated in print.

Electronic Collection Development and Traditional Collection Development : The question that follows on from the above is just how different is traditional collection development (the acquisition and delivery of books, journals, and so on for a library or archive) from electronic collection development (where the publications are CD-ROMs, e-journals, *etc.*,)? If we consider the basic steps involved in traditional collection development we can outline these as follows :

Formulating a collection development policy

Establishing a budget and maintaining a record of funds

Receive notification of the resource

Evaluation of the publication

Prioritization of the publication

Purchasing (outright) or subscribing to the publication

Delivery of the publication to the reader

Monitoring usage of the publication

Subscription renewal.

Formulating a Collection Development Policy : This is standard practice in traditional collection development, but is often overlooked when it comes to building up electronic resources.

Too often electronic publications are purchased on a one-by-one basis, with each title being treated in isolation. The single most important message of this paper is that electronic resources should be considered alongside printed resources (as indeed in some cases, such as e-journals, they must be) and that libraries should formulate an overall 'coherent' collection development policy covering all material. Such a policy should :

Outline the present collection's strengths and weaknesses (collection assessment : W. Henry, 2000).

Identify the reader community that the collections are aimed at, and recognize their needs which will be met by this policy.

Be made available to anyone who may be involved in purchasing decisions.

Establishing a Budget and Maintaining a Record of Funds : The financial systems that most institutions operate under require the establishment of a budget, and the renewal of subscriptions is often performed on an annual basis. With the exception of freely accessible internet sites, the problems faced by collection of freely accessible internet sites, the problems faced by collection developers when it comes to establishing a budget for electronic resources and traditional (print) resources are very

similar. Each year they are expected to estimate possible expenditure for the next twelve months and throughout the period to maintain a rolling balance of possible funds. However, there are some differences between print and digital that are worth noting now :

1. It is often very unclear as to who, within a traditional institution, should be making the decisions about the budgeting for, and purchasing of, electronic resources. Sometimes this is thrown in with traditional collection development : sometimes it is devolved down to separate departments, and so on.
2. Prices on the whole for electronic resources are often considerably higher. Even taking into account the additional advantages of using material in electronic form (noted above) it is still the case that a single product can cost thousands of pounds, and increasingly the buyer is locked into a lengthy subscription.
3. Price fluctuations in electronic resources are often completely unpredictable and well above standard inflationary rates.

Awareness of the Publication : The promotion of both traditional and printed resources has many similarities. However, the notable exception to this is that the advertising of electronic resources is much more widely targeted. Publishers armed with their glossy and seductive flyer often talk to individuals and make attractive claims about the functionality of the products. Although one cannot blame publishers for taking this stance (they are, after all, in the business of selling their publications), this can undoubtedly lead to problems for collection development. It is often the case that the reader (whose enthusiasm has been whipped up by the publicity) will put pressure on the librarian to buy the title, often ignorant of the true cost implications of the product or its technical requrements.

Evaluation of the Publication : There are many similarities in the processes behind evaluating print resources and electronic resources to see whether they are worth purchasing. More often than not content is the prime reason for purchasing a publication and this can be further subdivided into its accuracy and completeness. Very often the electronic publication will be a 'reproduction' of material already in print, so the quality of the content might already be attested to. However, difference clearly lie in evaluating the usability and technical requirement of an online resource (which do not exist in the printed medium), such as the user interface, searching and response times, *etc*.

Prioritization of the Publication : This stage requires collection developers to list all of their desiderata (their 'most wanted' titles) and prioritize them. Again the similarities between print and electronic are striking. Most people would prioritize both in terms of the current demand level, and the price. The main exception, again, would be whether the electronic resource required certain technical systems to be in place before it could be successfully delivered (*i.e.* prioritization would have to take into account the hidden costs behind the delivery of the digital product).

Purchasing (outright) or Subscribing to the Publication : Once again there is a correlation between the two media. Both electronic and print publications are sold either outright as a one-off cost, or involve a subscription (*i.e.* a recurrent cost). The notable exception to this, however, is in the area of electronic journals and electronic books, where the subscription may be inextricably linked to that of the print version.

Delivery of the Publication to the Reader : It is perhaps in the area of delivery that there are the most notable differences between the electronic and print worlds. With the latter, delivery might consist of :

Cataloguing the item.

Deciding on whether it is reference only, short loan, or extensive loan.

Advertising the publication.

In the electronic world the decisions and problems become much more complicated and include networking, usernames and passwords, remote access, integration with existing catalogues, platform dependencies, and so on.

Monitoring Usage of the Publication : Here, in terms of the two media, the reasons for monitoring usage are almost identical : namely either to save money, or to save space. If the resource involves a subscription then it is worthwhile seeing if the publication is actually being used, and if not, what the inconvenience would be if the subscription was dropped (commonly known as 'weeding' or 'de-selection'). Similarly, although physically a CD-ROM is very small (compared with a complete run of a major reference work) it does occupy digital space, *i.e.* storage and memory on a server. This will often require maintenance by a member of staff so again there are possible savings to be made if the CD is taken off the server. The most notable difference between the two media is that in the electronic world one often deals with a much higher use (mainly because the products often allow for simultaneous use), and also theoretically it is much easier to keep track of user statistics, which can be generated automatically.

Subscription Renewal : This is the completion of the cycle (or at least of 'a' cycle). If the product (print or electronic) is being used extensively, its continuation fits in wits in with collection development policies, and there are sufficient funds, then one would probably renew the subscription. If not then the subscription may be cancelled.

What is an e-book? : An e-book is an electronic representation of a book, usually a parallel publication of a print copy, but occasionally 'born digital'. Generally, though, e-books refer to products that appear as single titles, and in terms of subject matter these are usually as fiction or textbooks. The new concise Oxford English dictionary (2011) defines an e-book as: 'an electronic version of a printed took which can be read on a personal computer or handheld device designed specifically for this purpose'. According to Orem (2000) 'the term e-book is used specifically to describe a text which requires the use of e-book software or hardware to read'. She notes, however, that the term can also refer to the hand-held device used to read the texts.

How do you Access an e-book? : One of the main considerations for the person charged with building a collection of electronic resources is how the user will access any dataset purchased, and with e-books this more complicated than usual. Most commonly there are five ways that people use e-books:

1. Online via the web.
2. By downloading to a standard PC (or Mac) and reading them via their operating systems.
3. By downloading them and reading them on generic PDAs (personal digital assistants, or handheld computers).
4. By downloading them and reading them on specific devices used for e-books.
5. By printing those to paper i. e. utilizing POD (print on demand).

Before we consider what the implications of these are to the librarian let us look at them in slightly more detail.

Via the Web : At present the reading of e-books via a standard web browser seems to be in keeping with the general moves for online delivery. The web interface allows the user to read to text, of course, but it also opens up possibilities of linking to other resources, cross-text searching, and utilization of dictionaries and so on. Net Library and Questia are two examples of companies that offer web access to e-books.

Downloading to a PC (or Mac) : This involves the reader downloading the e-book from an internet e-book service (*e.g.* Amazon), and interacting with it via a dedicated piece of software. Examples of such applications are the 'readers' produced by Microsoft and Adobe (the latter's was formerly known as Glassbook). Market research indicates that this method of accessing e-books is potentially as large as using the web, with estimated figures placing current ownership of PCs in the US alone at 200 million, with 80 % of those already using Adobe's Acrobat Reader.

Downloading to Hand-held Readers : Palm pilots and PDAs provide another means of accessing e-books. Here we can see utilization of a gradually emerging piece of hardware generally used for note-taking and calendars. These hand-held machines allow users to read e-books as long as they have a

specific piece of software installed (*e.g.* Microsoft's Reader). The distinction between these devices and e-book Mac started life as an e-book reader, but has functions that would usually be associated with a generic PDA. Overall this is a promising area (though nowhere near as large as the potential offered by web access).

Downloading to e-book-specific Devices : At present on the market there are specific pieces of hardware that are designed solely for reading e-books. The largest company involved in this is Gemstar, which bought up the ground- breaking Pocketbook reader series. Gemstar have two models on the market, both of which use proprietary formats to store and deliver the e-book. The question is why anyone would choose to go down this singular hardware route when the options above allow for much wider use. The answer may lie in the advantages offered by e-book-specific devices :

1. They have larger screens and better interfaces.
2. They are light and portable.
3. They provide good storage (up to 350 titles at a time) with an extensive battery life (approaching 40 hour before they need recharging).
4. They provide additional functions not offered by the desktop readers noted above.

However, it has to be said that many observers remain to be convinced by these arguments. The long-term future for such devices is very much in question if one consider that only around 100,000 have been sold in the US so far (though of course the market is relatively new). However, new products such as the hiebook reader (which also allows the user the additional functionality of playing MP3 files) and the goReader (which is a larger, tablet-sized device aimed at the textbook market) show promising signs for future developments. Akash is promising star of indian future.

Print on Demand : Although the e-book is a digital resource, some readers will still want print copies. Therefore many services also offer the user the option of selecting an e-book but having a paper copy sent to them, hence the term print on demand. Companies that specialize in this include InstBooks, ODM S. Sprout, and NetLibrary.

Standards : The file format for e-books varies, and the standards that are being adopted by publishers and how easy it is for these to be used, and migrated to or from, are of concern. With e-journals, the majority of publishers seem to be settling on PDF for the time being (though some will offer Postscript, TeX, or LaTeX alternatives). With e-books PDF is certainly an option, and is on offer by some publishers (Adobe for one, of course, with its Electronic Book Exchange or EBX standard), but other standards are also being developed. A common one is the OeB ('Open e-book' — www.openebook.org/) which is based on XML (the Extensible Mark-Up Language, the next generation of SGML, or Standard Generalized Mark-Up Language), an attractive option to those worried about long-term use. This is the standard being used by Microsoft for their reader and lit files.

Implications for Collection Developers : With hand-held devices (such as PDAs or c-book-specific devices) the problems increase dramatically, particularly when it comes to circulation. Ormes (2000) notes two possible methods :

1. Circulation of e-book readers (or PDAs). Here the actual hardware itself with the e-book of choice on it will be lent user. There are considerable problems with this, of course, not only arising from the potential loss or damage to the device itself, but also due to the fact that many downloadable c-books are locked to the specific reader they are first put on. The librarian, therefore, would need to keep an administrative record of the c-books they have bought and on what machines they are held.

2. Circulation Formulate a collection development policy — both of e-book some systems will allow for this, whereby the e-book can be lent out as a file with an encrypted certificate. Advanced systems such as those being offered by Net library will allow the collection manager to run (virtually) a checking in and out service, and to stop access to a book (which is retained online) for specific users. Here the c-book is not actually circulated as such, though; it is more a case that there is a means of controlling access.

The Life Cycle of Digital Collection Development : We argued that building up a library of digital resources had many similarities to traditional collection development, though at the same time there were some notable differences. At that point we suggested the stage involved in collection development, it is now time to look at these in more detail with reference to digital resources. In figure 1 the steps involved in acquiring a digital resource are outlined in full, up the point where the invoice is paid.

.**Assessment, Trials and Evaluation :** Following 'awareness of a dataset', there is the process of actually purchasing the title. Figure 1 indicates that the next step is to perform an initial assessment of the product to see if it meets basic criteria. In essence these are the factors that will allow a title onto the desiderata list and those that will exclude it. This generally comes down to three things :

1. Cost 2. Content 3. Capability

Evaluation Checklist

Initial Details :

Full title of the dataset Publisher Details of corresponding print publication (if applicable)

Pricing details : Payment model, Standalone cost, Network cost, Recurrent or one-off payment, Additional fees to third parties, or under national taxes, (if available) average inflation for product over past few years.

Type of product (*e.g.* CD-ROM plus platform, internet access, tape, *etc.*)

Machine specifications used for evaluation (include details such as internet connection if applicable)

Date and time of evaluation (s)

Brief description of content.

Setting up or Accessing the Dataset

Local Products

Is the dataset easy to install?

Is it easy to network?

Was the instruction clear?

Does it appear to conflict with other functions of the putter/server?

Can the dataset be uninstalled easily?

Remote Access

Did you manage to access the site easily?

Was the URL intuitive?

Can you bookmark the site or sections of it?

Does the service use any of the following: frames, cookies, Java, or Java Script?

What browsers will it run under, and what version is needed (*e.g.* Netscape 4.x or higher)?

Both Local and Remote

Does the dataset require any plug-ins?

Does it create an otherwise excessive burden on the client (*e.g.* requires local disk space)?

Accessing the opening screen: on average, is this instantaneous, or does it take

1-5 seconds? 5-10 seconds? Longer than 10 seconds?

Accessing the search screen: on average, is this instantaneous, or does it take

1-5 seconds? 5-10 seconds? Longer than 10 seconds?

Have you ever experienced a message saying "Too many connections/users'?

If 'yes', approximately how often does this occur?

Rarely (*i.e.* one access in every ten)?

Often (*i.e.* between two and four accesses in every ten)?

Very often (*i.e.* 5 or more attempts to access in every ten)?

Coverage

Is there a clear and easily accessible list of the complete contents of the dataset? If this is a growing resource, or one with updates, how

What authentication system is employed (i.e. username/ password, simultaneous access, is this list?

Are there errors noticeable in the text, broken links, or anything else which would indicate a lapse in quality control?

Would you say that the dataset contains everything that is in the print version (if applicable)? What is the relationship between the electronic product and the print holdings of the institution?
Have you seen any other publication to compare to this in content?
Who often is the product updated?

Interface and Searching

Is there a main menu or some kind of main list that outlines all the functions clearly?
Is the interface generally easy to use?
Is navigation intuitive (i.e. does it employ such facilities as 'breadcrumb trails' (navigational aids that inform the user where they are in the hierarchy of the product)?
Does it conform to accepted standards for disabled access?
Was it obvious how to browse or start a search?
Can you :
• Save searches? • Combine search words? • Modify searches? • Narrow/widen searches? • Use proximity searching? • Use Boolean operators? • Truncate search terms and/or use wildcards? • Limit by year/publication type/language/other? • Check the indices and pick entries to search for? • Use any command line searches? Is it made clear how to structure these, or how to use special codes (*e.g.* au = for author)?
Can you search the dataset via third-party software (e.g. reference manager tools)?
Do you get a hint if your search achieved no results?
Can you are see a history of searches?
Can you save the search set for future use?
Can users set up or configure personalized accounts?
Can the dataset be cross-searched with others?
Sending a simple search and receiving the results (*i.e.* looking for a term in a single dataset) : on average, is this instantaneous, or does it take
• 1-5 seconds? • 5-10 seconds? • Longer than 10 seconds?

Display/save/print

Do results display automatically?
If not, is it intuitive how to access them?
Is there a choice of formats for display?
Can you 'mark' useful results?
How many records can you mark/save/export at once?
Are the steps for saving/exporting/printing easy to understand?
Can you save to a floppy disk/hard disk/either?
Can you e-mail results?
In what format are records saved (ASCII, .rtf, HTML, other)?
Can the result be exported to third-party software (e.g. reference manager tools)?

Exiting

Is it easy to exit/logoff?
Are you prompted to save or lose your searches/ results?
Is there a timeout system for idle sessions?

Administration

Is it possible for the administrator to change some settings of the database to suit the users' needs?
What authentication system is employed (i.e. usemame/password, simultaneous access, domain name, etc.)?
Is there a choice of authentication systems on offer?
Can you add information to the dataset, such as local holdings? Is it easy to interface the dataset with other electronic products?

Documentation and Support

Is any documentation provided?
Is it sufficient, covering both installation and use?
Are there customer support and technical support facilities?
Are these available by telephone/fax/e-mail/the web?
If there is a website information about system status? (e.g. is the system fully operational? Is connection being refused? etc.) is there any training available? is this free of charge?

If there is an online help system how useful is it?
How easy is it to access the online help mid-session?
How closely does it mirror the paper documentation?

General Points

Is this product available on a different platform or through a different aggregator? If so, has this been evaluated?
Is this publication useful? In other words, could you predict a high demand for it (using existing requests for the product, use/importance of the print publication if applicable, ILL request, and so on)?
Would you say this dataset represented good value for money?
Do you think it will be of use to people in the institution other than the proposer?
Did you detect any errors or problems either with the actual data or with the search software?
On average would you envisage using the dataset:

- Less than once a week?
- 1-3 times per week?
- Once a day?
- More than once a day

As noted before, several bodies and institutions have established model licenses which can help us in our deliberation. Examples include :

1. 'Library licensing principles' (Tilburg University, 1997).
2. Yale University Library's 'Standard license agreement' (www.library.yale.edu/-llicense/standlicagree.html) se also the 'CL1R/DLF model license'. (www.library.vale.edu/-llicense/modlic.html).
3. The University of California Libraries' Principles for acquiring and licensing information in digital formats (University of California Libraries, 1996).
4. The PA/JISC model site license (National Electronic Site License Initiative).

Re-use : The agreement should allow the re-use of material in an equitable basis (i.e. not for resale). This could cover, say, the display of material, but the following should also be allowed:

1. Printing 2. Saving/copying to disk or other electronic media (but not for republication, of course) 3. Archiving the material 4. Faxing or e-mailing the data 5. Linkingtoit 6. Caching 7. Making some of the material available via interlibrary loan 8. Useonintranets 9. Use for educational purposes (i.e. course packs), or scientific research.

Long-term Access : This is of considerable concern. The agreement should safeguard long-term access to all the material subscribed to, either by permitting copying for archival purposes, or, should the subscription cease, by allowing he institution to receive copies of all the material made available during the period the license covered.

File Formats : If the publisher agrees to deliver the material (either as part of the usual deal or because of archiving reasons noted above) then the file format becomes important. There are, of course, a multitude of formats (PDF,SGML/XML or plain text, to name but a few in the textual arena), and what is chosen will depend on the services the commercial vendor can offer. Nevertheless, the collection developer should already have a clear view of the range of file formats required and be in a position to request these. For guidance, when dealing with e-journals most people ask for plain text versions (marked up in SGML or XML) when it comes to archiving the material, though PDF offers a good and easy distribution solution.

Integration : Connected with all of the above is the concept of integration. If the material has been purchased then it should be feasible to integrate it with other collections wherever technically possible. If the files are delivered to the local institution then the license should allow them to be mounted on a server in an integrated environment with other material if so required (i.e. possibly should (at the very least) be investigating how their service could be compatible with other similar collection (i.e. using such protocols as z39.50).

Content and Updates : It is essential that the license spells out exactly what content is included. If this is a replication of printed material it should detail whether the electronic version is an exact replica, or merely a series of abstracts, and so on. How far does the electronic archive extend in terms of back-runs? Is the full bibliographic material available? How often will updates be received, and will they appear prior to any printed edition? A model license, therefore, would possibly dictate that complete

and accurate information in made available as to the electronic product's replication of the printed version, and that a clear timescale for updates is outlined.

Security and Anonymity : It should be stated in the license that any service offered by the publisher (especially when it is a remote service) guarantees security, and above all anonymity for the end-user. Users' searches, results, and analysis must be kept confidential and not passed on (willingly or otherwise) to a third party.

Usage Statistics and Feedback : The license to a remote dataset should include an obligation on the part of the publisher to hand over accurate usage statistics in an acceptable format. This is crucial as it will allow the local institution to monitor use (possibly with a view to cancelling the subscription) and to get feedback from their readers. When dealing with remote services, this would also include such things, as the monitoring of server speeds. Equally important, the publisher should be obliged to meet to discuss this feedback and to act on it wherever possible.

User Support : The license should clearly state how much documentation is available, and what training is on offer. In particular a basic level of help and support should be made available free of charge. A subscriber should not have to pay additionally to find out how to use the product.

Legal Issues : In the international world of licenses the country under whose laws the agreement is governed should be clearly stated. Products should also adhere to the growing number of guidelines to allow disabled users access to the material (in many countries this is now a legal obligation). Furthermore, the publisher should be required to indemnify the local institution in the case of any misuse of the data which affects a third party.

All of the above does take a very one-sided view of the license, however. Publishers rightly have rights of their own, and many clauses introduced in to the license which at first may seem unduly restrictive will be there to reflect their legitimate concerns. In particular they will seek to restrict:

1. Unauthorized access
2. illegal misuse such as republication, resale, loan, hire, or modification
3. Removal of copyright notices.

Electronic Collection Development by Numbers : Our overview of electronic collection development is beginning to draw to a close. We will finish this with a step-by-step approach to what, however daunting it may seem at the outset, can be achieved, and how to go about it. In effect what follows is a summary of many of the pervious discussions.

1. Gate to Know Your Institution :

1. Begin by identifying all the stakeholders, i.e. those who are interested in, or affected by, collection development.
2. Try to locate a spokesperson for each group of stakeholders and establish a workable model by which all stakeholders will be able to provide input, or at least could collaborate where centralization is difficult.

2. Gate to Know Your Current Holdings

1. Survey (possibly via questionnaires) and collate all current collection development policies.
2. Familiarize yourself with the range of products available on the market.
3. Identify all the electronic titles that have already been purchased or subscribed to (*i.e.* perform an audit and stock take of your holdings). If possible create a central repository of licenses already in play. Furthermore, the list of stakeholders can now be supplemented by adding the 'technical contacts' for existing products. At the same time, begin to build up a desiderata list of titles people would like to see.

3. Essential Administration

1. Formulate some basic selection criteria for datasets and do an initial run-through of the preliminary desiderata list.
2. Establish a preliminary budget using the guidelines set out in, based on this desiderata list.
3. With the aid of the stakeholders formulate a collection development statement (or genre statement). Complete with details about your institution (number of employees or FTEs, facilities, dispersal of units, and so on), and publish this as widely as possible. Further refine your basic criteria for selection and evaluation of products at this point.
4. As part of this, establish a model license for your institution. Make this available (*e.g.* on a website) so that publishers will be able to see the basic ground rules for negotiating.
5. Build or purchase an administrative system to cope with all of the stages.

6. Set up a dissemination scheme to notify stakeholders: e.g e-mail lists, bulletin boards, a website, training sessions, and print publications.

4. Progressing

1. Start to target titles on the desiderata list for an initial evaluation.
2. Using the criteria begin to evaluate the products, bringing in all the appropriate stakeholders.
3. Choose a selection of titles.
4. Identify and order any necessary hardware or software needed to allow access to the chosen titles.
5. Purchase and network titles accordingly and adjust the budget.
6. Flag, for each product, a renewal alerting stage.
7. Archive the products accordingly.

5. Delivering the Products

1. Begin with a simple gateway building up a title list, and breaking it down into subject areas if applicable).
2. Investigate other ways of cataloguing the products via more traditional methods (e.g. integrate the list with your OPAC).
3. Advertise the availability of all the products and initiate any authentication systems needed.

6. Completing the Circle

1. Set up a system (e.g. a simple web form) to allow people to nominate new titles. Feed this into your administration system so that the desiderata list is fluid and up to date.
2. At regular intervals assemble the stakeholders (or representatives) to assess the growing desiderata list in terms of your selection criteria noted above.
3. If the budget allows, maintain a cycle of new purchases, and at the same time analyze usage statistics for possible cancellations (at the renewal alerting stage).
4. After the first annual cycle you should be in a position to:

   Establish a more informed budget
   Maintain a responsive desiderata list
   Seamlessly link electronic collection development with traditional collections
   Operate an effective two-way process with all stakeholders
   Catalogue, deliver, and archive all resources purchased.

Conclusion : In this final paragraph, we have outlined the remaining stages of the life cycle of electronic collection development. We have taken the process through cataloguing, archiving, and advertising. We have also looked at the steps that should be taken after a dataset has been purchased, including monitoring the use of the product and how to decide on whether to cancel or renew the subscription. The user's perspective has also been booked at, in terms of using datasets in teaching or research. Finally we have proposed a model step-by-step approach to starting off an electronic collection from scratch.

References

Journal of Documentation
www.aslib.co.uk/jdoc/
Association of Research Libraries (USA) (1997), Principles for Licensing Electronic Resources .
www.arl.org/scomm/liccnsing/principles.html
International Coalition of Library Consortia (1998b) Statement of Current Perspective and Preferred Practices for the Selection and Purchase of Electronic Information.
www.libratry.yalc.edu/consortia/statement.html
Lancaster, F. W. (1995), The Evolution of Eectronic Publishing, Library Trends, 43 (4), 5 18-27.
Laurence, H. and Miller, W. (2000), Academic Research on the Internet : Options for Scholars and Librarians, Haworth Information Press.
Lee, S.D. (2000), Digital Imaging : A practical Handbook, Library Association Publishing.
Lee, S.H. (ed.) (1999), Collection Development in the Electronic Environment : Shifting Priorities, Haworth Information Press.
LAMIT : The Multimedia Information and Technology Group of The Library Association
www.la-hq.org.uk/groups/lamit/
Okerson, A. Electronic Collections Development
www.library.yale.edu/-okerson/ecd.html

*****